REGISTERED NO. B. 1819

अङ्क १०३ ॥ ॐ ॥ [अनुशासनपर्व ७]

महाभारत ।

भाषा--भाष्य--समेत

संपादक-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)

महाभारत ।

प्रतिमास १०० पृष्ठोंका एक अंक प्रसिद्ध होता है।

१२ अंकोंका अर्थात् १२०० पृष्ठोंका मूल्य म० आ० से ६) रु० और वी. पी. से ७) रु० है।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी. पी. से ७) विदेशके लिये ८)

स्वायंभुवोऽत्रिः कौरव्य परमर्षिः प्रतापवान् ।
तस्य वंशे महाराज दत्तात्रेय इति स्मृतः ॥ ४ ॥
दत्तात्रेयस्य पुत्रोऽभून्निमिर्नाम तपोधनः ।
निमेश्चाप्यभवत्पुत्रः श्रीमान्नाम श्रिया वृतः ॥ ५ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रान्ते स कृत्वा दुष्करं तपः ।
कालधर्मपरीतात्मा निधनं समुपागतः ॥ ६ ॥
निमिस्तु कृत्वा शौचानि विधिदृष्टेन कर्मणा ।
संतापमगमत्तीव्रं पुत्रशोकपरायणः ॥ ७ ॥
अथ कृत्वोपहार्याणि चतुर्दश्यां महामतिः ।
तमेव गणयन् शोकं विरात्रे प्रत्यबुद्ध्यत ॥ ८ ॥
तस्यासीत्प्रतिबुद्धस्य शोकेन व्यथितात्मनः ।
मनः संहृत्य विषये बुद्धिर्विस्तारगामिनी ॥ ९ ॥
ततः संचिन्तयामास श्राद्धकल्पं समाहितः ।
यानि तस्यैव भोज्यानि मूलानि च फलानि च ॥१०॥
उक्तानि यानि चान्नानि यानि चेष्टानि तस्य ह ।

प्रकार श्राद्ध प्रवृत्त हुआ है, जिस समय श्राद्ध करना होता है, श्राद्धका जैसा रूप है, जिसके द्वारा सङ्कल्पित हुआ है, वह वृत्तान्त मेरे समीप सुनो। हे कुरुवंशधुरन्धर महाराज ! स्वयम्भूके पुत्र अत्रि नामसे एक प्रतापवान् परमर्षि विख्यात हैं, उनके वंशमें दत्तात्रेय उत्पन्न हुए। दत्तात्रेयके निमि नाम तपस्वी पुत्र हुआ था, निमिके श्रीयुक्त श्रीमान् नाम पुत्र था, वह दुष्कर तपस्या करके सहस्र वर्ष पूरा होनेपर काल धर्मसे आक्रान्त होकर मृत्युको प्राप्त हुआ। पुत्रशोकसे युक्त निमि विधिपूर्वक शौचकार्य करके बहुत ही सन्तापित हुए। अनन्तर महाबुद्धिमान् निमि चतुर्दशी तिथिमें भोरके समय मिष्टान्न और वस्त्र आदि सामग्री लाके शोक चिन्ता करते करते सावधान हुए। (३—८)

उन्होंने शोकसे व्यथितहृदय होकर अत्यन्त बन्धकरण शोकविषयसे मनको हटाया अर्थात शोकको परित्याग करके सावधान होनेपर उनकी बुद्धि विस्तारगामिनी हुई। शेषमें वह समाहित होकर श्राद्धकल्पका विचार करने लगे। उनके पास जो सब फल, मूल, भोज्य थे और दूसरी जो कुछ वस्तु उनकी कही हुई तथा इष्ट

तानि सर्वाणि मनसा विनिश्चित्य तपोधनः ॥ ११ ॥
अमावास्यां महाप्राज्ञो विप्रानानाय्य पूजितान्।
दक्षिणावर्तिकाः सर्वा बृसीः स्वयमथाकरोत् ॥ १२ ॥
सप्त विप्रांस्ततो भोज्ये युगपत्समुपानयत्।
ऋते च लवणं भोज्यं श्यामाकान्नं ददौ प्रभुः ॥ १३ ॥
दक्षिणाग्रास्ततो दर्भा विष्टरेषु निवेशिताः।
पादयोश्चैव विप्राणां ये त्वन्नमुपभुञ्जते ॥ १४ ॥
कृत्वा च दक्षिणाग्रान्वै दर्भान्स प्रयतः शुचिः।
प्रददौ श्रीमतः पिण्डान्नामगोत्रमुदाहरन् ॥ १५ ॥
तत्कृत्वा स मुनिश्रेष्ठो धर्मसंकरमात्मनः।
पश्चात्तापेन महता तप्यमानोऽभ्यचिन्तयत् ॥ १६ ॥
अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयेदमनुष्ठितम्।
कथं नु शापेन न मां दहेयुर्ब्राह्मणा इति ॥ १७ ॥
ततः संचिन्तयामास वंशकर्तारमात्मनः।
ध्यातमात्रस्तथा चात्रिराजगाम तपोधनः ॥ १८ ॥

थी, महाप्राज्ञ तपोधन निमिने मनही मन सबका निश्चय करके अमावस्या तिथिमें पूजित ब्राह्मणोंको लाके स्वयं प्रदक्षिणावर्त्तित आसनोंको स्थापित किया। (९-१२)

अनन्तर उन्होंने सात ब्राह्मणोंको एकवारही भोजन करनेके लिये बैठाया और विना लवणके सांवां अन्न खानेको दिया। शेषमें जो सब ब्राह्मण अन्न भोजन कर रहे थे, उनके दोनों चरणों के समीप आसनके बीच अग्रभागमें दहिनी ओर दाम रक्खी गई। उन्होंने सावधान और पवित्र होकर दामोंको अग्रभागमें दहिनी ओर करके नाम तथा गोत्र उच्चारण करके श्रीमान्के उद्देश्यसे पिण्ड प्रदान किया। मुनिश्रेष्ठ निमिने धर्मसङ्कर करके अर्थात् वेदमें पितरोंके उद्देश्यसे पिण्डदान धर्म दीख पडता है, इसलोकमें पुत्रके निमित्त पिण्डदान स्वेच्छानुसार कल्पित हुआ है, ऐसा समझके अत्यन्त पश्चात्तापसे परितापित होके चिन्ता करने लगे। (१३-१६)

उन्होंने सोचा, कि पहले मुनियोंने जिसे नहीं किया, मैंने किस निमित्त उसका अनुष्ठान किया, ब्राह्मण लोग शापके द्वारा मुझे क्यों नहीं जलाते हैं? अनन्तर उसने अपने वंशकर्त्ताका ध्यान

अथात्रिस्तं तथा दृष्ट्वा पुत्रशोकेन कर्षितम् ।
भृशमाश्वासयामास वाग्भिरिष्टाभिरव्ययः ॥ १९ ॥
निमे सङ्कल्पितस्तेऽयं पितृयज्ञस्तपोधन ।
मा ते भूद्भीः पूर्वदृष्टो धर्मोऽयं ब्रह्मणा स्वयम् ॥ २०॥
सोऽयं स्वयम्भुविहितो धर्मः सङ्कल्पितस्त्वया ।
ऋते स्वयंभुवः कोऽन्यः श्राद्धेयं विधिमाहरेत् ॥ २१ ॥
अथाख्यास्यामि ते पुत्र श्राद्धेयं विधिमुत्तमम् ।
स्वयम्भुविहितं पुत्र तत्कुरुष्व निबोध मे ॥ २२ ॥
कृत्वाऽग्नौकरणं पूर्वं मन्त्रपूर्वं तपोधन ।
ततोऽग्नयेऽथ सोमाय वरुणाय च नित्यशः ॥ २३ ॥
विश्वे देवाश्च ये नित्यं पितृभिः सह गोचराः ।
तेभ्यः सङ्कल्पिता भागाः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ २४ ॥
स्तोतव्या चेह पृथिवी निवापस्येह धारिणी ।
वैष्णवी काश्यपी चेति तथैवेहाक्षयेति च ॥ २५ ॥
उदकानयने चैव स्तोतव्यो वरुणो विभुः ।

करना शुरू किया; ध्यान करते ही तपोधन अत्रि आगया । अत्रि निमिको इस प्रकार पुत्रशोकसे दुःखित देखके अभिलषित वचनके सहारे अत्यन्त ही धीरज देने लगे । उन्होंने कहा, हे तपोधन निमि ! तुम मत डरो, तुम्हारा सङ्कपित यह पितृयज्ञ पहले स्वयं ब्रह्माके द्वारा धर्मरूपसे देखा गया है, तुम्हारा यह सङ्कल्पित धर्म स्वयंभूके सहारे उत्तम रीतिसे विहित हुआ है, ब्रह्माके अतिरिक्त और कौन पुरुष श्राद्धसम्बन्धीय विधि बना सकता है ? (१७-२१)

हे पुत्र ! मैं तुम्हारी इस उत्तम श्राद्धसम्बन्धीय विधिकी व्याख्या करूंगा । हे पुत्र ! यह ब्रह्माके द्वारा विहित है, इसलिये इसका अनुष्ठान करो और इसका विवरण मेरे समीप सुनो । हे तपोधन ! पहले मन्त्र पढके अग्नौकरणहोम करके फिर चन्द्रमा, अग्नि, वरुण और विश्वदेव, जो कि पितरोंके सङ्ग सदा विचरते हैं, स्वयम्भूने उनके निमित्त स्वयं सब भाग कल्पित किये हैं । निवापधारिणी पृथ्वीको इस ही समय वैष्णवी, काश्यपी और अक्षया कहके स्तुति करनी होगी । जल लानेके विषयमें प्रभु वरुणकी स्तुति करे । हे पापरहित ! अग्नि और चन्द्रमाको तुष्ट

ततोऽग्निश्चैव सोमश्च आप्याय्याविह तेऽनघ ॥ २६ ॥
देवास्तु पितरो नाम निर्मिता ये स्वयंभुवा ।
उष्णपा ये महाभागास्तेषां भागः प्रकल्पितः ॥ २७ ॥
ते श्राद्धेनार्च्यमाना वै विमुच्यन्ते ह किल्बिषात् ।
सप्तकः पितृवंशस्तु पूर्वदृष्टः स्वयंभुवा ॥ २८ ॥
विश्वे चाग्निमुखा देवाः संख्याताः पूर्वमेव ते ।
तेषां नामानि वक्ष्यामि भागार्हाणां महात्मनाम् ॥ २९ ॥
बलं धृतिर्विपाप्मा च पुण्यकृत्पावनस्तथा ।
पार्ष्णिक्षेमा समूहश्च दिव्यसानुस्तथैव च ॥ ३० ॥
विवस्वान्वीर्यवान् ह्रीमान्कीर्तिमान्कृत एव च ।
जितात्मा मुनिवीर्यश्च दीप्तरोमा भयङ्करः ॥ ३१ ॥
अनुकर्मा प्रतीतश्च प्रदाताऽप्यंशुमांस्तथा ।
शैलाभः परमक्रोधी धीरोष्णी भूपतिस्तथा ॥ ३२ ॥
स्रजो वज्री वरी चैव विश्वे देवाः सनातनाः ।
विद्युद्वर्चाः सोमवर्चाः सूर्यश्रीश्चेति नामतः ॥ ३३ ॥
सोमपः सूर्यसावित्रो दत्तात्मा पुण्डरीयकः ।
उष्णीनाभो नभोदश्च विश्वायुर्दीप्तिरेव च ॥ ३४ ॥
चमूहरः सुरेशश्च व्योमारिः शङ्करो भवः ।

करना होगा। पितृनामक जो देवगण स्वयम्भूके द्वारा निर्मित हुए हैं और जो सब महाभाग उष्णपगण हैं, उनका भी हिस्सा कल्पित है। (२२—२७)

वे सब श्राद्धके द्वारा पूजित होनेपर नरकादि रूप क्लेशोंसे छूटते हैं। सप्त पितृवंश पहले ब्रह्माके द्वारा जाना गया है और अग्नि आदि विश्वदेवगण पहले ही गिने गये हैं। इस समय उन हिस्सा लेनेवाले महानुभावोंका नाम कहता हूं। बल, धृति, विपाप्मा, पुण्यकृत्, पावन, पार्ष्णिक्षेमा, समूह, दिव्यसानु, विवस्वान्, वीर्यवान्, ह्रीमान्, कीर्तिमान्, कृत, जितात्मा, मुनिवीर्य, दीप्तरोमा, भयङ्कर, अनुकर्मा, प्रतीत, प्रदाता, अंशुमान्, शैलाभ, परम क्रोधी, धीरोष्णी, भूपति, स्रज, वज्री, वरी, सनातन विश्वदेवगण, विद्युद्वर्चा, सोमवर्चा, सूर्यश्री, सोमप, सूर्यसावित्र, दत्तात्मा, पुण्डरीयक, उष्णीनाभ, नभोद, विश्वायु, दीप्ति, चमूहर, सुरेश, व्योमारि, शङ्कर, भव, हर, ईश, कर्त्ता, कृति, दक्ष,

ईशः कर्ता कृतिर्दक्षो भुवनो दिव्यकर्मकृत् ॥ ३५ ॥
गणितः पञ्चवीर्यश्च आदित्यो रश्मिवांस्तथा ।
सप्तकृत्सोमवर्चाश्च विश्वकृत्कविरेव च ॥ ३६ ॥
अनुगोप्ता सुगोप्ता च नप्ता चेश्वर एव च ।
कीर्तितास्ते महाभागाः कालस्य गतिगोचराः ॥ ३७ ॥
अश्राद्धेयानि धान्यानि कोद्रवाः पुलकास्तथा ।
हिङ्गुद्रव्येषु शाकेषु पलाण्डुं लशुनं तथा ॥ ३८ ॥
सौभाञ्जनः कोविदारस्तथा गृञ्जनकादयः ।
कूष्माण्डजात्यलाबुं च कृष्णं लवणमेव च ॥ ३९ ॥
ग्राम्यवाराहमांसं च यच्चैवाप्रोक्षितं भवेत् ।
कृष्णाजाजी विडश्चैव शीतपाकी तथैव च ।
अङ्कुराद्यास्तथा वर्ज्या इह शृङ्गाटकानि च ॥ ४० ॥
वर्जयेल्लवणं सर्वं तथा जम्बूफलानि च ।
अवक्षुतावरुदितं तथा श्राद्धे च वर्जयेत् ॥ ४१ ॥
निवापे हव्यकव्ये वा गर्हितं च सुदर्शनम् ।
पितरश्च हि देवाश्च नाभिनन्दन्ति तद्धविः ॥ ४२ ॥

भुवन, दिव्यकर्मकृत्, गणित, पञ्चवीर्य, आदित्य, रश्मिवान्, सप्तकृत्, सोमवर्चा, विश्वकृत्, कवि, अनुगोप्ता, सुगोप्ता, नप्ता और ईश्वर, इस कालकी गतिके अनुसार जिन्हें जाना जा सकता है, वेही सब महाभाग गण वर्णित हुए। (२८—३७)

इसके अनन्तर जो वस्तु श्राद्धमें अदेय हैं, उन्हें कहता हूं। कोदों धान्य और पुलक अर्थात् टूटे हुए चावल, तुच्छ धान्य, हींगसे बनी वस्तु, सब भांतिके शाक, प्याज, लहसुन, सौभाञ्जन, कोविदार अर्थात् लाल पीले रङ्गके फूल, गृञ्जन प्रभृति, कुम्हडा जातीय सब वस्तु, अलाबू, काला नमक पाले हुए सूअरका मांस और जो कुछ बेजानी वस्तु हो, कालाजीरा, बीडलवण, जो सब अन्न शरदृतुमें पकते हैं, सिंघाडा और वंशकरीर प्रभृति अङ्कुर श्राद्धमें वर्जित हैं; सब प्रकारके नमक और जामुनका फल श्राद्धमें त्यागना चाहिये, श्राद्धके समय अवक्षुत और रोदन वर्जित है। (३८—४१)

पितरोंके उद्देश्यसे दान कार्य और हव्यकव्यमें सुदर्शन शाक अत्यन्त निन्दनीय है। पितर और देव उसकी

चाण्डालश्वपचौ वर्ज्यौ निवापे समुपस्थिते ।
काषायवासाः कुष्ठी वा पतितो ब्रह्महाऽपि वा ॥४३॥
संकीर्णयोनिर्विप्रश्च संबन्धी पतितश्च यः ।
वर्जनीया बुधैरेते निवापे समुपस्थिते ॥ ४४ ॥
इत्येवमुक्त्वा भगवान्स्ववंश्यं तमृषिं पुरा ।
पितामहसभां दिव्यां जगामात्रिस्तपोधनः ॥ ४५ ॥ [४३१२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशानिके पर्वणि दानधर्मे श्राद्धकल्पे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

भीष्म उवाच— तथा निमौ प्रवृत्ते तु सर्वे एव महर्षयः ।
पितृयज्ञं तु कुर्वन्ति विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १ ॥
ऋषयो धर्मनित्यास्तु कृत्वा निवपनान्युत ।
तर्पणं चाप्यकुर्वन्त तीर्थाम्भोभिर्यतव्रताः ॥ २ ॥
निवापैर्दीयमानैश्च चातुर्वर्ण्येन भारत ।
तर्पिताः पितरो देवास्तत्रान्नं जरयन्ति वै ॥ ३ ॥
अजीर्णेस्त्वभिहन्यन्ते ते देवाः पितृभिः सह ।

प्रशंसा नहीं करते। श्राद्धका समय उपस्थित होनेपर चाण्डाल और श्वपच जातिवाले पुरुषोंको बहुत दूरमें स्थित करे। यदि वे लोग हविको देख लेवें, तो उसे पितर और देवगण ग्रहण नहीं करते। श्राद्धका समय उपस्थित होने-पर गेरुआ वस्त्रवाले, कुष्ठरोगी, पतित, ब्रह्महत्यारे, नीचयोनिमें जन्मे हुए ब्राह्मण और पतित पुरुषसे संसर्ग रख-नेवाले पुरुष, इन सबको पण्डित लोग उस समय वहांपर न आने देवें। पहले समयमें तपोधन अत्रि भगवान् निज-वंशमें उत्पन्न हुए निमिऋषिसे ऐसी कथा कहके ब्रह्माकी दिव्य सभामें चले गये। (४२—४५)

अनुशासनपर्वमें ९१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९२ अध्याय ।

भीष्म बोले, हे भारत! निमिके इस प्रकार श्राद्ध करनेमें प्रवृत्त होनेपर सब महर्षिवृन्द विधिदृष्ट कर्मके सहारे पितृयज्ञ करने लगे। धर्मनिष्ठ यतव्रती ऋषि लोग श्राद्ध करके तीर्थोंके जलसे तर्पण करने लगे। ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके द्वारा निवाप पाके पितर और देवगण तृप्त होके उस समय अन्न जीर्ण करने लगे। पितरोंके सहित देववृन्द प्रतिदिन प्राप्त हुए अन्नके पचानेमें असमर्थ होके अजीर्ण रोगसे ग्रस्त हुए।

सोममेवाभ्यपद्यन्त तदा ह्यन्नाभिपीडिताः ॥ ४ ॥
तेऽब्रुवन्सोममासाद्य पितरोऽजीर्णपीडिताः।
निवापान्नेन पीड्यामः श्रेयो नोऽत्र विधीयताम् ॥ ५ ॥
तान्सोमः प्रत्युवाचाथ श्रेयश्चेदीप्सितं सुराः।
स्वयंभूसदनं यात स वः श्रेयोऽभिधास्यति ॥ ६ ॥
ते सोमवचनाद्देवाः पितृभिः सह भारत।
मेरुशृङ्गे समासीनं पितामहमुपागमन् ॥ ७ ॥
पितर ऊचुः— निवापान्नेन भगवन्भृशं पीड्यामहे वयम्।
प्रसादं कुरु नो देव श्रेयो नः संविधीयताम् ॥ ८ ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा स्वयंभूरिदमब्रवीत्।
एष मे पार्श्वतो वह्निर्युष्मच्छ्रेयोऽभिधास्यति ॥ ९ ॥
अग्निरुवाच— सहितास्तात भोक्ष्यामो निवापे समुपस्थिते।
जरयिष्यथ चाप्यन्नं मया सार्धं न संशयः ॥ १० ॥
एतच्छ्रुत्वा तु पितरस्ततस्ते विज्वरा भवन्।
एतस्मात्कारणाच्चाग्नेः प्राक्तावद्दीयते नृप ॥ ११ ॥

उस समय वे लोग अन्नसे पीडित होकर चन्द्रमाके समीप गये। (१—४)

वे अजीर्णसे पीडित पितृगण चन्द्रमाके निकट जाके बोले, हम अन्नसे पीडित होरहे हैं, इसलिये जिस प्रकार इस विषयमें हमारा कल्याण हो, आप वैसा ही उपाय करिये। अनन्तर चन्द्रमाने उन लोगोंको उत्तर दिया कि, हे सुरगण! यदि तुम लोगोंको कल्याणकी इच्छा हुई हो, तो ब्रह्माके स्थानपर जाओ, वह तुम्हारे कल्याणका उपाय करेंगे। हे भारत! पितरोंके सहित वे सब देवगण चन्द्रमाका वचन सुनके सुमेरु पर्वतके शिखरपर सुखसे बैठे हुए ब्रह्माके निकट गये। (५—७)

पितरवृन्द बोले, हे भगवन्! हम लोग निवाप अन्नसे अत्यन्त पीडित होरहे हैं। हे देव! इसलिये आप प्रसन्न होके हमारे कल्याणका विधान करिये। ब्रह्मा उन लोगोंका ऐसा वचन सुनके बोले, मेरे निकटमें स्थित यह अग्निदेव तुम्हारे कल्याणका विधान करेंगे। (८—९)

अग्निदेव बोले, पितरोंके उद्देश्यसे दान उपस्थित होनेपर हम सब कोई मिलके उसे भक्षण करेंगे, हमारे सङ्ग खानेसे तुम लोग अन्नको निःसन्देह पचा सकोगे। पितर लोग अग्निका

निवपे चाग्निपूर्वं वै निवापे पुरुषर्षभ।
न ब्रह्मराक्षसास्तं वै निवापं धर्षयन्त्युत ॥ १२ ॥
रक्षांसि चापवर्तन्ते स्थिते देवे हुताशने।
पूर्वं पिण्डं पितुर्दद्यात्ततो दद्यात्पितामहे ॥ १३ ॥
प्रपितामहाय च तत एष श्राद्धविधिः स्मृतः।
ब्रूयात् श्राद्धे च सावित्रीं पिण्डे पिण्डे समाहितः ॥१४॥
सोमायेति च वक्तव्यं तथा पितृमतेति च।
रजस्वला च या नारी व्यङ्गिता कर्णयोश्च या।
निवापे नोपतिष्ठेत संग्राह्या नान्यवंशजा ॥ १५ ॥
जलं प्रतरमाणश्च कीर्तयेत पितामहान्।
नदीमासाद्य कुर्वीत पितॄणां पिण्डतर्पणम् ॥ १६ ॥
पूर्वं स्ववंशजानां तु कृत्वाद्भिस्तर्पणं पुनः।
सुहृत्संबन्धिवर्गाणां ततो दद्याज्जलाञ्जलिम् ॥ १७ ॥
कल्माषगोयुगेनाथ युक्तेन तरतो जलम्।
पितरोऽभिलषन्ते वै नावं चाप्यधिरोहिताः ॥ १८ ॥

ऐसा वचन सुनके उस समय शोकरहित हुए। हे महाराज! इस ही निमित्त पहले अग्निके निमित्त अन्न दिया जाता है। हे पुरुषश्रेष्ठ! पहले अग्निको निवाप नेदेसे ब्रह्मराक्षसगण उसे नष्ट करनेमें समर्थ नहीं होते और अग्निदेवके उपस्थित रहनेपर राक्षसवृन्द दूर भागते हैं। (१०--१३)

पहले पिताको पिण्ड देवे, फिर पितामहको पिण्ड देना योग्य है, अनन्तर प्रपितामहको पिण्ड प्रदान करे, इस ही प्रकार श्राद्धकी विधि वर्णित हुई है। श्राद्धकालमें समाहित होके प्रत्येक पिण्ड देनेके समय गायत्री जपे और "सोमाय पितृमते" इत्यादि वचन कहना योग्य है। श्राद्धके समयमें रजस्वला, बहिरी, तथा अंगहीन स्त्रीको वहांपर न आने दे अर्थात् ये लोग निवापको न देखने पावें और दूसरे वंशकी स्त्रियोंको पाकके निमित्त संग्रह न करे। जलमें उतरके पितामह आदिका नाम उच्चारण करे और नदीमें स्नान करके पितरोंको पिण्ड दे तथा तर्पण करे। पहले अपने वंशवालोंको जलसे तर्पण करके फिर सुहृद् और सम्बन्धियोंको अञ्जली भरके जल देवे। (१३-१७)

विचित्र रूपवाले दो गौवोंसे युक्त

सदा नावि जलं तज्ज्ञाः प्रयच्छन्ति समाहिताः ।
मासार्धे कृष्णपक्षस्य कुर्यान्निर्वपणानि वै　|| १९ ||
पुष्टिरायुस्तथा वीर्यं श्रीश्चैव पितृभक्तितः ।
पितामहः पुलस्त्यश्च वसिष्ठः पुलहस्तथा　|| २० ||
अङ्गिराश्च क्रतुश्चैव कश्यपश्च महानृषिः ।
एते कुरुकुलश्रेष्ठ महायोगेश्वराः स्मृताः　|| २१ ||
एते च पितरो राजन्नेष श्राद्धविधिः परः ।
प्रेतास्तु पिण्डसंबन्धान्मुच्यन्ते तेन कर्मणा　|| २२ ||
इत्येषा पुरुषश्रेष्ठ श्राद्धोत्पत्तिर्यथाऽऽगमम् ।
व्याख्याता पूर्वनिर्दिष्टा दानं वक्ष्याम्यतः परम् ||२३|| [४२३६]

इति श्रीमहा० अनुशासनपर्वणि आनुशा०पर्वणि दानधर्मे श्राद्धकल्पे द्विनवतितमोऽध्यायः||९२||

युधिष्ठिर उवाच- द्विजातयो व्रतोपेता हविस्ते यदि भुञ्जते ।
अन्नं ब्राह्मणकामाय कथमेतत्पितामह　|| १ ||

गाडी तथा नौकाके ऊपर चढकर जो लोग अपार जलसे पार होते हैं, उनके पितर उनके समीप गऊके पूंछके सहित तर्पणकी अभिलाष किया करते हैं। इसलिये जो लोग इसे जानते हैं, वे सावधान होकर शकट अथवा नौकाके सहारे नदी उतरनेके समय पितरोंका तर्पण करते हैं। अर्द्धमासके कृष्णपक्षकी अमावस्या तिथिमें पितरोंका श्राद्ध करना योग्य है, पितृभक्ति रहनेपर पुष्टि, आयु, बल और श्री हुआ करती है। (१८-२०)

हे कुरुकुलश्रेष्ठ! पितामह, पुलस्त्य, वशिष्ठ, पुलह, अंगिरा, क्रतु और कश्यप, ये महायोगेश्वर नामसे वर्णित हुए हैं, ये भी पितर हैं। हे महाराज! यही श्रेष्ठ श्राद्धकी विधि है, इस श्राद्ध-कर्मके सहारे परलोकमें गये हुए पितरोंका प्रेतत्व छूट जाता है। हे पुरुषश्रेष्ठ! यह निर्दिष्ट श्राद्धकी उत्पत्ति-का विषय शास्त्रके अनुसार कहा गया; इसके अनन्तर दानका विषय कहता हूं। (२०—२३)

अनुशासनपर्वमें ९२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९३ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जो व्रतयुक्त ब्राह्मण लोग दशाह आदिमें यजमानकी इच्छासे हवनीय वस्तु अथवा अन्न भोजन करते हैं, सो कैसा है? अर्थात् इसमें व्रत करनेवाले ब्राह्मणोंका व्रतलोप होता है अथवा ब्राह्मणकी कामनाभंग गुरुतर है? (१)

भीष्म उवाच— अवेदोक्तव्रताश्चैव भुञ्जानाः कामकारणे ।
वेदोक्तेषु तु भुञ्जाना व्रतलुप्ता युधिष्ठिरः ॥ २ ॥
युधिष्ठिर उवाच– यदिदं तप इत्याहुरुपवासं पृथग्जनाः ।
तपः स्यादेतदेवेह तपोऽन्यद्वाऽपि किं भवेत् ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच– मासार्धमासोपवासाद्यत्तपो मन्यते जनः ।
आत्मतन्त्रोपघाती यो न तपस्वी न धर्मवित् ॥ ४ ॥
त्यागस्य चापि संपत्तिः शिष्यते तप उत्तमम् ।
सदोपवासी च भवेद्ब्रह्मचारी तथैव च ॥ ५ ॥
मुनिश्च स्यात्सदा विप्रो वेदांश्चैव सदा जपेत् ।
कुटुम्बिको धर्मकामः सदाऽस्वप्नश्च मानवः ॥ ६ ॥
अमांसाशी सदा च स्यात्पवित्रं च सदा पठेत् ।
ऋतवादी सदा च स्यान्नियतश्च सदा भवेत् ॥ ७ ॥
विघसाशी सदा च स्यात्सदा चैवातिथिप्रियः ।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! अवेदोक्त व्रतचारी ब्राह्मण लोग ब्राह्मणोंकी इच्छासे भोजन करनेपर व्रतहीन नहीं होते और जो लोग वेदविहित यज्ञांगभूत व्रताचरण करते हैं, वे ब्राह्मणकी कामनानुसार श्राद्धमें भोजन करनेसे लुप्तव्रत हुआ करते हैं, इसलिये उन्हें व्रतलोपके हेतु प्रायश्चित्त करना योग्य है, साधारण ब्राह्मण न मिलनेपर व्रती ब्राह्मण श्राद्धमें भोजन करके प्रायश्चित्त करें, परन्तु श्राद्धलोप न करें। (२)

युधिष्ठिर बोले, साधारण लोग जो उपवासको तपस्या कहते हैं, उस उपवासको ही इस स्थलमें तपस्या कहा है अथवा अन्य भांतिके किसी नियमसे तपस्या होती है ? (३)

भीष्म बोले, साधारण लोग जो एक महीना अथवा अर्द्धमासके उपवासको तपस्या कहते हैं, वह तपस्या नहीं होसकती, क्यों कि जो पुरुष अपने शरीर और कुटुम्बको कष्ट देकर उपवास करता है, वह तपस्वी वा धर्मज्ञ नहीं है, धन दानको भी श्रेष्ठ तपस्या कहा जाता है। व्रतचारी मनुष्य सदोपवासी और ब्रह्मचारी होते हैं, जो ब्राह्मण सदा वेदमन्त्र जपता है, वह मुनि हुआ करता है। धर्मकी इच्छा करनेवाला मनुष्य कुटुम्बिक और सदा अस्वप्न होवे, सर्वदा अमांसाशी हुआ करे और सदा पवित्र जप करे, सदा सत्य बोले और निरन्तर नियमस्थित होके निवास करे; सदा विघ-

अमृताशी सदा च स्यात्पवित्री च सदा भवेत् ॥ ८ ॥

युधिष्ठिर उवाच— कथं सदोपवासी स्याद्ब्रह्मचारी च पार्थिव।

विघसाशी कथं च स्यात्कथं चैवातिथिप्रियः ॥ ९ ॥

भीष्म उवाच— अन्तरा सायमाशं च प्रातराशं च यो नरः।

सदोपवासी भवति यो न भुङ्क्तेऽन्तरा पुनः ॥ १० ॥

भार्यां गच्छन् ब्रह्मचारी ऋतौ भवति चैव ह।

ऋतवादी सदा च स्याद्दानशीलस्तु मानवः ॥ ११ ॥

अभक्षयन् वृथा मांसममांसाशी भवत्युत।

दानं ददत्पवित्री स्यादस्वप्नश्च दिवाऽस्वपन् ॥ १२ ॥

भृत्यातिथिषु यो भुङ्क्ते भुक्तवत्सु नरः सदा।

अमृतं केवलं भुङ्क्ते इति विद्धि युधिष्ठिर ॥ १३ ॥

अभुक्तवत्सु नाश्नाति ब्राह्मणेषु तु यो नरः।

अभोजनेन तेनास्य जितः स्वर्गो भवत्युत ॥ १४ ॥

देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च संश्रितेभ्यस्तथैव च।

अवशिष्टानि यो भुक्ते तमाहुर्विघसाशिनम् ॥ १५ ॥

साशी और अतिथिप्रिय होवे; सर्वदा अमृताशी और पवित्र रहे। (४-८)

युधिष्ठिर बोले, हे राजन्! किस प्रकार लोग सदा उपवासी होते हैं? किस भांति ब्रह्मचारी हुआ करते हैं? किस प्रकार विघसाशी होते और किस प्रकार अतिथिप्रिय हुआ करते हैं? (९)

भीष्म बोले, जो मनुष्य प्रातर्भोजन और सन्ध्याकालके भोजनके अतिरिक्त फिर भोजन नहीं करते, वेही सदोपवासी होते हैं। जो लोग ऋतुकालमें भार्यागमन करते हैं, और जो मनुष्य सत्यवादी तथा दानशील हैं, उन्हें ब्रह्मचारी कहा जाता है। यज्ञ आदिके अतिरिक्त जो लोग वृथा मांस भक्षण नहीं करते वे अमांसाशी होते हैं, जो लोग दान करते हैं, वे पवित्र होते हैं। जो लोग दिनको नहीं सोते, उन्हें अस्वप्न कहा जाता है। हे युधिष्ठिर! जो मनुष्य सबके तथा अतिथियोंके भोजन करनेके अनन्तर भोजन करता है, जान रखो, कि वही अमृत भोजन किया करता है। (१०-१३)

जो मनुष्य ब्राह्मणके भूखा रहनेपर भोजन नहीं करता, उस अभोजन निबन्धनसे वह स्वर्गको जीतता है। देवताओं पितरों और आश्रितोंको अन्न

तेषां लोका ह्यपर्यन्ताः सदने ब्रह्मणः स्मृताः।
उपस्थिता ह्यप्सरसो गन्धर्वैश्च जनाधिप ॥ १६ ॥
देवतातिथिभिः सार्धं पितृभिश्चोपभुञ्जते।
रमन्ते पुत्रपौत्रेण तेषां गतिरनुत्तमा ॥ १७ ॥
युधिष्ठिर उवाच– ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छन्ति दानानि विविधानि च।
दातृप्रतिग्रहीत्रोर्वै को विशेषः पितामह ॥ १८ ॥
भीष्म उवाच– साधोर्यः प्रतिगृह्णीयात्तथैवासाधुतो द्विजः।
गुणवत्यल्पदोषः स्यान्निर्गुणे तु निमज्जति ॥ १९ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
वृषादर्भेश्च संवादं सप्तर्षीणां च भारत ॥ २० ॥
कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः।
विश्वामित्रो जमदग्निः साध्वी चैवाप्यरुन्धती ॥ २१ ॥
सर्वेषामथ तेषां तु गण्डाऽभूत्कर्मकारिका।
शूद्रः पशुसखश्चैव भर्ता चास्या बभूव ह ॥ २२ ॥
ते च सर्वे तपस्यन्तः पुरा चेरुर्महीमिमाम्।

देकर जो लोग शेषमें बचा हुआ अन्न खाते हैं, धीर लोग उन्हें ही विघसाशी कहते हैं। हे प्रजानाथ! ब्रह्माके स्थानमें उन विघसाशी पुरुषोंके लोकोंकी सीमा नहीं है, उनके निकट गन्धर्वोंके सहित अप्सरावृन्द उपस्थित होती हैं। जो लोग देवता, अतिथि और पितरोंके सहित भोजन करते हैं, वे पुत्र-पौत्रोंके सहित सुख भोग किया करते हैं और उन्हे श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। १४-१७

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जो लोग ब्राह्मणोंको विविध वस्तु दान करते हैं, उन देनेवाले और लेनेवालोंमें क्या विशेषता है? (१८)

भीष्म बोले, जो ब्राह्मण साधु वा असाधु पुरुषोंसे प्रतिग्रह लेता है, वह गुणवान पुरुषोंके निकट ग्रहण करनेके हेतु थोडा दोषी होता है और निर्गुण पुरुषके समीप ग्रहण करनेसे पापमें डूबता है। हे भारत! प्राचीन लोग इस विषयमें वृषादर्भि और सप्तर्षियोंके संवादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र और जमदग्नि, ये सप्तऋषि हैं और पतिव्रता अरुन्धती इन लोगोंकी गण्डा नामक एक सेविका थी, पशुसखनाम शूद्र उसका पति हुआ था, वे सब कोई समाधिके द्वारा सना-

समाधिनोपशिक्षन्तो ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥ २३ ॥
अथाभवदनावृष्टिर्महती कुरुनन्दन ।
कृच्छ्रप्राणोऽभवद्यत्र लोकोऽयं वै क्षुधान्वितः॥ २४ ॥
कस्मिंश्चिच्च पुरा यज्ञे शैब्येन शिबिसूनुना ।
दक्षिणार्थेऽथ ऋत्विग्भ्यो दत्तः पुत्रः पुरा किल ॥२५॥
अस्मिन्कालेऽथ सोऽल्पायुर्दिष्टान्तमगमत्प्रभुः ।
ते तं क्षुधाभिसंतप्ताः परिवार्योपतस्थिरे ॥ २६ ॥
याज्यात्मजमथो दृष्ट्वा गतासुमृषिसत्तमाः ।
अपचन्त तदा स्थाल्यां क्षुधार्ताः किल भारत ॥२७॥
निरन्ने मर्त्यलोकेऽस्मिन्नात्मानं ते परीप्सवः ।
कृच्छ्रामापेदिरे वृत्तिमन्नहेतोस्तपस्विनः ॥ २८ ॥
अटमानोऽथ तान्मार्गे पचमानान्महीपतिः ।
राजा शैब्यो वृषादर्भिः क्लिश्यमानान्ददर्श ह ॥२९॥

वृषादर्भिरुवाच- प्रतिग्रहस्तारयति पुष्टिर्वै प्रतिगृह्यताम् ।
मयि यद्विद्यते वित्तं तद्वृणुध्वं तपोधनाः ॥ ३० ॥
प्रियो हि मे ब्राह्मणो याच्यमानो दद्यामहं वोऽश्वतरीसहस्रम् ।

तब ब्रह्मलोक पानेके निमित्त इस पृथ्वीमण्डलपर तपस्या करते हुए विचरते थे। (१९—२३)

हे कुरुनन्दन ! अनन्तर अनावृष्टि होनेपर उस समय सब कोई क्षुधातुर होके कृच्छ्रप्राण हुए थे। पहले समय किसी यज्ञमें शिबिराजके पुत्र शैब्यने ऋत्विकोंको दक्षिणा देनेके लिये अपना पुत्र प्रदान किया था। इस ही समयमें वह आयु नष्ट होनेसे मर गया, क्षुधासे परिपीडित ऋषियोंने उस मृत राजपुत्रको घेर लिया। हे भारत ! क्षुधासे आर्त्त ऋषियोंने उस राजपुत्रको मरा हुआ देखके उसे स्थालीमें पकाया। यह मर्त्यलोक अन्नसे रहित होनेपर तपस्वियोंने शरीररक्षाकी इच्छा करके कृच्छ्रवृत्ति अवलम्बन की थी। अनन्तर पृथ्वीनाथ शैब्य वृषादर्भिने मार्गमें विचरते हुए उन क्लेशित ऋषियोंको पाक करते देखा। (२४-२९)

वृषादर्भि बोले, दान लेनेसे पुरुष क्लेशसे छूट जाता है। हे तपस्विगण ! इसलिये आप लोग पुष्टिके लिये प्रतिग्रह ग्रहण करिये। मेरे समीप जो वस्तु हो, उसे आप लोग मांगिये। मांगनेवाले ब्राह्मण ही मुझे अत्यन्त

एकैकशः सवृषाः संप्रसूताः सर्वेषां वै शीघ्रगाः श्वेतरोमाः ॥ ३१ ॥
कुलम्भराननडुहः शतं शतान् धुर्यान् श्वेतान् सर्वशोऽहं ददामि।
पष्ठौहीनां पीवराणां च तावदग्र्या गृष्ट्यो धेनवः सुव्रताश्च ॥ ३२ ॥
वरान् ग्रामान् व्रीहिरसं यवांश्च रत्नं चान्यद्दुर्लभं किं ददानि।
नास्मिन्नभक्ष्ये भावमेवं कुरुध्वं पुष्ट्यर्थं वः किं प्रयच्छाम्यहं वै ॥ ३३ ॥

ऋषय ऊचुः— राजन्प्रतिग्रहो राज्ञां मध्वास्वादो विषोपमः।
तज्जानमानः कस्मात्त्वं कुरुषे नः प्रलोभनम् ॥ ३४ ॥
क्षेत्रं हि दैवतमिदं ब्राह्मणान् समुपाश्रितम्।
अमलो ह्येष तपसा प्रीतः प्रीणाति देवताः ॥ ३५ ॥
अह्नापीह तपो जातु ब्राह्मणस्योपजायते।
तद्दाव इव निर्दह्यात्प्राप्तो राजप्रतिग्रहः ॥ ३६ ॥
कुशलं सह दानेन राजन्नस्तु सदा तव।
अर्थिभ्यो दीयतां सर्वमित्युक्त्वाऽन्येन ते ययुः॥३७॥
अपक्वमेव तन्मांसमभूत्तेषां महात्मनाम्।

प्रिय हैं, इसलिये मैं आप लोगोंको सहस्र अश्वतरी देता हूं, मैं आप लोगोंको एक एक वृषभके सहित शीघ्रगामी सफेद रोमवाली सत्प्रसूत गऊ दान करता हूं और वंशको पालनेमें समर्थ बोझा ढोनेवाले एक एक सौ सफेद बैल सबको देता हूं, पहले ही गाभिन हुई लाल शरीरवाली श्रेष्ठ उत्तम सत्प्रसूता गऊ देता हूं, श्रेष्ठ ग्राम, व्रीहि, रस, यव और इसके अतिरिक्त जो सब दुर्लभ रत्न हैं, कहिये उनके बीच से क्या दूं? आप लोग इस अभक्ष्य वस्तुमें ऐसा अभिप्राय न करिये। आप लोगोंकी पुष्टिके निमित्त कौनसी वस्तु दूं? (३०—३३)

ऋषिगण बोले, हे महाराज! राजाओंका प्रतिग्रह मधुरकी भांति स्वादयुक्त होता है, किन्तु विषके समान है, तुम उसे जानके भी किस निमित्त हमें लोभ दिखा रहे हो? देवताओंको ब्राह्मण शरीरका सहारा है, वे देवतास्वरूप ब्राह्मण तपस्याके द्वारा प्रसन्न होनेसे सबकी प्रीतिका विधान करते हैं, ब्राह्मणकी एक दिनमें भी जो तपस्या उपार्जित होती है, कदाचित् प्राप्त हुआ राजप्रतिग्रह दावानलकी भांति उसे जलाया करता है, हे महाराज! दानके सहित सदा तुम्हारा कुशल होवे, इसलिये तुम याचकोंको सब वस्तु दान करो, ऐसा कहके ऋषियोंने दूसरे मार्गसे

अथ हित्वा ययुः सर्वे वनमाहारकाङ्क्षिणः ॥ ३८ ॥
ततः प्रचोदिता राज्ञा वनं गत्वाऽस्य मन्त्रिणः ।
प्रचीयोदुम्बराणि स्म दातुं तेषां प्रचक्रिरे ॥ ३९ ॥
उदुम्बराण्यथान्यानि हेमगर्भाण्युपाहरन् ।
भृत्यास्तेषां ततस्तानि प्रग्राहितुमुपाद्रवन् ॥ ४० ॥
गुरूणीति विदित्वाथ न ग्राह्याण्यत्रिरब्रवीत् ।
नस्महे मन्दविज्ञाना नस्महे मन्दबुद्धयः ॥ ४१ ॥
हैमानीमानि जानीमः प्रतिबुद्धाः स्म जागृम ।
इह ह्येतदुपादत्तं प्रेत्य स्यात्कटुकोदयम् ।
अप्रतिग्राह्यमेवैतत्प्रेत्येह च सुखेप्सुना ॥ ४२ ॥

वसिष्ठ उवाच— शतेन निष्कगणितं सहस्रेण च संमितम् ।
तथा बहु प्रतीच्छन्वै पापिष्ठां पतते गतिम् ॥ ४३ ॥

कश्यप उवाच— यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
सर्वं तन्नालमेकस्य तस्माद्विद्वान् शमं चरेत् ॥ ४४ ॥

भरद्वाज उवाच— उत्पन्नस्य रुरोः शृङ्गं वर्धमानस्य वर्धते ।

गमन किया । (३४-३७)

वे महानुभावगण जो मांस पकाते थे, वह अपक्व ही रहा । अनन्तर वे सब कोई उसे छोडके आहारकी इच्छासे वनमें चले गये । अनन्तर राजाके भेजनेपर उनके उनके मन्त्रियोंने वनमें जाके उदुम्बरका फल तोडके उन्हें देना आरम्भ किया और हेमगर्भ अन्य उदुम्बर देने लगे । तब उनके सेवक उन स्वर्णपूरित उदुम्बरोंको ग्रहण करनेके लिये दौडे । अत्रिने उसे गुरुतर जानके अग्राह्य समझकर यह वचन कहा, 'हम मन्दविज्ञानी तथा मन्दबुद्धि नहीं है, जानता हूं, कि ये सब सुवर्णमय हैं, इसलिये सावधान होकर जागता हूं । इस लोकमें इसे ग्रहण करनेसे परलोकमें बहुत कटु होता है, इस लोक तथा परलोकमें जो लोग सुखकी अभिलाष करें, उनके लिये यह अप्रतिग्राह्य है ।' (३८-४२)

वसिष्ठ बोले, एकसौ उदुम्बरसे निष्क और सहस्र उदुम्बरसे संमित गिना जाता है, इस प्रकार बहुतसा सुवर्ण प्रतिग्रह करनेसे मनुष्यको पापियोंकी गति प्राप्त होती है । (४३)

कश्यप बोले, पृथ्वीमें जो सब व्रीही, यव, हिरण्य, पशुवृन्द और स्त्रियां हैं, वे एकको ही पर्याप्त नहीं हैं, इसलिये

प्रार्थनापुरुषस्येव तस्य मात्रा न विद्यते ॥ ४५ ॥
गौतम उवाच–न तल्लोके द्रव्यमस्ति यल्लोकं प्रतिपूरयेत् ।
समुद्रकल्पः पुरुषो न कदाचन पूर्यते ॥ ४६ ॥
विश्वामित्र उवाच– कामं कामयमानस्य यदा कामः समृध्यते ।
अथैनमपरः कामस्तृष्णा विध्यति बाणवत् ॥ ४७ ॥
जमदग्निरुवाच— प्रतिग्रहे संयमो वै तपो धारयते ध्रुवम् ।
तद्धनं ब्राह्मणस्येह लुभ्यमानस्य विस्रवेत् ॥ ४८ ॥
अरुन्धत्युवाच—धर्मार्थं संचयो यो वै द्रव्याणां पक्षसंमतः ।
तपःसञ्चय एवेह विशिष्टो द्रव्यसञ्चयात् ॥ ४९ ॥
गण्डोवाच— उग्रादितो भयाद्यस्माद्बिभ्यतीमे ममेश्वराः ।
बलीयांसो दुर्बलवद्बिभेम्यहमतः परम् ॥ ५० ॥
पशुसख उवाच–यद्वै धर्मे परं नास्ति ब्राह्मणास्तद्धनं विदुः ।
विनयार्थं सुविद्वांसमुपासेयं यथातथम् ॥ ५१ ॥

विद्वान् ब्राह्मण शान्ति अवलम्बन करे। भरद्वाज बोले, उत्पन्न होके बढनेवाले रुरु मृगके सींग क्रमसे बढते हैं, इसलिये पुरुषको प्रार्थनाके सदृश छोटापन नहीं है । (४४–४५)

गौतम बोले, लोकमें ऐसी वस्तु नहीं है,जो लोगोंको परिपूर्ण करे,पुरुष समुद्र-सदृश है, इसलिये वह कभी पूर्ण नहीं होता । (४६)

विश्वामित्र बोले, काम्यविषयकी इच्छा करनेवाले मनुष्यकी तृष्णा जब पूरी रीतिसे बढती है, तब तृष्णारूपी दुसरा काम बाणकी भांति इस पुरुषको विद्ध करता है । (४७)

जमदग्नि बोले, निश्चय है, कि प्रतिग्रह विषयमें संयम ही तपस्याकी धारण करता है, लोभ करनेसे ब्राह्मणका वह तपस्यारूपी धन नष्ट होता है । (४८)

अरुन्धती बोले, इस लोकमें धर्मार्थके लिये द्रव्य सञ्चय करना कइयोंकोहि सम्मत है, इसलिये इस लोकमें द्रव्य सञ्चयसे तपस्यासञ्चय करना ही श्रेष्ठ है । (४९)

गण्डाने कहा, मेरे प्रभु बलवान होके भी जब इस प्रचण्ड भयसे डर रहे हैं, तब मुझे निर्बलकी भांति इनसे भी अधिक भय है । (५०)

पशुसख बोला, लोभ आदि दोषोंसे धर्म भ्रष्ट होनेपर श्रेष्ठपद नहीं मिलता, ब्राह्मण लोग उस श्रेष्ठपदको ही धन जानते हैं, इसलिये मैं उत्तम शिक्षाके लिये इन विद्वानोंकी उपासना करूं । (५१)

ऋषय ऊचुः— कुशलं सह दानेन तस्मै यस्य प्रजा इमाः।
फलान्युपधियुक्तानि य एवं नः प्रयच्छति ॥ ५२ ॥

भीष्म उवाच– इत्युक्त्वा हेमगर्भाणि हित्वा तानि फलानि वै।
ऋषयो जग्मुरन्यत्र सर्व एव धृतव्रताः ॥ ५३ ॥

मन्त्रिण ऊचुः– उपधिं शङ्कमानास्ते हित्वा तानि फलानि वै।
ततोऽन्येनैव गच्छन्ति विदितं तेऽस्तु पार्थिव ॥ ५४ ॥
इत्युक्तः स तु भृत्यैस्तैर्वृषादर्भिश्चुकोप ह।
तेषां वै प्रतिकर्तुं च सर्वेषामगमद् गृहम् ॥ ५५ ॥
स गत्वाऽऽहवनीयेऽग्नौ तीव्रं नियममास्थितः।
जुहाव संस्कृतैर्मन्त्रैरेकैकामाहुतिं नृपः ॥ ५६ ॥
तस्मादग्नेः समुत्तस्थौ कृत्या लोकभयङ्करी।
तस्या नाम वृषादर्भिर्यातुधानीत्यथाकरोत् ॥ ५७ ॥
सा कृत्या कालरात्रीव कृताञ्जलिरुपस्थिता।
वृषादर्भिं नरपतिं किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ ५८ ॥

वृषादर्भिरुवाच– ऋषीणां गच्छ सप्तानामरुन्धत्यास्तथैव च।
दासीभर्तुश्च दास्याश्च मनसा नाम धारय ॥ ५९ ॥

ऋषियोंने कहा, जिनकी प्रजा छल-युक्त फल दान नहीं करती, उस दाताके दानमें कुशल होता है। (५२)

भीष्म बोले, अनन्तर वे धृतव्रती ऋषि लोग हेमगर्भ फलोंको त्यागके दूसरी ओर चले गये। (५३)

मन्त्रिगण बोले, हे महाराज! आपको विदित होवे कि वे लोग छल करके उन फलोंको त्यागके दूसरे मार्गसे जा रहे हैं। (५४)

राजा वृषादर्भि मन्त्रियोंका ऐसा वचन सुनके बहुत ही क्रुद्ध हुए और उनके प्रतिकारके निमित्त सब कोई गृहपर गये। उस राजाने आवहनीय अग्निके समीप जाकर तीव्र नियम अवलम्बन करके संस्कृत मन्त्रोंके सहारे एक आहुति दी। उस अग्निसे लोक-भयङ्करी कृत्या निकली; वृषादर्भिने उसका यातुधानी नाम रखा। कालरात्रिकी भांति वह कृत्या हाथ जोडके वृषादर्भिके निकट उपस्थित होके बोली, मैं क्या करूं? (५५-५८)

वृषादर्भि बोले, सप्तर्षियों और अरुन्धतीके निकट जाओ, उनके तथा उनकी दासिपति वा दासीके नामका अर्थ मनहीमन निश्चय करो और इन

ज्ञात्वा नामानि चैवैषां सर्वानेतान्विनाशय ।
विनष्टेषु तथा स्वैरं गच्छ यत्रेप्सितं तव ॥ ६० ॥
सा तथेति प्रतिश्रुत्य यातुधानीस्वरूपिणी ।
जगाम तद्वनं यत्र विचेरुस्ते महर्षयः ॥ ६१ ॥
भीष्म उवाच- अथात्रिप्रमुखा राजन् वने तस्मिन्महर्षयः ।
व्यचरन् भक्षयन्तो वै मूलानि च फलानि च ॥ ६२ ॥
अथापश्यन्सुपीनांसपाणिपादमुखोदरम् ।
परिव्रजन्तं स्थूलाङ्गं परिव्राजं शुना सह ॥ ६३ ॥
अरुन्धती तु तं दृष्ट्वा सर्वाङ्गोपचितं शुभम् ।
भवितारो भवन्तो वै नैवमित्यब्रवीदृषीन् ॥ ६४ ॥
वसिष्ठ उवाच- नैतस्येह यथास्माकमग्निहोत्रमनिर्हुतम् ।
सायं प्रातश्च होतव्यं तेन पीवान् शुना सह ॥ ६५ ॥
अत्रिरुवाच— नैतस्येह यथाऽस्माकं क्षुधा वीर्यं समाहतम् ।
कृच्छ्राधीतं प्रनष्टं च तेन पीवान् शुना सह ॥ ६६ ॥

सबके नामको जानकर सबका ही नाश करो। उनके नष्ट होनेपर जहां तुम्हारी इच्छा हो, वहां जाना । यातुधानी स्वरूपिणी वह कृत्या " ऐसा ही करूंगी " इस प्रकार अङ्गीकार करके जिस वनमें वे महर्षिवृन्द विचरते थे, वहां गई। (५९-६१)

भीष्म बोले, हे राजन् ! अनन्तर अत्रि प्रभृति महर्षिगण उस वनमें फल-मूल खाते हुए विचरते थे, उस समय उन्होंने लाल हाथ, लाल चरण, लाल मुख और पीतोदर युक्त एक स्थूल शरीरवाले परिव्राजकको कुत्तेके सहित भ्रमण करते हुए देखा । अरुन्धती उस सर्वाङ्गसुन्दर परिव्राजकको देखके ऋषियोंसे बोली, आप लोग ऐसे नहीं हैं। (६२-६४)

वसिष्ठ बोले, इस समय हम लोगोंका अग्निहोत्र नहीं होता, संध्या और सवेरे होम करना चाहिये, वह भी नहीं होता, इसलिये नित्यकर्म्मोंके लोप होनेसे हम लोग इस प्रकार कृशित हुए हैं। इनका नित्यकर्म लोप नहीं हुआ है, इसीलिये ये कुत्तेके सहित इस प्रकार ललित हैं। (६५)

अत्रि बोले, क्षुधासे हम लोगोंका बल जिस प्रकार नष्ट हो रहा है और अत्यन्त कष्टसे पढी हुई विद्या जिस भांति विनष्ट हुई है, इनकी वैसी नहीं हुई, इसी निमित्त ये इस प्रकार कुत्तेके सहित ललित हैं। (६६)

विश्वामित्र उवाच– नैतस्येह यथाऽस्माकं शश्वच्छास्त्रं जरद्गवा ।
अलसः क्षुत्परो मूर्खस्तेन पीवान् शुना सह ॥ ६७ ॥
जमदग्निरुवाच– नैतस्येह यथाऽस्माकं भक्तमिन्धनमेव च ।
संचिन्त्यं वार्षिकं चित्ते तेन पीवान् शुना सह ॥६८॥
कश्यप उवाच– नैतस्येह यथाऽस्माकं चत्वारश्च सहोदराः ।
देहि देहीति भिक्षन्ति तेन पीवाञ्छुना सह ॥ ६९ ॥
भरद्वाज उवाच– नैतस्येह यथाऽस्माकं ब्रह्मबन्धोरचेतसः ।
शोको भार्यापवादेन तेन पीवाञ्छुना सह ॥ ७० ॥
गौतम उवाच– नैतस्येह यथाऽस्माकं त्रिकौशेयं च राङ्कवम् ।
एकैकं वै त्रिवर्षीयं तेन पीवाञ्छुना सह ॥ ७१ ॥
भीष्म उवाच– अथ दृष्ट्वा परिव्राट् स तान्महर्षीन् शुना सह ।
अभिगम्य यथान्यायं पाणिस्पर्शमथाचरत ॥ ७२ ॥
परिचर्यां वने तां तु क्षुत्प्रतीघातकारिकाम् ।
अन्योऽन्येन निवेद्याथ प्रातिष्ठन्त सहैव ते ॥ ७३ ॥

विश्वामित्र बोले, हम लोगोंका शास्त्र प्रतिपादित धर्म जिस प्रकार जीर्ण हुआ है, हम जैसे भूखे आलसी और मूर्ख हुए हैं, ये वैसे नहीं हैं, इसीसे कुत्तेके सहित ललित हैं। (६७)

जमदग्नि बोले, हम लोग जिस भांति वर्षिक अन्न और काष्ठकी चिन्ता करते हैं, इन्हें उस प्रकार कुछ भी चिन्ता नहीं करनी पडती, इसीसे ये कुत्तेके सहित ऐसे पुष्ट हैं। (६८)

कश्यप बोले, जैसे हमारे चारों सहोदर देहि देहि, करके भीख मांगते हैं, इनके भाई वैसे नहीं हैं, इसीसे ये कुत्तेके सहित पुष्ट हैं। (६९)

भरद्वाज बोले, हमें भार्याके अपवादवश जैसा शोक हुआ है, इस अल्पचित्त ब्रह्मबन्धुको वैसी घटना नहीं हुई, इसी लिये यह पुरुष कुत्तेके सहित ऐसे ललित हैं। (७०)

गौतम बोले, हम लोगोंकी कुशरजसे गुंथा हुआ त्रिवर्षीय रंकुमृगचर्म जिस प्रकार पुराना हुआ है, इसका वैसा नहीं है, इसीलिये यह पुरुष कुत्तेके सहित ऐसा ललित है। (७१)

भीष्म बोले, अनन्तर उस परिव्राजकने सप्तर्षियोंको देखके उनके समीप जाकर न्यायपूर्वक हाथसे स्पर्श किया और बोला, आप लोगोंकी वनके बीच जिस प्रकार भूख मिटेगी, मैं उसी भांति तुम्हारी टहल करूंगा, परस्परके

एकनिश्चयकार्याश्च व्यचरन्त वनानि ते ।
आददानाः समुद्धृत्य मूलानि च फलानि च ॥ ७४ ॥
कदाचिद्विचरन्तस्ते वृक्षैरविरलैर्वृताम् ।
शुचिवारिप्रसन्नोदां ददृशुः पद्मिनीं शुभाम् ॥ ७५ ॥
बालादित्यवपुःप्रख्यैः पुष्करैरुपशोभिताम् ।
वैदूर्यवर्णसदृशैः पद्मपत्रैस्तथावृताम् ॥ ७६ ॥
नानाविधैश्च विहगैर्जलप्रकरसेविभिः ।
एकद्वारामनादेयां सूपतीर्थामकर्दमाम् ॥ ७७ ॥
वृषादर्भिप्रयुक्ता तु कृत्या विकृतदर्शना ।
यातुधानीति विख्याता पद्मिनीं तामरक्षत ॥ ७८ ॥
पशुसखसहायास्तु बिसार्थं ते महर्षयः ।
पद्मिनीमभिजग्मुस्ते सर्वे कृत्याभिरक्षिताम् ॥ ७९ ॥
ततस्ते यातुधानीं तां दृष्ट्वा विकृतदर्शनाम् ।
स्थितां कमलिनीतीरे कृत्यामूचुर्महर्षयः ॥ ८० ॥
एका तिष्ठसि का च त्वं कस्यार्थे किं प्रयोजनम् ।

ऐसा कहनेपर वे सब कोई इकट्ठे होकर निवास करने लगे। वे सब एक ही कार्यके अभिलाषी होकर वनके बीच फलमूल ग्रहण करते हुए विचरनेमें प्रवृत्त हुए। किसी समय उन्होंने विचरते हुए उत्तम वृक्षोंसे पूरित और पवित्र जलसे युक्त एक सुन्दर तालाब देखा। वह तालाब बालारुणसदृश कमलोंसे सुशोभित था, वैदूर्य वर्णसदृश पद्मपत्रोंसे परिपूर्ण, अनेक प्रकारके जलचर पक्षियोंसे अलंकृत था, उसमें प्रवेश करनेके लिये एक ही द्वार था, कोई उन कमल तथा तालाबके जलको नहीं ले सकते थे, उसमें जानेके लिये एक ही मार्ग था और कीचड नहीं था। (७२—७७)

वृषादर्भि राजाके द्वारा भेजी हुई वह भयङ्करी कृत्या जो यातुधानी नामसे विख्यात थी, वह उस तालाबकी रक्षा करती थी। पशुसखके सहित महर्षि लोग मृणालके निमित्त उस कृत्यारक्षित तालाबकी ओर गये। अनन्तर महर्षियोंने तालाबके तटपर स्थित यातुधानी कृत्याको देखके कहा, तुम अकेली किसके लिये यहांपर निवास करती हो? तालाबके तटको अवलम्बन करके तुम्हारे निवास करनेका क्या प्रयोजन है और तुम

पद्मिनीतीरमाश्रित्य ब्रूहि त्वं किं चिकीर्षसि ॥ ८१ ॥
यातुधान्युवाच— याऽस्मि साऽस्म्यनुयोगो मे न कर्तव्यः कथञ्चन ।
आरक्षिणीं मां पद्मिन्या वित्त सर्वे तपोधनाः ॥ ८२ ॥
ऋषय ऊचुः— सर्वे एव क्षुधार्ताः स्म न चान्यत्किञ्चिदस्ति नः ।
भवत्याः संमते सर्वे गृह्णीयाम बिसान्युत ॥ ८३ ॥
यातुधान्युवाच— समयेन बिसानीतो गृह्णीध्वं कामकारतः ।
एकैको नाम मे प्रोक्त्वा ततो गृह्णीत मा चिरम् ॥८४॥
भीष्म उवाच— विज्ञाय यातुधानीं तां कृत्यामृषिवधैषिणीम् ।
अत्रिः क्षुधापरीतात्मा ततो वचनमब्रवीत् ॥ ८५ ॥
अत्रिरुवाच— अरात्रिरत्रिः सारात्रिर्यां नाधीतेऽत्रिरद्य वै ।
अरात्रिरत्रिरित्येव नाम मे विध्दि शोभने ॥ ८६ ॥

क्या करनेकी इच्छा करती हो, उसे कहो। (७८-८१)

यातुधानी बोली, मैं चाहे जो कोई क्यों न होऊं, मुझसे तुम लोगोंको कुछ पूछना न चाहिये। हे तपस्वीवृन्द! तुम्हें मालूम हो, कि मैं इस तालावकी रक्षामें नियुक्त हूं। (८२)

ऋषिवृन्द बोले, हम लोग क्षुधासे आर्त्त हैं, हमारे पास कुछ भी नहीं है, तुम्हारी सम्मति हो, तो हम लोग मृणाल लें। (८३)

यातुधानी बोली, तुम लोग एक नियमके अनुसार अपने नामका अर्थ कहके स्वेच्छा पूर्वक इसमेंसे मृणाल ग्रहण करो। (८४)

भीष्म बोले, अनन्तर क्षुधासे व्याकुलचित्त अत्रिने उस यातुधानी कृत्याको नामका अर्थ जाननेमें समर्थ और ऋषियोंके मारनेकी इच्छा करनेवाली जानके यह वचन कहा। (८५)

अत्रि बोले, जो इस सारे जगत्को पापसे उवारता है, वेद उसे अत्रि नामसे पुकारता है, इसलिये जो पापसे परित्राण करता है, वह अत्रि है और काम क्रोध आदि शत्रु जिसे अवलम्बन किया करते हैं, उसे अर अर्थात् पाप कहा जाता है, उस पापसे जो बचाता है, वह अरात्रि है, इसलिये जो अरात्रि हो, वही अत्रि है; अद् शब्दका अर्थ मृत्यु है, उससे जो त्राण करता है, उसे भी अत्रि कहा जाता है, इसलिये धर्म भी अत्रिपदवाच्य है, अद्य अर्थात् वर्त्तमान कालमें जो तीन बार अधिगत नहीं होता, अतीत पुत्रादिके अनुत्पत्ति समयमें आगतत्व निबन्धन उत्पत्तिकालमें वर्तमान हेतु और नाश होनेपर

यातुधान्युवाच– यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महाद्युते ।
दुर्धार्यमेतन्मनसा गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ८७ ॥
वसिष्ठ उवाच— वसिष्ठोऽस्मि वरिष्ठोऽस्मि वसे वासगृहेष्वपि ।
वसिष्ठत्वाच्च वासाच्च वसिष्ठ इति विद्धि माम् ॥८८॥
यातुधान्युवाच— नाम नैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ८९ ॥
कश्यप उवाच– कुलं कुलं च कुवमः कुवमः कश्यपो द्विजः ।
काश्यः काशनिकाशत्वादेतन्मे नाम धारय ॥ ९० ॥

अतीतत्वके द्वारा जो जाना नहीं जाता, जिसका इस त्रिवार अधिगम नहीं है, केवल वर्तमान ही है; जो अवस्था हार्दाकाशाख्य जगत्कारणप्राप्ति सर्व पापविनाशिनी है, उसे ही अरात्रि कहते हैं। हे सुन्दरी ! इसलिये जब मैं ही अरात्रि हूं, तब तुम मेरा नाम अत्रि निश्चय करो। (८६)

यातुधानी बोली, हे महाद्युति ! तुमने मेरे समीप जो नाम कहा, वह मनमें भी धारण करना बहुत कठिन है। इसलिये तुम जाओ तालावमें उतरो। (८७)

वसिष्ठ बोले, अग्नि, पृथ्वी, वायु, आकाश, स्वर्ग, आदित्य, चन्द्रमा, नक्षत्रगण और श्रुति प्रसिद्ध वसु अर्थात् जिन्हे अवलंबन करके सब कोई वास करते हैं, ये जिसके अधीन होते हैं, वह अणिमा आदि ऐश्वर्यशाली महायोगी हैं, ये सब मेरे वशीभूत हैं, इस ही निमित्त मैं वसिष्ठ और अत्यन्त महान् होनेसे वरिष्ठ तथा सब आश्रमोंके उपजीव्य वास योग्य गृहस्थाश्रममें निवास किया करता हूं, इसलिये वसिष्ठत्व और वास करनेसे मुझे वसिष्ठ जानो, मैं सबका अवलंब हूं, इसलिये देवता लोग मेरी रक्षा करते हैं। (८८)

यातुधानी बोली, तुमने जो अपने नामका निरुक्त कहा, उसका अक्षरार्थ अत्यन्तदुःखसे बोध होता है, इसलिये इसकी धारणा नहीं की जा सकती; अच्छा जाओ, तुम तालाव में उतरो। (८९)

कश्यप बोले, मैं प्रति शरीरमें एक हूं, इसलिये मेरा नाम कश्य है। इस शरीरमें रहने वाली अश्वरूपी इन्द्रियोंको कश्य कहते हैं, उन इन्द्रियोंका आश्रय होनेसे शरीर भी कश्य है, इसलिये कश्यकी रक्षा करनेसे मैं कश्यप हूं। और कु अर्थात् पृथ्वीपर जो वृष्टी करता है, उसे कु-वम अर्थात् सूर्य कहा जाता है, वह कु-वम सूर्य

यातुधान्युवाच— यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महाद्युते।
दुर्धार्यमेतन्मनसा गच्छावतरपद्मिनीम् ॥ ९१ ॥
भरद्वाज उवाच- भरेऽसुतान्भरे शिष्यान्भरे देवान् भरे द्विजान्।
भरे भार्यां भरे द्वाजं भरद्वाजोऽस्मि शोभने ॥ ९२ ॥
यातुधान्युवाच- नाम नैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम्।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ९३ ॥
गौतम उवाच- गोदमो दमतोऽधूमोऽदमस्ते समदर्शनात्।
विद्धि मां गोतमं कृत्ये यातुधानि निबोध माम्॥९४॥
यातुधान्युवाच- यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महामुने।

अर्थात् द्वादशसूर्य मेरा पुत्र है; इसलिये मैं कुवम हूं, दीप्तिमान होनेसे काश्य और काश पुष्प सदृश केशयुक्त होनेसे सदा तपस्या से प्रदीप्त हूं। (९०)

यातुधानी बोली, हे महाद्युति! तुमने मेरे समीप जिस प्रकार अपना नाम कहा, वह मनमें भी धारण नहीं किया जाता, इसलिये जाओ तालावमें उतरो। (९१)

भरद्वाज बोले, मैं अशिष्य अर्थात् शासन न करके योग्य शत्रुओंको भी करुणासे वशीभूत होके प्रतिपालन करता हूं और असुत अर्थात् उदासीन, दीन हीन लोगोंको प्रतिपालन किया करता हूं; देवताओंको भरण करता और द्विजोंको भी भरण किया करता हूं, भार्या, पुत्र और सेवकोंको दूसरे लोग जिस प्रकार पालते हुए पृथ्वीकी भांति सर्वसह और अन्नप्रद होते हैं, मैं भी वैसा ही हूं। हे सुन्दरि! इसलिये मैं अनव्या, अर्थात् मायाके द्वारा लोकहितके लिये उत्पन्न होनेसे अनव्याज हूं; इससे तुम मुझे भरद्वाज जानो। (९२)

यातुधानी बोली, तुम्हारे नामका ऐसा निर्वचन तथा अक्षरार्थ कहनेमें अत्यन्त कष्ट होता है, यह धारण नहीं किया जा सकता; इसलिये जाओ तालावमें उतरो। (९३)

गौतम बोले, मैं जितेन्द्रिय होनेसे गोपद वाच्य, स्वर्ग और भूमिको वशीभूत करनेसे गोदम तथा धूमरहित अग्नितुल्य होनेसे अधूम हूं, इसलिये तुममें समदर्शन निबंधनसे अदम अर्थात् दूसरेसे दमनीय नहीं हूं। हे यातुधानी कृत्या! मेरे जन्मते ही मेरी गो अर्थात् किरणके सहारे तम अर्थात् अन्धकार नष्ट हुआ था, इसलिये मेरा नाम गौतम जानो, मैं अग्निकी भांति तुम्हारे लिये दुष्पर्श हूं। (९४)

नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ९५ ॥
विश्वामित्र उवाच-- विश्वे देवाश्च मे मित्रं मित्रमस्मि गवां तथा।
विश्वामित्रमिति ख्यातं यातुधानि निबोध माम्॥९६॥
यातुधान्युवाच-- नाम नैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम्।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ९७ ॥
जमदग्निरुवाच - जाजमद्य जजानेऽहं जिजाहीह जिजायिषि।
जमदग्निरिति ख्यातस्ततो मां विद्धि शोभने ॥९८॥
यातुधान्युवाच-- यथोदाहृतमेतत्ते मयि नाम महामुने।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ ९९ ॥
अरुन्धत्युवाच-- धरान् धरित्रीं वसुधां भर्तुस्तिष्ठाम्यनन्तरम्।
मनोऽनुरुन्धती भर्तुरिति मां विद्ध्यरुन्धतीम् ॥ १००॥
यातुधान्युवाच-- नाम नैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम्।

यातुधानी बोली, हे महामुनि! मेरे समीप तुमने जो नाम कहा, वह धारण करनेके योग्य नहीं है, इसलिये जाओ तालावमें उतरो। (९५)

विश्वामित्र बोले, ब्रह्माण्डके देवगण मेरे मित्र हैं और मैं इन्द्रियोंका मित्र हूं। हे यातुधानी! इसलिये तुम मुझे विश्वामित्र जानो। (९६)

यातुधानी बोली, तुम्हारे इस नामका निरुक्त और इसका अक्षरार्थ अत्यन्त दुःखसे कहा जाता है, यह धारण करनेके योग्य नहीं है, इसलिये जाओ तालावमें उतरो। (९७)

जमदग्नि बोले, यज्ञादिकोंमें जो वारवार हवि भक्षण करते हैं, उन्हें याजमान् कहा जाता है। उस याजमान् अर्थात् देवगणका जिसके द्वारा यजन किया जाता है, उसका नाम यज अर्थात् अग्नि जानो। हे सुन्दरि! उसके आविर्भावमें मैंने जन्म लिया है, इसलिये तुम मुझे जमदग्नि जानो। (९८)

यातुधानी बोली, हे महामुनि! तुमने जिस प्रकार मेरे समीप अपना नाम कहा, वह धारण करनेके योग्य नहीं है, इसलिये जाओ तालावमें उतरो। (९९)

अरुन्धती बोली, मैं पतिकी अनुगामिनी होकर धर अर्थात् पर्वत, धरित्री और वसुधा अर्थात् देवगणोंके निवास स्थान स्वर्गमें वास करती हूं, तथा पतिके मनका अनुरोध किया करती हूं, इसलिये मुझे अरुन्धती जानो। (१००)

यातुधानी बोली, तुम्हारे नामका निर्वचन और इसका अक्षरार्थ अत्यन्त

नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ १०१ ॥
गण्डोवाच— वक्त्रैकदेशो गण्डेति धातुमेतं प्रचक्षते ।
तेनोन्नतेन गण्डेति विद्धि माऽनलसम्भवे ॥ १०२ ॥
यातुधान्युवाच- नाम नैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभाषिताक्षरम् ।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ १०३ ॥
पशुसख उवाच-पशून् रञ्जामि दृष्ट्वाऽहं पशूनां च सदा सखा ।
गौणं पशुसखेत्येवं विद्धि मामग्निसम्भवे ॥ १०४ ॥
यातुधान्युवाच- नाम नैरुक्तमेतत्ते दुःखव्याभ षिताक्षरम् ।
नैतद्धारयितुं शक्यं गच्छावतर पद्मिनीम् ॥ १०५ ॥
शुनःसख उवाच- एभिरुक्तं यथा नाम नाहं वक्तुमिहोत्सहे ।
शुनःसख सखायं मां यातुधान्युपधारय ॥ १०६ ॥
यातुधान्युवाच- नाम नैरुक्तमेतत्ते वाक्यं सन्दिग्धया गिरा ।
तस्मात्पुनरिदानीं त्वं ब्रूहि यन्नाम ते द्विज ॥ १०७ ॥

दुःखसे कहा जाता है, यह धारण करनेके योग्य नहीं है, इसलिये तुम भी जाओ तालावमें उतरो। (१०१)

गण्डा बोली, हे अग्निसम्भवे ! मुखके एक स्थानको पण्डित लोग गण्ड कहते हैं, मेरा वह स्थान ऊंचा है, इसलिये मुझे गण्डा जानो। (१०१)

यातुधानी बोली, तुम्हारे नामका निरुक्त और अक्षरार्थ अत्यन्त दुःखसे कहा जाता है, यह धारणाके योग्य नहीं है, इसलिये जाओ तुम भी तालावमें उतरो। (१०३)

पशुसख बोला, हे अग्निसम्भवे ! मैं पशु अर्थात् जीवोंको देखते ही रक्षा वा रञ्जन किया करता हूं, इसलिये मैं सदा पशुओंका सखा हूं, इस ही गुणके संबंधसे मेरा पशुसख नाम जानो। १०४

यातुधानी बोली, तुम्हारे नामका निरुक्त और अक्षरार्थ अत्यन्त दुःखसे कहा जाता है, यह धारणा करनेके योग्य नहीं है, इसलिये जाओ तुम भी तालावमें उतरो। (१०५)

शुनःसख बोले, हे यातुधानी ! इन लोगोंने जिस प्रकार अपना अपना नाम कहा, मैं उस भांति कहनेका उत्साह नहीं करता, इसलिये मुझे शुनःसखा अर्थात् धर्मके सखा मुनियोंके सखारूपसे निश्चय करो। (१०६)

यातुधानी बोली, तुमने सन्दिग्ध भाषासे निज नामका निर्वचन किया है, हे द्विज ! इसलिये अब एकवार अपना यथार्थ नाम कहो। (१०७)

शुनःसख उवाच- सकृदुक्तं मया नाम न गृहीतं त्वया यदि।
तस्मात् त्रिदण्डाभिहता गच्छ भस्मेति मा चिरम् ॥१०८॥
सा ब्रह्मदण्डकल्पेन तेन मूर्ध्नि हता तदा।
कृत्या पपात मेदिन्यां भस्म सा च जगाम ह ॥१०९॥
शुनःसखा च हत्वा तां यातुधानीं महाबलाम्।
भुवि त्रिदण्डं विष्टभ्य शाद्वले समुपाविशत् ॥११०॥
ततस्ते मुनयः सर्वे पुष्कराणि बिसानि च।
यथाकाममुपादाय समुत्तस्थुर्मुदान्विताः ॥ १११ ॥
श्रमेण महता कृत्वा ते बिसानि कलापशः।
तीरे निक्षिप्य पद्मिन्यास्तर्पणं चक्रुरम्भसा ॥ ११२ ॥
अथोत्थाय जलात्तस्मात्सर्वे ते समुपागमन्।
नापश्यंश्चापि ते तानि बिसानि पुरुषर्षभाः ॥११३॥
ऋषय ऊचुः- केन क्षुधापरीतानामस्माकं पापकर्मणा।
नृशंसेनापनीतानि बिसान्याहारकाङ्क्षिणाम् ॥११४॥
ते शङ्कमानास्त्वन्योन्यं पप्रच्छुर्द्विजसत्तमाः।
त ऊचुः समयं सर्वे कुर्म इत्यरिकर्शन ॥ ११५ ॥

शुनःसख बोले, मैंने एक बर अपना नाम कहा, उसे यदि तू नहीं समझ सकी, तो इस त्रिदण्डकी चोटसे शीघ्र ही जलके खाक हो। (१०८)

यातुधानी कृत्या उस समय ब्रह्मदण्डसदृश त्रिदण्डकी चोट सिरपर लगते ही पृथ्वीपर गिरके उसी समय भस्म होगई। शुनःसखा भी उस महाबल शालिनी यातुधानीको मारके पृथ्वीपर त्रिदण्ड रखके शाद्वल तृणके बीच बैठ गये। (१०९-११०)

अनन्तर वे मुनिवृन्द स्वेच्छापूर्वक कमलमृणाल लेके हर्षित होकर तालाबसे निकले। उन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे मृणालोंको इकट्ठा कर तालाबके तटपर रखकर जलसे तर्पण किया। अनन्तर वे पुरुषश्रेष्ठ ऋषिगण जलसे निकलके स्थलमें आकर एकत्रित हुए, किन्तु मृणालकी राशि नहीं देखा।(१११-११३)

ऋषिगण बोले, हम लोग क्षुधातुर होके खानेकी इच्छासे जो सब मृणाल लाये, उसे न जाने किस पापी नृशंस मनुष्यने हर लिया ? वे द्विजसत्तमगण शङ्कित होके आपसमें इसी प्रकार पूछने लगे। हे अरिकर्षन ! तब उन्होंने निषिद्ध कार्यके अकर्त्तव्यताच्छलसे शपथ

त उक्त्वा बाढमित्येवं सर्वे एव तदा समम्।
क्षुधार्ताः सुपरिश्रान्ताः शपथायोपचक्रमुः ॥ ११६ ॥
अत्रिरुवाच—स गां स्पृशतु पादेन सूर्यं च प्रतिमेहतु।
अनध्यायेष्वधीयीत बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ ११७ ॥
वसिष्ठ उवाच- अनध्याये पठेल्लोके शुनः स परिकर्षतु।
परिव्राट् कामवृत्तस्तु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ ११८ ॥
शरणागतं हन्तु स वै स्वसुतां चोपजीवतु।
अर्थान्काङ्क्षतु कीनाशाद्बिसस्तैन्यं करोति यः ॥११९॥
कश्यप उवाच- सर्वत्र सर्वं लपतु न्यासलोपं करोतु च।
कूटसाक्षित्वमभ्येतु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ १२० ॥
वृथामांसाशनश्चास्तु वृथादानं करोतु च।
यातु स्त्रियं दिवा चैव बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१२१॥
भरद्वाज उवाच- नृशंसस्त्यक्तधर्मास्तु स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च।
ब्राह्मणं चापि जयतां बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१२२॥
उपाध्यायमधः कृत्वा ऋचोऽध्येतु यजूंषि च।

करनेके लिये कहा। वे सब क्षुधार्त और अत्यन्त श्रमयुक्त थे, इसलिये ऐसा ही करूंगा, कहके सब कोई उस समय शपथ करनेको उद्यत हुए। (११४-११६)

अत्रि बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, वह पांवसे गऊको स्पर्श करे, सूर्यकी ओर मूत्र पुरीष परित्याग करे और अनध्यायके समय अध्ययन करे। (११७)

वसिष्ठ बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, वह लोकके बीच अनध्यायके समय पाठ करे, क्रीडा वा मृगयाके निमित्त कुत्तोंका आकर्षण करे, परिव्राट होके स्वेच्छाचारी होवे, शरणागत पुरुषको मारे, निज दुहिताको उपजीव्य करे अर्थात् शुल्क लेकर अपनी कन्या बेंचके जीवन बितावे, तथा कर्षकसे धनकी अभिलाषा करे। (११८-११९)

कश्यप बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, वह सब ठौर सब विषयोंमें आलाप करे, न्यस्तधन लुप्त करे, झूठी साक्षी दे, यज्ञादि निमित्तके अतिरिक्त वृथा मांसाशी हो, नट कर्षक प्रभृतिको वृथा दान करे और दिनमें स्त्री सम्भोग करे। (१२०--१२१)

भरद्वाज बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, वह धर्मत्यागी होकर स्त्रीजाति और गौवोंके विषयमें निठुर

जुहोतु च स कक्षाग्नौ बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१२३॥

जमदग्निरुवाच— पुरीषमुत्सृजत्वप्सु हन्तु गां चैव दुह्यतु।
अनृतौ मैथुनं यातु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ १२४ ॥
द्वेष्यो भार्योपजीवी स्याद्दूरबन्धुश्च वैरवान्।
अन्योऽन्यस्यातिथिश्चास्तु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१२५॥

गौतम उवाच— अधीत्य वेदांस्त्यजतु त्रीनग्नीनपविध्यतु।
विक्रीणातु तथा सोमं बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१२६॥
उदपानप्लवे ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः।
तस्य सालोक्यतां यातु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१२७॥

विश्वामित्र उवाच— जीवतो वै गुरून्भृत्यान्भरन्त्वस्य परे जनाः।
अगतिर्बहुपुत्रः स्याद्बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ १२८ ॥
अशुचिर्ब्रह्मकूटोऽस्तु ऋद्ध्या चैवाप्यहंकृतः।
कर्षको मत्सरी चास्तु बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१२९॥

आचरण करे अथवा ब्राह्मणोंको जय करे, जिसने मृणाल हरण किया है, वह उपाध्यायको अग्राह्य करके ऋक् और यजुर्वेद पढें और तृणयुक्त अग्निमें होम करे। (१२२—१२३)

जमदग्नि बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, जलमें विष्ठा फेंके, गौवोंको मारे तथा गौवोंके विषयमें द्रोहाचरण करें, ऋतुकालके अतिरिक्त अन्य समयमें मैथुन करे, जिसने मृणाल हरण किया है, वह सब का द्वेषी होवे, भार्याको उपजीव्य करके जीवन बितावे, उसके बन्धुजन पृथक् रहें, और सदा वैरयुक्त हो और परस्परमें अतिथि होवे। (१२४–१२५)

गौतम बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, वह वेदोंको पढके उन्हें त्याग देवें, दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आवहनीय अग्निको परित्याग करे, सोमविक्रयी होवे, एकमात्र कूएंके जलसे जिस स्थानमें जीवन धारण किया जाता है, वैसे देशमें ब्राह्मण होके भी जो वृषलीपति हुआ करता है, जिसने मृणाल हरण किया है, वह वैसे ब्राह्मणों की सदृशताको प्राप्त होवे। (१२६-१२७)

विश्वामित्र बोले, जिस पुरुषने मृणाल हरण किया है, उसके जीवित रहते ही दूसरे लोग उसके गुरुजनों तथा सेवकोंका पालन करें, वह गतिहीन और बहुपुत्र–युक्त होवे। जिसने मृणाल हरण किया है, उसके वेद अपवित्र हों, वह सम्पत्ति पानेपर

वर्षाचरोऽस्तु भृतको राज्ञश्चास्तु पुरोहितः।
अयाज्यस्य भवेदृत्विग् बिसस्तैन्यं करोति यः ॥१३०॥

अरुन्धत्युवाच- नित्यं परिभवेच्छ्वश्रूं भर्तुर्भवतु दुर्मनाः।
एका स्वादु समाश्नातु बिसस्तैन्यं करोति या ॥ १३१ ॥
ज्ञातीनां गृहमध्यस्था सक्तूनत्तु दिनक्षये।
अभोग्यावीरसूरस्तु बिसस्तैन्यं करोति या ॥ १३२ ॥

गण्डोवाच—अनृतं भाषतु सदा बन्धुभिश्च विरुध्यतु।
ददातु कन्यां शुल्केन बिसस्तैन्यं करोति या॥ १३३ ॥
साधयित्वा स्वयं प्राशेद्दास्ये जीर्यतु चैव ह।
विकर्मणा प्रमीयेत बिसस्तैन्यं करोति या ॥ १३४ ॥

पशुसख उवाच- दास एव प्रजायेतामप्रसूतिरकिञ्चनः।
दैवतेष्वनमस्कारो बिसस्तैन्यं करोति यः ॥ १३५ ॥

शुनःसख उवाच- अध्वर्यवे दुहितरं वा ददातु च्छन्दोगे वा चरितब्रह्मचर्ये।
आथर्वणं वेदमधीत्य विप्रः स्नायीत वा यो हरते बिसानि ॥१३६॥

अहङ्कार करे तथा वह कर्षक और मत्सरी हो, जिसने मृणाल हरण किया है, वह वर्षाकालमें विचरे, राजाका वेतनभोगी सेवक हो, साधारण लोगोंका पुरोहित और अयाज्य पुरुषका अयाचक होवे। (१२८-१३०)

अरुन्धती बोली, जो स्त्री मृणाल हरण किये हो, वह सदा सासको परिभव करे, स्वामीके समीप मन मलिन होवे, अकेली सुस्वादु वस्तु खावे। जिसने मृणाल हरण किया है, वह स्वजनोंका अनादर करके गृहमें रहके दिन बीतनेपर सत्तू खाय और अभोग्य तथा अवीरप्रसविनी होवे। (१३१—१३२)

गण्डा बोली, जिसने मृणाल हरण किया है, वह सर्वदा झूठ बोले, बन्धुजनोंके सङ्ग विरोध करे, शुल्क लेके कन्यादान करे, जिसने मृणाल हरण किया है, वह अन्न पाक करके स्वयं भोजन करे, दास्यकर्म करके बूढी होवे, और जारके द्वारा गर्भ धारण करके मृत्युको प्राप्त होवे। (१३३—१३४)

पशुसख बोला, जिसने मृणाल हरण किया है, वह दास होकर जन्मे, सन्तान रहित हो उसके कुछ न रहे और देवताओंको नमस्कार न करे। (१३५)

शुनःसख बोले, जिसने मृणाल हरण किया है, वह चारों वेद जाननेवाले अथवा सामवेदज्ञ वा ब्रह्मचर्ययुक्त

ऋषय ऊचुः— इष्टमेतद् द्विजातीनां योऽयं ते शपथः कृतः।
त्वया कृतं बिसस्तैन्यं सर्वेषां नः शुनःसख ॥१३७॥
शुनःसख उवाच– न्यस्तमद्यं न पश्यद्भिर्यदुक्तं कृतकर्मभिः।
सत्यमेतन्न मिथ्यैतद्विसस्तैन्यं कृतं मया ॥१३८॥
मया ह्यन्तर्हितानीह बिसानीमानि पश्यत।
परीक्षार्थं भगवतां कृतमेवं मयाऽनघाः ॥१३९॥
रक्षणार्थं च सर्वेषां भवतामहमागतः।
यातुधानी ह्यतिक्रूरा कृत्यैषा वो वधैषिणी ॥१४०॥
वृषादर्भिप्रयुक्तैषा निहता मे तपोधनाः।
दुष्टा हिंस्यादियं पापा युष्मान्प्रत्यग्निसंभवा ॥१४१॥
तस्मादस्म्यागतो विप्रा वासवं मां निबोधत।
अलोभादक्षया लोकाः प्राप्ता वै सार्वकामिकाः ॥१४२॥
उत्तिष्ठध्वमितः क्षिप्रं तानवाप्नुत वै द्विजाः ॥१४३॥
भीष्म उवाच— ततो महर्षयः प्रीतास्तथेत्युक्त्वा पुरन्दरम्।
सहैव त्रिदशेन्द्रेण सर्वे जग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥१४४॥

ब्राह्मणको कन्यादान करे और वह विप्र अथर्ववेद पढके स्नान करे। (१३६)

ऋषिगण बोले, हे शुनःसख! तुमने जो शपथ किया, वह जो ब्राह्मणकी ही अभिलषित है, इसलिये तुमने ही हम लोगोंका मृणाल हरण किया है। शुनःसख बोले, आप लोगोंने इस समय न्यस्तधनको न देखके कृतकर्मा होकर जो वचन कहा, वह सत्य है, इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं है, मैंने ही मृणाल हरण किया है, देखिये, ये सब मृणाल मेरे द्वारा लुप्त हुई हैं। हे अनघगण! मैंने आप लोगोंकी परीक्षाके लिये ऐसा किया है, मैं तुम लोगोंकी रक्षाके लिये इस स्थानमें आया हूं, इस अत्यन्त क्रूर यातुधानी कृत्याने आप लोगोंके वधकी इच्छा की थी। हे तपोधनगण! राजा वृषादर्भिने इसे भेजा था, मैंने उसे मारा है। यह दुष्टा हिंसा पापिन आप लोगोंके निमित्त अग्निसे उत्पन्न हुई थी। हे विप्रगण! इस ही निमित्त मैं यहांपर आया हूं, आप लोग मुझे इन्द्र जानो। आप लोगोंने लोभत्याग·नेसे सर्वकामसम्पन्न लोकोंको पाया है। हे द्विजगण! इसलिये यहांसे चलिये, आप लोगोंको शीघ्रही वे समस्त लोक प्राप्त होंगे। (१३७-१४३)

भीष्म बोले, अनन्तर महर्षिवृन्द

एवमेते महात्मानो भोगैर्बहुविधैरपि।
क्षुधा परमया युक्ताश्छन्द्यमाना महात्मभिः ॥१४५॥
नैव लोभं तदा चक्रुस्ततः स्वर्गमवाप्नुवन्।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु नरो लोभं विवर्जयेत् ॥ १४६ ॥
एष धर्मः परो राजंस्तस्माल्लोभं विवर्जयेत् ॥ १४७ ॥
इदं नरः सुचरितं समवायेषु कीर्तयन्।
अर्थभागी च भवति न च दुर्गाण्यवाप्नुते ॥ १४८ ॥
प्रीयन्ते पितरश्चास्य ऋषयो देवतास्तथा।
यशोधर्मार्थभागी च भवति प्रेत्य मानवः ॥ १४९ ॥ [४४८५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे बिसस्तैन्योपाख्याने त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

भीष्म उवाच— अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
यद्वृत्तं तीर्थयात्रायां शपथं प्रति तच्छृणु ॥ १ ॥
पुष्करार्थं कृतं स्तैन्यं पुरा भरतसत्तम।
राजर्षिभिर्महाराज तथैव च द्विजर्षिभिः ॥ २ ॥

प्रसन्न होके इन्द्रसे बोले, "ऐसा ही होवे" इतना कहके देवराजके सङ्ग सुरपुरमें गये। इस ही भांति उन महात्माओंने राजाओंके द्वारा अनेक प्रकारके भोगोंसे प्रलोभित होनेपर भी भूखको बहुत ही सहा था, परन्तु उस समय कुछ भी लोभ न किया, इस ही निमित्त उन्होंने स्वर्गलोक पाया। इसलिये मनुष्य सब अवस्थामें ही लोभ परित्याग करे। हे राजन्! यही परम धर्म है, इसलिये अवश्य ही लोभ त्यागना योग्य है। मनुष्य इस सचरित्र विषयको जनसमाजमें कहनेसे अर्थभागी होता है, कदाचित् उसे दुर्गम स्थान नहीं मिलते, पितर, ऋषि और देववृन्द उसपर प्रसन्न होते हैं, वह मनुष्य परलोकमें जाकर यश धर्म और अर्थभागी होता है। (१४४-१४९)

अनुशासनपर्वमें ९३ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९४ अध्याय।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें यह पुराना इतिहास कहते हैं, तीर्थयात्रा समय शपथके विषयमें जो घटना हुई थी, उसे सुनो। (१)

हे भरतसत्तम महाराज! कमलनालके लिये इन्द्रने जिस प्रकार चोरीकर्म किया और मुनियोंने शपथ की थी, राजर्षि और द्विजर्षियोंके द्वारा उस ही

ऋषयः समेताः पश्चिमे वै प्रभासे समागता मन्त्रममन्त्रयन्त ।
चराम सर्वां पृथिवीं पुण्यतीर्थां तन्नः कार्यं हन्त गच्छाम सर्वे ॥ ३ ॥
शुक्रोऽङ्गिराश्चैव कविश्च विद्वांस्तथा ह्यगस्त्यो नारदपर्वतौ च ।
भृगुर्वसिष्ठः कश्यपो गौतमश्च विश्वामित्रो जमदग्निश्च राजन् ॥ ४ ॥
ऋषिस्तथा गालवोऽथाष्टकश्च भारद्वाजोऽरुन्धती वालखिल्याः ।
शिबिर्दिलीपो नहुषोऽम्बरीषो राजा ययातिर्धुन्धुमारोऽथ पूरुः ॥ ५ ॥
जग्मुः पुरस्कृत्य महानुभावं शतक्रतुं वृत्रहणं नरेन्द्राः ।
तीर्थानि सर्वाणि परिभ्रमन्तो माघ्यां ययुः कौशिकीं पुण्यतीर्थाम् ॥ ६ ॥
सर्वेषु तीर्थेष्ववधूतपापा जग्मुस्ततो ब्रह्मसरस्तु पुण्यम् ।
देवस्य तीर्थे जलमग्निकल्पा विगाह्य ते भुक्तबिसप्रसूनाः ॥ ७ ॥
केचिद्बिसान्यखनंस्तत्र राजन्नन्ये मृणालान्यखनंस्तत्र विप्राः ।
अथापश्यन्पुष्करं ते ह्रियन्तं ह्रदादगस्त्येन समुद्धृतं तत् ॥ ८ ॥
तानाह सर्वानृषिमुख्यानगस्त्यः केनादत्तं पुष्करं मे सुजातम् ।
युष्माञ्शङ्के पुष्करं दीयतां मे न वै भवन्तो हर्तुमर्हन्ति पद्मम् ॥ ९ ॥

भांति शपथ हुई थी। पश्चिम प्रदेशमें ऋषियोंने एकत्र होके प्रभास तीर्थमें यह विचार किया कि हम लोग समस्त पृथ्वीमण्डलमें विचरते हुए स्वेच्छानुसार पुण्यतीर्थोंमें गमन करेंगे। हे राजन्! शुक्र, अङ्गिरा विद्वान् कवि, अगस्त्य, नारद, पर्वत, भृगु, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, गालव ऋषि, अष्टक, भरद्वाज, अरुन्धती और वालखिल्य मुनिगण, राजा शिबि, दिलीप, नहुष, अम्बरीष, ययाति, धुन्धुमार और पुरु आदि राजाओंने महानुभाव वृत्रहन्ता देवराजको अगाडी करके तीर्थोंमें गमन किया; वे लोग अनेक तीर्थोंमें घूमकर माघी पूर्णिमाके दिन पुण्यतीर्थ कौशिकीमें उपस्थित हुए। (५—६)

अनन्तर उन अग्निसदृश तेजस्वी ऋषियोंने देवतीर्थके जलमें स्नान और पुष्करभोजन करके सब तीर्थोंके पापको नष्ट करते हुए ब्रह्मसरोवरमें गये। हे महाराज! कोई कोई वहां बिस खनने लगे, दूसरे ब्राह्मण लोग मृणाल लानेमें प्रवृत्त हुए। अनन्तर उन्होंने अगस्त्यको उस ह्रदमें बढे हुए कमलोंको तोडते देखा। (७—८)

अगस्त्य उन ऋषियोंसे बोले, किसने मेरा सुन्दर कमल लिया है? मैं तुम लोगोंपर शङ्का करता हूं, तुम लोक मुझे कमल दो, पद्मको हरण

श्रृणोमि कालो हिंसते धर्मवीर्यं सोऽयं प्राप्तो वर्ततेऽधर्मपीडा ।
पुराऽधर्मो वर्त्तते नेह यावत्तावद्गच्छामः सुरलोकं चिराय ॥ १० ॥
पुरा वेदान्ब्राह्मणा ग्राममध्ये घुष्टस्वरा वृषलाञ्श्रावयन्ति ।
पुरा राजा व्यवहारेण धर्मान्पश्यत्यहं परलोकं व्रजामि ॥ ११ ॥
पुरा वरान्प्रत्यवरान् गरीयसो यावन्नरा नावमंस्यन्ति सर्वे ।
तमोत्तरं यावदिदं न वर्तते तावद्व्रजामि परलोकं चिराय ॥ १२ ॥
पुरा प्रपश्यामि परेण मर्त्यान्बलीयसा दुर्बलान्भुज्यमानान् ।
तस्माद्यास्यामि परलोकं चिराय न ह्युत्सहे द्रष्टुमिह जीवलोकम् ॥ १३ ॥
तमाहुरार्ता ऋषयो महर्षिं न ते वयं पुष्करं चोरयामः ।
मिथ्याभिषङ्गो भवता न कार्यः शपाम तीक्ष्णैः शपथैर्महर्षे ॥ १४ ॥
ते निश्चितास्तत्र महर्षयस्तु संपश्यन्तो धर्ममेतं नरेन्द्र ।
ततोऽशपन्त शपथान्पर्ययेण सहैव ते पार्थिवपुत्रपौत्रैः ॥ १५ ॥
भृगुरुवाच- प्रत्याक्रोशेदिहाक्रुष्टस्ताडितः प्रतिताडयेत् ।

करना तुम्हें उचित नहीं है । मैंने सुना है, कि कालक्रमसे धर्मबल विनष्ट होगा, वही काल इस समय उपस्थित हुआ है, अधर्मसे पीडा होती है, जब-तक इस लोकमें अधर्म विद्यमान नहीं होता है, उतने ही समयके बीच मैं सदाके लिये सुरलोकमें जाऊंगा, इसके अनन्तर ब्राह्मण लोग गांवके बीच स्पष्ट स्वरसे वृषलोंको वेद सुनावेंगे और राजा लोग व्यवहारमें प्रजाके धर्मको न देखेंगे; इसलिये अब मैं परलोकमें जाऊंगा । जबतक उच्चश्रेणीके मनुष्य निकृष्ट और मध्यम लोगोंकी अवज्ञा नहीं करते हैं, तथा जबतक यह जगत् अज्ञानसे परिपूरित नहीं होता है, उतने ही समयके बीच मैं सदाके लिये परलोकमें जाऊंगा । इसके बाद बलवान् मनुष्योंके द्वारा निर्बल मनुष्योंको भुज्यमान देखूंगा, इसलिये मैं सदाके लिये परलोकमें जाऊंगा, इस लोकमें जीवोंको देखनेका उत्साह नहीं करता । (९—१३)

ऋषिवृन्द आर्त्त होकर उस महर्षिसे बोले, हे महर्षि ! हमने आपका पुष्कर नहीं लिया है, आप हम लोगोंपर निरर्थक क्रोध न करिये । हम लोग तीव्र शपथ करते हैं । हे पुरुषेन्द्र ! उस समय उन महर्षियोंने निश्चय करके इस धर्मको देखकर राजपुत्र और राजपौत्रोंके सहित क्रम क्रमसे शपथ करनेमें प्रवृत्त हुए । (१४—१५)

भृगु बोले, जिसने आपका कमल

खादेच पृष्ठमांसानि यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १६ ॥
वसिष्ठ उवाच- अस्वाध्यायपरो लोके श्वानं च परिकर्षतु।
पुरे च भिक्षुर्भवतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १७ ॥
कश्यप उवाच-सर्वत्र सर्वं पणतु न्यासे लोभं करोतु च।
कूटसाक्षित्वमभ्येतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १८ ॥
गौतम उवाच- जीवत्वहंकृतोऽबुद्ध्या विषमेणासमेन सः।
कर्षको मत्सरी चास्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ १९ ॥
अङ्गिरा उवाच- अशुचिर्ब्रह्मकूटोऽस्तु श्वानं च परिकर्षतु।
ब्रह्महाऽनिकृतिश्चास्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २० ॥
धुन्धुमार उवाच- अकृतज्ञस्तु मित्राणां शूद्रायां च प्रजायतु।
एकः संपन्नमश्नातु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २१ ॥
पुरुरुवाच— चिकित्सायां प्रचरतु भार्यया चैव पुष्यतु।
श्वशुरात्तस्य वृत्तिः स्याद्यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २२ ॥
दिलीप उवाच-उद्पानप्लवे ग्रामे ब्राह्मणो वृषलीपतिः।

लिया है, वह इस लोकमें निन्दित होके दूसरेकी निन्दा करे, ताडित होके दूसरेको मारे और ओढनेवाले वृषभ और ऊंटोंका मांस भक्षण करे। (१६)

वसिष्ठ बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह लोकके बीच अस्वाध्यायपरायण होके कुत्तेको आकर्षण करे और पुरीके बीच भिक्षुक होके रहे। (१७)

कश्यप बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह सब ठौर समस्त वस्तुओंको पण करके क्रय विक्रय करे, न्यस्त धन लोप करे और मिथ्या साक्षी दे। (१८)

गौतम बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह बुद्धिहीनतासे विषम काम क्रोध आदिके सहारे अहंकारयुक्त होके जीवन धारण करे और कर्षक तथा मत्सरी होवे। (१९)

अङ्गिरा बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह अपवित्र तथा कपटी ब्राह्मण होवे, कुत्तेको आकर्षण करे, ब्रह्महत्या करके प्रायश्चित्त न करे। (२०)

धुन्धुमार बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह मित्रोंके निकट अकृतज्ञ होवे, शूद्राके गर्भमें जन्मे और उत्तम रीतिसे बने हुए अन्नको अकेला ही भोजन करे। (२१)

पूरु बोले, जिसने आपका कमल

तस्य लोकान्स व्रजतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २३ ॥
शुक्र उवाच— वृथा मांसं समश्नातु दिवा गच्छतु मैथुनम्।
प्रेष्यो भवतु राज्ञश्च यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २४ ॥
जमदग्निरुवाच- अनध्यायेष्वधीयीत मित्रं श्राद्धे च भोजयेत्।
श्राद्धे शूद्रस्य चाश्नीयाद्यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २५ ॥
शिबिरुवाच- अनाहिताग्निर्म्रियतां यज्ञे विघ्नं करोतु च।
तपस्विभिर्विरुध्येच्च यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २६ ॥
ययातिरुवाच- अनृतौ च व्रती चैव भार्यायां स प्रजायतु।
निराकरोतु वेदांश्च यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २७ ॥
नहुष उवाच- अतिथिर्गृहसंस्थोऽस्तु कामवृत्तस्तु दीक्षितः।
विद्यां प्रयच्छतु भृतो यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २८ ॥
अम्बरीष उवाच-नृशंसस्त्यक्तधर्मोऽस्तु स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च।
निहन्तु ब्राह्मणं चापि यस्ते हरति पुष्करम् ॥ २९ ॥

हरण किया है, वह चिकित्सा करनेमें प्रवृत्त रहे, भार्याके सहारे पुष्टिलाभ करे और श्वशुरके द्वारा उसकी जीविका चले। (२२)

दिलीप बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह जिस गांवमें एक मात्र कूएंके जलसे जीवन धारण किया जाता है, वैसे गांवमें जो ब्राह्मण वृषलीपति होके वास करता है, उसे प्राप्त होने योग्य लोकोंमें जावे। (२३)

शुक्र बोले, जिसने आपका कमल हर लिया है, वह वृथा मांस भक्षण करे, दिनमें मैथुन करे और राजाका प्रेष्य दूत होवे। जमदग्नि बोले, जिसने कमल लिया वह अनध्यायमें पढे, श्राद्धमें मित्रोंको भोजन करावे और शूद्रके श्राद्धमें भोजन करे। (२४-२५)

शिबि बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह अनाहिताग्नि होके मृत्युके मुखमें पडे, यज्ञके समयमें विघ्न करे और तपस्वियोंके सङ्ग विरोध करे। (२६)

ययाति बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह व्रती और जटाधारी होके ऋतुकालके अतिरिक्त अन्य समयमें भार्याके द्वारा सन्तान उत्पन्न करे और वेदोंका निरादर करे। (२७)

नहुष बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह संन्यासी होके गृहस्थ होवे, दीक्षित होके स्वेच्छाचारी बने और वेतन लेके विद्यादान करे। (२८)

अम्बरीष बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह धर्मत्यागी होके स्त्री, जाति,

नारद उवाच–गृहज्ञानी बहिः शास्त्रं पठतां विस्वरं पदम्।
गरीयसोऽवजानातु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३० ॥
नाभाग उवाच· अनृतं भाषतु सदा सद्भिश्चैव विरुध्यतु।
शुल्केन तु ददत्कन्यां यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३१ ॥
कविरुवाच— पद्भ्यां स गां ताडयतु सूर्यं च प्रतिमेहतु।
शरणागतं सन्त्यजतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३२ ॥
विश्वामित्र उवाच· करोतु भृतकोऽवर्षां राज्ञश्चास्तु पुरोहितः।
ऋत्विगस्तु ह्ययाज्यस्य यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३३ ॥
पर्वत उवाच–ग्रामे चाधिकृतः सोऽस्तु खरयानेन गच्छतु।
शुनः कर्षतु वृत्त्यर्थे यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३४ ॥
भरद्वाज उवाच–सर्वपापसमादानं नृशंसे चानृते च यत्।
तत्तस्यास्तु सदा पापं यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३५ ॥
अष्टक उवाच–स राजास्त्वकृतप्रज्ञः कामवृत्तश्च पापकृत्।
अधर्मेणाभिशास्तूर्वीं यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३६ ॥

और गौवोंके विषयमें क्रूर होवे तथा ब्रह्महत्या करे। (२९)

नारद बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह गृहमें ज्ञानी होके बाहरमें विस्वर-पदयुक्त शास्त्र पढे और गुरु जनोंकी अवज्ञा करे। (३०)

नाभाग बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह सदा मिथ्या वचन कहे, साधुओंके सङ्ग विरोध करे और धन लेके कन्या दान करे। (३१)

कवि बोले, जिसने आपका कमल हरण किया है, वह पांवसे गऊको मारे, सूर्यकी ओर मलमूत्र परित्याग करे और शरणागत का त्याग करे। (३२)

विश्वामित्र बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह धनसे खरीदे जानेपर वृष्टिजल प्रतिबन्ध करे, राजाका पुरोहित हो और अयाज्य पुरुषोंका याजक होवे। (३३)

पर्वत बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह गांवमें सेवक होके रहे, गधेकी सवारीपर चले और वृत्तिके निमित्त कुत्तोंको आकर्षण करे। (३४)

भरद्वाज बोले, जिसने आपका कमल लिया है, नृशंस व्यवहार और झूठ कहनेसे जो पाप होता है, उसे वही पाप सदा प्राप्त होवे। (३५)

अष्टक बोले, जिस राजाने आपका कमल लिया है, वह अकृतप्रज्ञ, काम-वृत्तिवाला तथा पापी हो और अधर्म-पूर्वक पृथ्वीको शासन करे। (३६)

गालव उवाच-पापिष्ठेभ्यो ह्यनर्घार्हः स नरोऽस्तु स्वपापकृत्।
दत्त्वा दानं कीर्तयतु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३७ ॥
अरुन्धत्युवाच-श्वश्र्वाऽपवादं वदतु भर्तुर्भवतु दुर्मनाः।
एका स्वादु समश्नातु या ते हरति पुष्करम् ॥ ३८ ॥
वालखिल्या ऊचुः- एकपादेन वृत्त्यर्थं ग्रामद्वारे स तिष्ठतु।
धर्मज्ञस्त्यक्तधर्माऽस्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ३९ ॥
शुनःसख उवाच- अग्निहोत्रमनादृत्य ससुखं स्वपतु द्विजः।
परिव्राट् कामवृत्तोऽस्तु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ४० ॥
सुरभ्युवाच— बालजेन निदानेन कांस्यं भवतु दोहनम्।
दुह्येत परवत्सेन या ते हरति पुष्करम् ॥ ४१ ॥
भीष्म उवाच—ततस्तु तैः शपथैः शप्यमानैर्नानाविधैर्बहुभिः कौरवेन्द्र।
सहस्राक्षो देवराट् संप्रहृष्टः समीक्ष्य तं कोपनं विप्रमुख्यम् ॥ ४२ ॥
अथाब्रवीन्मघवा प्रत्ययं स्वं समाभाष्य तमृषिं जातरोषम्।
ब्रह्मर्षिदेवर्षिनृपर्षिमध्ये यं तं निबोधेह ममाद्य राजन् ॥ ४३ ॥

गालव बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह मनुष्य पापियोंसे भी अपूज्य और पापी होवे और दान करके कहता फिरे। (३७)

अरुन्धती बोली, जिस स्त्रीने आपका कमल हरण किया है, वह स्वशुरकी निन्दा करे, पतिके अहितकी चिन्ता करती रहे और अकेली स्वादिष्ट वस्तुओंको खाय। (३८)

वालखिल्यगण बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह वृत्तिके लिये गांव के पथमें एक चरणसे निवास करे और धर्म जाननेवाला होके भी धर्म त्यागे। (३९)

शुनःसख बोले, जिसने आपका कमल लिया है, वह ब्राह्मण अग्निहोत्र का अनादर करके सुखसे सोवे और परिव्राट् होके भी स्वेच्छाचारी होवे। (४०)

सुरभि बोली, जिसने आपका कमल लिया है, वह केशज अथवा बल्वज तृणकी रसरीसे गौओंको दुहनेके समय पांव बांधके दूसरे बछडेके द्वारा दूध दुहे और कांसेके बर्त्तन उसके पात्र होवें। (४१)

भीष्म बोले, हे कौरवेन्द्र ! अनन्तर उन सबके अनेक प्रकारसे शपथ करते रहनेपर देवराज सहस्राक्ष उस मुख्य विप्रको क्रुद्ध देखके अत्यन्त हर्षित हुए। हे महाराज ! अनन्तर देवराज उस

शक्र उवाच—अध्वर्यवे दुहितरं ददातु छन्दोगे वा चरितब्रह्मचर्ये ।
अथर्वणं वेदमधीत्य विप्रः स्नायीत यः पुष्करमाददाति ॥४४॥
सर्वान्वेदानधीयीत पुण्यशीलोऽस्तु धार्मिकः ।
ब्रह्मणः सदनं यातु यस्ते हरति पुष्करम् ॥ ४५ ॥
अगस्त्य उवाच– आशीर्वादस्त्वया प्रोक्तः शपथो बलसूदन ।
दीयतां पुष्करं मह्यमेष धर्मः सनातनः ॥ ४६ ॥
इन्द्र उवाच—न मया भगवन् लोभाद्धृतं पुष्करमद्य वै ।
धर्मांस्तु श्रोतुकामेन हृतं न क्रोद्धुमर्हसि ॥ ४७ ॥
धर्मश्रुतिसमुत्कर्षो धर्मसेतुरनामयः ।
आर्षो वै शाश्वतो नित्यमव्ययोऽयं मया श्रुतः ॥४८॥
तदिदं गृह्यतां विद्वन्पुष्करं द्विजसत्तम ।
अतिक्रमं मे भगवन् क्षन्तुमर्हस्यनिन्दित ॥ ४९ ॥
इत्युक्तः स महेन्द्रेण तपस्वी कोपनो भृशम् ।
जग्राह पुष्करं धीमान्प्रसन्नश्चाभवन्मुनिः ॥ ५० ॥
प्रययुस्ते ततो भूयस्तीर्थानि वनगोचराः ।

क्रोधी ऋषिसे ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षियोंके बीच अपना अभिप्राय कहने लगे, उसको सुनो।(४२—४३)

इन्द्र बोले, जिस ब्राह्मणने कमल हरण किया है, वह यजुर्वेद जाननेवाले तथा सामवेदका अध्ययन करनेवाले, ब्रह्मचर्य पूर्ण करनेवाले, और अथर्ववेद को पढके स्नातक होनेवाले ब्राह्मणको कन्या दान करे। जिसने आपका कमल लिया, वह वेदोंको पढे, पुण्यशील तथा धार्मिक हो और ब्रह्मलोक में जावे। (४४-४५)

अगस्त्य बोले, हे बलसूदन! तुमने जो शपथ किया, वह तो आशीर्वाद है, इसलिये मुझे मेरा कमल दो, यही सनातन धर्म है। (४६)

इन्द्र बोले, हे भगवन्! इस समय मैंने लोभसे कमल नहीं लिया है, धर्म सुननेके लिये मैंने हरण किया था, इस लिये मुझपर तुम्हें क्रोध करना योग्य नहीं है। यह ऋषियोंकी कही हुई धर्मश्रुतिका पूर्ण उत्कर्ष, अनामय, अव्यय, शाश्वत धर्मरूपी तरनेका उपाय मैंने सुना। हे विद्वन् द्विजसत्तम! इस लिये यह अपना कमल लीजिये। हे अनिन्दित भगवन्! आपको मेरा अपराध क्षमा करना योग्य है। अत्यन्त क्रोधी बुद्धिमान् अगस्त्य मुनि महेन्द्रके ऐसा

पुण्येषु तीर्थेषु तथा गात्राण्याप्लावयन्त ते ॥ ५१ ॥
आख्यानं य इदं युक्तः पठेत्पर्वणि पर्वणि ।
न मूर्खं जनयेत्पुत्रं न भवेच्च निराकृतिः ॥ ५२ ॥
न तमापत्स्पृशेत्काचिद्विज्वरो न जरावहः ।
विरजाः श्रेयसा युक्तः प्रेत्य स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ५३ ॥
यश्च शास्त्रमधीयीत ऋषिभिः परिपालितम् ।
स गच्छेद्ब्रह्मणो लोकमव्ययं च नरोत्तम ॥ ५४ ॥ [४५३९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे शपथविधिर्नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

युधिष्ठिर उवाच–यदिदं श्राद्धकृत्येषु दीयते भरतर्षभ ।
छत्रं चोपानहौ चैव केनैतत्संप्रवर्तितम् ॥ १ ॥
कथं चैतत्समुत्पन्नं किमर्थं चैव दीयते ।
न केवलं श्राद्धकृत्ये पुण्यकेष्वपि दीयते ॥ २ ॥
बहुष्वपि निमित्तेषु पुण्यमाश्रित्य दीयते ।
एतद्विस्तरतो ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥

कहनेपर अपना कमल लेके प्रसन्न हुए। अनन्तर उन वनवासी मुनियोंके संग फिर तीर्थयात्रा की और पवित्र तीर्थोंमें स्नान करने लगे। (४७—५१)

जो लोग योगयुक्त होके प्रति पर्वमें इस इतिहासको पढते हैं, उनके मूर्ख पुत्र नहीं जन्मते और वे स्वयं मूर्ख नहीं होते; कोई आपदा उन्हें स्पर्श नहीं करती, वे शोकरहित होते और उन्हें जरा अवस्था नहीं प्राप्त होती, वे रजोगुणसे रहित और कल्याणयुक्त होके परलोकमें जाकर स्वर्गलोक पाते हैं। जो ऋषियोंके द्वारा वर्णित शास्त्र पढते हैं, वे उत्तम पुरुष अव्यय ब्रह्मलोकमें जाते हैं। (५२-५४)

अनुशासनपर्वमें ९४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९५ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! श्राद्धकर्ममें जो छत्र और पादुका दिया जाता है, वह किस पुरुषके द्वारा प्रचलित हुआ है? यह किस लिये उत्पन्न हुआ और किस निमित्त दिया जाता है, केवल श्राद्धकर्ममें ही क्यों, स्त्रियोंके व्रतादि पुण्योत्सवके समयमें भी पादुका और छत्र दिया जाता है। अनेक कारणोंसे यह पुण्यके अवलम्बसे दिया जाता है। हे राजन्! इसे विस्तारपूर्वक सुननेकी इच्छा करता हूं। (१-३)

भीष्म उवाच— शृणु राजन्नवहितश्छत्रोपानहविस्तरम् ।
यथैतत्प्रथितं लोके यथा चैतत्प्रवर्तितम् ॥ ४ ॥
यथा चाक्षय्यतां प्राप्तं पुण्यतां च यथा गतम् ।
सर्वमेतदशेषेण प्रवक्ष्यामि नराधिप ॥ ५ ॥
जमदग्नेश्च संवादं सूर्यस्य च महात्मनः ।
पुरा स भगवान्साक्षाद्धनुषा क्रीडयत्प्रभो ॥ ६ ॥
संधाय संधाय शरांश्चिक्षेप किल भार्गवः ।
तान् क्षिप्तान रेणुका सर्वांस्तस्येषून्दीप्ततेजसः ॥ ७ ॥
आनीय सा तदा तस्मै प्रादादसकृदच्युत ।
अथ तेन स शब्देन ज्यायाश्चैव शरस्य च ॥ ८ ॥
प्रहृष्टः संप्रचिक्षेप सा च प्रत्याजहार तान् ।
ततो मध्याह्नमारूढे ज्येष्ठामूले दिवाकरे ॥ ९ ॥
स सायकान् द्विजो मुक्त्वा रेणुकामिदमब्रवीत् ।
गच्छानय विशालाक्षि शरानेतान्धनुश्च्युतान् ॥१०॥
यावदेतान्पुनः सुभ्रु क्षिपामीति जनाधिप ।
सा गच्छन्त्यन्तरा छायां वृक्षमाश्रित्य भामिनी ॥११॥

भीष्म बोले, हे महाराज! छत्र और पादुका जिस प्रकार लोकमें प्रचलित हुआ तथा जिसके द्वारा प्रवर्त्तित हुआ है, उसे विस्तारपूर्वक कहता हूं, सावधान होके सुनो। हे नरनाथ! यह जिस प्रकार अक्षय और पवित्र हुआ है, उसे मैं पूरी रीतिसे कहता हूं। हे प्रजानाथ! महाप्रभाव दिवाकर और जमदग्निके संवादयुक्त इस पहले कहे हुए इतिहासको सुनो। (४–६)

हे महाराज! पहले समयमें भगवान् भार्गव स्वयं धनुष लेकर क्रीडा करते हुए सन्धान करके बाण चला रहे थे, रेणुका उस प्रदीप्त तेजसे युक्त चलाये हुए बाणोंको बार बार लाके उन्हें देने लगी। अनन्तर वह उस बाणके शब्दसे अत्यन्त हर्षित होके बाण चलाने लगे, रेणुकाने उन बाणोंको फिर ला दिया। अनन्तर सूर्यके घूमनेवाले नक्षत्रोंके बीच रोहिणी नक्षत्र और जेष्ठाके समसूत्रमें जानेपर मध्याह्नके समय द्विजश्रेष्ठ जमदग्निने शीघ्रगामी बाण चलाकर रेणुकासे कहा, हे विशालनयनी! जाओ, धनुषसे छूटे हुए बाणोंको लाओ। (६—१०)

हे सुन्दरि! मैं फिर इन बाणोंको

तस्थौ तस्या हि संतप्तं शिरः पादौ तथैव च ।
स्थिता सा तु मुहूर्तं वै भर्तुः शापभयाच्छुभा ॥ १२ ॥
यथावानयितुं भूयः सायकानसितेक्षणा ।
प्रत्याजगाम च शरांस्तानादाय यशस्विनी ॥ १३ ॥
सा वै खिन्ना सुचार्वङ्गी पद्भ्यां दुःखं नियच्छती ।
उपाजगाम भर्तारं भयाद्भर्तुः प्रवेपती ॥ १४ ॥
स तामृषिस्तदा क्रुद्धो वाक्यमाह शुभाननाम् ।
रेणुके किं चिरेण त्वमागतेति पुनः पुनः ॥ १५ ॥
रेणुकोवाच— शिरस्तावत्प्रदीप्तं मे पादौ चैव तपोधन ।
सूर्यतेजोनिरुद्धाऽहं वृक्षच्छायां समाश्रिता ॥ १६ ॥
एतस्मात्कारणाद्ब्रह्मंश्चिरायैतत्कृतं मया ।
एतच्छ्रुत्वा मम विभो मा क्रुधस्त्वं तपोधन ॥ १७ ॥
जमदग्निरुवाच— अद्यैनं दीप्तकिरणं रेणुके तव दुःखदम् ।
शरैर्निपातयिष्यामि सूर्यमस्त्राग्नितेजसा ॥ १८ ॥
भीष्म उवाच— स विस्फार्य धनुर्दिव्यं गृहीत्वा च शरान्बहून् ।
अतिष्ठत्सूर्यमभितो यतो याति ततोमुखः ॥ १९ ॥

चलाऊंगा । हे प्रजानाथ ! रेणुका चलनेके समय सूर्यके धूपसे पांव और शिर झुलसनेपर वृक्षकी छायामें मुहूर्त्त भर ठहरी । वह असितेक्षणा कल्याणी मुहूर्त्त भर खडी रहके पतिके शापभयसे डरकर फिर बाणोंको लानेके निमित्त चली । यशस्विनी सुन्दरी रेणुका उन बाणोंको लेकर दोनों पावोंमें फफोले पडनेसे क्लेश पाके लौटी और पतिके भयसे कांपती हुई उनके समीप उपस्थित हुई । जमदग्निने क्रुद्ध होके उस उत्तम नेत्रवालीसे बार बार कहा, हे रेणुका ! तू किस लिये बहुत देरसे आई ? (११-१५)

रेणुका बोली, हे तपोधन ! मेरा सिर और दोनों पांव बहुत परितप्त हुए थे, मैंने सूर्यके तेजसे रुकके वृक्षकी छायाका सहारा लिया था, हे ब्रह्मन् ! इस ही निमित्त मैं बहुत देरीमें बाणोंको ले आई । हे विभु तपोधन ! आप ऐसा सुनके मुझपर क्रोध न करिये ॥ १६-१७

जमदग्नि बोले, हे रेणुके ! मैंने इसही समय तुम्हें दुःख देनेवाले सूर्यको अस्त्रानलके सहारे गिरा दूंगा । (१८)

भीष्म बोले, अनन्तर जमदग्नि दिव्य धनुष खींचके जिधर सूर्य जा

अथ तं प्रेक्ष्य सन्नद्धं सूर्योऽभ्येत्य तथाब्रवीत् ।
द्विजरूपेण कौन्तेय किं ते सूर्योऽपराध्यते ॥ २० ॥
आदत्ते रश्मिभिः सूर्यो दिवि तिष्ठंस्ततस्ततः ।
रसं हृतं वै वर्षासु प्रवर्षति दिवाकरः ॥ २१ ॥
ततोऽन्नं जायते विप्र मनुष्याणां सुखावहम् ।
अन्नं प्राणा इति यथा वेदेषु परिपठ्यते ॥ २२ ॥
अथाभ्रेषु निगूढश्च रश्मिभिः परिवारितः ।
सप्त द्वीपानिमान्ब्रह्मन्वर्षेणाभिप्रवर्षति ॥ २३ ॥
ततस्तदौषधीनां च वीरुधां पुष्पपत्रजम् ।
सर्वं वर्षाभिनिर्वृत्तमन्नं संभवति प्रभो ॥ २४ ॥
जातकर्माणि सर्वाणि व्रतोपनयनानि च ।
गोदानानि विवाहाश्च तथा यज्ञसमृद्धयः ॥ २५ ॥
शास्त्राणि दानानि तथा संयोगा वित्तसंचयाः ।
अन्नतः संप्रवर्तन्ते यथा त्वं वेत्थ भार्गव ॥ २६ ॥
रमणीयानि यावन्ति यावदारम्भकाणि च ।
सर्वमन्नात्प्रभवति विदितं कीर्तयामि ते ॥ २७ ॥

रहे थे, उस ही ओर मुंह करके खडे हुए। हे कौन्तेय ! सूर्यदेव उन्हें बद्धकवच देखके ब्राह्मण स्वरूप धरके उनके समीप आके बोले, सूर्यने तुम्हारा क्या अपराध किया है ? सूर्य आकाशमें निवास करते हुए रसोंको आकर्षण करता है और वर्षाऋतुमें उन्हीं रसोंको बरसाता है, हे विप्र ! उस ही रससे मनुष्यके सुखके लिये अन्न उपजता है, अन्नही प्राण है, यह वेदमें वर्णित है । अनन्तर सूर्य आकाशमें रहके किरणोंके द्वारा इस सप्तद्वीपवाली पृथ्वीपर जलकी वर्षा करता है । हे प्रभु ! वही जल, औषधि, लता, पुष्प और पत्रोंमें पडके अन्नरूपसे उत्पन्न होता है । हे भार्गव ! जातकर्म प्रभृति सब कार्य, व्रत, उपनयन, गोदान, विवाह और यज्ञसमृद्धि, सब शास्त्र, सब भांतिके दान और धनसञ्चय, सब विषय जिसे तुम जानते हो, उनमें अन्नसे ही पूरी रीतिसे प्रवृत्ति हुआ करती है । जो सब उत्तम विषय हैं और जो आरम्भ हुआ करते हैं, वह सब अन्नसे ही उत्पन्न होता है, इसलिये जो मुझे विदित है, वह तुमसे कहता हूं । हे विप्र ! मैंने जो कहा, तुम वह सब विषय जानते हो । हे विप्र ! इस

सर्वं हि वेत्थ विप्र त्वं यदेतत्कीर्तितं मया।
प्रसादये त्वां विप्रर्षे किं ते सूर्यनिपात्य वै ॥ २८ ॥ [४५६७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे छत्रोपानहोत्पत्तिर्नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

युधिष्ठिर उवाच- एवं प्रयाचति तदा भास्करे मुनिसत्तमः।
जमदग्निर्महातेजाः किं कार्यं प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥

भीष्म उवाच- स तथा याचमानस्य मुनिरग्निसमप्रभः।
जमदग्निः शमं नैव जगाम कुरुनन्दन ॥ २ ॥
ततः सूर्यो मधुरया वाचा तमिदमब्रवीत्।
कृताञ्जलिर्विप्ररूपी प्रणम्यैनं विशाम्पते ॥ ३ ॥
चलं निमित्तं विप्रर्षे सदा सूर्यस्य गच्छतः।
कथं चलं भेत्स्यसि त्वं सदा यान्तं दिवाकरम् ॥ ४ ॥

जमदग्निरुवाच- स्थिरं चापि चलं चापि जाने त्वां ज्ञानचक्षुषा।
अवश्यं विनयाधानं कार्यमद्य मया तव ॥ ५ ॥
मध्याह्ने वै निमेषार्धं तिष्ठसि त्वं दिवाकर।
तत्र भेत्स्यामि सूर्य त्वां न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥६॥

लिये मैं तुम्हें प्रसन्न करता हूं। सूर्यको गिराने से तुम्हें कौनसा फल मिलेगा? (१९—२८)

अनुशासनपर्वमें ९५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९६ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, भगवान् सूर्यके ऐसा कहनेपर महातेजस्वी मुनिसत्तम जमदग्निने क्या किया? (१)

भीष्म बोले, हे कुरुसत्तम! अग्नि-सदृश प्रभायुक्त वह जमदग्नि मुनि सूर्यके ऐसी प्रार्थना करनेपर भी शान्त न हुए। हे नरनाथ! अनन्तर विप्ररूपधारी सूर्य हाथ जोडकर मुनिको प्रणाम करके मृदुस्वरसे बोले, हे विप्रर्षि! सूर्य सदा चलता रहता है, इसलिये वह चललक्ष्य है। जब सदा गमनशील सूर्य चललक्ष्य हुआ तब तुम उसे किस प्रकार विद्ध करोगे? (२—४)

जमदग्नि बोले, मैं ज्ञाननेत्रसे तुम्हें स्थिर और गमनशील, दोनोंही जानता हूं, इसलिये आज मैं अवश्य तुम्हें शिक्षा दूंगा। हे दिवाकर! तुम मध्यान्हमें अर्द्ध निमेषभर ठहरते हो, उसी समय मैं तुम्हें विद्ध करूंगा। हे भास्कर! इस विषयमें मुझे कुछ विचार नहीं है। (५—६)

सूर्य उवाच— असंशयं मां विप्रर्षे भेत्स्यसे धन्विनां वर।
अपकारिणं मां विद्धि भगवन् शरणागतम् ॥ ७ ॥
भीष्म उवाच- ततः प्रहस्य भगवान् जमदग्निरुवाच तम्।
न भीः सूर्य त्वया कार्या प्रणिपातगतो ह्यसि ॥ ८ ॥
ब्राह्मणेष्वार्जवं यच्च स्थैर्यं च धरणीतले।
सौम्यतां चैव सोमस्य गाम्भीर्यं वरुणस्य च ॥ ९ ॥
दीप्तिमग्नेः प्रभां मेरोः प्रतापं तपनस्य च।
एतान्यतिक्रमेद्यो वै स हन्याच्छरणागतम् ॥ १० ॥
भवेत्स गुरुतल्पी च ब्रह्महा च स वै भवेत्।
सुरापानं स कुर्याच्च यो हन्याच्छरणागतम् ॥ ११ ॥
एतस्य त्वपनीतस्य समाधिं तात चिन्तय।
यथासुखगमः पन्था भवेत्त्वद्रश्मिभावितः ॥ १२ ॥
भीष्म उवाच- एतावदुक्त्वा स तदा तूष्णीमासीद्भृगूत्तमः।
अथ सूर्योऽददात्तस्मै छत्रोपानहमाशु वै ॥ १३ ॥
सूर्य उवाच— महर्षे शिरसस्त्राणं छत्रं मद्रश्मिवारणम्।

सूर्य बोले, हे धन्विवर! तुम मुझे अवश्य ही विद्ध करोगे इसमें सन्देह नहीं है। हे भगवन्! यद्यपि मैंने तुम्हारा अपकार किया है, तौभी इस समय मुझे अपना शरणागत जानो। (७)

भीष्म बोले, अनन्तर भगवान् जमदग्निने हंसके कहा,-हे सूर्य! तुम्हें डरना उचित नहीं है, क्योंकि तुम प्रणत हुए हो। ब्राह्मणोंमें जो सरलता है, पृथ्वीमें धैर्य, चन्द्रमामें मनोहरताई वरुणमें गंभीरता, अग्निमें प्रकाश, सुमेरुमें प्रभा और सूर्यमें ताप इन सबको जो मनुष्य अतिक्रम करता है, वही शरणागत पुरुषको मार सकता है। जो पुरुष शरणमें आये हुएको मारता है, वह पुरुषही ब्रह्महत्यारा हुआ करता और वह मनुष्यही सुरा पीता है। हे तात! इसलिये इस दुर्नीति विषयके नियमको विचारो, तुम्हारी किरणसे तापित मार्गके बीच जिस प्रकार सुखसे लोग चल सके, उसका उपाय कहो। (८-१२)

भीष्म बोले, भृगुसत्तम जमदग्नि इतना कहके चुप होरहे। अनन्तर सूर्यदेवने उन्हें शीघ्र ही छत्र और पादुका दिया। (१३)

सूर्यने कहा, हे महर्षे! मेरी किरण जिससे निवारित होती है, उस शिर-

प्रतिगृह्णीष्व पद्भयां च त्राणार्थं चर्मपादुके ॥ १४ ॥
अद्यप्रभृति चैवेह लोके संप्रचरिष्यति ।
पुण्यकेषु च सर्वेषु परमक्षय्यमेव च ॥ १५ ॥
भीष्म उवाच- छत्रोपानहमेतत्तु सूर्येणैतत्प्रवर्तितम् ।
पुण्यमेतदभिख्यातं त्रिषु लोकेषु भारत ॥ १६ ॥
तस्मात्प्रयच्छ विप्रेषु च्छत्रोपानहमुत्तमम् ।
धर्मस्तेषु महान्भावी न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ १७ ॥
छत्रं हि भरतश्रेष्ठ यः प्रदद्याद् द्विजातये ।
शुभ्रं शतशलाकं वै स प्रेत्य सुखमेधते ॥ १८ ॥
स शक्रलोके वसति पूज्यमानो द्विजातिभिः ।
अप्सरोभिश्च सततं देवैश्च भरतर्षभ ॥ १९ ॥
दह्यमानाय विप्राय यः प्रयच्छत्युपानहौ ।
स्नातकाय महाबाहो संशिताय द्विजातये ॥ २० ॥
सोऽपि लोकानवाप्नोति दैवतैरभिपूजितान् ।
गोलोके स मुदा युक्तो वसति प्रेत्य भारत ॥ २१ ॥
एतत्ते भरतश्रेष्ठ मया कार्त्स्न्येन कीर्तितम् ।
छत्रोपानहदानस्य फलं भरतसत्तम ॥ २२ ॥ [४५८९]

इति श्रीमहा०अनु०आनु०पर्वणि दानधर्मे छत्रोपानहदानप्रशंसा नाम षण्णवतितमोऽध्यायः॥९६॥

त्राण और पादत्राण (दोनों चर्मपादुका) ग्रहण करो, आजसे इस लोकमें इसका समस्त पुण्यकार्योंमें परम अक्षयरूपसे प्रचार होगा। (१४—१५)

भीष्म बोले, हे भारत! छत्र और पादुकादान सूर्यके द्वारा प्रवर्त्तित हुआ है, तीनों लोकोंमें यह परम पवित्र रूपसे प्रसिद्ध है; इसलिये तुम ब्राह्मणोंको उत्तम छत्र और पादुका दान करो, उससे तुम्हें महान् धर्म होगा, इस विषयमें हम लोगोंको विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। हे भरतश्रेष्ठ! जो लोग द्विजातियोंको एक सौ शलाकासे युक्त छाता दान करते हैं, वे परलोकमें जाके सुखी होते हैं। हे भरतर्षभ! वे लोग अप्सरा, गन्धर्व और द्विजोंसे पूजित होकर इन्द्र लोकमें निवास करते हैं। हे महाबाहो! जो लोग तापयुक्त स्नातक ब्राह्मणों तथा संशितव्रती द्विजातियोंको दो पादुका दान करते हैं, वे भी देवताओंसे पूजित लोकको प्राप्त होते हैं, तथा वे परलोकमें

युधिष्ठिर उवाच– गार्हस्थ्यं धर्ममखिलं प्रब्रूहि भरतर्षभ।
ऋद्धिमाप्नोति किं कृत्वा मनुष्य इह पार्थिव ॥ १ ॥
भीष्म उवाच– अत्र ते वर्तयिष्यामि पुरावृत्त जनाधिप।
वासुदेवस्य संवादं पृथिव्याश्चैव भारत ॥ २ ॥
संस्तुत्य पृथिवीं देवीं वासुदेवः प्रतापवान्।
पप्रच्छ भरतश्रेष्ठ मां त्वं यत्पृच्छसेऽद्य वै ॥ ३ ॥
वासुदेव उवाच– गार्हस्थ्यं धर्ममाश्रित्य मया वा मद्विधेन वा।
किमवश्यं धरे कार्यं किं वा कृत्वा कृतं भवेत ॥ ४ ॥
पृथिव्युवाच— ऋषयः पितरो देवा मनुष्याश्चैव माधव।
इज्याश्चैवार्चनीयाश्च यथा चैव निबोध मे ॥ ५ ॥
सदा यज्ञेन देवाश्च सदाऽऽतिथ्येन मानुषाः।
छन्दतश्च यथा नित्यमर्हान् भुञ्जीत नित्यशः ॥ ६ ॥
तेन ह्यृषिगणाः प्रीता भवन्ति मधुसूदन।
नित्यमग्निं परिचरेदभुक्त्वा बलिकर्म च ॥ ७ ॥

जाकर प्रीतियुक्त होके गोलोकमें निवास करते हैं। हे भरतसत्तम! यह मैंने विस्तारपूर्वक तुमसे छत्र और पादुका-दानका फल कहा है। (१६-२२)

अनुशासनपर्वमें ९६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९७ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! आप समस्त गार्हस्थ्यधर्म वर्णन करिये, मनुष्य क्या करनेसे इस लोकमें समृद्धि पाता है। (१)

भीष्म बोले, हे भरतकुलतिलक प्रजानाथ! इस विषयमें मैं तुमसे श्री कृष्ण और पृथ्वीके संवादयुक्त प्राचीन इतिहास कहूंगा। हे भरतश्रेष्ठ! तुमने मुझसे इस समय जो प्रश्न किया है, प्रतापवान् कृष्णने पृथ्वीदेवीकी यथा योग्य स्तुति करके यही विषय पूछा था। (३)

श्रीकृष्ण बोले, हे पृथ्वी! मैं अथवा मेरे समान पुरुष गृहस्थधर्मको अवलंबन करके नियमपूर्वक कौनसा कार्य करे तथा क्या करनेसे वह सिद्ध होगा? (४)

पृथ्वी बोली, हे माधव! ऋषि, देवता, पितर और मनुष्यवृन्द गृहस्थ पुरुषोंके लिये अवश्य ही पूजनीय हैं, यज्ञकर्म अवश्य करना चाहिये, और भी मुझसे सुनो। हे मधुसूदन! देवता सदा यज्ञसे तृप्त होते और मनुष्य सदा आतिथ्यके द्वारा तृप्त होते हैं, इसलिये अभिप्रायके अनुसार पूजनीय लोगोंकी सदा सेवा करनी योग्य है, ऐसे कार्यसे

कुर्यात्तथैव देवा वै प्रीयन्ते मधुसूदन।
कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन च ॥ ८ ॥
पयोमूलफलैर्वापि पितॄणां प्रीतिमाहरन्।
सिद्धान्नाद्वैश्वदेवं वै कुर्यादग्नौ यथाविधि ॥ ९ ॥
आग्नीषोमं वैश्वदेवं धान्वन्तर्यमनन्तरम्।
प्रजानां पतये चैव पृथग्घोमो विधीयते ॥ १० ॥
तथैव चानुपूर्वेण बलिकर्म प्रयोजयेत्।
दक्षिणायां यमायेति प्रतीच्यां वरुणाय च ॥ ११ ॥
सोमाय चाप्युदीच्यां वै वास्तुमध्ये प्रजापतेः।
धन्वन्तरेः प्रागुदीच्यां प्राच्यां शक्राय माधव ॥१२॥
मनुष्येभ्य इति प्राहुर्बलिं द्वारि गृहस्य वै।
मरुद्भ्यो दैवतेभ्यश्च बलिमन्तर्गृहे हरेत् ॥ १३ ॥
तथैव विश्वेदेवेभ्यो बलिमाकाशतो हरेत्।
निशाचरेभ्यो भूतेभ्यो बलिं नक्तं तथा हरेत् ॥ १४ ॥
एवं कृत्वा बलिं सम्यग्दद्याद्भिक्षां द्विजाय वै।
अलाभे ब्राह्मणस्याग्नावन्नमुद्धृत्य निक्षिपेत् ॥ १५ ॥

ऋषि लोग प्रसन्न होते हैं। सदा प्रयुक्त रहके अग्निकी परिचर्या करे, तथा बलिवैश्वदेव दान करे, उससे देव-वृन्द प्रसन्न होते हैं। (५-७)

गृहस्थ पुरुष प्रतिदिन पितरोंकी प्रीतिका विधान करते हुए अन्न जल अथवा दूध, फल, मूल आदिके सहारे श्राद्ध करे, सिद्ध अन्नके द्वारा विधिपूर्वक वैश्वदेव दान करे और हुताशनमें अग्नि, चन्द्रमा अनन्तर धन्वन्तरिके लिये होम करे, प्रजापतिके निमित्त पृथक् होम करना योग्य है। आनुपूर्विक क्रमसे बलि देनी चाहिये, दक्षिण दिशामें यमको, पश्चिममें वरुण, उत्तरमें चन्द्रमा, वास्तुके बीच प्रजापतिको, पूर्वोत्तर भागमें धन्वन्तरि और पूर्व दिशामें इन्द्रकी पूजाका उपहार प्रदान करे तथा मनुष्योंको गृहके द्वारपर अन्न प्रभृति दान करे। हे माधव! ऋषि लोग इसे ही बलि कहा करते हैं। मरुद्गण तथा देवताओंको गृहके भीतर बलि प्रदान करे और विश्वदेवगणको सूने स्थानमें बलि देना योग्य है, निशाचर और भूतगणोंको रात्रिके समयमें बलि दे। इसही भांति ब्राह्मणको भिक्षा दे। ब्राह्मणोंकी अनुपस्थितिमें अन्नका अग्राशन

यदा श्राद्धं पितृभ्योऽपि दातुमिच्छेत मानवः ।
तदा पश्चात्प्रकुर्वीत निवृत्ते श्राद्धकर्मणि ॥ १६ ॥
पितॄन्संतर्पयित्वा तु बलिं कुर्याद्विधानतः ।
वैश्वदेवं ततः कुर्यात्पश्चाद्ब्राह्मणवाचनम् ॥ १७ ॥
ततोऽन्नेन विशेषेण भोजयेदतिथीनपि ।
अर्चापूर्वं महाराज ततः प्रीणाति मानवान् ॥ १८ ॥
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ।
आचार्यस्य पितुश्चैव सख्युराप्तस्य चातिथेः ॥ १९ ॥
इदमस्ति गृहे मह्यमिति नित्यं निवेदयेत् ।
ते यद्वदेयुस्तत्कुर्यादिति धर्मो विधीयते ॥ २० ॥
गृहस्थः पुरुषः कृष्ण शिष्टाशी च सदा भवेत् ।
राजर्त्विजं स्नातकं च गुरुं श्वशुरमेव च ॥ २१ ॥
अर्चयन्मधुपर्केण परिसंवत्सरोषितान् ।
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि ॥ २२ ॥
वैश्वदेवं हि नामैतत्सायं प्रातर्विधीयते ।
एतांस्तु धर्मान् गार्हस्थ्यान्यः कुर्यादनसूयकः
स इहर्षिवरान्प्राप्य प्रेत्य लोके महीयते ॥ २३ ॥

अग्निमें डाले। जब मनुष्य पितरोंके श्राद्ध करनेकी इच्छा करे, तब श्राद्धकर्मके पूर्ण होनेपर पितरोंकी तृप्तिका विधान करनेके अनन्तर विधिपूर्वक बलि देनी चाहिये। अनन्तर वैश्वदेव करके ब्राह्मणोंका निमन्त्रण करे। शेषमें अन्नादिसे अतिथियोंको सत्कार करके भोजन करावे। (८–१८)

हे महाराज! ऐसा कार्य करनेसे अतिथिवृन्द मनुष्योंके विषयमें प्रसन्न हुआ करते हैं। जिनके आनेकी तिथि नियत न हो, उन्हें अतिथि कहते हैं। आचार्य, पिता, मित्र, आप्त पुरुष और अतिथिको 'मेरे गृहमें आज भोजनकी ये वस्तु उपस्थित हैं' गृहस्थ पुरुष सदा ऐसा निवेदन करे, ऐसा ही धर्मविहित है। हे कृष्ण! गृहस्थ पुरुष सदा सबके शेषमें अन्न भोजन करे, राजा, ऋत्विक्, स्नातक, गुरु और श्वशुरके वर्षभर तक गृहमें वास करनेपर भी उनकी मधुपर्कसे पूजा करे। कुत्ते, चाण्डाल और पक्षियोंको सन्ध्या और सबेरे पृथ्वीपर अन्न देवे, इसहीका नाम वैश्वदेव है। जो लोग असूयारहित होके इन गृहस्थधर्मों

भीष्म उवाच– इति भूमेर्वचः श्रुत्वा वासुदेवः प्रतापवान् ।
तथा चकार सततं त्वमप्येवं सदाऽऽचर ॥ २४ ॥
एतद्गृहस्थधर्मं त्वं चेष्टमानो जनाधिप ।
इहलोके यशः प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि ॥ २५ ॥ [४६१४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे बलिदानविधिर्नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

युधिष्ठिर उवाच— आलोकदानं नामैतत्कीदृशं भरतर्षभ ।
कथमेतत्समुत्पन्नं फलं वा तद्ब्रवीहि मे ॥ १ ॥
भीष्म उवाच– अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मनोः प्रजापतेर्वादं सुवर्णस्य च भारत ॥ २ ॥
तपस्वी कश्चिदभवत्सुवर्णो नाम भारत ।
वर्णतो हेमवर्णः स सुवर्ण इति पप्रथे ॥ ३ ॥
कुलशीलगुणोपेतः स्वाध्याये च परं गतः ।
बहून्सुवंशप्रभवान्समतीतः स्वकैर्गुणैः ॥ ४ ॥
स कदाचिन्मनुं विप्रो ददर्शोपससर्प च ।

को प्रतिपालन करते हैं, वे इस लोकमें ऋषियोंसे वर पाके परलोकमें सुरपुरमें निवास किया करते हैं । (१९–२३)

भीष्म बोले, प्रतापवान् श्रीकृष्णने पृथ्वीका ऐसा वचन सुनके वैसा ही आचरण किया था, इसलिये तुम भी इस प्रकार अनुष्ठान करो । हे प्रजानाथ ! तुम इस गृहस्थधर्मका अनुष्ठान करनेसे इस लोकमें यश पाके परलोकमें स्वर्ग पाओगे । (२४—२५)

अनुशासनपर्वमें ९७ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें ९८ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतर्षभ ! दीपदान कैसा है ? यह किस प्रकार उत्पन्न हुआ और इसका क्या फल है, यह विषय आप मेरे समीप वर्णन करिये । (१)

भीष्म बोले, हे भारत ! इस विषयमें प्राचीन लोग प्रजापति, मनु और सुवर्ण के संवादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं । हे भारत ! सुवर्ण नाम कोई तपस्वी थे, वह रूपमें सुवर्णसदृश होनेसे सुवर्ण नामसे विख्यात हुए । उन्होंने कुलशील गुणयुक्त, स्वशाखोक्त वेदपाठमें पारदर्शी होकर निज गुणोंके सहारे स्ववंशीय अनेक पुरुषोंको अतिक्रम किया था । किसी समय उस ब्राह्मणने प्रजापति मनुको देखा और

कुशलप्रश्नमन्योन्यं तौ चोभौ तत्र चक्रतुः ॥ ५ ॥
ततस्तौ सत्यसंकल्पौ मेरौ काञ्चनपर्वते ।
रमणीये शिलापृष्ठे सहितौ संन्यषीदताम् ॥ ६ ॥
तत्र तौ कथयन्तौ स्तां कथा नानाविधाऽऽश्रयाः ।
ब्रह्मर्षिदेवदैत्यानां पुराणानां महात्मनाम् ॥ ७ ॥
सुवर्णस्त्वब्रवीद्वाक्यं मनुं स्वायंभुवं प्रति ।
हितार्थं सर्वभूतानां प्रश्नं मे वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥
सुमनोभिर्यदिज्यन्ते दैवतानि प्रजेश्वर ।
किमेतत्कथमुत्पन्नं फलं योगं च शंस मे ॥ ९ ॥
मनुरुवाच— अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
शुक्रस्य च बलेश्चैव संवादं वै महात्मनोः ॥ १० ॥
बलेर्वैरोचनस्येह त्रैलोक्यमनुशासतः ।
समीपमाजगामाशु शुक्रो भृगुकुलोद्वहः ॥ ११ ॥
तमर्घ्यादिभिरभ्यर्च्य भार्गवं सोऽसुराधिपः ।
निषसादासने पश्चाद्विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ १२ ॥
कथेयमभवत्तत्र त्वया या परिकीर्तिता ।

देखते ही उनके समीप उपस्थित हुआ; उस समय उन दोनोंने परस्परमें कुशल प्रश्न किया। अनन्तर वे दोनों सत्य-संकल्प सुवर्णशैल सुमेरुके बीच एक रमणीय शिलापर बैठे। (२—६)

उस स्थानमें वे दोनों वार्तालाप करते हुए महानुभाव ब्रह्मर्षियों, देवताओं और दैत्योंको अनेक प्रकारकी पुरातन कथा जान सके। सुवर्णने स्वायम्भुव मनुसे कहा, हे प्रजानाथ! आपको सब जीवोंके हितके निमित्त मेरे प्रश्नका उत्तर देना योग्य है। मनुष्य लोग जो फूलोंसे देवताओंकी पूजा करते हैं, यह किस प्रकार उत्पन्न हुआ और इसका फल क्या है? आप मुझसे यह विषय कहिये। (७-९)

मनु बोले, इस विषयमें प्राचीन लोग महानुभाव शुक्र और बलिके संवाद-युक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। विरोचनपुत्र बलि जब त्रिभुवन शासन कर रहे थे, उस समय उनके निकट भृगुकुलधुरन्धर शुक्राचार्य आये। बहुतसी दक्षिणा देनेवाले, दानशील असुरराज बलि विधिपूर्वक अर्घ आदिसे भार्गवकी पूजा करके आसनपर बैठे। तब फूल, दीप और धूप दान करनेसे

सुमनोधूपदीपानां संप्रदाने फलं प्रति ॥ १३ ॥
ततः पप्रच्छ दैत्येन्द्रः कवीन्द्रं प्रश्नमुत्तमम् ॥ १४ ॥
बलिरुवाच— सुमनोधूपदीपानां किं फलं ब्रह्मवित्तम ।
प्रदानस्य द्विजश्रेष्ठ तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १५ ॥
शुक्र उवाच— तपः पूर्वं समुत्पन्नं धर्मस्तस्मादनन्तरम् ।
एतस्मिन्नन्तरे चैव वीरुदोषध्य एव च ॥ १६ ॥
सोमस्यात्मा च बहुधा संभूतः पृथिवीतले ।
अमृतं च विषं चैव ये चान्ये तुल्यजातयः ॥ १७ ॥
अमृतं मनसः प्रीतिं सद्यस्तृप्तिं ददाति च ।
मनो ग्लपयते तीव्रं विषं गन्धेन सर्वशः ॥ १८ ॥
अमृतं मङ्गलं विद्धि महद्विषममङ्गलम् ।
ओषध्यो ह्यमृतं सर्वा विषं तेजोऽग्निसंभवम् ॥ १९ ॥
मनो ह्लादयते यस्माच्छ्रियं चापि दधाति च ।
तस्मात्सुमनसः प्रोक्ता नरैः सुकृतकर्मभिः ॥ २० ॥
देवताभ्यः सुमनसो यो ददाति नरः शुचिः ।
तस्य तुष्यन्ति वै देवास्तुष्टाः पुष्टिं ददत्यपि ॥ २१ ॥

क्या फल होता है, तुमने इस विषयमें जैसा प्रश्न किया है, वैसा ही वहांपर प्रश्न हुआ था। अनन्तर दैत्येन्द्रने शुक्राचार्यसे उत्तम प्रश्न किया। १०-१४

बलि बोले, हे ब्रह्मवित् द्विजश्रेष्ठ ! फूल, धूप और दीप दान करनेसे क्या फल होता है? आप इसे कह सकते हैं। (१५)

शुक्र बोले, पहले तप उत्पन्न हुआ था, फिर धर्म प्रकट हुआ, इसके अनन्तर लता, औषधी, अमृत, विष और तुल्य जाति विविध लता तथा अनेक प्रकारकी सोमलता पृथ्वीपर उत्पन्न हुई। अमृत मनको प्रसन्न करनेवाला तथा सदा सन्तोष, प्रदान करता है और प्रचण्ड विषकी गन्ध मनको सब प्रकारसे ग्लानियुक्त करती है। अमृतको मङ्गल और विषको महाअमङ्गल जानना चाहिये। औषधियां अमृत और अग्निसे उत्पन्न हुआ तेज ही विष है। (१६—१९)

सब पुष्प मनको प्रसन्न तथा शोभायुक्त करते हैं, इस ही लिये पुण्यकर्म करनेवाले मनुष्य फूलोंको सुमनस कहा करते हैं। जो मनुष्य पवित्र होके देवताओंको सुमनस दान करता है,

यं यमुद्दिश्य दीयेरन्देवं सुमनसः प्रभो ।
मङ्गलार्थं स तेनास्य प्रीतो भवति दैत्यप ॥ २२ ॥
ज्ञेयास्तूग्राश्च सौम्याश्च तेजस्विन्यश्च ताः पृथक् ।
ओषध्यो बहुवीर्या हि बहुरूपास्तथैव च ॥ २३ ॥
याज्ञियानां च वृक्षाणामयज्ञीयान्निबोध मे ।
आसुराणि च माल्यानि दैवतेभ्यो हितानि च ॥२४॥
रक्षसासुरगाणां च यक्षाणां च तथा प्रियाः ।
मनुष्याणां पितॄणां च कान्ता यास्त्वनुपूर्वशः ॥२५ ॥
वन्या ग्राम्याश्चेह तथा कृष्टोप्ताः पर्वताश्रयाः ।
अकण्टकाः कण्टकिनो गन्धरूपरसान्विताः ॥ २६ ॥
द्विविधो हि स्मृतो गन्ध इष्टोऽनिष्टश्च पुष्पजः ।
इष्टगन्धानि देवानां पुष्पाणीति विभावय ॥ २७ ॥
अकण्टकानां वृक्षाणां श्वेतप्रायाश्च वर्णतः ।
तेषां पुष्पाणि देवानामिष्टानि सततं प्रभो ॥ २८ ॥
जलजानि च माल्यानि पद्मादीनि च यानि वै ।
गन्धर्वनागयक्षेभ्यस्तानि दद्याद्विचक्षणः ॥ २९ ॥

देववृन्द उसपर प्रसन्न होके उसे पुष्टि प्रदान करते हैं । हे प्रभु दैत्यराज ! जिन जिन देवताओंके उद्देश्यसे फूल दिये जाते हैं, वे दाताके मंगलके निमित्त उनपर प्रसन्न होते हैं । बहुवीर्य और अनेक रूपवाली पृथक् पृथक् औषधियोंको उग्र, मनोहर और तेजस्वी जानो । वृक्षोंमें जो यज्ञीय तथा अयज्ञीय हैं, वह मुझसे सुनो और जो सब माला देवताओं तथा जो असुरोंके लिये हितकर हैं, वह भी सुनो । जो फूल राक्षस, सर्प और यक्षोंको प्रिय हैं, तथा जो मनुष्य और पितरोंके लिये मनोहर हैं, उसे विस्तारपूर्वक सुनो । जो फल जङ्गली और ग्रामीण हैं, तथा जो भूमि खोदके लगाये गये हैं ; जो फूल पर्वतीय, कांटेरहित और कांटेयुक्त हैं ; जो सुगन्धि, सुन्दरताई और रसमय हैं, उनका विषय सुनो । (२०–२६)

फूलकी दो प्रकारकी गन्ध होती है, एक इष्ट दूसरी अनिष्ट, जिनकी सुगन्धि इष्ट है, उन्हें ही देवताओंके फूल निश्चय करो । कांटेरहित वृक्षोंके फूल प्रायः सफेद होते हैं, उन वृक्षोंके फूल सदा देवताओंके अभिलषित हैं । कमल प्रभृति जो सब जलज पुष्प उत्पन्न होते हैं,

ओषध्यो रक्तपुष्पाश्च कटुकाः कण्टकान्विताः ।
शत्रूणामभिचारार्थमाथर्वेषु निदर्शिताः ॥ ३० ॥
तीक्ष्णवीर्यास्तु भूतानां दुरालम्भाः सकण्टकाः ।
रक्तभूयिष्ठवर्णाश्च कृष्णाश्चैवोपहारयेत् ॥ ३१ ॥
मनोहृदयनन्दिन्यो विशेषमधुराश्च याः ।
चारुरूपाः सुमनसो मानुषाणां स्मृता विभो ॥ ३२ ॥
न तु श्मशानसंभूता देवतायतनोद्भवाः ।
संनयेत्पुष्टियुक्तेषु विवाहेषु रहःसु च ॥ ३३ ॥
गिरिसानुरुहाः सौम्या देवानामुपपादयेत् ।
प्रोक्षिताऽभ्युक्षिताः सौम्या यथायोग्यं यथास्मृति ॥३४॥
गन्धेन देवास्तुष्यन्ति दर्शनाद्यक्षराक्षसाः ।
नागाः समुपभोगेन त्रिभिरेतैस्तु मानुषाः ॥ ३५ ॥
सद्यः प्रीणाति देवान्वै ते प्रीता भावयन्त्युत ।
संकल्पसिद्धा मर्त्यानामीप्सितैश्च मनोरमैः ॥ ३६ ॥
प्रीताः प्रीणन्ति सततं मानिता मानयन्ति च ।
अवज्ञातावधूताश्च निर्दहन्त्यधमान्नरान् ॥ ३७ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य उन फूलोंको यक्ष, सर्प और गन्धर्वोंको प्रदान करे । कटु और कांटेयुक्त औषधियां तथा लाल पुष्प शत्रुओंके अभिचारके निमित्त अथर्ववेदमें वर्णित हुए हैं । तीक्ष्णवीर्य, कांटे युक्त, दुरालम्भ, लाल और काले फूल भूतोंको उपहार देवे । मन और हृदयके आनन्दको बढानेवाले, मलनेमें मधुर, मनोहर फूल मनुष्योंके लिये विहित हैं । विवाहादि पुष्टियुक्त कार्यों और सुरतादि एकान्त कार्योंमें श्मशान और देवस्थानमें उत्पन्न हुए पुष्पोंको न लाना चाहिये । (३०-३३)

हे सौम्य ! पर्वतीय वृक्षोंके सौम्य फूलोंको धो के स्मृतिके अनुसार यथायोग्य देवताओंको प्रदान करे । देवगण फूलकी सुगन्धिसे प्रसन्न होते हैं, यक्ष और राक्षस फूलको देखनेसे सन्तुष्ट होते हैं। सर्पगण पूरी रीतिसे फूलोंको उपभोग करनेसे प्रसन्न होते हैं; और मनुष्य लोग सूंघने, देखने और उपभोग इन तीन प्रकारके उपायसे सन्तुष्ट हुआ करते हैं । सब फूल देवताओंको निवेदन करते ही प्रसन्न करते हैं ; वे सङ्कल्पसिद्ध हैं, इसलिये प्रसन्न होके मनुष्यों का मनोरथ ईप्सितके सहारे वर्द्धित

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धूपदानविधेः फलम् ।
धूपांश्च विविधान्साधूनसाधूंश्च निबोध मे ॥ ३८ ॥
निर्यासाः सारिणश्चैव कृत्रिमाश्चैव ते त्रयः ।
इष्टोऽनिष्टो भवेद्गन्धस्तन्मे विस्तरशः शृणु ॥ ३९ ॥
निर्यासाः सल्लकीवर्ज्या देवानां दयितास्तु ते ।
गुग्गुलुः प्रवरस्तेषां सर्वेषामिति निश्चयः ॥ ४० ॥
अगुरुः सारिणां श्रेष्ठो यक्षराक्षसभोगिनाम् ।
दैत्यानां सल्लकीयश्च काङ्क्षितो यश्च तद्विधः ॥ ४१ ॥
अथ सर्जरसादीनां गन्धैः पार्थिवदारवैः ।
फाणितासवसंयुक्तैर्मनुष्याणां विधीयते ॥ ४२ ॥
देवदानवभूतानां सद्यस्तुष्टिकरः स्मृतः ।
येऽन्ये वैहारिकास्तत्र मानुषाणामिति स्मृताः ॥ ४३ ॥
य एवोक्ताः सुमनसां प्रदाने गुणहेतवः ।

करते हैं। देववृन्द प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको सदा प्रीतियुक्त करते हैं, वे सम्मानित होनेपर मनुष्योंको सम्मान-युक्त करते और अवज्ञात तथा अवधूत होनेपर अधम मनुष्योंको निश्चय ही जला देते हैं। (३४—३७)

अब धूपदानविधिका फल मुझसे सुनो। धूप अनेक प्रकारका है, उसमें उत्तम और निकृष्ट दो भेद हैं। गुग्गुलु प्रभृति निर्याससे बने हुए एक प्रकारके धूपको निर्यास कहते हैं। काठ और अग्निके संयोगसे निकाले हुए धूपका नाम सारि है और अष्टगन्ध द्रव्योंमें बने हुए धूपको कृत्रिम कहते हैं, इस प्रभेदके अनुसार धूप तीन प्रकारका है। गन्ध इष्ट और अनिष्ट भेदसे दो प्रकार है, उसे मेरे समीप विस्तारपूर्वक सुनो। सल्लकीरहित निर्यास धूप देवताओंको दिया जाता है, सब निर्यासोंके बीच गुग्गुलु ही श्रेष्ठ कहके निश्चित हुआ है। यक्ष, राक्षस और भोगियोंके भोगके लिये सारवान वस्तुओंके बीच अगरु ही श्रेष्ठ है। दैत्योंको सल्लकी तथा उसके सदृश दूसरे निर्यास ही अभि-लषित हैं। हे राजन् ! सर्जरस आदि गन्ध और देवदारुकी सुगन्ध फूली हुई मल्लिकाप्रभृति फूलोंको मकरन्द गन्ध के सङ्ग मिलनेपर जो धूप बनती है, वह मनुष्योंके लिये विहित है और ऐसा वर्णित है, कि वह देव, दानव तथा भूतोंको सदा प्रीतियुक्त करती है। इसके अतिरिक्त जो विहारमात्रके उप-

धूपेष्वपि परिज्ञेयास्त एव प्रीतिवर्धनाः ॥ ४४ ॥
दीपदाने प्रवक्ष्यामि फलयोगमनुत्तमम् ।
यथा येन यदा चैव प्रदेया यादृशाश्च ते ॥ ४५ ॥
ज्योतिस्तेजः प्रकाशं वाऽप्यूर्ध्वगं चाऽपि वर्ण्यते ।
प्रदानं तेजसां तस्मात्तेजो वर्धयते नृणाम् ॥ ४६ ॥
अन्धं तमस्तमिस्रं च दक्षिणायनमेव च ।
उत्तरायणमेतस्माज्ज्योतिर्दानं प्रशस्यते ॥ ४७ ॥
यस्मादूर्ध्वगमेतत्तु तमसश्चैव भेषजम् ।
तस्मादूर्ध्वगतेर्दाता भवेदत्रेति निश्चयः ॥ ४८ ॥
देवास्तेजस्विनो यस्मात्प्रभावन्तः प्रकाशकाः ।
तामसा राक्षसाश्चैव तस्माद्दीपः प्रदीयते ॥ ४९ ॥
आलोकदानाच्चक्षुष्मान्प्रभायुक्तो भवेन्नरः ।
तान्दत्त्वा नोपहिंसेत न हरेन्नोपनाशयेत् ॥ ५० ॥
दीपहर्ता भवेदन्धस्तमोगतिरसुप्रभः ।
दीपप्रदः स्वर्गलोके दीपमालेव राजते ॥ ५१ ॥

युक्त हैं, वह मनुष्योंके लिये विहित है। (३८-४३)

जिन कारणोंसे फूल दान करना प्रशंसित होता है, उन्हीं कारणोंसे धूप दान भी संतोषजनक हुआ करता है। दीपक दान करनेसे जो उत्तम फल मिलता है और जिस समयमें जिसके द्वारा जिस प्रकार जैसा दीपक दान करना चाहिये; वह भी कहता हूं। यह भी कहा जाता है, कि ऊर्ध्वगामी दीपादि तेज तथा कान्ति और कीर्ति प्रदान करते हैं;दीपदानसे मनुष्योंके तेजकी वृद्धि होती है। अन्धकार और दक्षिणायन अन्धन्तम नाम नरक स्वरूप है; इसलिये उत्तरायणकी रात्रिमें दीपदान करना उत्तम है, दीप ज्योति ऊर्ध्वग और अन्धकारका नाशक है, इस ही लिये वह ऊर्ध्वगति प्रदान करती है, इस विषयमें ऐसा ही निश्चय है। दीपदानसे ही देववृन्द तेजस्वी, भावयुक्त और प्रकाशमान हुए हैं और दीपदान करनेसे राक्षसोंको तामस भाव प्राप्त हुआ है; इसलिये दीपदान करना उचित है। मनुष्य दीपदान करनेसे नेत्रवान और प्रभायुक्त होते हैं, इसलिये दीपदान करके हिंसा न करे, न हरे और नष्ट न करे। जो पुरुष दीपक हरता है, वह अन्धा होता है, अन्धकारमें चलता है, तथा उसकी

हविषा प्रथमः कल्पो द्वितीयश्चौषधीरसैः।
वसामेदोऽस्थिनिर्यासैर्न कार्यः पुष्टिमिच्छता ॥ ५२ ॥
गिरिप्रपाते गहने चैत्यस्थाने चतुष्पथे।
दीपदानं भवेन्नित्यं य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ५३ ॥
कुलोद्योतो विशुद्धात्मा प्रकाशत्वं च गच्छति।
ज्योतिषां चैव सालोक्यं दीपदाता नरः सदा ॥ ५४ ॥
बलिकर्मसु वक्ष्यामि गुणान्कर्मफलोदयान्।
देवयक्षोरगनृणां भूतानामथ रक्षसाम् ॥ ५५ ॥
येषां नाग्रभुजो विप्रा देवतातिथिबालकाः।
राक्षसानेव तान्विद्धि निर्विशङ्कानमङ्गलान् ॥ ५६ ॥
तस्मादग्रं प्रयच्छेत देवेभ्यः प्रतिपूजितम्।
शिरसा प्रयतश्चापि हरेद्बलिमतन्द्रितः ॥ ५७ ॥
गृह्णन्ति देवता नित्यमाशंसन्ति सदा गृहान्।
बाह्याश्चागन्तवो येऽन्ये यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ ५८ ॥

उत्तम प्रभा नहीं रहती और दीपक दान करनेवाला स्वर्गलोकमें दीपमालाकी भांति विराजता है। घृतसे दीप दान करना प्रथम कल्प है; तिल, सरसों और औषधियोंके तैलसे दान करना द्वितीय कल्प है। (४४—५२)

जो मनुष्य पुष्टिकी कामना करे, उसे उचित है, कि चर्बी, मेद, हड्डी प्रभृति प्राणियोंके अवयवोंसे निकले हुए तेल और निर्यासके द्वारा दीप दान न करे। जो अपने ऐश्वर्यकी अभिलाष करे उसे पहाडके झरने, वन, चैत्यस्थान और चौहारोंमें सदा दीप दान करना चाहिये, दीपदाता सदा कुलप्रदीप और पवित्रचित्त होके प्रकाशित होता और उसे ज्योतिर्गणोंके सदृश लोक प्राप्त होते हैं। देव, यक्ष, सर्प, मनुष्य, भूत और राक्षसोंके बलिकर्मके विषयमें कर्मफल उदय होनेसे जो उत्कर्षता प्राप्त होती है, उसे कहता हूं। (५२-५५)

ब्राह्मण, देवता, अतिथि और बालके-वृन्द जिसके गृहमें अगाडी भोजन नहीं करते, उन निर्विशङ्कचित्त अमांगलिक लोगोंको राक्षस जानना चाहिये। इसलिये देवताओंको पूजित अन्नका अग्रभाग प्रदान करना योग्य है तथा सावधान और अतन्द्रित होके माथे चढाके दी हुई बलिको देववृन्द सदा ग्रहण करते हैं, आगन्तुक अतिथि और यक्ष, राक्षस, सर्प उसके गृहमें आनेसे

इतो दत्तेन जीवन्ति देवताः पितरस्तथा।
ते प्रीताः प्रीणयन्त्येनमायुषा यशसा धनैः ॥ ५९ ॥
बलयः सह पुष्पैस्तु देवानामुपहारयेत्।
दधिदुग्धमयाः पुण्याः सुगन्धाः प्रियदर्शनाः ॥ ६० ॥
कार्या रुधिरमांसाढ्या बलयो यक्षरक्षसाम्।
सुरासवपुरस्कारा लाजोल्लापिकभूषिताः ॥ ६१ ॥
नागानां दयिता नित्यं पद्मोत्पलविमिश्रिताः।
तिलान्गुडसुसम्पन्नान्भूतानामुपहारयेत् ॥ ६२ ॥
अग्रदाताऽग्रभोगी स्याद्बलवीर्यसमन्वितः।
तस्मादग्रं प्रयच्छेत देवेभ्यः प्रतिपूजितम् ॥ ६३ ॥
ज्वलन्त्यहरहो वेश्म याश्चास्य गृहदेवताः।
ताः पूज्या भूतिकामेन प्रसृताग्रप्रदायिना ॥ ६४ ॥
इत्येतदसुरेन्द्राय काव्यः प्रोवाच भार्गवः।
सुवर्णाय मनुः प्राह सुवर्णो नारदाय च ॥ ६५ ॥
नारदोऽपि मयि प्राह गुणानेतान्महाद्युते।
त्वमप्येतद्विदित्वेह सर्वमाचर पुत्रक ॥ ६६ ॥ [४६८०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे सुवर्णमनुसंवादो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

शंसित होते हैं। देवता और पितर लोग इस लोकमें दी हुई हव्यकव्य बलिके द्वारा जीवन धारण करते हैं, वे प्रसन्न होके दाताको आयु, यश और धनके सहारे सन्तुष्ट किया करते हैं। दही दूध युक्त, पवित्र, सुगन्धित और उत्तम बलि फूलके सहित देवताओंको देवे। (५९-६०)

यक्ष राक्षसोंको रुधिर और मांसयुक्त बलि देनी योग्य है; उस सारी बलिको सुरा आसव और अरक विभूषित करे। पद्मोत्पलमिश्रित बलि सर्पोंको प्रिय है। गुडयुक्त तिल भूतोंको उपहार देवे। अग्रदाता अगाडी भोजन करनेवाला, बल और वर्णयुक्त होता है; इसलिये देवताओंको पूजित अन्नका अग्रभाग प्रदान करे। गृह और गृहके देवता रात दिन प्रज्वलित होते हैं, इसलिये ऐश्वर्यकी कामना करनेवाला मनुष्य उन्हें प्रसृताग्र प्रदान करके उनकी पूजा करे। भृगुनन्दन शुक्राचार्यने असुरेन्द्र बलिसे यह सब कथा कही थी। मनुने

युधिष्ठिर उवाच– श्रुतं मे भरतश्रेष्ठ पुष्पधूपप्रदायिनाम् ।
फलं बलिविधाने च तद्ब्रूयो वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
धूपप्रदानस्य फलं प्रदीपस्य तथैव च ।
बलयश्च किमर्थं वै क्षिप्यन्ते गृहमेधिभिः ॥ २ ॥
भीष्म उवाच– अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
नहुषस्य च संवादमगस्त्यस्य भृगोस्तथा ॥ ३ ॥
नहुषो हि महाराज राजर्षिः सुमहातपाः ।
देवराज्यमनुप्राप्तः सुकृतेनेह कर्मणा ॥ ४ ॥
तत्रापि प्रयतो राजन्नहुषस्त्रिदिवे वसन् ।
मानुषीश्चैव दिव्याश्च कुर्वाणो विविधाः क्रियाः ॥५॥
मानुष्यस्तत्र सर्वाः स्म क्रियास्तस्य महात्मनः ।
प्रवृत्तास्त्रिदिवे राजन्दिव्याश्चैव सनातनाः ॥ ६ ॥
अग्निकार्याणि समिधः कुशाः सुमनसस्तथा ।
बलयश्चान्नलाजाभिर्धूपनं दीपकर्म च ॥ ७ ॥
सर्वं तस्य गृहे राज्ञः प्रावर्तत महात्मनः ।

सुवर्णसे, उस सुवर्णने नारदसे और नारदने मेरे समीप यह सब फलका विषय कहा था। हे महातेजस्वी पुत्र ! तुम भी यह सब मालूम करके ऐसा ही आचरण करो। (६१—६६)

अनुशासनपर्वमें ९८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ९९ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ ! मैंने फूल, धूप प्रभृति दान करनेवालोंका फल और बलि विधानका विषय सुना, यह विषय आपको फिर कहना योग्य है, धूपदान और दीपदानका क्या फल है ? किस लिये गृहस्थ लोग बलि दिया करते हैं ? इसे विस्तारपूर्वक वर्णन करिये। (१—२)

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें अगस्त्य, भृगु और नहुषके संवाद-युक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। हे महाराज ! महातपा राजर्षि नहुषने इस लोकमें सुकृत कर्मोंसे देवराज्य पाया था। हे महाराज ! राजा नहुष दिव्य और मानुष विविध क्रिया करने लगे। हे महाराज ! उस महात्माकी मानुषी क्रिया तथा स्वर्गीय क्रिया उस स्वर्गके बीच निमने लगीं। अग्निकार्यमें समिध, कुश, पुष्प और दूबके सहित धूपदान तथा दीपदान प्रभृति सब कार्य उस महानुभाव राजाके स्थानमें

जपयज्ञान्मनोयज्ञांस्त्रिदिवेऽपि चकार सः ॥ ८ ॥
देवानभ्यर्चयच्चापि विधिवत्स सुरेश्वरः।
सर्वानेव यथान्यायं यथापूर्वमरिन्दम ॥ ९ ॥
अथेन्द्रोऽहमिति ज्ञात्वा अहङ्कारं समाविशत्।
सर्वाश्चैव क्रियास्तस्य पर्यहीयन्त भूपते ॥ १० ॥
स ऋषीन्वाहयामास वरदानमदान्वितः।
परिहीनक्रियश्चैव दुर्बलत्वमुपेयिवान् ॥ ११ ॥
तस्य वाहयतः कालो मुनिमुख्यांस्तपोधनान्।
अहङ्काराभिभूतस्य सुमहानभ्यवर्तत ॥ १२ ॥
अथ पर्यायशः सर्वान्वाहनायोपचक्रमे।
पर्यायश्चाप्यगस्त्यस्य समपद्यत भारत ॥ १३ ॥
अथागत्य महातेजा भृगुर्ब्रह्मविदां वरः।
अगस्त्यमाश्रमस्थं वै समुपेत्येदमब्रवीत् ॥ १४ ॥
एवं वयमसत्कारं देवेन्द्रस्यास्य दुर्मतेः।
नहुषस्य किमर्थं वै मर्षयाम महामुने ॥ १५ ॥
अगस्त्य उवाच-कथमेष मया शक्यः शप्तुं यस्य महामुने।
वरदेन वरो दत्तो भवतो विदितश्च सः ॥ १६ ॥

होने लगे, वह सुरपुरमें भी जपयज्ञ और मनोयज्ञ करने लगे। (३-८)

हे अरिन्दम! वह देवताओंका राजा होनेपर भी उनकी विधिपूर्वक पूजा करता था। "मैं इन्द्र हूं" ऐसा जानके वह अहङ्कारयुक्त हुआ। हे महाराज! उसके अभिमानयुक्त होनेपर उसकी सब क्रिया नष्ट हुईं। उसने वर पाके मतवाला होकर ऋषियोंको सवारी ढोनेमें प्रवृत्त किया और क्रियारहित होके अत्यन्त निर्बल होने लगा। उसके अहंकारयुक्त होके मुख्य तपस्वी ऋषियोंको वाहन रहते बहुत समय व्यतीत हुआ। हे भारत! अनन्तर वह पर्यायक्रमसे सब ऋषियोंको सवारी ढोनेके लिये नियुक्त करनेमें उद्यत हुआ, कालक्रमसे अगस्त्य मुनिका समय उपस्थित हुआ। ब्रह्मवादियोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी भृगु उस समय अगस्त्यके आश्रममें जाके यह वचन बोले, हे महामुनि! हम इस नीचबुद्धि देवेन्द्र नहुषके ऐसे असत्कारको किस प्रकार क्षमा करेंगे? (९—१५)

अगस्त्य बोले, हे मुनिवर! वरदाता

यो मे दृष्टिपथं गच्छेत्स मे वश्यो भवेदिति ।
इत्यनेन वरं देवो याचितो गच्छता दिवम् ॥ १७ ॥
एवं न दग्धः स मया भवता च न संशयः ।
अन्येनाप्यृषिमुख्येन न दग्धो न च पातितः ॥ १८ ॥
अमृतं चैव पानाय दत्तमस्मै पुरा विभो ।
महात्मना तदर्थं च नास्माभिर्विनिपात्यते ॥ १९ ॥
प्रायच्छत वरं देवः प्रजानां दुःखकारणम् ।
द्विजेष्वधर्मयुक्तानि स करोति नराधमः ॥ २० ॥
तत्र यत्प्राप्तकालं नस्तद् ब्रूहि वदतां वर ।
भवांश्चापि यथा ब्रूयात्तत्कर्तास्मि न संशयः ॥ २१ ॥
भृगुरुवाच— पितामह नियोगेन भवन्तं सोऽहमागतः ।
प्रतिकर्तुं बलवति नहुषे दैवमोहिते ॥ २२ ॥
अद्य हि त्वां सुदुर्बुद्धी रथे योक्ष्यति देवराट् ।
अद्यैनमहमुद्वृत्तं करिष्येऽनिन्द्रमोजसा ॥ २३ ॥
अद्येन्द्रं स्थापयिष्यामि पश्यतस्ते शतक्रतुम् ।

प्रजापतिने जिसे वर दिया है, मैं उसे किस प्रकार शाप देनेमें समर्थ होऊंगा ? आपसे भी यह छिपा नहीं है । जब वह स्वर्गमें जाने लगा, तब प्रजापतिके समीप यह वर मांगा, कि 'मैं जिसे देखूं' वह मेरे वशमें हो जाय, इस ही निमित्त वह निःसन्देह मेरे अथवा तुम्हारे तथा अन्य किसी मुख्य ऋषिके द्वारा भस्म तथा स्वर्गसे च्युत नहीं हुआ । महानुभाव पितामहने पहले समयमें इसे पीनेके लिये अमृत दिया था इस ही निमित्त हम उसे नष्ट करनेमें असमर्थ हुए हैं । प्रजापतिने इसे प्रजापुञ्जसे दुःखकर वर दिया है, इसीसे यह पुरुषाधम ब्राह्मणोंके विषयमें अधर्मयुक्त व्यवहार करता है । हे वक्तृवर ! उस विषयमें हम लोगोंके लिये जो समय उपस्थित हुआ है, आप उसे ही कहिये, आप जैसा कहेंगे, मैं निःसन्देह वैसाही करूंगा । (१६–२१)

भृगु बोले, दैववशसे मोहित बलशाली नहुषके प्रतिकार करनेके लिये मैं पितामहकी आज्ञानुसार आपके समीप आया हूं । वह नीचबुद्धि देवराज आज आपको रथमें नियुक्त करेगा, मैं आज ही इस अनिन्द्रको निज तेजके प्रभावसे गर्वित करूंगा । मैं आज ही आपके सम्मुखमें उस अत्यन्त नीचबुद्धि

सञ्चाल्य पापकर्माणमैन्द्रात् स्थानात्सुदुर्मतिम् ॥२४॥
अद्य चासौ कुदेवेन्द्रस्त्वां पदा धर्षयिष्यति ।
दैवोपहतचित्तत्वादात्मनाशाय मन्दधीः ॥ २५ ॥
व्युत्क्रान्तधर्मं तमहं धर्षणामर्षितो भृशम् ।
अहिर्भवस्वेति रुषा शप्स्ये पापं द्विजद्रुहम् ॥ २६ ॥
तत एनं सुदुर्बुद्धिं धिक्शब्दाभिहतत्विषम् ।
धरण्यां पातयिष्यामि पश्यतस्ते महामुने ॥ २७ ॥
नहुषं पापकर्माणमैश्वर्यबलमोहितम् ।
यथा च रोचते तुभ्यं तथा कर्ताऽस्म्यहं मुने ॥ २८ ॥
एवमुक्तस्तु भृगुणा मैत्रावरुणिरव्ययः ।
अगस्त्यः परमप्रीतो बभूव विगतज्वरः ॥ २९ ॥ [४७०९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे अगस्त्यभृगुसंवादो नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

युधिष्ठिर उवाच—कथं वै स विपन्नश्च कथं वै पातितो भुवि ।
कथं चानिन्द्रतां प्राप्तस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १ ॥

भीष्म उवाच—एवं तयोः संवदतोः क्रियास्तस्य महात्मनः ।

पापीको इन्द्रपदसे पृथक् करके शतक्रतु को नीच स्थानपर स्थापित करूंगा। आज ही वह मन्दबुद्धि कुदेवराज दैववशसे अपने नाशके लिये पांवसे तुम्हें प्रधर्षित करेगा। मैं धर्षणनिबन्धनसे अत्यन्त क्रोधित होके उस विधर्मी द्विजद्रोही पापीको क्रोधवशसे " सर्प होजाओ " कहके शाप दूंगा। हे महामुनि! अनन्तर उस अत्यन्त दुर्बुद्धि राजाको धिक्शब्दसे तेजरहित करके आपके सम्मुखमें ही पृथ्वीपर गिरा दूंगा। हे मुनि! ऐश्वर्यबलसे मोहित पापी नहुषको जिस प्रकार करनेके लिये आपकी जैसी रुचि होगी, मैं वैसा ही करूंगा। मैत्रावरुणि अविनाशी अगस्त्य मुनि भृगुका ऐसा वचन सुनके परम प्रसन्न और शोकरहित हुए। (२२—२९)

अनुशासनपर्वमें ९९ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १०० अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, राजा नहुष किस प्रकार विपद्ग्रस्त हुए? किस प्रकार पृथ्वीपर गिरे? किस लिये इन्द्रत्व पदसे भ्रष्ट हुए? यह विषय आपको वर्णन करना योग्य है। (१)

भीष्म बोले, अगस्त्य और भृगुके इस प्रकार वार्तालाप करते रहनेपर

सर्वा एव प्रवर्तन्ते या दिव्या याश्च मानुषीः ॥ २ ॥
तथैव दीपदानानि सर्वोपकरणानि वै।
बलिकर्म च यच्चान्यद्दत्तसकाश्च पृथग्विधाः ॥ ३ ॥
सर्वं तस्य समुत्पन्ना देवेन्द्रस्य महात्मनः।
देवलोके नृलोके च सदाचारा बुधाः स्मृताः ॥ ४ ॥
ते चेद्भवन्ति राजेन्द्र ऋद्ध्यन्ते गृहमेधिनः।
धूपप्रदानैर्दीपैश्च नमस्कारैस्तथैव च ॥ ५ ॥
यथा सिद्धस्य चान्नस्य ग्रहायाग्रं प्रदीयते।
बलयश्च गृहोद्देशे अतः प्रीयन्ति देवताः ॥ ६ ॥
यथा च गृहिणस्तोषो भवेद्वै बलिकर्मणि।
तथा शतगुणा प्रीतिर्देवतानां प्रजायते ॥ ७ ॥
एवं धूपप्रदानं च दीपदानं च साधवः।
प्रयच्छन्ति नमस्कारैर्युक्तमात्मगुणावहम् ॥ ८ ॥
स्नानेनाद्भिश्च यत्कर्म क्रियते वै विपश्चिता।
नमस्कारप्रयुक्तेन तेन प्रीयन्ति देवताः ॥ ९ ॥
पितरश्च महाभागा ऋषयश्च तपोधनाः।
गृह्याश्च देवताः सर्वाः प्रीयन्ते विधिनाऽर्चिताः ॥ १० ॥
इत्येतां बुद्धिमास्थाय नहुषः स नरेश्वरः।

महात्मा नहुष राजाके दिव्य और मनुष्य कार्य होने लगे। सब सामग्रियोंसे युक्त दीपदान, बलिकर्म तथा पृथक् पृथक् रीतिसे दूसरे सब कार्य प्रवृत्त थे। देवलोक और नरलोकमें जो सब सदाचार वर्णित हुए हैं, महानुभाव देवराज नहुषके वे सब कार्य पूरे हुए। हे राजेन्द्र! यदि साधुसम्मत सदाचार पूर्ण हो, तो गृहस्थ मनुष्य समृद्धियुक्त होता है। धूपदान, दीपदान, नमस्कार, ब्राह्मणको सिद्धान्नका अग्रभाग प्रदान और गृहमें बलि देनेसे देववृन्द प्रसन्न होते हैं। बलिकर्म विषयमें गृहस्थ पुरुष जिस प्रकार सन्तुष्ट होता है, देवताओंको उसमें उन लोगोंसे एक सौ गुण अधिक प्रीति हुआ करती है; इसलिये साधु पुरुष आत्मगुणावह नमस्कारयुक्त धूप और दीप दान किया करते हैं। (२-८)

विद्वान पुरुष पवित्र जलसे स्नान करके जो कुछ कार्य करता है, उससे देववृन्द प्रसन्न होते हैं। महाभाग पितर, तपस्वी ऋषि और गृहदेवता विधि-

सुरेन्द्रत्वं महत्प्राप्य कृतवानेतदद्भुतम् ॥ ११ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य भाग्यक्षय उपस्थिते।
सर्वमेतदवज्ञाय कृतवानिदमीदृशम् ॥ १२ ॥
ततः स परिहीणोऽभूत्सुरेन्द्रो बलदर्पितः।
धूपदीपोदकविधिं न यथावच्चकार ह ॥ १३ ॥
ततोऽस्य यज्ञविषयो रक्षोभिः पर्यबध्यत।
अथागस्त्यमृषिश्रेष्ठं वाहनायाजुहाव ह ॥ १४ ॥
द्रुतं सरस्वतीकूलात् स्मयन्निव महाबलः।
ततो भृगुर्महातेजा मैत्रावरुणिमब्रवीत् ॥ १५ ॥
निमीलयस्व नयने जटां यावद्विशामि ते।
स्थाणुभूतस्य तस्याथ जटां प्राविशदच्युतः ॥ १६ ॥
भृगुः स सुमहातेजाः पातनाय नृपस्य च।
ततः स देवराट् प्राप्तस्तमृषिं वाहनाय वै ॥ १७ ॥
ततोऽगस्त्यः सुरपतिं वाक्यमाह विशांपते।
योजयस्वेति मां क्षिप्रं कं च देशं वहामि ते ॥ १८ ॥

पूर्वक पूजित होनेपर प्रसन्न होते हैं। राजा नहुषने इस ही निमित्त ऐसी बुद्धि अवलम्बन करके महत् सुरेन्द्रत्व पाके भी अद्भुत रीतिसे पूर्वोक्त कार्यौंको किया था। कुछ समयके अनन्तर भाग्यक्षयका समय उपस्थित होनेपर पूर्वोक्त कार्यौंकी अवज्ञा करके वह नीच कहे हुए कार्य करनेमें प्रवृत्त हुए थे। अनन्तर वह देवेन्द्र होके बलिकर्मसे रहित हुए और धूपदीप दान तथा पितरोंका तर्पण विधिपूर्वक करनेमें विरक्त रहे; अन्तमें उनके यज्ञस्थानमें राक्षस लोग विचरने लगे। अनन्तर उस महाबली राजाने गर्वित होकर सरस्वतीके तटसे अगस्त्य महर्षिको सवारी ले चलनेके लिये शीघ्र ही बुलाया। (९—१५)

तब महातेजस्वी भृगु अगस्त्यसे बोले, मैं जबतक तुम्हारी जटाके बीच प्रवेश करूं, तबतक तुम अपने नेत्र मूंद रक्खो। अनन्तर अगस्त्यके पर्वतकी भांति अचलभावसे स्थित होनेपर महातेजस्वी भृगुने राजा नहुषको स्वर्गसे च्युत करनेके लिये उनके जटाजूटमें प्रवेश किया। हे नरनाथ! अनन्तर देवराजने सवारी ले चलनेके लिये अगस्त्य मुनिको पाया, तब अगस्त्यने सुरपतिसे कहा, हे सुरराज! मुझे जलदी

यत्र वक्ष्यसि तत्र त्वां नयिष्यामि सुराधिप।
इत्युक्तो नहुषस्तेन योजयामास तं मुनिम् ॥ १९ ॥
भृगुस्तस्य जटान्तस्थो बभूव हृषितो भृशम्।
न चापि दर्शनं तस्य चकार स भृगुस्तदा ॥ २० ॥
वरदानप्रभावज्ञो नहुषस्य महात्मनः।
न चुकोप तदाऽगस्त्यो युक्तोऽपि नहुषेण वै ॥ २१ ॥
तं तु राजा प्रतोदेन चोदयामास भारत।
न चुकोप स धर्मात्मा ततः पादेन देवराट् ॥ २२ ॥
अगस्त्यस्य तदा क्रुद्धो वामेनाभ्यहनच्छिरः।
तस्मिन् शिरस्यभिहते स जटान्तर्गतो भृगुः ॥ २३ ॥
शशाप बलवत्क्रुद्धो नहुषं पापचेतसम्।
तस्मात्पदाहतः क्रोधाच्छिरसीमं महामुनिम् ॥ २४ ॥
तस्मादाशु महीं गच्छ सर्पो भूत्वा सुदुर्मते।
इत्युक्तः स तदा तेन सर्पो भूत्वा पपात ह ॥ २५ ॥
अदृष्टेनाथ भृगुणा भूतले भरतर्षभ।
भृगुं हि यदि सोऽद्रक्ष्यन्नहुषः पृथिवीपते ॥ २६ ॥

सवारीमें नियुक्त करो, मैं तुम्हें किस स्थानपर ले चलूं? हे देवराज! आप जहां कहो, वहां ही मैं आपको ले चलूंगा; नहुषने अगस्त्यका वचन सुनके उन्हें सवारीमें नियुक्त किया, भृगु उनके जटाजूटमें रहके अत्यन्त हर्षित हुए। वह महानुभाव नहुषके वर पानेका प्रभाव जानते थे, इसलिये उस समय उनके नेत्रके सामने नहीं हुए। नहुषने जब अगस्त्यको सवारीमें नियुक्त किया, तब भी वह उनपर क्रुद्ध नहीं हुए। (१९-२१)

हे भारत! राजा नहुषने उन्हें कोडेसे मारा, उसपर भी वह धर्मात्मा क्रुद्ध न हुए, अनन्तर देवराजने क्रुद्ध होके उस समय अगस्त्यके सिरपर बाईं लात मारी। अगस्त्यके सिरपर लात मारनेसे उनके जटाके भीतर भृगुने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस पापबुद्धि नहुषको शाप दिया। रे नीचबुद्धिवाले! तूने क्रोधके वशमें होकर इस महामुनिके सिरपर लात मारी है, इसलिये शीघ्र ही सर्प होकर पृथ्वीमें जाओ। हे भरतर्षभ! उस समय नहुष अगोचर भृगुके द्वारा इस प्रकार शापयुक्त होके पतित हुए। हे महाराज! यदि नहुष उस समय

न च शक्तोऽभविष्यद्वै पातने तस्य तेजसा।
स तु तैस्तैः प्रदानैश्च तपोभिर्नियमैस्तथा ॥ २७ ॥
पतितोऽपि महाराज भूतले स्मृतिमानभूत्।
प्रसादयामास भृगुं शापान्तो मे भवेदिति ॥ २८ ॥
ततोऽगस्त्यः कृपाविष्टः प्रासादयत तं भृगुम्।
शापान्तार्थं महाराज स च प्रादात्कृपान्वितः ॥२९॥
भृगुरुवाच— राजा युधिष्ठिरो नाम भविष्यति कुलोद्वहः।
स त्वां मोक्षयिता शापादित्युक्त्वाऽन्तरधीयत ॥३०॥
अगस्त्योऽपि महातेजाः कृत्वा कार्यं शतक्रतोः।
स्वमाश्रमपदं प्रायात्पूज्यमानो द्विजातिभिः ॥ ३१ ॥
नहुषोऽपि त्वया राजंस्तस्माच्छापात्समुद्धृतः।
जगाम ब्रह्मभवनं पश्यतस्ते जनाधिप ॥ ३२ ॥
तदा स पातयित्वा तं नहुषं भूतले भृगुः।
जगाम ब्रह्मभवनं ब्रह्मणे च न्यवेदयत् ॥ ३३ ॥
ततः शक्रं समानाय्य देवानाह पितामहः।
वरदानान्मम सुरा नहुषो राज्यमाप्तवान् ॥ ३४ ॥

भृगुको देख लेते तो वह निज तेजसे उन्हें भ्रष्ट न कर सकते। हे महाराज! राजा नहुष पृथ्वीमें गिरके भी पूर्वोक्त धूप दीप प्रदान करने तथा तप-नियमके सहारे स्मृतिशक्तिसे युक्त थे, वह शापके अन्त होनेके लिये भृगुको प्रसन्न करने लगे। हे महाराज! अनन्तर अगस्त्यने कृपायुक्त होके शापान्तके लिये भृगुको प्रसन्न किया; उन्होंने कृपालु होके शापान्तका नियम कह दिया।(२२-२९)

भृगु बोले, युधिष्ठिर नाम एक वंशधर राजा होगा, वही तुम्हें शापसे मुक्त करेगा; इतना कहके भृगु अन्तर्द्धान हुए। महातेजस्वी अगस्त्य भी शतक्रतुका कार्य करके द्विजातियोंसे पूजित होके अपने आश्रमपर गये। हे महाराज! इस ही निमित्त नहुषका तुमने उद्धार किया है। हे प्रजानाथ! नहुष तुम्हारे द्वारा शापसे छूटके तुम्हारे सम्मुखमें ही ब्रह्मलोकमें गये हैं। उस समय भृगु नहुषको पृथ्वीपर गिराके ब्रह्माके स्थानमें गये और उन्हें सब वृत्तान्त सुनाया। (३०—३३)

अनन्तर ब्रह्मा देवराजको बुलाके देवताओंसे बोले, हे देवगण! मेरे वरदानसे नहुषने देवराज्य पाया था;

स चागस्त्येन क्रुद्धेन भ्रंशितो भूतलं गतः।
न च शक्यं विना राज्ञा सुरा वर्तयितुं क्वचित् ॥३५॥
तस्मादयं पुनः शक्रो देवराज्येऽभिषिच्यताम्।
एवं संभाषमाणं तु देवाः पार्थ पितामहम् ॥ ३६ ॥
एवमस्त्विति संहृष्टाः प्रत्यूचुस्तं नराधिप।
सोऽभिषिक्तो भगवता देवराज्ये च वासवः ॥ ३७ ॥
ब्रह्मणा राजशार्दूल यथापूर्वं व्यरोचत।
एवमेतत्पुरा वृत्तं नहुषस्य व्यतिक्रमात् ॥ ३८ ॥
स च तैरेव संसिद्धो नहुषः कर्मभिः पुनः।
तस्माद्दीपाः प्रदातव्याः सायं वै गृहमेधिभिः ॥ ३९ ॥
दिव्यं चक्षुरवाप्नोति प्रेत्य दीपस्य दायकः।
पूर्णचन्द्रप्रतीकाशा दीपदाश्च भवन्त्युत ॥ ४० ॥
यावदक्षिनिमेषाणि ज्वलन्ते तावतीः समाः।
रूपवान्बलवांश्चापि नरो भवति दीपदः ॥ ४१ ॥ [४७५०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके
पर्वणि अगस्त्यभृगुसंवादो नाम शततमोऽध्यायः॥ १०० ॥

युधिष्ठिर उवाच– ब्राह्मणस्वानि ये मन्दा हरन्ति भरतर्षभ।

वह क्रुद्ध अगस्त्यके द्वारा भ्रष्ट होके पृथ्वीपर गया है। हे देवगण ! राजाके विना किसी स्थानमें कोई वास नहीं कर सकता; इसलिये पाकशासनको तुम लोग फिर देवराज्यपर अभिषिक्त करो। हे नरनाथ पार्थ ! देवताओंने ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त हर्षित होकर 'एवमस्तु' कहके उनकी बात स्वीकार की। हे नृपवर ! इन्द्र भगवान् ब्रह्माके द्वारा देवराज्यपर अभिषिक्त होके पहले की भांति विराजमान हुए। नहुषके विषयमें व्यतिक्रम होनेसे पहले ऐसी घटना हुई थी, उन्हें पूर्वोक्त कर्मोंके सहारे पूरी रीतिसे सिद्धि प्राप्त हुई; इसलिये गृहमेधी पुरुषोंको सन्ध्याके समय दीपदान करना उचित है। दीपदान करनेवाला मनुष्य परलोकमें जाके दिव्यनेत्र पाता है। जबतक अक्षिनिमेष प्रकाशमान रहते हैं, उतने वर्ष पर्यन्त दीपदान करनेवाले पूर्णचन्द्रके समान स्वर्गमें विराजते हैं और दीपदान करनेवाले मनुष्य रूपवान तथा बलवान होते हैं। (३४—४१)

अनुशासनपर्वमें १०० अध्याय समाप्त।

नृशंसकारिणो मूढाः क्व ते गच्छन्ति मानवाः ॥ १ ॥

भीष्म उवाच- अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
चाण्डालस्य च संवादं क्षत्रबन्धोश्च भारत ॥ २ ॥

राजन्य उवाच— वृद्धरूपोऽसि चाण्डाल बालवच्च विचेष्टसे ।
श्वखराणां रजःसेवी कस्मादुद्विजसे गवाम् ॥ ३ ॥
साधुभिर्गर्हितं कर्म चाण्डालस्य विधीयते ।
कस्माद्गोरजसा ध्वस्तमपां कुण्डे निषिञ्चसि ॥ ४ ॥

चाण्डाल उवाच-ब्राह्मणस्य गवां राजन् ह्रियतीनां रजः पुरा ।
सोममुद्ध्वंसयामास तं सोमं येऽपिबन्द्विजाः ॥ ५ ॥
दीक्षितश्च स राजाऽपि क्षिप्रं नरकमाविशत् ।
सह तैर्याजकैः सर्वैर्ब्रह्मस्वमुपजीव्य तत् ॥ ६ ॥
येऽपि तत्रापिबन्क्षीरं घृतं दधि च मानवाः ।
ब्राह्मणाः सहराजन्याः सर्वे नरकमाविशन् ॥ ७ ॥
जघ्नुस्ताः पयसा पुत्रांस्तथा पौत्रान्विधुन्वतीः ।
पशूनवेक्षमाणाश्च साधुवृत्तेन दम्पती ॥ ८ ॥

अनुशासनपर्वमें १०१ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ ! जो नीचकर्म करनेवाले मन्दबुद्धि मूढ मनुष्य ब्राह्मणका धन हरते हैं, वे किस लोकमें जाते हैं ? (१)

भीष्म बोले, हे भारत ! प्राचीन लोग इस विषयमें किसी क्षत्रिय और चाण्डाल के संवादयुक्त पुराना इतिहास कहा करते हैं। क्षत्री बोला, रे चाण्डाल तू बूढा होनेपर भी बालककी भांति क्यों चेष्टा करता है ? तू कुत्ते और गधोंकी धूलिसे अवगुंठित होकर किसलिये गौवोंको व्याकुल करता है ? साधु लोग चाण्डालके कार्यको अत्यन्त निन्दित कहते हैं। तू किसलिये क्षीरबुन्दसे युक्त गौवोंको जलकुण्डके बीच कर रहा है ? (२-४)

चाण्डाल बोला, हे राजन् ! पहले समयमें किसी ब्राह्मणकी गौवें हरी गई थीं, उनके स्तनसे गिरे हुए दूधने सोमरसको नष्ट किया था। ब्राह्मणोंने उस सोमरसको पिया और यज्ञ करनेवाले राजाने भी उन्हीं गौवोंके दूधसे युक्त सोमपान करनेपर यज्ञ करानेवालोंके सहित उस ब्रह्मस्वको भोगनेसे नरकमें प्रवेश किया था। जिन ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा दूसरे मनुष्योंने उस गऊ हरनेवालेके गृहमें घी, दही वा दूध

अहं तत्रावसं राजन्ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
तासां मे रजसा ध्वस्तं भैक्ष्यमासीन्नराधिप ॥ ९ ॥
चाण्डालोऽहं ततो राजन्भुक्त्वा तद्भवं नृप ।
ब्रह्मस्वहारी च नृपः सोऽप्रतिष्ठां गतिं ययौ ॥ १० ॥
तस्माद्धरेन्न विप्रस्वं कदाचिदपि किंचन ।
ब्रह्मस्वं रजसा ध्वस्तं भुक्त्वा मां पश्य यादृशम् ॥ ११ ॥
तस्मात्सोमोऽप्यविक्रेयः पुरुषेण विपश्चिता ।
विक्रयं त्विह सोमस्य गर्हयन्ति मनीषिणः ॥ १२ ॥
ये चैनं क्रीणते तात ये च विक्रीणते जनाः ।
ते तु वैवस्वतं प्राप्य रौरवं यान्ति सर्वशः ॥ १३ ॥
सोमं तु रजसा ध्वस्तं विक्रीणन्विधिपूर्वकम् ।
श्रोत्रियो वार्धुषी भूत्वा न चिरं स विनश्यति ॥ १४ ॥
नरकं त्रिंशतं प्राप्य स्वविष्ठामुपजीवति ।
श्वचर्यामभिमानं च सखिदारे च विप्लवम् ॥ १५ ॥

पीया था, वे सब कोई नरकमें डूबे । गौवें साधु व्यवहारसे पशुओंकी प्रतीक्षा करती, स्वामी और बछडोंके वियोगसे कांप रही थीं, वैसी दशामें जिसने उन्हें हरण किया था, उनके पुत्र पौत्र और दम्पती अल्पायु हुए । (५-८)

हे महाराज ! मैं ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होकर उस गऊ हरनेवाले मनुष्यके गृहमें निवास करता था । हे नरनाथ ! उन हरी हुई गौवोंकी धूलिसे मेरा भिक्षान्न विनष्ट हुआ था, हे नरनाथ ! मैंने वही गोरजसे युक्त अन्न खाया था, इसीसे मैं चाण्डाल हुआ और वह ब्रह्मस्व हरनेवाला राजा भी अप्रतिष्ठित हुआ, इसलिये कभी किसी ब्राह्मणका धन हरना उचित नहीं है । ब्रह्मस्वके रजसे परिपूरित भिक्षान्न खाके मैं जैसा हुआ हूं, उसे देखिये । विपश्चित् पुरुष कदापि सोम-विक्रय न करे, इस लोकमें सोम-विक्रय करनेसे मनीषिवृन्द विशेष रीतिसे निन्दा किया करते हैं । हे तात ! जो लोग सोमरस बेचते हैं, तथा जो मनुष्य उसे मोल लेते हैं, वे सब कोई यमके समीप पहुंचके रौरव नरकमें पडते हैं । (९—१३)

यह मत समझो, कि श्रोत्रिय ब्राह्मण विधिपूर्वक ब्रह्मस्व संयुक्त सोमरस बेचके वार्धुषी अर्थात् वृद्धिजीवी होके शीघ्र नष्ट नहीं होता ; वह तीस नरकमें

तुलया धारयन्धर्ममभिमान्यतिरिच्यते ।
श्वानं वै पापिनं पश्य विवर्णं हरिणं कृशम् ॥ १६ ॥
अभिमानेन भूतानामिमां गतिमुपागतम् ।
अहं वै विपुले तात कुले धनसमन्विते ॥ १७ ॥
अन्यस्मिन् जन्मनि विभो ज्ञानविज्ञानपारगः ।
अभवं तत्र जानानो ह्येतान्दोषान्मदात्सदा ॥ १८ ॥
संरब्ध एव भूतानां पृष्ठमांसमभक्षयम् ।
सोऽहं तेन च वृत्तेन भोजनेन च तेन वै ॥ १९ ॥
इमामवस्थां संप्राप्तः पश्य कालस्य पर्ययम् ।
आदीप्तमिव चैलान्तं भ्रमरैरिव चार्दितम् ॥ २० ॥
धावमानं सुसंरब्धं पश्य मां रजसाऽन्वितम् ।
स्वाध्यायैस्तु महत्पापं हरन्ति गृहमेधिनः ॥ २१ ॥
दानैः पृथग्विधैश्चापि यथा प्राहुर्मनीषिणः ।
तथा पापकृतं विप्रमाश्रमस्थं महीपते ॥ २२ ॥
सर्वसङ्गविनिर्मुक्तं छन्दांस्युत्तारयन्त्युत ।

भ्रमता हुआ विष्ठा भक्षण करता है। नीचसेवा, अभिमान और मित्रकी स्त्री के साथ अत्याचार, इन तीनोंको ही तुलादण्डपर रखके तुल्य जाने, अभिमानी मनुष्य धर्मको अतिक्रम करनेसे अधिक पापी होता है अर्थात् अभिमानी मनुष्य नीचसेवी और मित्रकी स्त्री हरनेवालेसे अधिक पापी है। देखिये पापी कुत्ता विवर्ण और कृश होता है, कुत्ते सब प्राणियोंके विषयमें क्रुद्ध होके अभिमानसे ही ऐसी गतिको प्राप्त हुए हैं। हे विभु! मैं दूसरे जन्ममें धनयुक्त बडे कुलमें उत्पन्न होके ज्ञानविज्ञानसे युक्त हुआ था, उस समय इन दोषोंके विषय को जानके भी मैं अभिमानपूर्वक क्रुद्ध होके लोगोंका पृष्ठमांस भक्षण करता था। मैं उस ही चरित्र तथा वैसे भोजनसे ऐसी अवस्थामें पडा हूं; इसलिये समयका विपर्यय अवलोकन करो। (१४—२०)

मुझे तीक्ष्णतुण्डवाले भौरोंके झुण्डसे पीडित आदीप्त चैलान्तसदृश अत्यन्त संरब्ध होके दौडते हुए तथा रजोगुणसे युक्त देखिये। गृहमेधी मनुष्य स्वाध्यायपाठ तथा अनेक प्रकारके दानसे महत् पाप हरण करते हैं; पण्डित लोग जैसा कहा करते हैं, उसही के अनुसार आश्रमस्थ पापी विप्रका वेद उद्धार

अहं हि पापयोन्यां वै प्रसूतः क्षत्रियर्षभ ।
निश्चयं नाधिगच्छामि कथं मुच्येयमित्युत ॥ २३ ॥
जातिस्मरत्वं च मम केनचित्पूर्वकर्मणा ।
शुभेन येन मोक्षं वै प्राप्तुमिच्छाम्यहं नृप ॥ २४ ॥
त्वमिमं संप्रपन्नाय संशयं ब्रूहि पृच्छते ।
चाण्डालत्वात्कथमहं मुच्येयमिति सत्तम ॥ २५ ॥
राजन्यउवाच- चाण्डाल प्रतिजानीहि येन मोक्षमवाप्स्यसि ।
ब्राह्मणार्थे त्यजन्प्राणान्गतिमिष्टामवाप्स्यसि ॥ २६ ॥
दत्त्वा शरीरं क्रव्याद्भ्यो रणाग्नौ द्विजहेतुकम् ।
हुत्वा प्राणान्प्रमोक्षस्ते नान्यथा मोक्षमर्हसि ॥ २७ ॥
भीष्म उवाच- इत्युक्तः स तदा तेन ब्रह्मस्वार्थे परन्तप ।
हुत्वा रणमुखे प्राणान्गतिमिष्टामवाप ह ॥ २८ ॥
तस्माद्रक्ष्यं त्वया पुत्र ब्रह्मस्वं भरतर्षभ ।
यदीच्छसि महाबाहो शाश्वतीं गतिमात्मनः ॥ २९ ॥ [४७७९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे राजन्यचाण्डालसंवादो नामैकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

करता है। हे क्षत्रियश्रेष्ठ भूपाल! मैं पापयोनिमें पडा हूं, निश्चय नहीं कर सकता, कि किस प्रकार मुक्त हूंगा। हे महाराज! मैं पूर्वजन्मके किये हुए किसी शुभकर्मसे जातिस्मर हुआ हूं, उस ही निमित्त मोक्षकी अभिलाष किया करता हूं। हे सत्तम! आप मुझ शरणागत संशय जिज्ञासु पुरुषके ऊपर कृपा करके बताइये, मैं चाण्डालत्वसे किस प्रकार मुक्त हूंगा। (२०-२५)

क्षत्रिय बोला, रे चाण्डाल! तू जिसके सहारे मोक्ष पावेगा, उस विषय में प्रतिज्ञा कर, तू ब्राह्मणके निमित्त प्राण त्यागनेसे अभिलषित गति पावेगा। ब्राह्मणके निमित्त राक्षसोंको शरीर दान करके युद्धरूपी अग्निमें प्राण समर्पण करनेसे तुझे मोक्ष प्राप्त होगी, अन्यथाचरण करनेसे मोक्ष न होगी। (२६-२७)

भीष्म बोले, हे शत्रुतापन! उस समय चाण्डालने उस क्षत्रियका ऐसा वचन सुनके ब्राह्मणस्वके निमित्त युद्धमें मरके अभिलषित गति पाई थी। हे भरतश्रेष्ठ महाबाहो वत्स! यदि तुम शाश्वती गतिकी इच्छा करते हो, तो सदा ब्रह्मस्वकी रक्षा करना। (२८-२९)

अनुशासनपर्वमें १०१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर उवाच– एके लोकाः सुकृतिनः सर्वे त्वाहो पितामह।
तत्र तत्रापि भिन्नास्ते तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥
भीष्म उवाच– कर्मभिः पार्थ नानात्वं लोकानां यान्ति मानवाः।
पुण्यान्पुण्यकृतो यान्ति पापान्पापकृतो नराः ॥ २ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
गौतमस्य मुनेस्तात संवादं वासवस्य च ॥ ३ ॥
ब्राह्मणो गौतमः कश्चिन्मृदुर्दान्तो जितेन्द्रियः।
महावने हस्तिशिशुं परिद्यूनममातृकम् ॥ ४ ॥
तं दृष्ट्वा जीवयामास सानुक्रोशो धृतव्रतः।
स तु दीर्घेण कालेन बभूवातिबलो महान् ॥ ५ ॥
तं प्रभिन्नं महानागं प्रस्रुतं पर्वतोपमम्।
धृतराष्ट्रस्य रूपेण शक्रो जग्राह हस्तिनम् ॥ ६ ॥
ह्रियमाणं तु तं दृष्ट्वा गौतमः संशितव्रतः।
अभ्यभाषत राजानं धृतराष्ट्रं महातपाः ॥ ७ ॥
मा मे हार्षीर्हस्तिनं पुत्रमेनं दुःखात्पुष्टं धृतराष्ट्राकृतज्ञ।

अनुशासनपर्वमें १०२ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! सुकृतशाली मनुष्य एक लोकमें ही निवास करते हैं, अथवा उस स्थानमें भी वे लोग पृथक् पृथक् लोकोंमें वास किया करते हैं। मेरे समीप आप यह विषय वर्णन करिये। (१)

भीष्म बोले, हे पार्थ! मनुष्य निज कर्मके सहारे अनेक प्रकारके लोकोंमें गमन किया करते हैं, पुण्य करनेवाले पुरुष पुण्यलोकमें जाते हैं और पापी मनुष्य पापलोकोंमें जाते हैं। हे तात! प्राचीन लोग इस विषयमें इन्द्र और गौतम मुनिके संवादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। गौतम नाम जितेन्द्रिय, मृदुस्वभाव, दम, शील और व्रत करनेवाले किसी ब्राह्मणने वनके बीच मातारहित तथा अत्यन्त दुःखी एक हाथीके बचेको देखकर दयायुक्त होके उसे पाल के जिला रखा था। हाथीका बचा बहुत समयके अनन्तर अत्यन्त बलवान और बडा हुआ। पर्वतसदृश उस महाहस्तीको देखके इन्द्रने धृतराष्ट्रका रूप धरके उस हाथी को ले लिया। (२—६)

महातपस्वी, संशितव्रती गौतम उस हाथीको हरते हुए देखके राजा धृतराष्ट्रसे बोले, हे अकृतज्ञ धृतराष्ट्र! अत्यन्त

मैत्रं सतां सप्तपदं वदन्ति मित्रद्रोहो मैव राजन् स्पृशेत्त्वाम् ॥८॥
इध्मोदकप्रदातारं शून्यपालं ममाश्रमे।
विनीतमाचार्यकुले सुयुक्तं गुरुकर्मणि ॥ ९ ॥
शिष्टं दान्तं कृतज्ञं च प्रियं च सततं मम।
न मे विक्रोशतो राजन् हर्तुमर्हसि कुञ्जरम् ॥ १० ॥
धृतराष्ट्र उवाच-गवां सहस्रं भवते ददानि दासीशतं निष्कशतानि पञ्च।
अन्यच्च वित्तं विविधं महर्षे किं ब्राह्मणस्येह गजेन कृत्यम् ॥ ११ ॥
गौतम उवाच-तवैव गावो हि भवन्तु राजन्दास्यः सनिष्का विविधं च रत्नम्।
अन्यच्च वित्तं विविधं नरेन्द्र किं ब्राह्मणस्येह धनेन कृत्यम् ॥ १२ ॥
धृतराष्ट्र उवाच- ब्राह्मणानां हस्तिभिर्नास्ति कृत्यं राजन्यानां नागकुलानि विप्र।
स्वं वाहनं नयतो नास्त्यधर्मो नागश्रेष्ठं गौतमास्मान्निवर्त ॥ १३ ॥
गौतम उवाच-यत्र प्रेतो नन्दति पुण्यकर्मा यत्र प्रेतः शोचते पापकर्मा।
वैवस्वतस्य सदने महात्मंस्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ १४ ॥

कष्टसे पाले हुए मेरे इस पुत्रतुल्य हाथीको मत हरो। हे महाराज! साधुलोग सात पग वार्त्तालापसे ही मित्रता कहा करते हैं, इसलिये तुम्हें मित्रद्रोह स्पर्श न करे। यह हाथी यूथसे बिछुड कर मेरे आश्रममें निवास करके मुझे काष्ठ और जल ला देता है, यह आचार्यकुलमें अत्यन्त विनीत, गुरुके कार्यमें रत, शिष्ट, धार्मिक, कृतज्ञ और सदा मुझे प्रिय है। हे महाराज! इसलिये मेरे इस प्रकार चिल्लाते रहनेपर तुम्हें हाथी हरना उचित नहीं है।(७-१०)

धृतराष्ट्र बोले, हे महर्षि! मैं आपको एक हजार गऊ, एक सौ दासी, पांच सौ मुहर तथा और भी अनेक प्रकारका धन देता हूं, आप ब्राह्मण हैं, आपको हाथी लेनेसे क्या प्रयोजन है? (११)

गौतम बोले, हे नरनाथ महाराज! गऊ, दासी और मुहरोंके सहित अनेक प्रकारके रत्न और बहुतसा धन तुम्हारे ही रहे, इस लोकमें ब्राह्मणोंको धनसे क्या प्रयोजन है? (१२)

धृतराष्ट्र बोले, हे विप्र! ब्राह्मणोंका हाथीके सहारे कुछ कार्य नहीं होता, हाथी क्षत्रियोंके ही चढनेके लिये हैं, इसलिये अपने चढनेके लिये इस श्रेष्ठ हाथीको लेजानेसे मुझे कुछ अधर्म नहीं है। हे गौतम! इसलिये आप इस कार्यसे निवृत्त हो। (१३)

गौतम बोले, हे महात्मन् जिस स्थानमें पुण्य कर्म करनेवाले प्रेत आनन्दित होते हैं और पापी प्रेत शोक

धृतराष्ट्र उवाच- ये निष्क्रिया नास्तिकाः श्रद्धानाः पापात्मान इन्द्रियार्थेनिविष्टाः
यमस्य ते यातनां प्राप्नुवन्ति परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ १५ ॥
गौतम उवाच- वैवस्वती संयमनी जनानां यत्रानृतं नोच्यते यत्र सत्यम्।
यत्राबला बलिनं यातयन्ति तत्र त्वाऽहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ १६ ॥
धृतराष्ट्र उवाच- ज्येष्ठां स्वसारं पितरं मातरं च यथा शत्रुं मदमत्ताश्चरन्ति।
तथाविधानामेष लोको महर्षे परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ १७ ॥
गौतम उवाच— मन्दाकिनी वैश्रवणस्य राज्ञो महाभागा भोगिजनप्रवेश्या।
गन्धर्वयक्षैरप्सरोभिश्च जुष्टा तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ १८ ॥
धृतराष्ट्र उवाच- अतिथिव्रताः सुव्रता ये जना वै प्रतिश्रयं ददति ब्राह्मणेभ्यः।
शिष्टाशिनः संविभज्याश्रितांश्च मन्दाकिनीं तेऽतिविभूषयन्ति ॥१९॥
गौतम उवाच— मेरोरग्रे यद्वनं भाति रम्यं सुपुष्पितं किन्नरीगीतजुष्टम्।
सुदर्शना यत्र जम्बूर्विशाला तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २० ॥

किया करते हैं, उस ही यमके स्थानपर मैं तुमसे यह अपना हाथी लूंगा। (१४)

धृतराष्ट्र बोले, जो लोग क्रिया-रहित, नास्तिक, श्रद्धावर्जित, पापी और इन्द्रियोंके विषयोंमें फंसे हैं, वे ही यमयातना भोगते हैं, परन्तु मैं वहां न जाऊंगा। (१५)

गौतम बोले, यमपुरी सब लोगोंकी संयमनकारिणी है, जहांपर झूठ नहीं कहा जाता, केवल सत्य ही विराजता है, जहां निर्बल लोग बलवानोंको दुःख भोग कराते हैं, उस ही स्थानमें मैं तुमसे अपना हाथी लूंगा। (१६)

धृतराष्ट्र बोले, जो मदमत्त मनुष्य जेठी बहिन और पितामाताके विषयमें शत्रुताचरण करते हैं, वैसे लोगोंके लिये यमपुरी बनी है, किन्तु मैं वहां न जाऊंगा। (१७)

गौतम बोले, कुबेरराज्यमें भोगियों-को प्रविष्ट करानेवाली महाभागा मन्दा-किनी नदी है, जिसकी गन्धर्व अप्सरा और यक्षगण सदा सेवा किया करते हैं; उसी स्थानमें मैं निज फलस्वरूप हाथीको तुमसे लूंगा। (१८)

धृतराष्ट्र बोले, जो लोग सदा अतिथि और ब्राह्मणोंको आश्रय देते हैं तथा आश्रितोंको देकर शेषमें अन्नादि भोजन करते हैं; वेही मन्दाकिनीको विभूषित किया करते हैं. किन्तु मैं वहां न जाऊंगा। (१९)

गौतम बोले, सुमेरुके अग्रभागमें जो उत्तम रीतिसे फूला हुआ, किन्नरी-गीतसे युक्त वन विराजमान है और जहां-पर सुदर्शन जामुनका विशाल वृक्ष

धृतराष्ट्र उवाच—ये ब्राह्मणा मृदवः सत्यशीला बहुश्रुताः सर्वभूताभिरामाः।
येऽधीयते सेतिहासं पुराणं मध्वाहुत्या जुह्वति वै द्विजेभ्यः ॥ २१ ॥
तथाविधानामेष लोको महर्षे परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र।
यद्विद्यते विदितं स्थानमस्ति तद् ब्रूहि त्वं त्वरितो ह्येष यामि ॥ २२ ॥
गौतम उवाच—सुपुष्पितं किन्नरराजजुष्टं प्रियं वनं नन्दनं नारदस्य।
गन्धर्वाणामप्सरसां च शश्वत्तत्र त्वाऽहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २३ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—ये नृत्यगीते कुशला जनाः सदा ह्ययाचमानाः सहिताश्चरन्ति।
तथाविधानामेष लोको महर्षे परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ २४ ॥
गौतम उवाच—यत्रोत्तराः कुरवो भान्ति रम्या देवैः सार्धं मोदमाना नरेन्द्र।
यत्राग्नियौनाश्च वसन्ति लोका अब्योनयः पर्वतयोनयश्च ॥ २५ ॥
यत्र शक्रो वर्षति सर्वकामान्यत्र स्त्रियः कामचारा भवन्ति।
यत्र चेर्ष्या नास्ति नारीनराणां तत्र त्वाऽहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २६ ॥

विद्यमान है, उस ही स्थानमें मैं तुमसे अपना फल स्वरूप हाथी लूंगा। (२०)

धृतराष्ट्र बोले, जो ब्राह्मण मृदुस्वभाव, सत्यशील और अनेक शास्त्रोंके जाननेवाले हैं, तथा जो सब प्राणियोंके मनोहर इतिहासके सहित पुराणोंको पढा करते हैं, वा मधुआहुतिसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न करते हैं। हे महर्षि! वैसे ही लोगोंके लिये ऊपर कहे हुए लोक बने हैं, परन्तु मैं वहां न जाऊंगा। इसलिये यदि आपको मेरे योग्य कोई स्थान मालूम हो तो बताइये, मैं वहां जाऊं। (२१—२२)

गौतम बोले, सुन्दर फूलोंसे युक्त, किन्नरराजसेवित, देवर्षि नारद, गन्धर्व और अप्सराओंके लिये सदा प्रिय नन्दन नाम एक वन है, वहांपर मैं तुमसे अपना फलस्वरूप हाथी लूंगा। (२३)

धृतराष्ट्र बोले, हे महर्षि! जो मनुष्य नृत्यगीत आदि विषयोंमें निपुण, अयाचक और सदा संहतियुक्त होके विचरते हैं यह लोक वैसे ही लोगोंके लिये बना है किन्तु मैं वहां न जाऊंगा। (२४)

गौतम बोले, हे नरेन्द्र! जहांपर उत्तरकुरुदेशवासी लोग देवताओंके सङ्ग सुख भोगते हैं। जहां अग्नियोनिज, जलयोनिज और पर्वतयोनिज प्राणी निवास किया करते हैं, जहांपर इन्द्र अभिलषित विषयोंकी वर्षा करता है; जहां स्त्रियां कामचारिणी होती हैं, जहां नरनारियोंमें परस्पर ईर्षा नहीं है, उसी स्थानमें मैं तुमसे अपना हाथी लूंगा। (२५—२६)

धृतराष्ट्र उवाच- ये सर्वभूतेषु निवृत्तकामा अमांसादा न्यस्तदण्डाश्चरन्ति ।
न हिंसन्ति स्थावरं जङ्गमं च भूतानां ये सर्वभूतात्मभूताः ॥ २७ ॥
निराशिषो निर्ममा वीतरागा लाभालाभे तुल्यनिन्दाप्रशंसाः ।
तथाविधानामेष लोको महर्षे परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ २८ ॥
गौतमउवाच–ततोऽपरेभान्तिलोकाःसनातनाःसुपुण्यगन्धाविरजावीतशोकाः।
सोमस्य राज्ञः सदने महात्मनस्तत्र त्वाऽहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ २९ ॥
धृतराष्ट्र उवाच— ये दानशीलान् प्रतिगृह्णते सदा न चाप्यर्थांश्चाददते परेभ्यः ।
येषामदेयमर्हते नास्ति किञ्चित्सर्वातिथ्याः सुप्रसादा जनाश्च ॥ ३० ॥
ये क्षन्तारो नाभिजल्पन्ति चान्यान्सञ्चीभूताः सततं पुण्यशीलाः ।
तथाविधानामेष लोको महर्षे परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३१ ॥
गौतमउवाच— ततोऽपरेभान्तिलोकाःसनातनाविराजसोवितमस्काविशोकाः।
आदित्यदेवस्य पदं महात्मनस्तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ३२ ॥
धृतराष्ट्रउवाच–स्वाध्यायशीलागुरुशुश्रूषणेरतास्तपस्विनःसुव्रताःसत्यसन्धाः।

धृतराष्ट्र बोले, हे महर्षि ! जो लोग सब जीवोंके विषयमें निवृत्तकाम होके मांस भक्षण नहीं करते और न्यस्तदण्ड होके विचरते हैं,जो लोग स्थावर जङ्गम जीवोंकी हिंसा नहीं करते, जो सब जीवोंकी आत्मभूत, आशारहित, निर्मल, रागहीन, हानि, लाभ, स्तुति और निन्दाको समान जानते हैं, ऐसे ही लोगोंके लिये वह लोक बना है; किन्तु मैं वहां न जाऊंगा। (२७-२८)

गौतम बोले, उससे श्रेष्ठ, पवित्र, सुगन्धयुक्त, रजोगुण तथा शोकवर्जित सनातन लोक महात्मा सोमराजके स्थानमें शोभित हैं, वहां ही मैं तुमसे निज फलस्वरूप हाथी लूंगा। (२९)

धृतराष्ट्र बोले, हे महर्षि ! जो दान-शील मनुष्य प्रतिग्रह नहीं करते तथा दूसरेसे धन नहीं लेते, पूज्य पुरुषोंके लिये जिनके निकट कुछ भी अदेय नहीं है, जो सबका ही आतिथ्य किया करते हैं; तथा जो लोग प्रसन्न, क्षमाशील हैं और लोगोंके समीप अपने दुःखकी जल्पना नहीं करते, जीवोंके विषयमें आच्छादन स्वरूप होके सदा सबकी रक्षा किया करते हैं, तथा जो लोग पुण्यशील हैं, उन्हींके लिये यह लोक बना है; किन्तु मैं वहां न जाऊंगा। (३०—३१)

गौतम बोले,हे महात्मन् ! आदित्य-लोकमें उस ही प्रकारके रज और तमो-गुणसे रहित शोकहीन सनातन लोक सुशोभित हैं, वहां ही मैं तुमसे निज

आचार्याणामप्रतिकूलभाषिणो नित्योत्थिता गुरुकर्मस्वचोद्याः ॥ ३३ ॥
तथाविधानामेष लोको महर्षे विशुद्धानां भावितो वाग्यतानाम् ।
सत्ये स्थितानां वेदविदां महात्मनां परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३४ ॥
गौतमउवाच- ततोऽपरे भान्तिलोकाः सनातनाः सुपुण्यगन्धा विरजा विशोकाः ।
वरुणस्य राज्ञः सदने महात्मनस्तत्र त्वाऽहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ३५ ॥
धृतराष्ट्र उवाच-चातुर्मास्यैर्ये यजन्ते जनाः सदा तथेष्टीनां दशशतं प्राप्नुवन्ति
ये चाग्निहोत्रं जुह्वति श्रद्दधाना यथाऽऽम्नायं त्रीणि वर्षाणि विप्राः ॥३६॥
सुधारिणां धर्मधुरे महात्मनां यथोदिते वर्त्मनि सुस्थितानाम् ।
धर्मात्मनामुद्वहतां गतिं तां परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३७ ॥
गौतमउवाच-इन्द्रस्य लोका विरजा विशोका दुरन्वयाः काङ्क्षिता मानवानाम् ।
तस्याहं ते भवने भूरितेजसो राजन्निमं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ३८ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—शतवर्षजीवी यश्च शूरो मनुष्यो वेदाध्यायी यश्च यज्वाऽप्रमत्तः ।

फलस्वरूप हाथी लूंगा। (३२)

धृतराष्ट्र बोले, हे महर्षि ! जो लोग स्वाध्यायशील, गुरुसेवामें रत, तपस्वी, उत्तमव्रती, सत्यसन्ध, आचार्यके विषय में अनुकूल वचन कहनेवाले, सदा उद्योगी और गुरुके कार्यमें सर्वदा स्वयं प्रवृत्त रहते हैं, वैसेही वाग्यत तथा सत्यमें स्थित महात्माओंके लिये यह लोक विहित हुआ है ; किन्तु मैं वहां न जाऊंगा। (३३-३४)

गौतम बोले, हे महात्मन् ! उसके अतिरिक्त और भी सनातन लोक वरुणराजके स्थानमें विराजमान हैं, वे लोक पवित्र, सुगन्धयुक्त, रजोगुणसे रहित और शोकहीन हैं ; उसही स्थान में मैं तुमसे अपना हाथी लूंगा। (३५)

धृतराष्ट्र बोले, जो मनुष्य सदा चातुर्मास्य याग किया करते हैं, जो लोग दस सौ यज्ञका फल पाते हैं ; जो मनुष्य यथासमयमें स्नान करके श्रद्धापूर्वक तीन वर्ष अग्निहोत्रमें होम करते हैं, जो धर्मात्मा पुरुष धर्मभार उठानेके लिये उत्तम रीतिसे अपनी रक्षा किया करते हैं, जो लोग शास्त्रोक्त मार्गमें निवास करते हैं, उन्हीं महात्माओंको उक्त लोकमें गति प्राप्त होती है ; किन्तु मैं वहां न जाऊंगा। (३६-३७)

गौतम बोले, इन्द्रलोक रजोगुणसे रहित, शोकहीन, दुरत्यय और मनुष्यों को अभिलषित है। हे महाराज ! मैं अत्यन्त तेजसे युक्त इन्द्रलोकमें तुमसे अपना हाथी लूंगा। (३८)

धृतराष्ट्र बोले, जो शूर मनुष्य एक सौ वर्षतक जीवित रहके अप्रमत्त होकर

एते सर्वे शक्रलोकं व्रजन्ति परं गन्ता धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ३९ ॥
गौतम उवाच—प्राजापत्याःसन्तिलोकामहान्तोनाकस्यपृष्ठेपुष्कलावीतशोका।
मनीषिताः सर्वलोकोद्भवानां तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ४० ॥
धृतराष्ट्र उवाच- ये राजानो राजसूयाभिषिक्ता धर्मात्मानो रक्षितारः प्रजानाम्।
ये चाश्वमेधावभृथे प्लुताङ्गास्तेषां लोका धृतराष्ट्रो न तत्र ॥ ४१ ॥
गौतमउवाच-ततःपरंभान्तिलोकाःसनातनाःसुपुण्यगन्धाविरजावीतशोकाः।
तस्मिन्नहं दुर्लभे चाप्यधृष्ये गवां लोके हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ४२ ॥
धृतराष्ट्र उवाच-योगो सहस्रीशतदःसमांसमां गवां शती दश दद्याच्च शक्त्या।
तथा दशभ्यो यश्च दद्यादिहैकां पञ्चभ्यो वा दानशीलस्तथैकाम् ॥ ४३ ॥
ये जीर्यन्ते ब्रह्मचर्येण विप्रा ब्राह्मीं वाचं परिरक्षन्ति चैव ।
मनस्विनस्तीर्थयात्रापरायणास्ते तत्र मोदन्ति गवां निवासे ॥ ४४ ॥
प्रभासं मानसं तीर्थं पुष्कराणि महत्सरः ।
पुण्यं च नैमिषं तीर्थं बाहुदां करतोयिनीम् ॥ ४५ ॥

वेद पढते तथा यज्ञ करते हैं,वेही इन्द्र-लोकमें जाते हैं, किन्तु मैं वहांपर न जाऊंगा । (३९)

गौतम बोले, स्वर्गके ऊपर शोकहीन महत् पुष्कल प्राजापत्य लोक वर्त्तमान हैं, वह सबको ही अभिलषित है ; इस लिये मैं उस ही स्थानमें तुमसे यह हाथी लूंगा । (४०)

धृतराष्ट्र बोले, जो राजा राजसूय यज्ञमें अभिषिक्त हुए हैं, जो धर्मात्मा प्रजाके रक्षक हैं, तथा जिन्होंने अश्व-मेध यज्ञमें अवभृत स्नान किये हैं, उन्हीं लोगोंके निमित्त प्राजापत्य लोक विहित है ; किन्तु मैं वहां न जाऊंगा । (४१)

गौतम बोले, इससे पवित्र, सुगन्ध-युक्त,रजोगुणसे रहित, शोकहीन,सनातन गोलोक शोभित होरहा है, उस दुर्लभ अधर्षणीय गोलोकमें मैं तुमसे अपना हाथी लूंगा । (४२)

धृतराष्ट्र बोले, जो दानशील मनुष्य प्रतिवर्षमें एक लाख गऊ दान करते हैं, तथा जो लोग शक्तिके अनुसार एक हजार गोदान करते अथवा जो लोग इस लोकमें दश पुरुषोंको एक गऊ देते हैं, वा पांच पुरुषोंको एक गऊ दान किया करते हैं, तथा जो ब्रह्मचर्य व्रत करते हुए बूढे होते हैं, जो लोग सब भांतिसे वेदवाक्यकी रक्षा करते हैं, वे सब तीर्थयात्रा करनेवाले मनस्वी पुरुष गोलोकमें सस्त्रीक होके निवास किया करते हैं । प्रभास, मानस तीर्थ, पुष्कर,

गयां गयशिरश्चैव विपाशां स्थूलवालुकाम् ।
कृष्णां गङ्गां पञ्चनदं महाह्रदमथापि च ॥ ४६ ॥
गोमतीं कौशिकीं पम्पां महात्मानो धृतव्रताः ।
सरस्वतीदृषद्वत्यौ यमुनां ये तु यान्ति च ॥ ४७ ॥
तत्र ते दिव्यसंस्थाना दिव्यमाल्यधराः शिवाः ।
प्रयान्ति पुण्यगन्धाढ्या धृतराष्ट्रो न तत्र वै ॥ ४८ ॥
गौतम उवाच- यत्र शीतभयं नास्ति न चोष्णभयमण्वपि ।
न क्षुत्पिपासे न ग्लानिर्न दुःखं न सुखं तथा ॥ ४९ ॥
न द्वेष्यो न प्रियः कश्चिन्न बंधुर्न रिपुस्तथा ।
न जरामरणे तत्र न पुण्यं न च पातकम् ॥ ५० ॥
तस्मिन्विरजसि स्फीते प्रज्ञासत्त्वव्यवस्थिते ।
स्वयंभुभवने पुण्ये हस्तिनं मे प्रदास्यसि ॥ ५१ ॥
धृतराष्ट्र उवाच- निर्मुक्ताः सर्वसङ्गैर्ये कृतात्मानो यतव्रताः ।
अध्यात्मयोगसंस्थानैर्युक्ताः स्वर्गगतिं गताः ॥ ५२ ॥
ते ब्रह्मभवनं पुण्यं प्राप्नुवन्तीह सात्त्विकाः ।
न तत्र धृतराष्ट्रस्ते शक्यो द्रष्टुं महामुने ॥ ५३ ॥

महत् सरोवर, पवित्र नैमिष तीर्थ, बाहुदा, करतोया, गङ्गा, गयाशिरा, विपाशा, स्थूलवालुका, कृष्णा, गङ्गा, पंचनद, महाह्रद, गोमती, कौशिकी, पम्पा, सरस्वती, दृषद्वती और यमुना तीर्थमें जो सब व्रत करनेवाले महानुभाव मनुष्य जाके स्नान करते हैं, वेही गोलोकमें दिव्य शरीर धारण करके दिव्य मालासे विभूषित और पवित्र गन्धसे युक्त होके निवास करते हैं ; किन्तु मैं वहां न जाऊंगा। (४३—४८)

गौतम बोले, जिस स्थानमें सर्दी और गर्मीका कुछ भी भय नहीं है, जहां भूख प्यासकी ग्लानि और सुख दुःख नहीं होता, जहांपर कोई शत्रु, मित्र, बन्धु, द्वेषी वा प्रिय नहीं है ; जहांपर जरा मृत्यु और पुण्य-पाप कुछ भी नहीं है, उस रजोगुणसे रहित निर्मल प्रज्ञानसत्वमें स्थित पवित्र स्वयंभूके स्थानमें तुम मुझे हाथी प्रदान करोगे। (४९—५१)

धृतराष्ट्र बोले, जो लोग सर्वसङ्ग-रहित, कृतकृत्य, यतव्रती, अध्यात्म-योग स्थापन करनेमें नियुक्त रहके स्वर्गमें गये हैं, वेही सत्त्वगुणसे युक्त पुरुष पवित्र ब्रह्मस्थानमें गमन किया

गौतम उवाच-रथन्तरं यत्र बृहच्च गीयते यत्र वेदी पुण्डरीकैस्तृणोति ।
यत्रोपयाति हरिभिः सोमपीथी तत्र त्वाहं हस्तिनं यातयिष्ये ॥ ५४ ॥
बुध्यामि त्वां वृत्रहणं शतक्रतुं व्यतिक्रमन्तं भुवनानि विश्वा ।
कच्चिन्न वाचा वृजिनं कदाचिदकार्षं ते मनसोऽभिषङ्गात् ॥ ५५ ॥
शतक्रतुरुवाच-मघवाहं लोकपथं प्रजानामन्वागमं परिवादे गजस्य ।
तस्माद्भवान्प्रणतं माऽनुशास्तु ब्रवीषि यत्तत्करवाणि सर्वम् ॥ ५६ ॥
गौतम उवाच-श्वेतं करेणुं मम पुत्रं हि नागं यं मेऽहार्षीर्दश वर्षाणि बालम् ।
यो मे वने वसतोऽभूद् द्वितीयस्तमेव मे देहि सुरेन्द्र नागम् ॥ ५७ ॥
शतक्रतुरुवाच-अयं सुतस्ते द्विजमुख्य नाग आगच्छति त्वामभिवीक्षमाणः ।
पादौ च ते नासिकयोपजिघ्रते श्रेयो ममाध्याहि नमश्च तेऽस्तु ॥५८॥
गौतम उवाच- शिवं सदैवेह सुरेन्द्र तुभ्यं ध्यायामि पूजां च सदा प्रयुञ्जे ।
ममापि त्वं शक्र शिवं ददस्व त्वया दत्तं प्रतिगृह्णामि नागम् ॥ ५९ ॥

करते हैं । हे महामुनि ! वहांपर आप मुझे न देखेंगे । (५२—५३)

गौतम बोले, जहांपर बृहत् रथन्तर सामवेद गाया जाता है, जहां सफेद सरसिजके द्वारा सब वेदी शोभित हैं, जहांपर लोग घोडेके सहारे इन्द्रलोकमें गमन किया करते हैं, वहांपर मैं तुमसे अपना हाथी लूंगा । मैं यह जानता हूं, कि तुम वृत्रहन्ता शतक्रतु इन्द्र सब लोकोंमें विचरते हो । मैंने मनके पराभववश कदापि वचनके सहारे तुम्हारा कुछ अपराध तो नहीं किया है ? (५४—५५)

इन्द्र बोले, मैं देवराज हूं, हाथीके अपवाद विषयमें प्रजासमूहके मार्गका अनुगमन किया है; इसलिये मैं प्रणत होता हूं; कहिये आपकी क्या आज्ञा है ? आप जो कहेंगे मैं वह सब कार्य पूर्ण करूंगा (५६)

गौतम बोले, हे सुरेन्द्र ! मेरा श्वेतवर्ण दशवर्षीय बालक पुत्रस्वरूप जिस हाथीको तुमने हर लिया है, मेरे अकेले वनमें वास करनेपर जो हाथी द्वितीय हुआ था, आप मुझे वही हाथी दीजिये । (५७)

इन्द्र बोले, हे द्विजवर ! वह तुम्हारा पुत्र स्वरूप हाथी तुम्हें देखकर आ रहा है, अपने सूण्डसे तुम्हारे दोनों चरण सूंघता है । मैं आपको प्रणाम करता हूं, इसलिये मेरे कल्याणके लिये चिन्ता करिये । (५८)

गौतम बोले, हे सुरेन्द्र ! मैं सदा ही तुम्हारे कल्याणकी चिन्ता करता तथा सर्वदा तुम्हारी पूजा किया करता

शतक्रतुरुवाच-येषां वेदा निहिता वै गुहायां मनीषिणां सत्यवतां महात्मनाम्।
तेषां त्वयैकेन महात्मनाऽसि वृद्धस्तस्मात्प्रीतिमांस्तेऽहमद्य ॥ ६० ॥
हन्तैहि ब्राह्मण क्षिप्रं सह पुत्रेण हस्तिना।
त्वं हि प्राप्तुं शुभांल्लोकानह्राय च चिराय च ॥ ६१ ॥
स गौतमं पुरस्कृत्य सह पुत्रेण हस्तिना।
दिवमाचक्रमे वज्री सद्भिः सह दुरासदम् ॥ ६२ ॥
इदं यः शृणुयान्नित्यं यः पठेद्वा जितेन्द्रियः।
स याति ब्रह्मणो लोकं ब्राह्मणो गौतमो यथा ॥ ६३॥[४८४२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे हस्तिकूटो नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

युधिष्ठिर उवाच- दानं बहुविधाकारं शान्तिः सत्यमहिंसितम्।
स्वदारतुष्टिश्चोक्ता ते फलं दानस्य चैव यत् ॥ १ ॥
पितामहस्य विदितं किमन्यत्तपसो बलात्।
तपसो यत्परं तेऽद्य तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥
भीष्म उवाच-तपः प्रचक्षते यावत्तावल्लोको युधिष्ठिर।

हूं। हे देवराज! आप भी मेरा कल्याण करिये, आपका दिया हुआ हाथी प्रतिग्रह करता हूं। (५९)

इन्द्र बोले, जिन सत्यवादी महानुभाव मनीषियोंके हृदयाकाशमें वेद स्थित है, उनके बीच आप ही एक मात्र महानुभाव हैं, तुम्हारे द्वारा सावधान होनेसे इस समय मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं। हे विप्रवर! आप निज पुत्र कुञ्जरके सहित सदाके लिये शुभ लोक पानेके निमित्त शीघ्र ही चलिये। वज्रधारी इन्द्र पुत्रस्वरूप हाथीके सहित गौतमको सङ्ग लेकर साधुओंके दुरासद सुरलोकमें गये। जो लोग जितेन्द्रिय होके सदा इस कथाको सुनते वा पढते हैं, वे गौतम ब्राह्मणकी भांति ब्रह्मलोकमें गमन किया करते हैं। (६०—६३)

अनुशासनपर्वमें १०२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १०३ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने अनेक प्रकारके दानके विषय, शान्ति, सत्य, अहिंसा और निज स्त्रीमें सन्तुष्टि तथा दान करनेसे जो फल होते हैं, उन्हें वर्णन किया; तपोबलके अतिरिक्त और दूसरा आपको क्या विदित है? तपस्यासे श्रेष्ठ दूसरा क्या है? उसे आप वर्णन करिये। (१—२)

मतं ममात्र कौन्तेय तपो नानशनात्परम् ॥ ३ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
भगीरथस्य संवादं ब्रह्मणश्च महात्मनः ॥ ४ ॥
अतीत्य सुरलोकं च गवां लोकं च भारत ।
ऋषिलोकं च सोऽगच्छद्भगीरथ इति श्रुतम् ॥ ५ ॥
तं तु दृष्ट्वा वचः प्राह ब्रह्मा राजन्भगीरथम् ।
कथं भगीरथागारस्त्वमिमं लोकं दुरासदम् ॥ ६ ॥
न हि देवा न गन्धर्वा न मनुष्या भगीरथ ।
आयान्त्यतप्ततपसः कथं वै त्वमिहागतः ॥ ७ ॥

भगीरथ उवाच–निष्काणां वै ह्यददं ब्राह्मणेभ्यः शतं सहस्राणि सदैव दानम् ।
ब्राह्मं व्रतं नित्यमास्थाय विद्धि न त्वेवाहं तस्य फलादिहागाम् ॥ ८ ॥
दशैकरात्रान्दश पञ्चरात्रानेकादशैकादशकान् क्रतूंश्च ।
ज्योतिष्टोमानां च शतं यदिष्टं फलेन तेनापि च नागतोऽहम् ॥ ९ ॥
यच्चावसं जाह्नवीतीरनित्यः शतं समास्तप्यमानस्तपोऽहम् ।
अदां च तत्राश्वतरीसहस्रं नारीपुरं न च तेनाहमागाम् ॥ १० ॥

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर! जबतक तपस्याकी कथा कही जाती है, तबतक लोक विधृत रहते हैं, मेरा यह मत है, कि अनशनसे बढके दूसरी तपस्या और कुछ भी नहीं है। प्राचीन लोग इस विषयमें ब्रह्मा और भगीरथके संवादयुक्त यह पुरातन इतिहास कहा करते हैं। हे भारत! मैंने सुना है, कि भगीरथ सुरलोक और गोलोकको अतिक्रम करके ऋषिलोकमें गये। ब्रह्माने उस भगीरथको देखके यह वचन कहा, हे भगीरथ! तुमने किस प्रकार इस दुरासद लोकमें आगमन किया? हे भगीरथ! देव, गन्धर्व और मनुष्यगण विना तपस्या किये इस स्थानमें आनेमें समर्थ नहीं होते; इसलिये तुम किस प्रकार आये? । (३-७)

भगीरथ बोले, हे विद्वन्! मैंने सदा ब्राह्मव्रत अवलम्बन करके सौ हजार निष्क, एक सौ आठ पलके परिमित सुवर्ण दान किया था, उसके फलसे इस स्थानमें नहीं आया हूं। एक रात्रिमें, दश तथा पांच रात्रिसाध्य दश यज्ञ और ग्यारह रात्रिमें सिद्ध होनेवाले ग्यारह यज्ञ तथा एक सौ ज्योतिष्टोम यज्ञ किया था, उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। मैंने जो एक सौ वर्षतक तपस्या करते सदा गङ्गाके

दशायुतानि चाश्वानां गोयुतानि च विंशतिम् ।
पुष्करेषु द्विजातिभ्यः प्रादां शतसहस्रशः ॥ ११ ॥
सुवर्णचन्द्रोत्तमधारिणीनां कन्योत्तमानामददं सहस्रम् ।
षष्टिं सहस्राणि विभूषितानां जाम्बूनदैराभरणैर्न तेन ॥ १२ ॥
दशार्बुदान्यददं गोसवेज्यास्वेकैकशो दश गा लोकनाथ ।
समावत्साः पयसा समन्विताः सुवर्णकांस्योपदुहा न तेन ॥ १३ ॥
आप्तोर्यामेषु नियतमेकैकस्मिन्दशाददम् ।
गृष्टीनां क्षीरदात्रीणां रोहिणीनां शतानि च ॥ १४ ॥
दोग्ध्रीणां वै गवां चापि प्रयुतानि दशैव ह ।
प्रादां दशगुणं ब्रह्मन्न तेनाहमिहागतः ॥ १५ ॥
वाजिनां बाह्लिजातानामयुतान्यददं दश ।
कर्कानां हेममालानां न च तेनाहमागतः ॥ १६ ॥
कोटीश्च काञ्चनस्याष्टौ प्रादां ब्रह्मन्दशान्वहम् ।
एकैकस्मिन् क्रतौ तेन फलेनाहं न चागतः ॥ १७ ॥

तटपर निवास किया था, और उस ही स्थानमें एक हजार अश्वतरी तथा कन्याभवन प्रदान किये थे, उसके फलसे इस स्थानमें नहीं आया हूं। पुष्कर तीर्थमें द्विजातियोंको दश अयुत घोडे और बीस अयुत गोदान किया था; चन्द्रमाकी भांति सफेद सुवर्णके आभूषण धारण करनेवाली साठ हजार उत्तम कन्यां दान की थी, उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। (८-१२)

हे लोकनाथ! मैंने प्रति गोसव यज्ञमें एक एक ब्राह्मणको दश दश गऊ दान करते हुए बछडेयुक्त, दूधवाली, सुवर्णमय दोहनपात्रसे युक्त दश अर्बुद गऊ दान की है, उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। सोमयागमें प्रत्येक ब्राह्मणको उत्तम व्यायी हुई, दूध देनेवाली रोहिणी गऊ दान करते हुए सेकडों तथा सहस्रों गऊ दान की है। हे ब्रह्मन्! अन्तमें मैंने हर एक ब्राह्मणको एक एक सौ गऊ दान की थी, उसके फलसे यहांपर नहीं आया हूं। दश अयुत सुवर्ण मालायुक्त श्वेतवर्ण बाह्लिज घोडे दान किये हैं, उसके फलसे भी मैं इस स्थानमें नहीं आया हूं। हे ब्रह्मन्! एक एक यज्ञमें प्रतिदिन अठारह करोड स्वर्णमुद्रा दान किया है, उसके फलसे यहां नहीं आया। (१३-१७)

वाजिनां श्यामकर्णानां हरितानां पितामह ।
प्रादां हेमस्रजां ब्रह्मन्कोटीर्दश च सप्त च ॥ १८ ॥
ईषादन्तान्महाकायान्काञ्चनस्रग्विभूषितान् ।
पद्मिनो वै सहस्राणि प्रादां दश च सप्त च ॥ १९ ॥
अलंकृतानां देवेश दिव्यैः कनकभूषणैः ।
रथानां काञ्चनाङ्गानां सहस्राण्यददं दश ॥ २० ॥
सप्त चान्यानि युक्तानि वाजिभिः समलंकृतैः ।
दक्षिणावयवाः केचिद्वेदैर्ये संप्रकीर्तिताः ॥ २१ ॥
वाजपेयेषु दशसु प्रादां तेष्वपि चाप्यहम् ।
शक्रतुल्यप्रभावाणामिज्यया विक्रमेण ह ॥ २२ ॥
सहस्रं निष्ककण्ठानामददं दक्षिणामहम् ।
विजित्य भूपतीन्सर्वानर्थैरिष्ट्वा पितामह ॥ २३ ॥
अष्टभ्यो राजसूयेभ्यो न च तेनाहमागतः ।
स्रोतश्च यावद्गङ्गायाश्छन्नमासीज्जगत्पते ॥ २४ ॥
दक्षिणाभिः प्रवृत्ताभिर्मम नागां च तत्कृते ।
वाजिनां च सहस्रे द्वे सुवर्णशतभूषिते ॥ २५ ॥
वरं ग्रामशतं चाहमेकैकस्य त्रिधाऽददम् ।

हे पितामह ! हे ब्रह्मन् ! मैंने काले हरे रङ्गवाले स्वर्णमालायुक्त सत्तरह करोड घोडे और ईखसदृश दांतयुक्त बडे शरीरवाले, सोनेकी मालासे विभूषित सत्तरह हजार हाथी दिये हैं। हे देवेश ! सोनेके दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत सुवर्णखचित दश हजार रथ दान किये हैं और वेदमें जो दक्षिणाके अङ्गरूपसे वर्णित हुए हैं, वैसे ही अलंकृत घोडोंसे युक्त सात हजार रथ ब्राह्मणोंको दान दिये हैं, दस बार वाजपेय यज्ञमें पूर्वोक्त रथादि दिये गये हैं। यज्ञ और विक्रमके सहारे इन्द्रके सदृश प्रभावयुक्त, सोनेकी मुहर गलेमें पहरनेवाले एक हजार राजाओंको दक्षिणामें दान दिया है। हे पितामह ! मैं सब राजाओंको जीतके आठ राजसूय यज्ञ किये थे, उस हेतुसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। (१८-२४)

हे जगत्पति ! मेरी दी हुई दक्षिणासे गङ्गाके सब स्रोत परिपूरित होगये थे, उस कारणसे भी मैं इस स्थानमें नहीं आया हूं। एक एक सौ स्वर्णमुद्रा-भूषित दो दो हजार घोडे और एक

तपस्वी नियताहारः शममास्थाय वाग्यतः ॥ २६ ॥
दीर्घकालं हिमवति गङ्गायाश्च दुरुत्सहाम् ।
मूर्ध्ना धारां महादेवः शिरसा याममधारयत् ।
न तेनाप्यहमागच्छं फलेनेह पितामह ॥ २७ ॥
शम्याक्षेपैरयजं यच्च देवान्साद्यस्कानामयुतैश्चापि यत्तत् ।
त्रयोदशद्वादशाहैश्च देव सपौण्डरीकान्न च तेषां फलेन ॥ २८ ॥
अष्टौ सहस्राणि ककुद्मिनामहं शुक्लर्षभाणामददं द्विजेभ्यः ।
एकैकं वै काञ्चनं शृङ्गमेभ्यः पत्नीश्चैषामददं निष्ककण्ठीः॥२९॥
हिरण्यरत्ननिचयानददं रत्नपर्वतान् ।
धनधान्यैः समृद्धांश्च ग्रामाश्चान्ये सहस्रशः ॥ ३० ॥
शतं शतानां गृष्टीनामददं चाप्यतन्द्रितः ।
इष्ट्वाऽनेकैर्महायज्ञैर्ब्राह्मणेभ्यो न तेन च ॥ ३१ ॥
एकादशाहैरयजं सदक्षिणैर्द्विर्द्वादशाहैरश्वमेधैश्च देव ।

एक सौ उत्तम गांव मैंने हर एक ब्राह्मणको तीन बार दान किये थे, मैंने शान्ति अवलम्बन करके वाग्यत, नियताहारी और तपस्वी होके हिमालयमें बहुत दिनोंतक गङ्गाकी उस दुरुत्सह धाराको धारण किया था, जिसे महादेवने सिरपर रक्खा; हे पितामह ! मैं उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं नहीं आया हूं। (२४—२७)

पृथुवृध्न अर्थात् स्थूल और गोलाकार काष्ठदण्ड बलवान् पुरुषके द्वारा फेंके जानेपर जितनी दूरमें गिरता है, जिस यज्ञमें उतने ही परिमाणसे वेदी हुआ करती है, उसे शम्याक्षेप यज्ञ कहते हैं। हे देव ! मैं उस ही शम्याक्षेप यज्ञ, पुण्डरीक और साद्यस्क नाम अयुत यज्ञ तथा बारह वा तेरह दिनोंमें पूर्ण होनेवाले यज्ञोंसे देवताओंकी पूजा की थी; उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। (२८)

मैं हर एक ब्राह्मणको आठ हजार ककुद्मी, सोनेके सींगसे युक्त सफेद वृषभ दान किये हैं और उन्हें मुहरके कण्ठेसे युक्त गऊ भी प्रदान की है। सुवर्ण, रत्न, रत्नोंके पर्वत और धनधान्यसे युक्त एक एक हजार गांव दान किये हैं। निरालसी होके बहुतेरे महायज्ञोंमें देवताओंकी पूजा करके ब्राह्मणोंको एक एक सौ उत्तम ब्यायी हुई गऊ दान किया है; उसके फलसे भी यहां नहीं आया हूं। हे देव ! मैंने ग्यारह दिनमें दक्षिणायुक्त अश्वमेध यज्ञ किया और

आकांयणैः षोडशभिश्च ब्रह्मंस्तेषां फलेनेह न चागतोऽस्मि ॥३२॥
निष्कैककण्ठमददं योजनाय तं तद्विस्तीर्णं काञ्चनपादपानाम् ।
वनं घृतानां रत्नविभूषितानां न चैव तेषामागतोऽहं फलेन ॥३३॥
तुरायणं हि व्रतमप्यधृष्यमक्रोधनोऽकरवं त्रिंशतोऽब्दान् ।
शतं गवामष्टशतानि चैव दिने दिने ह्यददं ब्राह्मणेभ्यः ॥ ३४ ॥
पयस्विनीनामथ रोहिणीनां तथैवान्याननडुहो लोकनाथ ।
प्रादां नित्यं ब्राह्मणेभ्यः सुरेश नेहागतस्तेन फलेन चाहम् ॥३५॥
त्रिंशदग्नीनहं ब्रह्मन्नयजं यच्च नित्यदा ।
अष्टाभिः सर्वमेधैश्च नरमेधैश्च सप्तभिः ॥ ३६ ॥
दशभिर्विश्वजिद्भिश्च शतैरष्टादशोत्तरैः ।
न चैव तेषां देवेश फलेनाहमिहागमम् ॥ ३७ ॥
सरय्वां बाहुदायां च गङ्गायामथ नैमिषे ।
गवां शतानामयुतमददं न च तेन वै ॥ ३८ ॥
इन्द्रेण गुह्यं निहितं वै गुहायां यद्भार्गवस्तपसेहाभ्यविन्दत् ।
जाज्वल्यमानमुशनस्तेजसेह तत्साधयामासमहं वरेण्य ॥ ३९ ॥

दो वार बारह दिनमें अश्वमेध यज्ञ तथा सोलह बार आकांयण नाम यज्ञ किया है। हे ब्रह्मन् ! इनके फलसे भी मैं इस स्थानमें नहीं आया हूं। (२९–३२)

एक योजन लम्बा अत्यन्त चौडा रत्नविभूषित सुवर्णमय वृक्षोंसे युक्त वन दान किया है; उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। तीस वर्षतक क्रोधहीन रहके अनभिभवनीय उत्तरायणव्रत किया है, प्रतिदिन ब्राह्मणोंको नव सौ गोदान किया है। हे लोकनाथ सुरेश ! मैंने सदा ब्राह्मणोंको बैल और दूध देनेवाली गऊ प्रदान की है; उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। हे ब्रह्मन् ! मैं सदा अग्निहोत्र करते हुए तीस वर्षतक निवास किया है। आठ सर्वमेध, सात नरमेध, एक हजार अठारह विश्वजित् यज्ञ किया है। हे देवेश ! उसके फलसे भी मैं इस स्थानमें नहीं आया हूं। सरयू, बाहुदा, गङ्गा और नैमिषक्षेत्रमें सौ अयुत गौ दान किया है; उसके फलसे भी इस स्थानमें नहीं आया हूं। (३३–३८)

हे वरेण्य ! इन्द्रके हृदयाकाशमें तपस्याके द्वारा प्रवेश करके शुक्रने जो कुछ प्राप्त किया था, शुक्रके तेजसे जो इस लोकमें प्रकाशित है, मैंने उसे सिद्ध

ततो मे ब्राह्मणास्तुष्टास्तस्मिन्कर्मणि साधिते।
सहस्रमृषयश्चासन्ये वै तत्र समागताः ॥ ४० ॥
उक्तस्तैरस्मि गच्छ त्वं ब्रह्मलोकमिति प्रभो।
प्रीतेनोक्तः सहस्रेण ब्राह्मणानामहं प्रभो।
इमं लोकमनुप्राप्तो मा भूत्तेऽत्र विचारणा ॥ ४१ ॥
कामं यथावद्विहितं विधात्रा पृष्टेन वाच्यं तु मया यथावत्।
तपो हि नान्यच्चानशनान्मतं मे नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ॥४२॥
भीष्म उवाच— इत्युक्तवन्तं ब्रह्मा तु राजानं स भगीरथम्।
पूजयामास पूजार्हं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ४३ ॥
तस्मादनशनैर्युक्तो विप्रान्पूजय नित्यदा।
विप्राणां वचनात्सर्वं परत्रेह च सिध्यति ॥ ४४ ॥
वासोभिरन्नैर्गोभिश्च शुभैर्नैवेशिकैरपि।
शुभैः सुरगणैश्चापि तोष्या एव द्विजास्तथा।
एतदेव परं गुह्यमलोभेन समाचर ॥ ४५ ॥ [४८८७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ब्रह्मभगीरथसंवादे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

किया है, मेरे द्वारा वह कार्य सिद्ध होनेपर ब्राह्मण लोग मुझपर सन्तुष्ट हुए थे और उस ही स्थानमें एक हजार ऋषि इकट्ठे हुए थे। हे प्रभु! वे लोग मुझसे बोले, 'तुम ब्रह्मलोकमें जाओ।' एक हजार ब्राह्मणोंने प्रसन्न होके मुझसे ऐसा ही कहा है, इस ही निमित्त मैं इस स्थानमें आया हूं। इसलिये आप इस विषयकी चर्चा न करिये। हे सुरश्रेष्ठ! विधाताने जिसका विधिपूर्वक विधान किया है और मुझसे पूछा है, कि मुझे भी यथारीतिसे कहना योग्य है। मेरा यही मत है, कि उपवाससे बढके दूसरी कोई तपस्या श्रेष्ठ नहीं है। हे देव! मैं आपको प्रणाम करता हूं, आप मुझपर प्रसन्न होइये। (३९-४२)

भीष्म बोले, जब राजा भगीरथने यह सब कथा कही, तब प्रजापति ब्रह्माने विधिविहित कार्यसे उस पूजने योग्य राजाकी पूजा की। इसलिये तुम अनशन व्रत अवलम्बन करके प्रतिदिन ब्राह्मणोंकी पूजा करो, ब्राह्मणोंके वचनसे इस लोकमें सब कामना सिद्ध होती हैं। वस्त्र, अन्न, गऊ और शुभस्थानके सहारे ब्राह्मण लोग देवताओंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं, इसलिये लोभरहित होके

युधिष्ठिर उवाच–शतायुरुक्तः पुरुषः शतवीर्यश्च जायते ।
कस्मान्म्रियन्ते पुरुषा बाला अपि पितामह ॥ १ ॥
आयुष्मान्केन भवति अल्पायुर्वाऽपि मानवः ।
केन वा लभते कीर्तिं येन वा लभते श्रियम् ॥ २ ॥
तपसा ब्रह्मचर्येण जपहोमैस्तथौषधैः ।
कर्मणा मनसा वाचा तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच– अत्र तेऽहं प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वमनुपृच्छसि ।
अल्पायुर्येन भवति दीर्घायुर्वाऽपि मानवः ॥ ४ ॥
येन वा लभते कीर्तिं येन वा लभते श्रियम् ।
यथा वर्तयन्पुरुषः श्रेयसा संप्रयुज्यते ॥ ५ ॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम् ।
आचारात्कीर्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च ॥ ६ ॥
दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत् ।
त्रसन्ति यस्माद्भूतानि तथा परिभवन्ति च ॥ ७ ॥

इस परम गोपनीय विषयका अनुष्ठान करो । (४३--४५)

अनुशासनपर्वमें १०३ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १०४ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! पुरुष शतायु तथा शतवीर्य होके जन्मता है, परन्तु बाल्य अवस्थामें भी मनुष्य किस कारणसे मृत्युके मुखमें पडता है ? किस प्रकार मनुष्य आयुष्मान् हुआ करता है और किसलिये अल्पायु होता है ? किस भांति कीर्ति प्राप्त होती है और कैसे लक्ष्मी मिलती है ? तपस्या, ब्रह्मचर्य, जप, होम, औषध, कर्म, मन और वचन, इन सबके बीच किस कारणसे ऊपर कहे हुए कार्य हो सकते हैं ? हे पितामह ! मेरे समीप आप यही विषय वर्णन करिये । (१–३)

भीष्म बोले, तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है अर्थात् मनुष्य जिस प्रकार अल्पायु तथा दीर्घायु हुआ करता है, जिस भांति कीर्त्तिमान और लक्ष्मीयुक्त होता है तथा जिस प्रकार रहनेसे पुरुषका कल्याण होता है, वह विषय तुमसे कहता हूं । आचारसे ही पुरुषकी आयु बढती है, आचारहीसे लक्ष्मीयुक्त होता है और आचारसे ही इस लोक तथा परलोकमें कीर्त्ति प्राप्त होती है । दुराचारी मनुष्यको इस लोकमें दीर्घायु नहीं मिलती; जिससे जीवोंको भय तथा परिभव प्राप्त

तस्मात्कुर्यादिहाचारं यदिच्छेद्भूतिमात्मनः।
अपि पापशरीरस्य आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ८ ॥
आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चारित्रलक्षणाः।
साधूनां च यथा वृत्तमेतदाचारलक्षणम् ॥ ९ ॥
अप्यदृष्टं श्रवादेव पुरुषं धर्मचारिणम्।
भूतिकर्माणि कुर्वाणं तं जनाः कुर्वते प्रियम् ॥ १० ॥
ये नास्तिका निष्क्रियाश्च गुरुशास्त्राभिलङ्घिनः।
अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्ति गतायुषः ॥ ११ ॥
विशीला भिन्नमर्यादा नित्यं संकीर्णमैथुनाः।
अल्पायुषो भवन्तीह नरा निरयगामिनः ॥ १२ ॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि समुदाचारवान्नरः।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ १३ ॥
अक्रोधनः सत्यवादी भूतानामविहिंसकः।
अनसूयुरजिह्मश्च शतं वर्षाणि जीवति ॥ १४ ॥
लोष्टमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः।

होती है, उसे ही महान् दुराचारी कहा जाता है; इस ही लिये यदि पुरुष अपने हितकी अभिलाष करे, तो इस लोकमें सदाचरण करे, सदाचरण पाप-युक्त शरीरका भी कुलक्षण हर लेता है। (४—८)

आचार, लक्षण, धर्म और चरित्रसे साधु लोग जाने जाते हैं; साधुओंका चरित्र ही आचारका लक्षण है। सत्कर्म करनेवाले धर्मचारी पुरुषोंको विना देखे ही लोक समाजमें सब कोई उनका नाम सुनते हैं, उन्हें प्रिय समझते हैं। जो लोग नास्तिक, क्रियारहित, गुरु और शास्त्रका वाक्य उल्लङ्घन करते हैं, जो अधर्मी तथा दुराचारी हैं, वेही गतायु होते हैं। जो लोग दुःशील, मर्यादा तोडनेवाले, सदा सङ्कीर्णताके सहित मैथुन करते हैं, वे इस लोकमें अल्पायु होके मरनेके अनन्तर नरकमें गमन करते हैं, जो मनुष्य सब लक्षणोंसे रहित होके भी सदाचारी होता है, जो श्रद्धावान् और असूयारहित है, वह एक सौ वर्षतक जीवित रहता है। (९—१३)

जो अक्रोधी, सत्यवादी, जीवोंकी हिंसा न करनेवाला, अनसूयु और कपटरहित है, वह एक सौ वर्षतक जीवित रहता है। जो मनुष्य ढेलोंको

नित्योच्छिष्टः संकुसुको नेहायुर्विन्दते महत् ॥ १५ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
उत्थायाचम्य तिष्ठेत पूर्वां सन्ध्यां कृताञ्जलिः ॥ १६॥
एवमेवापरां संध्यां समुपासीत वाग्यतः।
नेक्षेतादित्यमुद्यन्तं नास्तं यान्तं कदाचन ॥ १७ ॥
नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम्।
ऋषयो नित्यसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुवन् ॥ १८ ॥
तस्मात्तिष्ठेत्सदा पूर्वां पश्चिमां चैव वाग्यतः।
ये न पूर्वामुपासन्ते द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम् ॥१९॥
सर्वांस्तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत्।
परदारा न गन्तव्याः सर्ववर्णेषु कर्हिचित् ॥ २० ॥
न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ २१ ॥
यावन्तो रोमकूपाः स्युः स्त्रीणां गात्रेषु निर्मिताः।
तावद्वर्षसहस्राणि नरकं पर्युपासते ॥ २२ ॥
प्रसाधनं च केशानामञ्जनं दन्तधावनम्।

फोडता, तिनको तोडता, नखखादी, उच्छिष्टभोजी और सदा अस्थिर चित्तवाला होता है, वह इस लोकमें दीर्घायु नहीं पासकता। ब्राह्म मुहूर्तमें सावधान होवे और उस समय धर्म अर्थका विचार करे; उठके आचमन करके हाथ जोडके पूर्वसन्ध्याकी उपासना करे। उदयशील सूर्यको न देखे और अस्त होते हुए भी दिवाकरको न देखना चाहिये, राहुग्रस्त, जलके बीच और आकाशके मध्यमें गये हुए सूर्यको देखना योग्य नहीं है। ऋषि लोग सदा सन्ध्यावन्दन करते हैं, इसीसे उन्हें दीर्घायु प्राप्त हुई है; इसलिये पूर्व और पश्चिम सन्ध्याके समय वाग्यत होके रहे। (१४—१९)

जो ब्राह्मण प्रातःसंध्या और सायंसन्ध्या नहीं करते, धार्मिक राजा उनसे शूद्रकार्य करावे। सद्वर्णोंके बीच कदापि पराई स्त्री गमन करना उचित नहीं है; पुरुषके लिये जैसा परस्त्री गमन आयुका नाशक है, लोकमें वैसा अनायुष्य और कुछ भी नहीं है। स्त्रियोंके शरीरमें जितने रोम हैं, परस्त्रीगामी पुरुष उतने ही सहस्र वर्षतक नरकमें निवास करता है। (१९—२२)

पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च पूजनम् ॥ २३ ॥
पुरीषमूत्रे नोदीक्षेन्नाधितिष्ठेत्कदाचन ।
नातिकल्यं नातिसायं न च मध्यन्दिने स्थिते ॥ २४ ॥
नाज्ञातैः सह गच्छेत नैको न वृषलैः सह ।
पन्था देयो ब्राह्मणाय गोभ्यो राजभ्य एव च ॥ २५ ॥
वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च ।
प्रदक्षिणं च कुर्वीत परिज्ञातान्वनस्पतीन् ॥ २६ ॥
चतुष्पथान्प्रकुर्वीत सर्वानेव प्रदक्षिणान् ।
मध्यन्दिने निशाकाले अर्धरात्रे च सर्वदा ॥ २७ ॥
चतुष्पथं न सेवेत उभे संध्ये तथैव च ।
उपानहौ च वस्त्रं च धृतमन्यैर्न धारयेत् ।
ब्रह्मचारी च नित्यं स्यात्पादं पादेन नाक्रमेत् ॥ २८ ॥
अमावास्यां पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां च सर्वशः ।
अष्टम्यां सर्वपक्षाणां ब्रह्मचारी सदा भवेत् ॥ २९ ॥
वृथा मांसं न खादेत पृष्ठमांसं तथैव च ।
आक्रोशं परिवादं च पैशुन्यं च विवर्जयेत् ॥ ३० ॥
नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी न हीनतः परमभ्याददीत ।

केश संवारना अञ्जन लगाना, दांत धोना और देवताओंकी पूजा पूर्वाह्णमें ही करनी योग्य है। मलमूत्र न देखे और कदापि वहां निवास न करे। अत्यन्त भोर, मध्यान्ह और सन्ध्याके समय मल-मूत्र परित्याग न करे, अज्ञात पुरुषोंके सङ्ग न चले, अकेले अथवा चाण्डालके सहित मार्गमें चलना उचित नहीं है। ब्राह्मण, गऊ, राजा, वृद्ध, बोझा ढोनेवाले, गर्भिणी स्त्री और निर्बल पुरुषको देखके उन्हें जानेके लिये मार्ग देवे। विज्ञात वनस्पतियोंकी प्रदक्षिण करे, चौराहोंकी प्रदक्षिण करनी उचित है। मध्यान्ह, रात्रि, विशेष करके आधी रात, सन्ध्या और भोरके समय चौराहेपर न जावे। दूसरेका पहरा हुआ वस्त्र और पादुका न पहरे; सदा ब्रह्मचारी होवे, पांवसे पांवको आक्रमण न करे, अमावस्या पौर्णमासी, दोनों पक्षकी चतुर्दशी और अष्टमीमें सदा ब्रह्मचर्य करे। (२३-२९)

वृथा मांस भक्षण न करे और पृष्ठमांस खानेसे विरत होवे; आक्रोश, परिवाद और चुगलखोरी न करनी

यथाऽस्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेद्रुशतीं पापलोक्याम् ॥३१॥
वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि ।
परस्य वा मर्मसु ये पतन्ति तान्पण्डितो नावसृजेत्परेषु ॥ ३२ ॥
रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥ ३३ ॥
कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः ।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ॥३४ ॥
हीनाङ्गानतिरिक्ताङ्गान्विद्याहीनान्विगर्हितान् ।
रूपद्रविणहीनांश्च सत्वहीनांश्च नाक्षिपेत् ॥ ३५ ॥
नास्तिक्यं वेदनिन्दां च देवतानां च कुत्सनम् ।
द्वेषस्तम्भोऽभिमानं च तैक्ष्ण्यं च परिवर्जयेत् ॥ ३६ ॥
परस्य दण्डं नोद्यच्छेत्क्रुद्धो नैनं निपातयेत् ।
अन्यत्र पुत्राच्छिष्याच्च शिक्षार्थं ताडनं स्मृतम् ॥३७॥
न ब्राह्मणान्परिवदेन्नक्षत्राणि न निर्दिशेत् ।
तिथिं पक्षस्य न ब्रूयात्तथाऽस्यायुर्न रिष्यते ॥ ३८ ॥

चाहिये । किसीके ऊपर गुस्सा न करे, निठुर वचन न कहे; नीच पुरुपसे श्रेष्ठ द्रव्य लेना अनुचित है । जिस बातसे दूसरा पुरुष घबडाय, वैसी पाप-युक्त अकल्याणकारी बात न कहे । जो वाक्यबाण मुखसे बाहर होते हैं, उससे घायल हुए पुरुप रात दिन शोक करते हैं, वाक्यरूपी बाण मनुष्योंके मर्मस्थलके अतिरिक्त और कहीं नहीं लगते; इसलिये पण्डित पुरुष वैसे वाक्य-बाणोंको न चलावे । बाणविद्ध और परशुसे कटा हुआ वन फिर अंकुरित होता है, किन्तु जो मर्मभेदी वचनसे घाव होता है, वह फिर पूरित नहीं होता । कर्णि, नालीक और बाण शरीरसे निकल आते हैं; परन्तु हृदयमें लगे हुए वाग्बाणको निकालनेमें किसीकी सामर्थ्य नहीं होती । (३०—३४)

हीन अङ्गवाले, अत्यन्त रिक्ताङ्ग, निन्दनीय, विद्यारूप और धनसे रहित तथा निर्बल पुरुषकी निन्दा न करे । नास्तिकता, वेद और देवताओंकी निन्दा, द्वेष, दम्भ, अभिमान तथा तीक्ष्णता परित्याग करे । दूसरेके ऊपर दण्ड न चलावे, क्रुद्ध होके दूसरेके ऊपर प्रहार न करे, केवल पुत्र और शिष्यको शिक्षाके निमित्त ताडन कर-नेमें कोई बाधा नहीं है । ब्राह्मणोंकी

कृत्वा मूत्रपुरीषे तु रथ्यामाक्रम्य वा पुनः ।
पादप्रक्षालनं कुर्यात्स्वाध्याये भोजने तथा ॥ ३९ ॥
त्रीणि देवाः पवित्राणि ब्राह्मणानामकल्पयन् ।
अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा प्रशस्यते ॥ ४० ॥
संयावं कृसरं मांसं शष्कुलीं पायसं तथा ।
आत्मार्थं न प्रकर्तव्यं देवार्थं तु प्रकल्पयेत् ॥ ४१ ॥
नित्यमग्निं परिचरेद्भिक्षां दद्याच्च नित्यदा ।
वाग्यतो दन्तकाष्ठं च नित्यमेव समाचरेत् ॥ ४२ ॥
न चाभ्युदितशायी स्यात्प्रायश्चित्ती तथा भवेत् ।
मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत् ॥ ४३ ॥
आचार्यमथवाप्यन्यं तथाऽऽयुर्विन्दते महत् ।
वर्जयेद्दन्तकाष्ठानि वर्जनीयानि नित्यशः ॥ ४४ ॥
भक्षयेच्छास्त्रदृष्टानि पर्वस्वपि विवर्जयेत् ।
उदङ्मुखश्च सततं शौचं कुर्यात्समाहितः ॥ ४५ ॥
अकृत्वा देवपूजां च नाचरेद्दन्तधावनम् ।
अकृत्वा देवपूजां च नाभिगच्छेत्कदाचन ।

निन्दा और नक्षत्र निर्देश न करे, पक्ष-सम्बधीय तिथि न कहे, तो आयु नहीं घटती। मलमूत्र त्यागने, मार्गसे आने, वेदपाठ और भोजनके समय पैर धोवे। देवताओंने ब्राह्मणोंके लिये तीन विषयोंको पवित्र रूपसे कल्पना किया है, अदृष्ट जल प्रक्षालन तथा जो वचनके द्वारा उत्तम होता है, संयाव (घृत-दूधसे बना हुआ पिष्टक) कृशर तुल्य तिलान्न, मांस, पूरी और पायस अपने ही लिये न बनावे, और देवताओंके उद्देश्यसे प्रस्तुत करे। (३९—४१)

सदा अग्निकी परिचर्या करे, प्रतिदिन भिक्षा देवे और वाग्यत होके नित्य दतून करे, सूर्य उदय होनेपर सोता न रहे, सूर्य उदय होनेपर सोनेवाला मनुष्य प्रायश्चित्त करनेके योग्य होता है। उठके पहले मातापिताको प्रणाम करे, अनन्तर आचार्य और दूसरे गुरुजनोंकी वन्दना करे; तो दीर्घायु प्राप्त होती है। शास्त्रविहित काष्ठोंसे दतून करके जो शास्त्रनिषिद्ध है उसे त्याग देवे; वह सदा ही त्यागने योग्य है। (४२—४५)

उत्तर ओर मुख करके समाहित होकर शौचकार्य करे, बिना दतून किये

अन्यत्र तु गुरुं वृद्धं धार्मिकं वा विचक्षणम् ॥ ४६ ॥
अवलोक्यो न चादर्शो मलिनो बुद्धिमत्तरैः ।
न चाज्ञातां स्त्रियं गच्छेद्गर्भिणीं वा कदाचन ॥ ४७ ॥
उदक्शिरा न स्वपेत तथा प्रत्यक्शिरा न च ।
प्राक्शिरास्तु स्वपेद्विद्वानथवा दक्षिणाशिराः ॥ ४८ ॥
न भग्ने नावशीर्णे च शयने प्रस्वपीत च ।
नान्तर्धाने न संयुक्ते न च तिर्यक्कदाचन ॥ ४९ ॥
न चापि गच्छेत्कार्येण समयाद्वापि नास्तिकैः ।
आसनं तु पदाकृष्य न प्रसज्जेत्तथा नरः ॥ ५० ॥
न नग्नः कर्हिचित्स्नायान्न निशायां कदाचन ।
स्नात्वा च नावमृज्येत गात्राणि सुविचक्षणः ॥ ५१ ॥
न चानुलिम्पेदस्नात्वा स्नात्वा वासो न निर्धुनेत् ।
न चैवार्द्राणि वासांसि नित्यं सेवेत मानवः ॥ ५२ ॥
स्रजश्च नावकृष्येत न बहिर्धारयीत च ।
उदक्यया च संभाषां न कुर्वीत कदाचन ॥ ५३ ॥
नोत्सृजेत पुरीषं च क्षेत्रे ग्रामस्य चान्तिके ।

देवपूजा न करे और विना देवपूजा किये कदापि गुरु, वृद्ध, धार्मिक तथा पण्डितोंके अतिरिक्त दूसरे किसी स्थानमें न जावे। बुद्धिमान मनुष्य मलिन आरसी न देखे, अपरिचित स्त्रीके निकट कदापि न जावे और गर्भिणी स्त्री गमन करना अनुचित है। उत्तर और पश्चिम ओर सिर करके न सोवे बुद्धिमान मनुष्य पूर्व और दक्षिण ओर सिर करके शयन करे। टूटी फटी शय्यामें सोना अनुचित है अत्यन्त अन्धेरे स्थान, नारीयुक्त शयनगृहमें और उलटा होके कदापि न सोवे, कार्य वा समय वशसे कदाचित् नास्तिकके निकट न जावे; पांवसे आसन आकर्षण करके मनुष्य उसपर न बैठे। वस्त्रहीन होके नदी प्रभृति अथवा रात्रिके समयमें कदापि स्नान न करे, बुद्धिमान मनुष्य स्नान करनेके अनन्तर शरीर मार्जन न करे; विनास्नानके अनुलेपन विहित नहीं है, स्नानके अनन्तर वस्त्र धोना अनुचित है। मनुष्य सदा भींगे वस्त्रको न पहरे, गलेसे स्वयं माला निकालके फेंकना योग्य नहीं है, बाहिरी हिस्सेमें माला न धारण करे। (४६-५३)

उभे मूत्रपुरीषे तु नाप्सु कुर्यात्कदाचन ॥ ५४ ॥
अन्नं बुभुक्षमाणस्तु त्रिर्मुखेन स्पृशेदपः ।
भुक्त्वा चान्नं तथैव त्रिर्द्विः पुनः परिमार्जयेत् ॥५५॥
प्राङ्मुखो नित्यमश्नीयाद्वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ।
प्रस्कन्दयेच्च मनसा भुक्त्वा चाग्निमुपस्पृशेत् ॥ ५६ ॥
आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः ।
धन्यं पश्चान्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते उदङ्मुखः ॥५७॥
अग्निमालभ्य तोयेन सर्वान्प्राणानुपस्पृशेत् ।
गात्राणि चैव सर्वाणि नाभिं पाणितले तथा ॥ ५८ ॥
नाधितिष्ठेत्तुषं जातु केशभस्मकपालिकाः ।
अन्यस्य चाप्यवस्नातं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ५९ ॥
शान्तिहोमांश्च कुर्वीत सावित्राणि च धारयेत् ।
निषण्णश्चापि खादेत न तु गच्छन्कदाचन ॥ ६० ॥
मूत्रं नोत्तिष्ठता कार्यं न भस्मनि न गोव्रजे ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ॥ ६१ ॥

रजस्वला स्त्रीके सङ्ग कदापि वार्त्तालाप न करे, क्षेत्र और गांवके समीप मलत्याग न करे, जलमें मल-मूत्रका त्यागना वर्जित है। अन्न भोजनकी इच्छा करनेवाला मनुष्य मुखमें तीनवार जल स्पर्श करे; अन्न भोजन करके उसी भांति तीनबारके अनन्तर फिर दो बार मुंह धोवे। प्रतिदिन पूर्व ओर मुंह करके चुप होकर अन्नकी निन्दा न करके भोजन करे। भोजन करके किञ्चित् शेषान्न छोड दे और भोजनके अनन्तर मनही-मन अग्नि स्पर्श करे। परमायु बढनेकी इच्छासे पूर्व ओर मुंह करके भोजन करे; यशकी कामनासे दक्षिण ओर मुंह करके भोजन करे, धन प्राप्तिकी इच्छासे पश्चिम ओर मुंह करके भोजन करना चाहिये और कल्याणकी इच्छावाले मनुष्य उत्तर ओर मुंह करके भोजन किया करते हैं। (५३-५७)

अग्नि स्पर्श करके जलसे नासिका प्रभृति ऊर्ध्वछिद्र शरीर, नाभि और करतल धोवे। तुष, केश, राख और कपालिकाके ऊपर कदापि न बैठे, दूसरेके नहानेका जल दूरसे ही परित्याग करे, शान्ति और होम करे, तथा गायत्री मन्त्र जपे, बैठके भोजन करे, चलते कदापि न खाये। खडा होकर पेशाब न करे, भस्म और गोस्थानमें

आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो वर्षाणां जीवते शतम् ।
त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट आलभेत कदाचन ॥ ६२ ॥
अग्निं गां ब्राह्मणं चैव तथा ह्यायुर्न रिष्यते ।
त्रीणि तेजांसि नोच्छिष्ट उदीक्षेत कदाचन ॥ ६३ ॥
सूर्याचन्द्रमसौ चैव नक्षत्राणि च सर्वशः ।
ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति ॥६४॥
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते ।
अभिवादयीत वृद्धांश्च दद्याच्चैवासनं स्वयम् ॥ ६५ ॥
कृताञ्जलिरुपासीत गच्छन्तं पृष्ठतोऽन्वियात् ।
न चासीतासने भिन्ने भिन्नकांस्यं च वर्जयेत् ॥ ६६ ॥
नैकवस्त्रेण भोक्तव्यं न नग्नः स्नातुमर्हति ।
स्वप्तव्यं नैव नग्नेन न चोच्छिष्टोऽपि संविशेत्॥ ६७ ॥
उच्छिष्टो न स्पृशेच्छीर्षं सर्वे प्राणास्तदाऽऽश्रयाः ।
केशग्रहं प्रहारांश्च शिरस्येतान्विवर्जयेत् ॥ ६८ ॥
न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः ।
न चाभीक्ष्णं शिरः स्नायात्तथास्यायुर्न रिष्यते ॥६९॥

पेशाब न करना चाहिये। भींगे पांवसे युक्त होके न सोवे; पांव धोके भोजन करे, जो लोग पैर धोकर भोजन करते हैं, वे एक सौ वर्षतक जीवित रहते हैं। जूठे रहके अग्नि, ब्राह्मण और गऊ इन तीनों तेजस्वियोंको कदापि न छूवे, छूनेसे आयु नष्ट होती है। (५८-६३)

सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र इन तीनों तेजस्वियोंको जूठे रहके कदापि न देखना चाहिये। बूढे पुरुषके सम्मुख आनेपर युवा पुरुषोंके प्राण ऊपरको उठते हैं, उठके प्रणाम करनेसे वेही प्राण फिर निजस्थानमें स्थापित हुआ करते हैं। वृद्धोंको प्रणाम करे और उन्हें स्वयं आसन देवे, हाथ जोडके उनके सामने खडा रहे, जब वे चलने लगें, तो उनके पीछे पीछे चले। कटे फटे आसनपर न बैठे, टूटा कांसेका पात्र परित्याग करे, एकवस्त्र होकर भोजन न करे, वस्त्ररहित होके स्नान करना उचित नहीं है। वस्त्रहीन होके न सोवे, जूठे रहके सोना न चाहिये, जूठा रहके सिर न छूवे, क्यों कि समस्त प्राण सिरकोही अवलम्बन करके रहते हैं; केश ग्रहण न करे, शिरमें प्रहार न करे और दोनों हाथोंसे सिर न खुज-

शिरस्नातस्तु तैलैश्च नाङ्गं किंचिदपि स्पृशेत् ।
तिलसृष्टं न चाश्नीयात्तथाऽस्यायुर्न रिष्यते ॥ ७० ॥
नाध्यापयेत्तथोच्छिष्टो नाधीयीत कदाचन ।
वाते च पूतिगन्धे च मनसाऽपि न चिन्तयेत् ॥ ७१ ॥
अत्र गाथा यमोद्गीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।
आयुरस्य निकृन्तामि प्रजास्तस्याददे तथा ॥ ७२ ॥
उच्छिष्टो यः प्राद्रवति स्वाध्यायं चाधिगच्छति ।
यश्चानध्यायकालेऽपि मोहादभ्यस्यति द्विजः ॥ ७३ ॥
तस्य वेदः प्रणश्येत आयुश्च परिहीयते ।
तस्माद्युक्तो ह्यनध्याये नाधीयीत कदाचन ॥ ७४ ॥
प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिगां च प्रतिद्विजान् ।
ये मेहन्ति च पन्थानं ते भवन्ति गतायुषः ॥ ७५ ॥
उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ।
दक्षिणाभिमुखो रात्रौ तथा ह्यायुर्न रिष्यते ॥ ७६ ॥
त्रीन्कृशान्नावजानीयाद्दीर्घमायुर्जिजीविषुः ।

लावे ; बार बार सिरपर जल डालके स्नान न करे, इन कार्योंके करनेसे आयु नष्ट होती है। (६३—६९)

सिरमें तेल मलके दूसरे अंगको स्पर्श न करे ; तिलसंयुक्त भ्रष्ट वस्तु न खावे; जो लोग इन कार्योंको करते हैं, उनकी परमायु नष्ट होती है। जूठा रहके कदापि न पढावे और पढना भी अनुचित है। वायुयुक्त तथा दुर्गन्धित स्थानका मनसे भी ध्यान न करे ; इतिहास जाननेवाले पण्डित लोग इस विषयमें यमकी कही हुई गाथा वर्णन करते हैं, "जो पुरुष जूठे मुंहसे चलता और स्वाध्याय पाठ करता है, मैं उसकी आयु नष्ट करता तथा उसके पुत्रोंको ग्रहण किया करता हूं।" जो ब्राह्मण अनध्यायके समय मोहवशसे वेदाभ्यास करता है, उसके वेद विनष्ट होते और आयु क्षीण होजाती है ; इसलिये अनध्यायके समय कदापि न पढे। सूर्य, अग्नि, गऊ और ब्राह्मणके सम्मुख जो लोग मलमूत्र फेंकते हैं, वे गतायु होते हैं। (७०—७५)

दिनमें उत्तर ओर और रात्रिमें दक्षिण ओर मुंह करके मलमूत्र परित्याग करनेसे, आयु नहीं घटती। जो जीवित रहनेकी इच्छावाले मनुष्य दीर्घायुकी आशा करते हैं, उन्हें उचित

ब्राह्मणं क्षत्रियं सर्पं सर्वे ह्याशीविषास्त्रयः ॥ ७७ ॥
दहत्याशीविषः क्रुद्धो यावत्पश्यति चक्षुषा ।
क्षत्रियोऽपि दहेत्क्रुद्धो यावत्स्पृशति तेजसा ॥ ७८ ॥
ब्राह्मणस्तु कुलं हन्याद् ध्यानेनावेक्षितेन च ।
तस्मादेतत्त्रयं यत्नादुपसेवेत पण्डितः ॥ ७९ ॥
गुरुणा चैव निर्बन्धो न कर्तव्यः कदाचन ।
अनुमान्यः प्रसाद्यश्च गुरुः क्रुद्धो युधिष्ठिर ॥ ८० ॥
सम्यङ् मिथ्याप्रवृत्तेऽपि वर्तितव्यं गुराविह ।
गुरुनिन्दा दहत्यायुर्मनुष्याणां न संशयः ॥ ८१ ॥
दूरादावसथान्मूत्रं दूरात्पादावसेचनम् ।
उच्छिष्टोत्सर्जनं चैव दूरे कार्यं हितैषिणा ॥ ८२ ॥
रक्तमाल्यं न धार्यं स्याच्छुक्लं धार्यं तु पण्डितैः ।
वर्जयित्वा तु कमलं तथा कुवलयं प्रभो ॥ ८३ ॥
रक्तं शिरसि धार्यं तु तथा वानेयमित्यपि ।
काञ्चनीयाऽपि माला या न सा दुष्यति कर्हिचित् ॥८४॥

है, कि वे ब्राह्मण, क्षत्रिय और सर्पको निर्बल जानके अवज्ञा न करे, क्यों कि ये तीनों ही आशीविष स्वरूप हैं। जैसे सर्प नेत्रसे देखकर जलाया करता है, वैसे ही जब क्षत्रिय क्रुद्ध होके देखता है, तो उस ही समय तेजके सहारे भस्म करता है; ब्राह्मण क्रुद्ध होनेपर ध्यान और नेत्रके सहारे तत्क्षण ही वंशनाश करता है; इसलिये पण्डित लोग यत्नपूर्वक इन तीनोंकी सेवा करें। (७६—७९)

हे युधिष्ठिर ! गुरुके साथ कभी शत्रुता न करनी चाहिये, गुरुके क्रुद्ध होनेपर उनका मान्य तथा उन्हें प्रसन्न करना योग्य है। गुरुके मिथ्या प्रवृत्ति होनेपर भी पूरी रीतिसे समीप उपस्थित रहना उचित है। गुरुनिन्दा निःसन्देह मनुष्योंकी आयु हरती है, हितैषी मनुष्य आश्रमके बाहर पेशाब करे और हाथ पैर धोवे; दूर जाके जूठ फेंके। पण्डित लोग कमल और कुवलयके अतिरिक्त दूसरे लाल रङ्गके फूलोंकी माला न पहरे, पण्डितोंको सफेद फूलोंकी माला पहरनी उचित है। लाल रङ्गके फूल तथा वानेय पुष्पोंको सिरपर रखना योग्य है, काञ्चन पुष्पकी माला पहरनेमें कदापि कुछ दोष नहीं होता। (८०—८४)

स्नातस्य वर्णकं नित्यमार्द्रं दद्याद्विशाम्पते।
विपर्ययं न कुर्वीत वाससो बुद्धिमान्नरः ॥ ८५ ॥
तथा नान्यधृतं धार्यं न चापदशमेव च।
अन्यदेव भवेद्वासः शयनीये नरोत्तम ॥ ८६ ॥
अन्यद्रथ्यासु देवानामर्चायामन्यदेव हि।
प्रियङ्गुचन्दनाभ्यां च बिल्वेन तगरेण च ॥ ८७ ॥
पृथगेवानुलिम्पेत केसरेण च बुद्धिमान्।
उपवासं च कुर्वीत स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ ८८ ॥
पर्वकालेषु सर्वेषु ब्रह्मचारी सदा भवेत्।
समानमेकपात्रे तु भुञ्जेन्नान्नं जनेश्वर ॥ ८९ ॥
नालीढया परिहृतं भक्षयीत कदाचन।
तथा नोद्धृतसाराणि प्रेक्षते नाप्रदाय च ॥ ९० ॥
न संनिकृष्टे मेधावी नाशुचिर्न च सत्सु च।
प्रतिषिद्धान्न धर्मेषु भक्ष्यान्भुञ्जीत पृष्ठतः ॥ ९१ ॥
पिप्पलं च वटं चैव शणशाकं तथैव च।

हे नरनाथ! स्नात पुरुषको सदा आर्द्रवर्णक दान करे, बुद्धिमान मनुष्य दोनों वस्त्रोंका उलट फेर न करे, अर्थात् धोतीको दुपट्टा और दुपट्टाको धोती बनाना अनुचित है। हे पुरुषश्रेष्ठ! दूसरे के पहरे हुए तथा दशाहीन वस्त्रको पहरना योग्य नहीं है, शय्या और वस्त्र स्वतन्त्र होना चाहिये, मार्गमें चलनेके समय पृथक् वस्त्र और देवपूजाके समय पृथक् वस्त्र पहरना योग्य है। बुद्धिमान् मनुष्य प्रियंगु, चन्दन, बेल तथा तगरसे अनुलेपन करके केशरसे पृथक् अनुलेपन करे। स्नात, शुचि और अलंकृत होके ब्रह्मचर्य करे, सब पर्वोंमें ब्रह्मचारी होके रहे। हे प्रजानाथ! एक पात्रमें दो मनुष्य समान अन्न भोजन न करे और रजस्वलाके हाथसे बना हुआ भोजन करना अनुचित है। जिसका सारपदार्थ निकाला गया हो, वैसी वस्तु न खावे और भोजनके समय में यदि कोई देखता रहे, तो उसे भोजनकी वस्तु विना दिये भोजन करना विहित नहीं है। (८५-९०)

साधुओंके समीप मेधावी मनुष्य अपवित्र होके अन्न भोजन न करे, श्राद्धादिके प्रतिषिद्ध वस्तुओंको श्राद्धके अभावमें भक्षण करना अनुचित है; कल्याणकी इच्छा करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष

उदुम्बरं न खादेच्च भवार्थी पुरुषोत्तमः ॥ ९२ ॥
आजं गव्यं तथा मांसं मायूरं चैव वर्जयेत्।
वर्जयेच्छुष्कमांसं च तथा पर्युषितं च यत् ॥ ९३ ॥
न पाणौ लवणं विद्वान्प्राश्नीयान्न च रात्रिषु।
दधिसक्तून्न भुञ्जीत वृथा मांसं च वर्जयेत् ॥ ९४ ॥
सायं प्रातश्च भुञ्जीत नान्तराले समाहितः।
वालेन तु न भुञ्जीत परश्राद्धं तथैव च ॥ ९५ ॥
वाग्यतो नैकवस्त्रश्च नासंविष्टः कदाचन।
भूमौ सदैव नाश्नीयान्नानासीनो न शब्दवत् ॥ ९६ ॥
तोयपूर्वं प्रदायान्नमतिथिभ्यो विशांपते।
पश्चाद्भुञ्जीत मेधावी न चाप्यन्यमना नरः ॥ ९७ ॥
समानमेकपङ्क्त्यां तु भोज्यमन्नं नरेश्वर।
विषं हालाहलं भुङ्क्ते योऽप्रदाय सुहृज्जने ॥ ९८ ॥
पानीयं पायसं सक्तून्दधिसर्पिर्मधून्यपि।
निरस्य शेषमन्येषां न प्रदेयं तु कस्यचित् ॥ ९९ ॥
भुञ्जानो मनुजव्याघ्र नैव शङ्कां समाचरेत्।

पीपल, वट, शणशाक और उदुम्बर न खावे। बकरीका दूध और मयूरका मांस त्याग देवे, सूखा मांस और बासी अन्न त्यागने योग्य हैं। विद्वान् पुरुष हथेलीमें और रात्रिके समय नमक, दही, शक्कर सत्तू न खाय, वृथा मांस खाना उचित नहीं है। (९१-९४)

समाहित पुरुष सन्ध्या, सबेरे और समयके शेषमें भोजन न करे, केशयुक्त अन्न आदि न खाना चाहिये और शत्रुके श्राद्धमें भोजन करना अनुचित है। वाग्यत होके एक वस्त्र पहरके और विना बैठे कदापि भोजन न करे, सदा भूमिमें बैठके भोजन न करे, भोजन करनेके समय चुप रहे। हे नरनाथ! बुद्धिमान मनुष्य अतिथियोंको पहले जल देके सब अन्न दान करे, अनन्तर एकचित्त होकर स्वयं भोजन करे, हे महाराज! एक पांतमें बैठे हुए सुहृदोंको समभावसे विना भोजन कराये जो पुरुष स्वयं भोजन करनेमें प्रवृत्त होता है वह हलाहल विष खाता है। (९५—९८)

जल, सत्तू, पायस, दूध, दही, घृत और मध खाके उसका शेषभाग पुत्रादिके अतिरिक्त दूसरे लोगोंको न

दधि चाप्यनुपानं वै न कर्तव्यं भवार्थिना ॥ १०० ॥
आचम्य चैकहस्तेन परिस्राव्यं तथोदकम् ।
अङ्गुष्ठं चरणस्याथ दक्षिणस्यावसेचयेत् ॥ १०१ ॥
पाणिं मूर्ध्नि समाधाय स्पृष्ट्वा चाग्निं समाहितः ।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यमवाप्नोति प्रयोगकुशलो नरः ॥ १०२ ॥
अद्भिः प्राणान्समालभ्य नाभिं पाणितले तथा ।
स्पृशंश्चैव प्रतिष्ठेत न चाप्यार्द्रेण पाणिना ॥ १०३ ॥
अङ्गुष्ठस्यान्तराले च ब्राह्मं तीर्थमुदाहृतम् ।
कनिष्ठिकायाः पश्चात्तु देवतीर्थमिहोच्यते ॥ १०४ ॥
अङ्गुष्ठस्य च यन्मध्यं प्रदेशिन्याश्च भारत ।
तेन पित्र्याणि कुर्वीत स्पृष्ट्वाऽपो न्यायतः सदा ॥१०५॥
परापवादं न ब्रूयान्नाप्रियं च कदाचन ।
न मन्युः कश्चिदुत्पाद्यः पुरुषेण भवार्थिना ॥ १०६ ॥
पतितैस्तु कथां नेच्छेद्दर्शनं च विवर्जयेत् ।
संसर्गं च न गच्छेत तथाऽऽयुर्विन्दते महत् ॥ १०७ ॥
न दिवा मैथुनं गच्छेन्न कन्यां न च बन्धकीम् ।
न चास्नातां स्त्रियं गच्छेत्तथाऽऽयुर्विन्दते महत् ॥१०८॥

देवे । हे पुरुषश्रेष्ठ ! मनुष्य भोजन करते समय भोज्यवस्तु परिपक्व होगी वा नहीं, ऐसी शङ्का न करे; परिपक्व होनेके निमित्त छाछ पीये, आचमन करके एक हाथसे दहिने पांवके अंगूठेको जलसे धोवे, सिरपर हाथ रखके अग्निको स्पर्श करके जो लोग समाहित होते हैं, व्यवहारमें निपुण उन मनुष्योंको स्वजनोंके बीच श्रेष्ठता प्राप्त होती है । जलसे प्राण स्थित करके नाभि और पाणितल स्पर्श करके प्रस्थान करे, भींगे हाथसे स्पर्श न करे, अंगूठेके नीचे ब्राह्मतीर्थ कही गई है और कनिष्ठा अंगुलीके नीचे देवतीर्थ वर्णित हुई है। (९९—१०४)

हे भारत ! अंगूठा और तर्जनी अंगुलीके मध्यभागके सहारे जल स्पर्श करके पितृकार्य करे। दूसरेका अपवाद न करे कदापि अप्रिय वचन न कहे, मङ्गलकी कामना करनेवाला मनुष्य किसी भांति क्रोध न करे। पतित पुरुषोंके साथ वार्त्तालाप न करे। उसे देखना न चाहिये और उसका संसर्ग न करे, तो दीर्घायु प्राप्त होती है। दिन

स्वे स्वे तीर्थे समाचम्य कार्ये समुपकल्पिते ।
त्रिः पीत्वाऽपो द्विः प्रमृज्य कृतशौचो भवेन्नरः ॥१०९॥
इन्द्रियाणि सकृत्स्पृश्य त्रिरभ्युक्ष्य च मानवः ।
कुर्वीत पित्र्यं दैवं च वेददृष्टेन कर्मणा ॥ ११० ॥
ब्राह्मणार्थे च यच्छौचं तच्च मे शृणु कौरव ।
पवित्रं च हितं चैव भोजनाद्यन्तयोस्तथा ॥ १११ ॥
सर्वशौचेषु ब्राह्मेण तीर्थेन समुपस्पृशेत् ।
निष्ठीव्य तु तथा क्षुत्वा स्पृश्यापो हि शुचिर्भवेत् ॥११२॥
वृद्धो ज्ञातिस्तथा मित्रं दरिद्रो यो भवेदपि ।
गृहे वासयितव्यास्ते धन्यमायुष्यमेव च ॥ ११३ ॥
गृहे पारावता धन्याः शुकाश्च सहसारिकाः ।
गृहेष्वेते न पापाय तथा वै तैलपायिकाः ।
उद्दीपकाश्च गृध्राश्च कपोता भ्रमरास्तथा ॥ ११४ ॥
निविशेयुर्यदा तत्र शान्तिमेव तदाऽऽचरेत् ।
अमङ्गल्यानि चैतानि तथाऽऽक्रोशो महात्मनाम् ॥११५॥

में मैथुन न करे; कन्या, रजस्वला और व्रती और अस्नात स्त्री गमन न करे, इन नियमोंका प्रतिपालन करनेसे दीर्घायु प्राप्त होती है । निज निज तीर्थोंमें आचमन करके पूरी रीतिसे उपस्थित कार्यमें तीन बार जलसे मुंह धोके दो बार कुल्ला करनेसे मनुष्य पवित्र होता है । (१०५—१०९)

पुरुष एकबार सारी इन्द्रियोंको स्पर्श करते हुए तीन बार आचमन करके वेदविहित कार्यके सहारे दैव और पितृकर्म करे । हे कुरुनन्दन ! ब्राह्मणोंके लिये जो शौचाचार विहित हुआ है और भोजनके पहले तथा शेषमें जो पवित्र और हितकर है, वह भी सुनो । सब प्रकारके शौचकार्योंमें ब्राह्मतीर्थके द्वारा जल स्पर्श करे, थूंकने और क्षुत् कार्य करानेपर जल स्पर्श करके पवित्र होवे, वृद्धों, स्वजनों और मित्रोंके दरिद्र होनेपर उन्हें निज गृहमें रक्खे; ऐसा करनेसे धन और आयुकी वृद्धि होती है । (११०—११३)

कबूतर तथा शुकशारिका प्रभृतिके गृहमें रहनेसे समृद्धि हुआ करती है; ये तथा तैलपायिका प्रभृति गृहमें रहनेसे अनिष्टके कारण नहीं होती, बल्कि अभ्युदयकी हेतु हुआ करती है । उद्दीपनकारी गिद्ध, वनके कपोत और भौंर यदि गृहके

महात्मनोऽतिगुह्यानि न वक्तव्यानि कर्हिचित् ।
अगम्याश्च न गच्छेत राज्ञः पत्नीं सखीस्तथा ॥११६॥
वैद्यानां बालवृद्धानां भृत्यानां च युधिष्ठिर ।
बन्धूनां ब्राह्मणानां च तथा शारणिकस्य च ॥ ११७॥
संबन्धिनां च राजेन्द्र तथाऽऽयुर्विन्दते महत् ।
ब्राह्मणस्थपतिभ्यां च निर्मितं यन्निवेशनम् ॥ ११८ ॥
तदावसेत्सदा प्राज्ञो भवार्थी मनुजेश्वर ।
सन्ध्यायां न स्वपेद्राजन्विद्यां न च समाचरेत् ॥११९॥
न भुञ्जीत च मेधावी तथाऽऽयुर्विन्दते महत् ।
नक्तं न कुर्यात्पित्र्याणि भुक्त्वा चैव प्रसाधनम् ॥१२०॥
पानीयस्य क्रिया नक्तं न कार्या भूतिमिच्छता ।
वर्जनीयाश्चैव नित्यं सक्तवो निशि भारत ॥ १२१ ॥
शेषाणि चैव पानानि पानीयं चापि भोजने ।
सौहित्यं न च कर्तव्यं रात्रौ न च समाचरेत् ॥१२२॥

बीच सहसा प्रविष्ट हों, तो उस समय शान्ति अवलम्बन करे; ये सब कार्य तथा महात्माओंके विषयमें आक्रोश प्रकाश करना अमांगलिक है, महात्माओंके अत्यन्त गोपनीय विषयको किसी स्थानमें कहना उचित नहीं है। हे युधिष्ठिर! अगम्या स्त्रीगमन न करे; राजपथमें वृद्ध, बालक और वैद्यकी स्त्री, सखी, सेवककी भार्या, बन्धु, ब्राह्मणी, शरणागत पुरुषकी स्त्री और सम्बन्धियोंकी स्त्रियोंसे रमण करना अनुचित है; हे राजेन्द्र! इन सब विषयोंको पालन करनेसे दीर्घायु प्राप्त होती है। हे नरनाथ! ब्राह्मणों तथा ज्योतिषियोंकी सम्मतिके द्वारा जो स्थान बनाया जावे, कल्याणकी इच्छा करनेवाला मनुष्य सदा उसहीमें वास करे। (११३-११९)

हे महाराज! मेधावी मनुष्य सन्धाके समय न सोवे तथा विद्याभ्यास और भोजन न करे; इन नियमोंके पालनेसे मनुष्य दीर्घायु होता है। रात्रिके समय पितृकार्य न करे और भोजनके अनन्तर केश संवारना अनुचित है, जो लोग ऐश्वर्यकी इच्छा करते हैं, उन्हें रात्रिमें स्नान आदि जलक्रिया न करनी चाहिये। हे भारत! रातके समय सत्तू खाना वर्जित है, भोजनके समय शेषान्न निर्मल होनेपर भी जलमें न छोडे। जबतक एक मनुष्य तृप्त न होजाय, तबतक दूसरे पुरुषको भोजन कराना उचित नहीं है;

द्विजच्छेदं न कुर्वीत भुक्त्वा न च समाचरेत् ।
महाकुले प्रसूतां च प्रशस्तां लक्षणैस्तथा ॥ १२३ ॥
वयस्थां च महाप्राज्ञः कन्यामावोढुमर्हति ।
अपत्यमुत्पाद्य ततः प्रतिष्ठाप्य कुलं तथा ॥ १२४ ॥
पुत्राः प्रदेया ज्ञानेषु कुलधर्मेषु भारत ।
कन्या चोत्पाद्य दातव्या कुलपुत्राय धीमते ॥ १२५ ॥
पुत्रा निवेश्याश्च कुलाद् भृत्या लभ्याश्च भारत ।
शिरःस्नातोऽथ कुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि च ॥ १२६ ॥
नक्षत्रे न च कुर्वीत यस्मिन् जातो भवेन्नरः ।
न प्रोष्ठपदयोः कार्यं तथाऽऽग्नेये च भारत ॥ १२७ ॥
दारुणेषु च सर्वेषु प्रत्यरिं च विवर्जयेत् ।
ज्योतिषे यानि चोक्तानि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥१२८॥
प्राङ्मुखः श्मश्रुकर्माणि कारयेत्सुसमाहितः ।
उदङ्मुखो वा राजेन्द्र तथाऽऽयुर्विन्दते महत् ॥ १२९ ॥
परिवादं न च ब्रूयात्परेषामात्मनस्तथा ।

रात्रिके समय निज अन्नको भोजन करनेमें उक्त आचरण न करे। पक्षियोंको मारना उचित नहीं है, पक्षिमांस खावे, परन्तु स्वयं न मारके मोल लिया हुआ मांस भक्षण करे। (११९-१२२)

अत्यन्त प्राज्ञ पुरुष महत् कुलमें उत्पन्न हुई श्रेष्ठ लक्षणयुक्त यथायोग्य अवस्थावाली कन्याके साथ विवाह करनेके योग्य होगा। हे भारत! अनन्तर पुत्र उत्पन्न करके वंश स्थापित करते हुए उन्हें ज्ञान और कुलधर्म सिखानेके लिये विद्वान् पुरुषके निकट समर्पण करे और कन्या उत्पन्न होनेके अनन्तर सद्वंशमें उत्पन्न हुए, बुद्धिशक्तिसे युक्त पात्रको दान करे, पुत्रोंका भी सत्कुल सम्बन्धमें व्याह करे, कर्मचारियोंको संपादन करे और स्नान करके देवकार्य और पितृकार्य करना चाहिये। मनुष्य जिस नक्षत्रमें जन्मा है, उसमें पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, कृत्तिका और स्वाती नक्षत्र जोडके नवसे भाग करनेपर जो तारा पञ्चमी होवे, उस प्रत्यरिनक्षत्र तथा दारुण नक्षत्रोंमें देव और पितृकर्म न करे। हे भारत! ज्योतिष शास्त्रमें ये सब विषय कहे गये हैं; पूर्व और उत्तर ओर मुंह करके समाहित होकर क्षौरकार्य करावे। हे राजेन्द्र! ऐसा आचरण करनेसे दीर्घायु प्राप्त होता है। (१२३-१२९)

परिवादो ह्यधर्माय प्रोच्यते भरतर्षभ ॥ १३० ॥
वर्जयेद्व्यङ्गिनीं नारीं तथा कन्यां नरोत्तम।
समार्षां व्यङ्गितां चैव मातुः स्वकुलजां तथा ॥१३१॥
वृद्धां प्रव्रजितां चैव तथैव च पतिव्रताम्।
तथा निकृष्टवर्णां च वर्णोत्कृष्टां च वर्जयेत् ॥ १३२ ॥
अयोनिं च वियोनिं च न गच्छेत विचक्षणः।
पिङ्गलां कुष्ठिनीं नारीं न त्वमुद्वोढुमर्हसि ॥ १३३ ॥
अपस्मारिकुले जातां निहीनां चापि वर्जयेत्।
श्वित्रिणां च कुले जातां क्षयिणां मनुजेश्वर ॥ १३४ ॥
लक्षणैरन्विता या च प्रशस्ता या च लक्षणैः।
मनोज्ञां दर्शनीयां च तां भवान्वोढुमर्हति ॥ १३५ ॥
महाकुले निवेष्टव्यं सदृशे वा युधिष्ठिर।
अवरा पतिता चैव न ग्राह्या भूतिमिच्छता ॥ १३६ ॥
अग्नीनुत्पाद्य यत्नेन क्रियाः सुविहिताश्च याः।
वेदे च ब्राह्मणैः प्रोक्तास्ताश्च सर्वाः समाचरेत् ॥१३७॥
न चेर्ष्या स्त्रीषु कर्तव्या रक्ष्या दाराश्च सर्वशः।

अपना तथा दूसरेका अपवाद न करे। हे भरतश्रेष्ठ! ऐसा वर्णित है, कि परिवाद अधर्मका हेतु हुआ करता है। हे पुरुषोत्तम! न्यूनाङ्गी स्त्री और कन्याको परित्याग करे, तुल्य प्रवर, विरुद्धाङ्गी अधिकाङ्गी, मातृकुलमें उत्पन्न हुई, वर्षीयसी, प्रव्रजिता, पतिव्रता, निकृष्टवर्णा और श्रेष्ठ वर्णवाली कन्या परिवर्जन करे। बुद्धिमान् मनुष्य कुलशील को विना जाने तथा हीन कुलमें उत्पन्न हुई स्त्रीके सङ्ग रमण न करे। तुम्हें पिङ्गल वर्णवाली और कुष्ठ रोगग्रस्त स्त्रीगमन करना योग्य नहीं है। हे नरनाथ अपस्मार युक्त पुरुषके गृहमें जो कन्या उत्पन्न हुई, जो कन्या श्वित्ररोगयुक्त और क्षयी पुरुषके कुलमें उत्पन्न हुई हो तथा जो कन्या अत्यन्त हीन कुलमें जन्मी हो उसे ग्रहण न करे। १३०—१३४

जो कन्या सुलक्षण तथा श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त हो, मनोहर और दर्शनीय हो उसके साथ तुम विवाह कर सकते हो। हे युधिष्ठिर! महत् वंश तथा सदृशकुल में विवाह करना योग्य है, ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाले मनुष्य हीनवर्णवाली और पतित स्त्रीको ग्रहण न करे। यत्नपूर्वक तीनों अग्नि उत्पन्न करके वेदमें

महाभारत

आर्योंके विजयका प्राचीन इतिहास

इस समय तक छपकर तैयार पर्व

पर्वका नाम	अंक	कुल अंक	पृष्ठसंख्या	मूल्य	डा. व्यय
१ आदिपर्व	[१ से ११]	११	११२५	६) छः	रु १)
२ सभापर्व	[१२ " १५]	४	३५६	२) दो	।-)
३ वनपर्व	[१६ " ३०]	१५	१५३८	८) आठ	१।)
४ विराटपर्व	[३१ " ३३]	३	३०६	१॥) डेढ	।-)
५ उद्योगपर्व	[३४ " ४२]	९	९५३	५) पांच	१)
६ भीष्मपर्व	[४३ " ५०]	८	८००	४) चार	॥।)
७ द्रोणपर्व	[५१ " ६४]	१४	१३६४	७॥) साडेसात	१।=)
८ कर्णपर्व	[६५ " ७०]	६	६३७	३॥) साडेतीन	,, ॥)
९ शल्यपर्व	[७१ " ७४]	४	४३५	२॥) अढाइ	" ।=)
१० सौप्तिकपर्व	[७५]	१	१०४	॥) बारह आ.	।-)
११ स्त्रीपर्व	[७६]	१	१०८	॥) "	।)
१२ शान्तिपर्व ।					
१ राजधर्मपर्व	[७७—८३]	७	६९४	३॥) साडे तीन	॥)
२ आपद्धर्मपर्व	[८४—८५]	२	२३२	१।) सवा	।-)
३ मोक्षधर्मपर्व	[८६—९६]	११	११०७	६) छः	१)

कुल मूल्य ५२।) कुल डा. व्य. ९।=)

सूचना— ये पर्व छप कर तैयार हैं। अतिशीघ्र मंगवाइये। मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेज देंगे तो आधा डाकव्यय माफ करेंगे; अन्यथा प्रत्येक रु० के मूल्यके ग्रंथको तीन आने डाकव्यय मूल्यके अलावा देना होगा। मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्री० दा० सातवलेकर, भारतमुद्रणालय, औंध जि० सातारा.

REGISTERED NO. B. 1819

अङ्क १०४ ॥ ॐ ॥ [अनुशासनपर्व ८]

महाभारत ।

भाषा-भाष्य-समेत

संपादक-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)

महाभारत ।

प्रतिमास १०० पृष्ठोंका एक अंक प्रसिद्ध होता है।

१२ अंकोंका अर्थात् १२०० पृष्ठोंका मूल्य म० आ० से ६) रु० और वी. पी. से ७) रु० है।

मंत्री-स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)

१२ अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी. पी. से ७) विदेशके लिये ८)

अनायुष्या भवेदीर्ष्या तस्मादीर्ष्यां विवर्जयेत् ॥१३८॥
अनायुष्यं दिवा स्वप्नं तथाऽभ्युदितशायिता ।
प्रगे निशामाशु तथा नैवोच्छिष्टाः स्वपन्ति वै ॥१३९॥
पारदार्यमनायुष्यं नापितोच्छिष्टता तथा ।
यत्नतो वै न कर्तव्यमभ्यासश्चैव भारत ॥ १४० ॥
सन्ध्यायां च न भुञ्जीत न स्नायेन्न तथा पठेत् ।
प्रयतश्च भवेत्तस्यां न च किञ्चित्समाचरेत् ॥ १४१ ॥
ब्राह्मणान्पूजयेच्चापि तथा स्नात्वा नराधिप ।
देवांश्च प्रणमेत्स्नातो गुरूंश्चाप्यभिवादयेत् ॥ १४२ ॥
अनिमन्त्रितो न गच्छेत यज्ञं गच्छेत दर्शकः ।
अनर्चिते ह्यनायुष्यं गमनं तत्र भारत ॥ १४३ ॥
न चैकेन परिव्रज्यं न गन्तव्यं तथा निशि ।
अनागतायां सन्ध्यायां पश्चिमायां गृहे वसेत् ॥१४४॥
मातुः पितुर्गुरूणां च कार्यमेवानुशासनम् ।
हितं चाप्यहितं चापि न विचार्यं नरर्षभ ॥ १४५ ॥

जो सब क्रिया वर्णित हुई है, ब्राह्मणोंके द्वारा उनका अनुष्ठान करे। स्त्रियोंके विषयमें ईर्षा न करनी चाहिये, स्त्रियों-की सब प्रकारसे रक्षा करनी उचित है; स्त्रियोंके विषयमें ईर्षा करनेसे आयु घटती है, इसलिये ईर्षा न करनी चाहिये दिनका तथा भोरका सोना आयुको घटाता है, जो लोग रात्रिके प्रथमभागमें सोते तथा जूठे रहके निद्रित होते हैं, वे अल्पायु होते हैं। (१३५—१३९)

परनारी हरनेसे आयु घटती है, क्षौर कर्म कराके स्नान न करनेसे आयुकी न्हास हुआ करती है। हे भारत! स-न्ध्याके समय भोजन, अध्ययन और स्नान न करना चाहिये; उस समय ध्यानयुक्त होवे और कुछ कार्य न करे। हे भारत! स्नान करके ब्राह्मणोंकी पूजा करे, व्रती होकर देवपूजा करे, और गुरुजनोंको प्रणाम करे। हे भारत! विना निमन्त्रित हुए पुरुष कहीं न जावे केवल यज्ञस्थल देखनेके लिये जा सकता है, जाके सत्कृत न होनेसे आयु क्षीण होती है। (१४०—१४३)

एक पुरुषके साथ देशान्तरमें जाना उचित नहीं है, और रात्रिके समय मार्ग में चलना अनुचित है, सन्ध्या न होते ही गृहमें आके निवास करना चाहिये। माता, पिता और गुरुजनोंकी आज्ञा

धनुर्वेदे च वेदे च यत्नः कार्यो नराधिप।
हस्तिपृष्ठेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु चैव ह ॥ १४६ ॥
यत्नवान्भव राजेन्द्र यत्नवान्सुखमेधते।
अप्रधृष्यश्च शत्रूणां भृत्यानां स्वजनस्य च ॥ १४७ ॥
प्रजापालनयुक्तश्च न क्षतिं लभते क्वचित्।
युक्तिशास्त्रं च ते ज्ञेयं शब्दशास्त्रं च भारत ॥१४८॥
गान्धर्वशास्त्रं च कलाः परिज्ञेया नराधिप।
पुराणमितिहासाश्च तथाऽऽख्यानानि यानि च ॥१४९॥
महात्मनां च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेव ते।
पत्नीं रजस्वलां या च नाभिगच्छेन्न चाह्वयेत् ॥१५०॥
स्नातां चतुर्थे दिवसे रात्रौ गच्छेद्विचक्षणः।
पञ्चमे दिवसे नारी षष्ठेऽहनि पुमान्भवेत् ॥ १५१ ॥
एतेन विधिना पत्नीमुपगच्छेत पण्डितः।
ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणि पूजनीयानि सर्वशः ॥ १५२ ॥
यष्टव्यं च यथाशक्ति यज्ञैर्विविधदक्षिणैः।

माननी उचित है। उनके उपदेशसे चाहे भलाई हो वा बुराई होवे, किसी भांति उसमें विचार करना उचित नहीं है। हे भारत! धनुर्वेद, वेदपाठ, हाथी और घोडोंकी पीठपर चढने और रथ हांकने के विषयमें यत्न करना योग्य है। हे राजेन्द्र! तुम्हें यत्नवान होना चाहिये, यत्नवान मनुष्य सुखी होता है और शत्रुओं सेवकों तथा स्वजनोंके विषयमें अनभिभवनीय हुआ करता है, प्रजा पालनेमें नियुक्त रहके कहीं भी क्षतिग्रस्त नहीं होता। हे भरतकुलवर्धन नरनाथ! तुम्हें युक्तिशास्त्र, शब्दशास्त्र, गन्धर्व और नृत्यगीतादि विद्या जाननी योग्य है; पुराण, इतिहास, आख्यान और महानुभाव मनुष्योंके चरितोंको सदा सुनना उचित है। (१४४—१५०)

बुद्धिमान मनुष्य रजस्वला स्त्रीके निकट न जावे और उसे आवाहन भी न करे, चौथे दिन ऋतुस्नात स्त्रीके निकट जावे; पांचवें दिनमें कन्या और छठे दिनमें पुत्र जन्मता है, पण्डित पुरुष इसही विधिके अनुसार भार्याके निकट जाय। स्वजन, सम्बन्धी और मित्रगण सब भांतिसे पूजनीय हैं। शक्तिके अनुसार विविध दक्षिणायुक्त यज्ञसे देवताओंकी पूजा करना चाहिये।

अत ऊर्ध्वमरण्यं च सेवितव्यं नराधिप ॥ १५३ ॥
एष ते लक्षणोद्देश आयुष्याणां प्रकीर्तितः।
शेषस्त्रैविद्यवृद्धेभ्यः प्रत्याहार्यो युधिष्ठिर ॥ १५४ ॥
आचारो भूतिजनन आचारः कीर्तिवर्धनः।
आचाराद्वर्धते ह्यायुराचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ १५५ ॥
आगमानां हि सर्वेषामाचारः श्रेष्ठ उच्यते।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विवर्धते ॥ १५६ ॥
एतद्यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत्।
अनुकम्प्य सर्ववर्णान् ब्रह्मणा समुदाहृतम् ॥ १५७ ॥ [५०४४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे आयुष्याख्याने चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

युधिष्ठिर उवाच– यथा ज्येष्ठः कनिष्ठेषु वर्तेत भरतर्षभ।
कनिष्ठाश्च यथा ज्येष्ठे वर्तेरंस्तद्ब्रवीहि मे ॥ १ ॥
भीष्म उवाच– ज्येष्ठवत्तात वर्तस्व ज्येष्ठोऽसि सततं भवान्।
गुरोर्गरीयसी वृत्तिर्या च शिष्यस्य भारत ॥ २ ॥

हे नरनाथ! इसके अनन्तर वनवासी होना उचित है। (१५०—१५३)

हे युधिष्ठिर! मैंने तुम्हारे निकट आयुष्कर लक्षणोंको संक्षेपमें कहा है, अवशिष्ट लक्षणोंको तीनों वेदोंके जाननेवाले पण्डितोंके समीप मालूम करना। आचारसे ऐश्वर्य होता है, आचारही कीर्त्तिको बढाता है, आचारसे ही आयु बढती है, आचारही अलक्षणोंको हरता है, सब शास्त्रोंमें आचार ही श्रेष्ठरूपसे वर्णित हुआ है। आचारसे ही धर्म होता है, धर्मसे ही परमायुकी वृद्धि हुआ करती है। ब्रह्माने सब लोगोंके विषयमें कृपा करके यह यशदायक, आयु बढानेवाला और स्वर्ग सुखकर महत् स्वस्त्ययन कहा है। (१५४–१५७)

अनुशासनपर्वमें १०४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १०५ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! जेठा भाई कनिष्ठ सहोदरोंके सङ्ग जैसा व्यवहार करे और कनिष्ठोंको जेठे भाईके साथ जैसा आचरण करना योग्य है, वह विषय आप मेरे समीप वर्णन करें। (१)

भीष्म बोले, हे तात! तुम ज्येष्ठकी भांति सदा व्यवहार करते हो, क्यों कि तुम ही जेठे हो। हे भारत! गुरुके विषयमें शिष्योंको जैसा व्यवहार करना योग्य है, अकृतप्रज्ञ गुरुके निकट शिष्य-

न गुरावकृतप्रज्ञे शक्यं शिष्येण वर्तितुम्।
गुरोर्हि दीर्घदर्शित्वं यत्तच्छिष्यस्य भारत ॥ ३ ॥
अन्धः स्यादन्धवेलायां जडः स्यादपि चाऽबुधः।
परिहारेण तद् ब्रूयाद्यस्तेषां स्याद्व्यतिक्रमः ॥ ४ ॥
प्रत्यक्षं भिन्नहृदया भेदयेयुः कृतं नराः।
श्रियाऽभितप्ताः कौन्तेय भेदकामास्तथाऽरयः ॥ ५ ॥
ज्येष्ठः कुलं वर्धयति विनाशयति वा पुनः।
हन्ति सर्वमपि ज्येष्ठः कुलं यत्रावजायते ॥ ६ ॥
अथ यो विनिकुर्वीत ज्येष्ठो भ्राता यवीयसः।
अज्येष्ठः स्यादभागश्च नियम्यो राजभिश्च सः ॥ ७ ॥
निकृती हि नरो लोकान्पापान् गच्छत्यसंशयम्।
विदुलस्येव तत्पुष्पं मोघं जनयितुः स्मृतम् ॥ ८ ॥
सर्वानर्थाः कुले यत्र जायते पापपूरुषः।
अकीर्तिं जनयत्येव कीर्तिमन्तर्दधाति च ॥ ९ ॥
सर्वे चापि विकर्मस्था भागं नार्हन्ति सोदराः।
नाप्रदाय कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम् ॥ १० ॥

गण उस प्रकार उपस्थित नहीं रह सकते। हे भारत! गुरुके लिये जैसी दीर्घ दर्शिता होनी चाहिये शिष्योंकोभी वैसी ही दूरदर्शिताकी आवश्यकता होती है। गुरुके दोष देखनेके समय अन्धा होवे, अबुधपुरुष जड होके रहे उसमें यदि कुछ व्यतिक्रम रहे, तो उस विषय को टालके अन्य वार्ता करे। हे कौन्तेय! शत्रुगण भातृभेदकी इच्छा करते हैं उनकी श्री देखकर उनका हृदय विदीर्ण होता है, इसलिये वे भाइयोंमें फूट करा देते हैं। (२—५)

ज्येष्ठ चाहे वंशकी वृद्धि करे अथवा कुलका नाश करे; वह सब कुछ विनष्ट कर सकता है, क्योंकि उसहीसे वंशकी उत्पत्ति होती है। जो ज्येष्ठ भ्राता कनिष्ठोंको ठगता है, वह जेठा नहीं है, वह अंशभागी नहीं होसकता, राजाओंको योग्य है, कि वैसे जेठेको शासित करें। प्रवञ्चक मनुष्य निःसन्देह पापलोकोंमें जाता है, ऐसा वर्णित है, कि वेतवृक्षके पुष्प सदृश पिताका वैसा पुत्र निरर्थक ही है। जिस वंशमें पापी मनुष्य जन्म लेता है, वहां सब अनर्थ हुआ करते हैं, वह अकीर्ति उत्पन्न करके कीर्ति लोप करता है। (६—९)

अनुपघ्नन्पितुर्दायं जङ्घाश्रमफलोऽध्वगः ।
स्वयमीहितलब्धं तु नाकामो दातुमर्हति ॥ ११ ॥
भ्रातॄणामविभक्तानामुत्थानमपि चेत्सह ।
न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात्कदाचन ॥ १२ ॥
न ज्येष्ठो वाऽवमन्येत दुष्कृतः सुकृतोऽपि वा ।
यदि स्त्री यद्यवरजः श्रेयश्चेत्तत्तदाचरेत् ॥ १३ ॥
धर्मं हि श्रेय इत्याहुरिति धर्मविदो जनाः ।
दशाचार्यानुपाध्याय उपाध्यायान्पिता दश ॥ १४ ॥
दश चैव पितॄन्माता सर्वां वा पृथिवीमपि ।
गौरवेणाभिभवति नास्ति मातृसमो गुरुः ॥ १५ ॥
माता गरीयसी यच्च तेनैतां मन्यते जनः ।
ज्येष्ठो भ्राता पितृसमो मृते पितरि भारत ॥ १६ ॥
स ह्येषां वृत्तिदाता स्यात्स चैतान्प्रतिपालयेत् ।
कनिष्ठास्तं नमस्येरन्सर्वे छन्दानुवर्तिनः ॥ १७ ॥

कुकर्मी सहोदरगण पैतृक अंश ग्रहण करनेके योग्य नहीं होते, कनिष्ठोंको विना हिस्सा दिये जेठा भाई कदापि दाय-विभाग न करे। प्रवासी पुरुष पैतृक धनमें हस्तक्षेप न करके निज जङ्घाश्रम से उत्पन्न हुआ फल पाता है, अकाम मनुष्य स्वयं समाहित होनेके प्राप्त धन को दान करनेमें समर्थ नहीं होता, अ-विभक्त भाइयोंको भोजनादि तथा धन विभाग एक साथ करना योग्य है, पिता कदापि पुत्रोंको विषम भाग प्रदान न करे। जेठा भाई चाहे दुष्कृती हो अथवा सुकृती हो, कदापि उसकी अव-ज्ञा न करनी चाहिये। (१०-१३)

स्त्री अथवा कनिष्ठ भ्राता यदि दुष्कृत कर्म करें, तौभी जिस भांति उनका कल्याण हो, वैसा कार्य करे। धर्म जाननेवाले पुरुष कल्याणको ही धर्म कहते हैं, दश आचार्योंसे उपाध्याय श्रेष्ठ है, दश उपाध्यायोंसे पिता श्रेष्ठ है और दश पिताओंसे माता श्रेष्ठ कही गई है, माता गौरवके सहारे सारी पृथ्वीको अभिभव करती है। इसलिये माताके समान गुरु नहीं है, माताके गरीयसी होनेसे ही लोग उसको मान्य किया करते हैं। (१३—१६)

हे भारत ! पिताके परलोकमें जानेपर जेठा भाई पितातुल्य है। क्यों कि वही कनिष्ठ भाइयोंका वृत्ति दाता है, वही इन्हें प्रतिपालन करता है,

तमेव चोपजीवेरन्यथैव पितरं तथा।
शरीरमेतौ सृजतः पिता माता च भारत ॥ १८ ॥
आचार्यशास्ता या जातिः सा सत्या साऽजराऽमरा।
ज्येष्ठा मातृसमा चापि भगिनी भरतर्षभ ॥ १९ ॥
भ्रातुर्भार्या च तद्वत्स्याद्यस्या बाल्ये स्तनं पिबेत् ॥२०॥ [५०६४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ज्येष्ठकनिष्ठवृत्तिर्नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

युधिष्ठिर उवाच– सर्वेषामेव वर्णानां म्लेच्छानां च पितामह।
उपवासे मतिरियं कारणं च न विद्महे ॥ १ ॥
ब्रह्मक्षत्रेण नियमाश्चर्तव्या इति नः श्रुतम्।
उपवासे कथं तेषां कृत्यमस्ति पितामह ॥ २ ॥
नियमांश्चोपवासांश्च सर्वेषां ब्रूहि पार्थिव।
आप्नोति कां गतिं तात उपवासपरायणः ॥ ३ ॥
उपावासः परं पुण्यमुपवासः परायणम्।
उपोष्येह नरश्रेष्ठ किं फलं प्रतिपद्यते ॥ ४ ॥

छोटे भाई बडेके वशवर्ती होके उसे नमस्कार करें और जैसे पिताके आसरे जीवन बिताते थे, वैसे ही जेठे भाईके अवलम्बसे जीवनका समय बितावें। हे भारत! मातापिता इस शरीरको उत्पन्न करते हैं और आचार्यके शासनके अनुसार जो उत्पत्ति होती है, वह सत्य, अजर तथा अमर है। हे भरतश्रेष्ठ! जेठी बहिन मातातुल्य और जेठे भाईकी भार्या भी मातृसदृश है, क्यों कि बाल्यावस्थामें उसके स्तनका भी दूध पीया जाता है। (१७—२०)

अनुशासनपर्वमें १०५ अध्याय समाप्त

अनुशासनपर्वमें १०६ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, सब वर्णों तथा म्लेच्छोंकी भी उपवास करनेकी मति देखता हूं, किन्तु मैं इसका कारण कुछ भी नहीं जानता, ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी विषय में ही मैंने नियमाचरणकी विधि सुनी है। हे पितामह! परन्तु उन लोगोंको किस प्रकार उपवास करना चाहिये? हे राजन्! सबके ही नियम और उपवासके विषय वर्णन करो। (१–३)

हे तात! उपवासयुक्त मनुष्यको कैसी गति प्राप्त होती है? उपवास परम पुण्य और उपवासही परम अवलम्ब है। हे नरश्रेष्ठ! इस लोकमें उपवास करनेसे क्या फल मिलता है? किसके सहारे

अधर्मान्मुच्यते केन धर्ममाप्नोति वा कथम् ।
स्वर्गं पुण्यं च लभते कथं भरतसत्तम ॥ ५ ॥
उपोष्य चापि किं तेन प्रदेयं स्यान्नराधिप ।
धर्मेण च सुखानर्थाँल्लभेयेन ब्रवीहि तम् ॥ ६ ॥
वैशम्पायन उवाच–एवं ब्रुवाणं कौन्तेयं धर्मज्ञं धर्मतत्त्ववित् ।
धर्मपुत्रमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥ ७ ॥
भीष्म उवाच–इदं खलु मया राजन् श्रुतमासीत्पुरातनम् ।
उपवासविधौ श्रेष्ठा गुणा ये भरतर्षभ ॥ ८ ॥
ऋषिमङ्गिरसं पूर्वं पृष्टवानस्मि भारत ।
यथा मां त्वं तथैवाहं पृष्टवांस्तं तपोधनम् ॥ ९ ॥
प्रश्नमेतं मया पृष्टो भगवानग्निसम्भवः ।
उपवासविधिं पुण्यमाचष्ट भरतर्षभ ॥ १० ॥
अङ्गिरा उवाच–ब्रह्मक्षत्रे त्रिरात्रं तु विहितं कुरुनन्दन ।
द्वित्रिरात्रमथैकाहं निर्दिष्टं पुरुषर्षभ ॥ ११ ॥
वैश्याः शूद्राश्च यन्मोहादुपवासं प्रचक्रिरे ।
त्रिरात्रं वा द्विरात्रं वा तयोर्व्युष्टिर्न विद्यते ॥ १२ ॥

मनुष्य अधर्मसे छुटता है? हे भरतसत्तम ! मनुष्य किस प्रकार पुण्यात्मा होता और स्वर्गलोक पाता है ? हे नरनाथ ! उपवास करके क्या दान किया जाता है ? जिस धर्मके सहारे सब सुखदायक विषय प्राप्त होते हैं आप उसे वर्णन करिये। (३—६)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जब धर्मपुत्र धर्मज्ञ कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने ऐसा प्रश्न किया तब धर्मतत्त्वके जाननेवाले शन्तनुनन्दन भीष्म उनसे कहने लगे। (७)

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ महाराज ! उपवासविषयमें जो सब गुण हैं, उस विषयमें मैंने यह पुरातन प्रबन्ध सुना था। हे भारत ! जैसा तुमने मुझसे पूछा है, इस ही भांति मैंने पहले तपोधन अङ्गिरा ऋषिसे प्रश्न किया था। हे भरतसत्तम ! जब मैंने अग्निपुत्र अङ्गिरा ऋषिसे इस पवित्र उपवास विषयमें प्रश्न किया, तब उन्होंने मेरे प्रश्नका उत्तर दिया। (८—१०)

अङ्गिरा बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ कुरुनन्दन! ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके लिये त्रिरात्र उपवास विहित है, द्विरात्र, त्रिरात्र और एक रात्र भी निर्दिष्ट है, जो वैश्य

चतुर्थभक्तक्षपणं वैश्ये शूद्रे विधीयते।
त्रिरात्रं न तु धर्मज्ञैर्विहितं धर्मदर्शिभिः ॥ १३ ॥
पञ्चम्यां वाऽपि षष्ठ्यां च पौर्णमास्यां च भारत।
उपोष्य एकभक्तेन नियताऽऽत्मा जितेन्द्रियः ॥ १४॥
क्षमावान्रूपसम्पन्नः श्रुतवांश्चैव जायते।
नानपत्यो भवेत्प्राज्ञो दरिद्रो वा कदाचन ॥ १५ ॥
यजिष्णुः पञ्चमीं षष्ठीं कुले भोजयते द्विजान्।
अष्टमीमथ कौरव्य कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ॥ १६ ॥
उपोष्य व्याधिरहितो वीर्यवानभिजायते।
मार्गशीर्षं तु यो मासमेकभक्तेन संक्षिपेत् ॥ १७ ॥
भोजयेच्च द्विजान् शक्त्या स मुच्येद्व्याधिकिल्बिषैः।
सर्वकल्याणसंपूर्णः सर्वौषधिसमन्वितः ॥ १८ ॥
उपोष्य व्याधिरहितो वीर्यवानभिजायते।
कृषिभागी बहुधनो बहुधान्यश्च जायते ॥ १९ ॥

और शूद्र मोहके वशमें होकर द्विरात्र अथवा त्रिरात्र उपवास करते हैं, उन्हें उससे कुछ भी फल नहीं मिलता। वैश्य और शूद्रके लिये चतुर्थ भक्त क्षपण अर्थात् एक दिन अहोरात्र उपवास कहा गया है और पहले तथा दूसरे दिन एकबार भोजन करना विहित है, धर्म-दर्शी धर्मज्ञ ऋषियोंने वैश्यों और शूद्रों-के लिये त्रिरात्र उपवासकी विधि नहीं कही है। (११—१३)

हे भारत! पञ्चमी, षष्ठी और पौर्ण-मासी तिथिमें नियतात्मा जितेन्द्रिय मनुष्य एक-भक्त-द्वारा उपवास करनेसे क्षमावान्, रूपवान और श्रुतवान हुआ करता है। बुद्धिमान मनुष्य इसी भांति उपवास करनेसे कदापि पुत्रहीन तथा दरिद्र नहीं होता। पञ्चमी और षष्ठी तिथिमें यज्ञ करनेवाला मनुष्य सत्कुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंको भोजन करावे। हे कुरुनन्दन! कृष्णपक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें उपवास करनेसे मनुष्य व्याधिरहित तथा वीर्यवान होता है। मार्गशीर्ष महीनेमें जो पुरुष दिनमें एक बार भोजन करके महीना व्यतीत करता और भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भो-जन कराता है, वह व्याधि तथा पापोंसे छूट जाता है। (१४-१७)

सर्वकल्याणमय तथा सर्वौषधियुक्त मनुष्य पूर्वोक्त तिथिमें उपवास करनेसे व्याधिरहित और वीर्यवान होके जन्मता

पौषमासं तु कौन्तेय भक्तेनैकेन यः क्षिपेत् ।
सुभगो दर्शनीयश्च यशोभागी च जायते ॥ २० ॥
माघं तु नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।
श्रीमत्कुले ज्ञातिमध्ये स महत्त्वं प्रपद्यते ॥ २१ ॥
भगदैवतमासं तु एकभक्तेन यः क्षिपेत् ।
स्त्रीषु वल्लभतां याति वश्याश्चास्य भवन्ति ताः ॥२२॥
चैत्रं तु नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।
सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये कुले महति जायते ॥ २३ ॥
निस्तरेदेकभक्तेन वैशाखं यो जितेन्द्रियः ।
नरो वा यदि वा नारी ज्ञातीनां श्रेष्ठतां व्रजेत् ॥२४॥
ज्येष्ठामूलं तु यो मासमेकभक्तेन संक्षिपेत् ।
ऐश्वर्यमतुलं श्रेष्ठं पुमान्स्त्री वा प्रपद्यते ॥ २५ ॥
आषाढमेकभक्तेन स्थित्वा मासमतन्द्रितः ।
बहुधान्यो बहुधनो बहुपुत्रश्च जायते ॥ २६ ॥
श्रावणं नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।
यत्र तत्राभिषेकेण युज्यते ज्ञातिवर्धनः ॥ २७ ॥

है, वह कृषिभागी तथा अधिक धनधान्ययुक्त होता है। हे कौन्तेय ! जो लोग दिनमें एक वार खाके पूस महीना बिताते हैं, वे सुन्दर, दर्शनीय और यशभागी होते हैं। जो लोग माघ महीनेभर दिनमें एक वार भोजन करके समय व्यतीत करते हैं, वह लक्ष्मीयुक्त वंशमें स्वजनोंके बीच महत्त्व पाते हैं। फाल्गुन महीने भर जो लोग दिनमें एक वार भोजन करके समय बिताते हैं, वे स्त्रियोंके प्यारे होते और स्त्रियें उनके वशमें रहती हैं। जो लोग दिनमें एक वार भोजन करके चैत्र महीना बिताते हैं, वे सुवर्ण, मणि और मुक्तायुक्त महत्कुलमें जन्मते हैं। (१८-२३)

जो जितेन्द्रिय स्त्री अथवा पुरुष दिनमें एक वार भोजन करके वैसाख महिना व्यतीत करता है, उसे स्वजनोंमें श्रेष्ठता प्राप्त होती है। जेठ महीनेमें जो लोग दिनमें एक वार भोजन करके समय बितानेवाले पुरुष वा स्त्री उत्तम अतुल ऐश्वर्य प्राप्त होती है। जो लोग एकाहारी और अतन्द्रित होकर आषाढ महीना व्यतीत करते हैं, वे अधिक धनधान्ययुक्त तथा बहुतसे पुत्रोंके पिता होते हैं। जो मनुष्य सदा एक वार

प्रौष्ठपदं तु यो मासमेकाहारो भवेन्नरः।
गवाढ्यं स्फीतमचलमैश्वर्यं प्रतिपद्यते ॥ २८ ॥
तथैवाश्वयुजं मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
मृजावान् वाहनाढ्यश्च बहुपुत्रश्च जायते ॥ २९ ॥
कार्तिकं तु नरो मासं यः कुर्यादेकभोजनम्।
शूरश्च बहुभार्यश्च कीर्तिमांश्चैव जायते ॥ ३० ॥
इति मासा नरव्याघ्र क्षिपतां परिकीर्तिताः।
तिथीनां नियमा ये तु शृणु तानपि पार्थिव ॥ ३१ ॥
पक्षे पक्षे गते यस्तु भक्तमश्नाति भारत।
गवाढ्यो बहुपुत्रश्च बहुभार्यः स जायते ॥ ३२ ॥
मासि मासि त्रिरात्राणि कृत्वा वर्षाणि द्वादश।
गणाधिपत्यं प्राप्नोति निःसपत्नमनाविलम् ॥ ३३ ॥
एते तु नियमाः सर्वे कर्तव्याः शरदो दश।
द्वे चान्ये भरतश्रेष्ठ प्रवृत्तिमनुवर्तता ॥ ३४ ॥
यस्तु प्रातस्तथा सायं भुञ्जानो नान्तरा पिबेत्।
अहिंसानिरतो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ३५ ॥

भोजन करके सावन महिना बिताता है, वह किसी स्थानमें अवश्य अभिषिक्त होकर ज्ञातिवर्धक हुआ करता है। (२४-२७)

जो मनुष्य भादों महीनेमें एकाहारी होके रहता है, वह धनाढ्य होके समृद्धि तथा अचल ऐश्वर्य पाता है और जो मनुष्य एकाहारी होके आश्विन महीना बिताता है, वह पतिव्रता स्त्री और बहु-पुत्रयुक्त तथा वाहनानाढ्य होता है। कार्तिक महीनेमें जो मनुष्य एकाहारी होके रहता है, वह शूर बहुतसी स्त्रियों-से युक्त और कीर्तिमान होता है। हे नरश्रेष्ठ महाराज! प्रतिमहीनेमें एका-हारी पुरुषोंको जो फल मिलता है, वह कहा गया; अब तिथियोंके नियम सुनो। हे भारत! एक एक पक्ष बीतनेपर जो लोग भोजन करते हैं वे गोधन, बहु पुत्रयुक्त तथा दीर्घायु होते हैं। २८-३२

बारह वर्षतक जो लोग महीने महीने त्रिरात्र व्रत करते हैं उन्हें अनाविल, निःसपत्नी और गणाधिपत्य प्राप्त होता है। हे भरतश्रेष्ठ! प्रवृत्तिके वशवर्ती मनुष्योंको बारह वर्षतक इन नियमोंका और दोका प्रतिपालन करना चाहिये। हे नरनाथ! जो पुरुष भोरसे संध्या-

षड्भिः स वर्षैर्नृपते सिध्यते नात्र संशयः ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ३६ ॥
अधिवासे सोऽप्सरसां नृत्यगीतविनादिते ।
रमते स्त्रीसहस्राढ्ये सुकृती विरजो नरः ॥ ३७ ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभं विमानमधिरोहति ।
पूर्णं वर्षसहस्रं च ब्रह्मलोके महीयते ॥ ३८ ॥
तत्क्षयादिह चागम्य माहात्म्यं प्रतिपद्यते ।
यस्तु संवत्सरं पूर्णमेकाहारो भवेन्नरः ॥ ३९ ॥
अतिरात्रस्य यज्ञस्य स फलं समुपाश्नुते ।
दश वर्षसहस्राणि स्वर्गे च स महीयते ॥ ४० ॥
तत्क्षयादिह चागम्य माहात्म्यं प्रतिपद्यते ।
यस्तु संवत्सरं पूर्णं चतुर्थं भक्तमश्नुते ॥ ४१ ॥
अहिंसानिरतो नित्यं सत्यवाग्विजितेन्द्रियः ।
वाजपेयस्य यज्ञस्य स फलं समुपाश्नुते ॥ ४२ ॥
दश वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।
षष्ठे काले तु कौन्तेय नरः संवत्सरं क्षिपन् ॥ ४३ ॥

पर्यन्त भोजन करनेके अनन्तर जल नहीं पीता और अहिंसामें रत होके अग्निमें होम करता है, वह निःसंदेह छः वर्षके बीच सिद्ध होता है, वही अग्नि-ष्टोम यज्ञका फल पाता है, वह रजोगुण से रहित सुकृती मनुष्य अप्सराओंके नृत्यगीतयुक्त स्थानमें सहस्र स्त्रियोंमें घिरके क्रीडा करता है, तपाये हुए सुवर्णसदृश प्रभायुक्त विमानपर चढता है और पूरे एक हजार वर्षतक ब्रह्मलोक में निवास करता है; अन्तमें पुण्यक्षीण होनेपर इस लोकमें आके महानुभावता-को प्राप्त होता है। (३३-३९)

जो मनुष्य पूरे वर्ष भरतक एकाहार करता है, वह अतिरात्र यज्ञका फल भोग किया करता है और दश हजार वर्ष स्वर्गलोकमें निवास करके पुण्यक्षय होनेपर इस लोकमें आनेसे उसे बहुतसी सहायता मिलती है। जो लोग अहिंसा में रत, सत्यवादी जितेन्द्रिय होके संव-त्सरके चतुर्थ भाग अर्थात् तीन महीने तक एकाहारी होते हैं, वे वाजपेय यज्ञका फल भोगते और दस हजार वर्ष स्वर्गलोकमें निवास करते हैं। हे कौन्तेय ! दिनके छठवें भागमें भोजन करके जो मनुष्य एक वर्षतक समय

अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः।
चक्रवाकप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति ॥ ४४ ॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते।
अष्टमेन तु भक्तेन जीवन्संवत्सरं नृप ॥ ४५ ॥
गवामयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः।
हंससारसयुक्तेन विमानेन स गच्छति ॥ ४६ ॥
पञ्चाशतं सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते।
पक्षे पक्षे गते राजन्योऽश्नीयाद्वर्षमेव तु ॥ ४७ ॥
षण्मासानशनं तस्य भगवानङ्गिराऽब्रवीत्।
षष्टिवर्षसहस्राणि दिवमावसते च सः ॥ ४८ ॥
वीणानां वल्लकीनां च वेणूनां च विशांपते।
सुघोषैर्मधुरैः शब्दैः सुप्तः स प्रतिबोध्यते ॥ ४९ ॥
संवत्सरमिहैकं तु मासि मासि पिबेदपः।
फलं विश्वजितस्तात प्राप्नोति स नरो नृप ॥ ५० ॥
सिंहव्याघ्रप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति।
सप्ततिं च सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥ ५१ ॥

बिताते हैं। (३९-४३)

उन्हें अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है और वे चक्रवाकके द्वारा चलनेवाले विमानपर चढके गमन करते हैं तथा चालीस हजार वर्षतक देवलोकमें परम सुखसे निवास किया करते हैं। हे महाराज! जो मनुष्य दिनके आठवें भागमें भोजन करके वर्षभर जीवित रहते हैं, वे गवामय यज्ञका फल पाते हैं, हंस सारसयुक्त विमानपर चलते और पचास हजार वर्ष देवलोकमें प्रमुदित हुआ करते हैं। हे राजन्! एक पक्ष बीतनेपर दूसरे पक्षमें जो लोग भोजन किया करते हैं, उनका वर्ष भरके बीच छः महीना अनशन व्रत होता है, भगवान् आङ्गिराने कहा है, कि ऐसे व्रतधारी पुरुष साठ हजार वर्षतक स्वर्गलोकमें निवास करते हैं। (४४—४८)

हे नरनाथ! वे निद्रित होनेपर वीणा, वल्लकी और बांसुरीकी मधुर ध्वनिके सहारे जागते हैं। हे महाराज! जो लोग वर्ष भरके बीच एक महीनेतक केवल जल पीके जीवन धारण करते हैं, वे विश्वजित् यज्ञका फल पाते हैं और सिंहव्याघ्रयुक्त विमानके द्वारा चलते हैं तथा सत्तर हजार वर्षतक सुरलोकमें

मासादूर्ध्वं नरव्याघ्र नोपवासो विधीयते।
विधिं त्वनशनस्याहुः पार्थ धर्मविदो जनाः ॥ ५२ ॥
अनार्तो व्याधिरहितो गच्छेदनशनं तु यः।
पदे पदे यज्ञफलं स प्राप्नोति न संशयः ॥ ५३ ॥
दिवं हंसप्रयुक्तेन विमानेन स गच्छति।
शतं वर्षसहस्राणां मोदते स दिवि प्रभो ॥ ५४ ॥
शतं चाप्सरसः कन्या रमन्त्यपि तं नरम्।
आर्तो वा व्याधितो वाऽपि गच्छेदनशनं तु यः॥५५॥
शतं वर्षसहस्राणां मोदते स दिवि प्रभो।
काञ्चीनूपुरशब्देन सुप्तश्चैव प्रबोध्यते ॥ ५६ ॥
सहस्रहंसयुक्तेन विमानेन तु गच्छति।
स गत्वा स्त्रीशताकीर्णे रमते भरतर्षभ ॥ ५७ ॥
क्षीणस्याप्यायनं दृष्टं क्षतस्य क्षतरोहणम्।
व्याधितस्यौषधग्रामः क्रुद्धस्य च प्रसादनम् ॥ ५८ ॥
दुःखितस्यार्थमानाभ्यां दुःखानां प्रतिषेधनम्।

प्रमुदित होते हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! एक महीनेसे अधिक उपवास करनेकी विधि नहीं है। हे पार्थ! धर्म जाननेवाले पुरुष अनशन व्रत किया करते हैं, जो पुरुष अनार्त्त और व्याधिरहित होके अनशन अवलम्बन करता है, उसे निःसन्देह पद पदमें यज्ञका फल मिलता है, वह हंसयुक्त विमानके सहारे सुरलोकमें भ्रमण करता है, सौ हजार वर्षतक देवलोकमें प्रभु होके आनन्दित होता है, एक सौ अप्सरा उस पुरुषको प्रमुदित करती हैं। आर्त्त अथवा व्याधिग्रस्त मनुष्य यदि उपवास करे, तो वह सौ हजार वर्षतक सुरपुरमें आनन्द भोगता, निद्रित होके काञ्ची और नूपुरके शब्दसे जाग्रत होता और सहस्र हंसयुक्त विमानके सहारे गमन करता है। (४९—५७)

हे भरतश्रेष्ठ! वह स्वर्गमें जाके एक सौ स्त्रियोंसे युक्त उत्तम मनोहर स्थानमें रमण करता है। अनशन व्रतके द्वारा क्षीण लोगोंकी आप्यायन देखी गई है, घायल पुरुषके घाव आरोग्य हुए देखे गये हैं। उपवास व्याधियुक्त पुरुषके लिये परम औषधी है क्रुद्ध पुरुषोंको प्रसन्न करनेवाला, अर्थ और मानका हेतु तथा दुःखित पुरुषोंके दुःख दूर करनेका उपायस्वरूप है। सुख-

न चैते स्वर्गकामस्य रोचन्ते सुखमेधसः ॥ ५९ ॥
अतः स कामसंयुक्ते विमाने हेमसन्निभे ।
रमते स्त्रीशताकीर्णे पुरुषोऽलङ्कृतः शुचिः ॥ ६० ॥
स्वस्थः सफलसङ्कल्पः सुखी विगतकल्मषः ।
अनश्नन्देहमुत्सृज्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ६१ ॥
बालसूर्यप्रतीकाशे विमाने हेमवर्चसि ।
वैदूर्यमुक्ताखचिते वीणामुरजनादिते ॥ ६२ ॥
पताकादीपिकाकीर्णे दिव्यघण्टानिनादिते ।
स्त्रीसहस्रानुचरिते स नरः सुखमेधते ॥ ६३ ॥
यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु पाण्डव ।
तावन्त्येव सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ॥ ६४ ॥
नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातृसमो गुरुः ।
न धर्मात्परमो लाभस्तपो नानशनात्परम् ॥ ६५ ॥
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति पावनं दिवि चेह च ।
उपवासैस्तथा तुल्यं तपः कर्म न विद्यते ॥ ६६ ॥

संभोगके अभिलाषी क्षीणत्वादि अवस्था युक्त स्वर्गकाम मनुष्योंकी इन आप्यायन आदि विषयोंमें अभिरुचि नहीं होती बल्कि वैसे पुरुष अनशन आदि दुःख-सहिष्णु होके निज तपस्याकी वृद्धि करते हैं, इसलिये वे पवित्र पुरुष सकाम और अलंकृत होकर एक सौ स्त्रियोंसे युक्त सुवर्णसदृश विमानमें विहार किया करते हैं। (५७—६०)

स्वस्थ, सफल, संकल्पसुखी और निष्पाप पुरुष अनशन व्रत करके देह छोडनेके अनन्तर उसका फल भोगते हैं, वे लोग बाल सूर्य तथा सुवर्णसदृश प्रभायुक्त वैदूर्य मुक्ताखचित वीणा, पखावजकी ध्वनिसम्पन्न पताका, दीपिका और दिव्य घण्टा शब्दसे परिपूरित एक हजार स्त्रियोंसे भरे हुए विमानमें सुखभोग किया करते हैं। हे पाण्डव! उनके शरीरमें जितने रोएं रहते हैं, उतने हजार वर्षतक वे सुरपुरमें प्रमुदित होके वास करते हैं। वेदसे श्रेष्ठ शास्त्र नहीं है, माताके समान गुरु नहीं है, धर्मसे बढके परम लाभ कुछभी नहीं है और उपवाससे बढके दूसरी श्रेष्ठ तपस्या कुछ भी नहीं है। (६१—६५)

जैसे इस लोक और स्वर्गलोकमें ब्राह्मणोंसे पावन अन्य कोई नहीं है, वैसे ही उपवासके समान तप दूसरा

उपोष्य विधिवद्देवास्त्रिदिवं प्रतिपेदिरे ।
ऋषयश्च परां सिद्धिमुपवासैरवाप्नुवन् ॥ ६७ ॥
दिव्यवर्षसहस्राणि विश्वामित्रेण धीमता ।
क्षान्तमेकेन भक्तेन तेन विप्रत्वमागतः ॥ ६८ ॥
च्यवनो जमदग्निश्च वसिष्ठो गौतमो भृगुः ।
सर्व एव दिवं प्राप्ताः क्षमावन्तो महर्षयः ॥ ६९ ॥
इदमङ्गिरसा पूर्वं महर्षिभ्यः प्रदर्शितम् ।
यः प्रदर्शयते नित्यं न स दुःखमवाप्नुते ॥ ७० ॥
इमं तु कौन्तेय यथाक्रमं विधिं प्रवर्तितं ह्याङ्गिरसा महर्षिणा ।
पठेच यो वै शृणुयाच नित्यदा न विद्यते तस्य नरस्य किल्बिषम् ॥७१॥
विमुच्यते चापि स सर्वसङ्करैर्न चास्य दोषैरभिभूयते मनः ।
वियोनिजानां च विजानते रुतं ध्रुवां च कीर्तिं लभते नरोत्तमः ॥ ७२ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उपवासविधौ षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

युधिष्ठिर उवाच– पितामहेन विधिवद्यज्ञाः प्रोक्ता महात्मना ।
गुणाश्चैषां यथातथ्यं प्रेत्य चेह च सर्वशः ॥ १ ॥

कुछ भी नहीं है। देवताओंने विधि-पूर्वक उपवास करके त्रिदिवलोक पाया है, ऋषियोंको भी उपवाससे परम सिद्धि प्राप्त हुई है। बुद्धिशक्तिसे युक्त विश्वामित्रको सहस्र वर्षतक एकाहारी होनेसे क्षमा गुण प्राप्त हुआ था, इसीसे उन्हें ब्राह्मणत्व पद मिला। च्यवन, जमदग्नि, वसिष्ठ, गौतम और भृगु प्रभृति क्षमाशील महर्षिवृन्द स्वर्गलोकमें गये हैं। पहले समयमें अङ्गिराने यह विषय महर्षियोंके बीच कहा था, जो लोग सदा इसे प्रदर्शित करते हैं, वे दुःख नहीं पाते। (६५—७०)

हे कौन्तेय ! अङ्गिरा महर्षिके द्वारा यह विधि प्रचलित हुई है, जो मनुष्य सदा इसे पढते वा सुनते हैं, उनके सब पाप नष्ट होते हैं। जो उत्तम पुरुष इस विषयको सुनते वा पढते हैं वे सब सङ्कटोंसे छूट जाते हैं, उनका चित्त पापकर्ममें अभिभूत नहीं होता, वियोनिज यक्षादिकोंकी बोली जान सकते और निश्चय ही कीर्ति लाभ करते हैं। (७१—७३)

अनुशासनपर्वमें १०६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १०७ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! महा-

न ते शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं पितामह।
बह्वपकरणा यज्ञा नानासंभारविस्तराः ॥ २ ॥
पार्थिवै राजपुत्रैर्वा शक्याः प्राप्तुं पितामह।
नार्थन्यूनैरवगुणैरेकात्मभिरसंहतैः ॥ ३ ॥
यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं सदा भवेत्।
अर्थन्यूनैरवगुणैरेकात्मभिरसंहतैः ॥ ४ ॥
तुल्यो यज्ञफलैरेतैस्तन्मे ब्रूहि पितामह।
भीष्म उवाच–इदमङ्गिरसा प्रोक्तमुपवासफलात्मकम् ॥ ५ ॥
विधिं यज्ञफलैस्तुल्यं तन्निबोध युधिष्ठिर।
यस्तु कल्यं तथा सायं भुञ्जानो नान्तरा पिबेत् ॥ ६ ॥
अहिंसानिरतो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम्।
षड्भिरेव स वर्षैस्तु सिध्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥
तप्तकाञ्चनवर्णं च विमानं लभते नरः।
देवस्त्रीणामधीवासे नृत्यगीतनिनादिते ॥ ८ ॥
प्राजापत्ये वसेत्पद्मं वर्षाणामग्निसन्निभे।

तुमाव ब्रह्माके द्वारा विधिपूर्वक सब यज्ञ कहे गये हैं, और इस लोक तथा परलोकमें यज्ञोंके फल सब प्रकारसे वर्णित हुए हैं; परन्तु दरिद्र लोग उन यज्ञोंके फलको पानेमें समर्थ नहीं होते, क्यों कि यज्ञोंमें बहुतसे उपकरण तथा यज्ञकी सामग्री लानी होती है। हे पितामह! उसका फल राजा अथवा राजपुत्र ही पा सकते हैं, धनरहित, गुणहीन, अकेले और सहायता वर्जित मनुष्योंके द्वारा यज्ञ नहीं हो सकता। हे पितामह! इसलिये जो विधि सदा दरिद्रोंके करने योग्य और इन सब यज्ञफलोंके तुल्य हो, उसे ही मेरे समीप वर्णन करिये। (१—५)

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! अङ्गिराने कहा है, कि उपवास फलस्वरूप अनुष्ठान यज्ञफलके सदृश है; इसलिये तुम उसे सुनो। जो लोग अहिंसामें रत होके प्रति दिन अग्निमें होम करते हुए भोर और सन्ध्याके समय भोजन करके उक्त दोनों समयके बीच फिर भोजन नहीं करते, वे छः वर्षके बीच निःसन्देह सिद्ध होते हैं; वे मनुष्य तपाये हुए सुवर्ण-सदृश विमान पाते और देवस्त्रियोंके नृत्यगीत तथा बाजे युक्त स्थानमें ब्रह्मलोक वा अग्निके समीप सौ करोड वर्षतक निवास करते हैं। जो लोग

त्रीणि वर्षाणि यः प्राशेत्सततं त्वेकभोजनम् ॥ ९ ॥
धर्मपत्नीरतो नित्यमग्निष्टोमफलं लभेत् ।
यज्ञं बहुसुवर्णं वा वासवप्रियमाचरेत् ॥ १० ॥
सत्यवान्दानशीलश्च ब्रह्मण्यश्चानसूयकः ।
क्षान्तो दान्तो जितक्रोधः स गच्छति परां गतिम् ॥११॥
पाण्डुराभ्रप्रतीकाशे विमाने हंसलक्षणे ।
द्वे समाप्ते ततः पद्मे सोऽप्सरोभिर्वसेत्सह ॥ १२ ॥
द्वितीये दिवसे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ।
सदा द्वादशमासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ॥ १३ ॥
अग्निकार्यपरो नित्यं नित्यं कल्यप्रबोधनः ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ १४ ॥
हंससारसयुक्तं च विमानं लभते नरः ।
इन्द्रलोके च वसते वरस्त्रीभिः समावृतः ॥ १५ ॥
तृतीये दिवसे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ।
सदा द्वादश मासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ॥ १६ ॥
अग्निकार्यपरो नित्यं नित्यं कल्यप्रबोधनः ।
अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ १७ ॥

सदा धर्मपत्नीमें रत रहके तीन वर्षतक क्रमसे दिनमें एक बार भोजन करते हैं, वे अग्निष्टोम यज्ञ और इन्द्रके प्रिय बहुतसे सुवर्णके यज्ञोंका फल पाते हैं, वे सत्यवादी, दानशील, ब्रह्मनिष्ठ, अनसूयक, दमयुक्त और जितक्रोध होके परम गति प्राप्त करते हैं ; व्रत पूरा होनेपर पाण्डुरप्रभा और हंसचिन्ह-युक्त विमानमें दो सौ करोड वर्षतक अप्सराओंके सङ्ग निवास करते हैं । (५–१२)

जो लोग अग्निमें होम करते हुए एक वर्षके बीच एक रात्रि उपवास करके दूसरे दिन एक बार भोजन करते हैं और प्रतिदिन अग्निकर्ममें रत होके भोरको जागते हैं, वे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाते हैं और इन्द्र लोकमें वाराङ्गनाओंके बीच घिरके हंस-सारस-युक्त विमानमें निवास किया करते हैं । जो लोग एक वर्षतक अग्निमें होम करते हुए तीसरे दिन केवल एक बार भोजन करते तथा प्रतिदिन अग्निहोत्र करके भोरको जाग्रत होते हैं, वे अति-रात्र यज्ञका फल पाते हैं; उन मनुष्यों

मयूरहंसयुक्तं च विमानं लभते नरः ।
सप्तर्षीणां सदा लोके सोऽप्सरोभिर्वसेत्सह ॥ १८ ॥
निवर्तनं च तत्रास्य त्रीणि पद्मानि वै विभुः ।
दिवसे यश्चतुर्थे तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥ १९ ॥
सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ २० ॥
इन्द्रकन्याभिरूढं च विमानं लभते नरः ।
सागरस्य च पर्यन्ते वासवं लोकमावसेत् ॥ २१ ॥
देवराजस्य च क्रीडां नित्यकालमवेक्षते ।
दिवसे पञ्चमे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥ २२ ॥
सदा द्वादश मासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ।
अलुब्धः सत्यवादी च ब्रह्मण्यश्चाविहिंसकः ॥ २३ ॥
अनसूयुरपापस्थो द्वादशाहफलं लभेत् ।
जाम्बूनदमयं दिव्यं विमानं हंसलक्षणम् ॥ २४ ॥
सूर्यमालासमाभासमारोहेत्पाण्डुरं गृहम् ।
आवर्तनानि चत्वारि तथा पद्मानि द्वादश ॥ २५ ॥
शराग्निपरिमाणं च तत्राऽसौ वसते सुखम् ।
दिवसे यस्तु षष्ठे वै मुनिः प्राशेत भोजनम् ॥ २६ ॥

को मयूरहंसयुक्त विमान मिलता है और वे सप्तर्षियोंके लोकमें सदा अप्सराओंके सङ्ग निवास किया करते हैं। (१३-१८)

तीन सौ करोड़ वर्षके अनन्तर वहां से उनकी पुनरावृत्ति होती, इसे पण्डित लोग जानते हैं। जो लोग एक वर्षतक अग्निमें होम करते हुए चौथे दिन एक बार भोजन करते हैं, उन्हें वाजपेय यज्ञका उत्तम फल मिलता है, वे इन्द्र- कन्याके द्वारा अधिरूढ विमान पाके समुद्रके पार इन्द्रलोकमें निवास किया करते हैं; और सदा देवराजकी क्रीडा अवलोकन करते हैं। जो लोग एक वर्षतक अग्निमें आहुति देते हुए पांचवे दिन एक बार भोजन करते हैं और अलुब्ध, सत्यवादी, ब्रह्मनिष्ठ, हिंसारहित, असूयाशून्य और निष्पाप होते और द्वादशाह यज्ञका फल पाते हैं। स्वर्ण- मय हंस-चिन्हवाले सूर्य किरण सदृश प्रभासे युक्त पाण्डुरवर्ण गृहसदृश विमान में चढते और एकावन सौ पद्म वर्षतक

सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम्।
सदा त्रिषवणस्नायी ब्रह्मचार्यनसूयकः ॥ २७ ॥
गवां मेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम्।
अग्निज्वालासमाभासं हंसबर्हिणसेवितम् ॥ २८ ॥
शातकुम्भसमायुक्तं साधयेद्यानमुत्तमम्।
तथैवाप्सरसामङ्के प्रतिसुप्तः प्रबोध्यते ॥ २९ ॥
नूपुराणां निनादेन मेखलानां च निःस्वनैः।
कोटीसहस्रं वर्षाणां त्रीणि कोटिशतानि च ॥ ३० ॥
पद्मान्यष्टादश तथा पताके द्वे तथैव च।
अयुतानि च पञ्चाशदृक्षचर्मशतस्य च ॥ ३१ ॥
लोम्नां प्रमाणेन समं ब्रह्मलोके महीयते।
दिवसे सप्तमे यस्तु प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥ ३२ ॥
सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम्।
सरस्वतीं गोपयानो ब्रह्मचर्यं समाचरन् ॥ ३३ ॥
सुमनोवर्णकं चैव मधुमांसं च वर्जयन्।
पुरुषो मरुतां लोकमिन्द्रलोकं च गच्छति ॥ ३४ ॥
तत्र तत्र हि सिद्धार्थो देवकन्याभिरर्च्यते।

उस ही स्थानमें सुखसे वास करते हैं। (१९-२६)

जो लोग बारह महीनेतक अग्निमें आहुति देते हुए सदा मननशील होके छटें दिन भोजन करते हैं और सदा त्रिकाल स्नान करनेवाले ब्रह्मचारी और असूयारहित हुआ करते हैं, वे गोमेध यज्ञका फल पाते हैं। वे अग्निज्वालाके सदृश प्रभायुक्त हंसबर्हिण युक्त सुवर्णमय उत्तम विमान पाते हैं और अप्सराओंकी गोदीमें सोके नूपुर मेखलाकी ध्वनिसे जाग्रत होते हैं; वे तीन तीन हजार तीन सौ कोटी, अठारह पद्म, दो महापद्म, पांच सौ अयुत और सौ सौ ऋक्षोंके चमडोंमें जितने रोएं रहते हैं, उतने वर्षतक ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। (२६—३२)

जो लोग एक वर्षतक अग्निमें आहुति देते हुए सातवें दिन एक बार भोजन करते और चुप होके ब्रह्मचर्य व्रत करते हैं, तथा स्रुक्, चन्दन, मधु और मांस परित्याग करते हैं, वे देवलोकके बीच इन्द्रलोकमें जाते हैं और उन स्थानोंमें पुरुष सिद्धार्थ होके देवकन्याओंसे पूजित

फलं बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते नरः ॥ ३५ ॥
संख्यामतिगुणां चापि तेषु लोकेषु मोदते।
यस्तु संवत्सरं क्षान्तो भुङ्क्तेऽहन्यष्टमे नरः ॥ ३६ ॥
देवकार्यपरो नित्यं जुह्वानो जातवेदसम्।
पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ३७ ॥
पद्मवर्णनिभं चैव विमानमधिरोहति।
कृष्णाः कनकगौर्यश्च नार्यः श्यामास्तथाऽपराः ॥३८॥
वयोरूपविलासिन्यो लभते नात्र संशयः।
यस्तु संवत्सरं भुङ्क्ते नवमे नवमेऽहनि ॥ ३९ ॥
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम्।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ४० ॥
पुण्डरीकप्रकाशं च विमानं लभते नरः।
दीप्तसूर्याऽग्नितेजोभिर्दिव्यमालाभिरेव च ॥ ४१ ॥
नीयते रुद्रकन्याभिः सोऽन्तरिक्षं सनातनम्।
अष्टादश सहस्राणि वर्षाणां कल्पमेव च ॥ ४२ ॥
कोटीशतसहस्रं च तेषु लोकेषु मोदते।
यस्तु संवत्सरं भुङ्क्ते दशाहे वै गते गते ॥ ४३ ॥

होते हैं, वे ही मनुष्य बहुतसे सुवर्ण यज्ञका फल पाते हैं और पूर्वोक्त लोकमें असंख्य समय तक निवास किया करते हैं। जो लोग देवकार्यमें रत होकर अग्निमें एक वर्षतक आहुति देते हुए क्षमाशील होके आठवें दिनमें एक बार भोजन करते हैं, वे पुण्डरीक यज्ञका फल पाते और पद्मवर्ण सदृश विमानपर चढते तथा उन्हें निःसन्देह कृष्णवर्ण, कनकवर्ण श्यामाङ्गी युवा सुंदरी स्त्रियें प्राप्त होती हैं। (३२—३८)

जो लोग एक वर्षतक प्रतिदिन अग्निमें आहुति देते हुए नवें दिन एक बार भोजन करते हैं, वे सहस्र अश्वमेधका फल पाते हैं, और उन्हें पुण्डरीक सदृश प्रकाशमान विमान मिलता है, प्रदीप्त सूर्य और अग्निसदृश तेजस्विनी दिव्य माला धारिणी रुद्रकन्यावृन्द उन्हें सनातन स्वर्गलोकमें ले जाती हैं और वे मनुष्य अठारह हजार वर्ष और सौ हजार करोड कल्प तक रुद्रलोकमें प्रमुदित होते हैं। जो एक वर्षतक अग्निमें होम करता हुआ दशवें दिन एक बार भोजन करता है, वह सर्वभूत-मनोहर

सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
ब्रह्मकन्यानिवासे च सर्वभूतमनोहरे ॥ ४४ ॥
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।
रूपवत्यश्च तं कन्या रमयन्ति सनातनम् ॥ ४५ ॥
नीलोत्पलनिभैर्वर्णै रक्तोत्पलनिभैस्तथा ।
विमानं मण्डलावर्तमावर्तगहनाकुलम् ॥ ४६ ॥
सागरोर्मिप्रतीकाशं स लभेद्यानमुत्तमम् ।
विचित्रमणिमालाभिर्नादितं शङ्खनिःस्वनैः ॥ ४७ ॥
स्फाटिकैर्वज्रसारैश्च स्तम्भैः सुकृतवेदिकम् ।
आरोहति महद्यानं हंससारसनादितम् ॥ ४८ ॥
एकादशे तु दिवसे यः प्राप्ते प्राशते हविः ।
सदा द्वादश मासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ४९ ॥
परस्त्रियं नाभिलषेद्वाचाथ मनसाऽपि वा ।
अनृतं च न भाषेत मातापित्रोः कृतेऽपि वा ॥ ५० ॥
अभिगच्छेन्महादेवं विमानस्थं महाबलम् ।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ५१ ॥
स्वायम्भुवं च पश्येत विमानं समुपस्थितम् ।
कुमार्यः काञ्चनाभासा रूपवत्यो नयन्ति तम् ॥५२॥

ब्रह्मकन्यागणोंके निवास स्थानमें निःसन्देह एक हजार अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। नीलोत्पल और रक्तोत्पल वर्ण सदृश रूपवती स्त्रियें उस मनुष्यको प्रतिदिन प्रमुदित करती हैं, वह आवर्त्तगहनाकुल समुद्रकी तरङ्गतुल्य मण्डलावर्त्त श्रेष्ठ विमान पाता है। ४९-४७

विचित्र मणिमाला विराजित शंखके झुण्डसे युक्त स्फटिक और हीरोंसे बने हुए वेदी स्तम्भ युक्त हंस-सारसोंके झुण्डसे परिपूरित महायानमें चढता और सौ हजार करोड वर्षतक देवलोकमें प्रमुदित होता है। जो लोग बारह महीने तक अग्निमें आहुति देते हुए ग्यारहवें दिन घृत भोजन करते हैं, पराई स्त्रीके विषयमें मनसे भी अभिलाष नहीं करते, माता पिताके लिये भी कदापि झूट नहीं बोलते, वे विमानपर चढके महाबली महादेवके समीप जाते और सहस्र अश्वमेध यज्ञका फल पाते हैं तथा स्वयम्भू विमानको सम्मुख पहुंचा हुआ देखते हैं और सुवर्ण आभायुक्त रूपवती का-

रुद्राणां तमधीवासं दिवि दिव्यं मनोहरम्।
वर्षाण्यपरिमेयानि युगान्ताग्निसमप्रभः ॥ ५३ ॥
कोटीशतसहस्रं च दशकोटिशतानि च।
रुद्रं नित्यं प्रणमते देवदानवसंमतम् ॥ ५४ ॥
स तस्मै दर्शनं प्राप्तो दिवसे दिवसे भवेत्।
दिवसे द्वादशे यस्तु प्राप्ते वै प्राशते हविः ॥ ५५ ॥
सदा द्वादश मासान्वै सर्वमेधफलं लभेत्।
आदित्यं द्वादशे तस्य विमानं संविधीयते ॥ ५६ ॥
मणिमुक्ताप्रवालैश्च महार्हैरुपशोभितम्।
हंसमाला परिक्षिप्तं नागवीथीसमाकुलम् ॥ ५७ ॥
मयूरैश्चक्रवाकैश्च कूजद्भिरुपशोभितम्।
अट्टैर्महद्भिः संयुक्तं ब्रह्मलोके प्रतिष्ठितम् ॥ ५८ ॥
नित्यमावसथं राजन्नरनारीसमावृतम्।
ऋषिरेवं महाभागस्त्वङ्गिराः प्राह धर्मवित् ॥ ५९ ॥
त्रयोदशे तु दिवसे प्राप्ते यः प्राशते हविः।
सदा द्वादश मासान्वै देवसत्रफलं लभेत् ॥ ६० ॥
रक्तपद्मोदयं नाम विमानं साधयेन्नरः।

रिकन्या सुरलोकमें प्रकाशमान मनोहर रुद्रगणोंके स्थानमें उन्हें ले जाती हैं। (४७—५३)

वे प्रलयकालकी अग्नि समान और प्रभायुक्त होके अनन्त समय तक सौ हजार करोड और दो सौ करोड वर्षतक देव-दानवोंके सङ्ग सदा महादेवको प्रणाम करते हैं; महादेव उन्हें प्रति-दिन दर्शन देते हैं। जो लोग एक वर्षतक क्रमसे बारहवें दिन घृतप्राशन करते हैं, वे सर्वमेध यज्ञका फल पाते हैं, द्वादश आदित्योंके बीच उनका विमान जाता है, वह स्थान महार्ह मणि, मोती प्रवाल मणियोंसे शोभित, हंस-पातसे घिरा हुआ और नागश्रेणीसे परिपूर्ण कूंजनेवाले, मयूर और चक्रवाक पक्षियोंके व्यूहसे शोभायमान, उत्तम महत् अटारियोंसे युक्त, ब्रह्मलोकके प्रतिष्ठित नरनारियोंसे परिपूरित नित्य आश्रम है। (५३—५९)

हे महाराज ! महाभाग धर्मवित् अंगिरा ऋषिने ऐसा कहा है, कि जो लोग एक वर्षतक सदा तेरहवें दिन घृत-प्राशन करते हैं, उन्हें देवसत्रका

जातरूपप्रयुक्तं च रत्नसञ्चयभूषितम् ॥ ६१ ॥
देवकन्याभिराकीर्णं दिव्याभरणभूषितम् ।
पुण्यगन्धोदयं दिव्यं वायव्यैरुपशोभितम् ॥ ६२ ॥
तत्र शङ्कुपताके द्वे युगान्तं कल्पमेव च ।
अयुतायुतं तथा पद्मं समुद्रं च तथा वसेत् ॥ ६३ ॥
गीतगन्धर्वघोषैश्च भेरीपणवनिःस्वनैः ।
सदा प्रह्लादितस्ताभिर्देवकन्याभिरिज्यते ॥ ६४ ॥
चतुर्दशे तु दिवसे यः पूर्णे प्राशते हविः ।
सदा द्वादश मासांस्तु महामेधफलं लभेत् ॥ ६५ ॥
अनिर्देश्यवयोरूपा देवकन्याः स्वलङ्कृताः ।
मृष्टतप्ताङ्गदधरा विमानैरुपयान्ति तम् ॥ ६६ ॥
कलहंसविनिर्घोषैर्नूपुराणां च निःस्वनैः ।
काञ्चीनां च समुत्कर्षैस्तत्र तत्र निबोध्यते ॥ ६७ ॥
देवकन्यानिवासे च तस्मिन्वसति मानवः ।
जाह्नवी वालुकाकीर्णं पूर्णसंवत्सरं नरः ॥ ६८ ॥
यस्तु पक्षे गते भुङ्क्ते एकभक्तं जितेन्द्रियः ।

फल प्राप्त होता है । वे मनुष्य सुवर्णके बने हुए रत्नभूषित, देवकन्याओंसे परिपूरित दिव्य आभूषण और पवित्र सुगन्धियुक्त वायव्य अस्त्रसे सुशोभित रक्त पद्मोदय नाम विमान पाते हैं, वे वहांपर शंकु पताका युगान्त कल्पअयुतायुक्त पद्म और समुद्र परिमित समयतक निवास करते हैं, वे देवकन्या और गन्धर्वोंके गीत तथा भेरी ढोल आदि बाजोंके शब्दसे प्रसन्न होके वहांपर अनुरक्त रहते हैं । (५९-६४)

बारह महीनेके बीच जो लोग चौदहवें दिन घृत प्राशन करते हैं, वे महामेध यज्ञका फल पाते हैं । अनिर्देश्य अवस्था रूपसम्पन्न भली भांति अलंकृत विशुद्ध तपे हुए सुवर्णभूषित पहरनेवाली देवकन्या श्रेष्ठ विमानके सहारे उनके निकट उपस्थित होती हैं । वे वहांपर कलहंस निनाद सदृश नूपुर-काञ्चीसे उत्तम रीतिसे सावधान हुआ करते हैं, वे मनुष्य गंगाके वालुकण-परिमाणके अनुसार पूर्ण सम्वत्सर पर्यन्त देवकन्याओंके स्थानमें निवास करते हैं । (६५-६८)

जो लोग बारह महीनेतक अग्निमें आहुति देते हुए पन्द्रह दिनके अनन्तर

सदा द्वादश मासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ६९ ॥
राजसूयसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ।
यानमारोहते दिव्यं हंसबर्हिणसेवितम् ॥ ७० ॥
मणिमण्डलकैश्चित्रं जातरूपसमावृतम् ।
दिव्याभरणशोभाभिर्वरस्त्रीभिरलंकृतम् ॥ ७१ ॥
एकस्तम्भं चतुर्द्वारं सप्तभौमं सुमङ्गलम् ।
वैजयन्तीसहस्रैश्च शोभितं गीतनिःस्वनैः ॥ ७२ ॥
दिव्यं दिव्यगुणोपेतं विमानमधिरोहति ।
मणिमुक्ताप्रवालैश्च भूषितं वैद्युतप्रभम् ॥ ७३ ॥
वसेद्युगसहस्रं च खड्गकुञ्जरवाहनः ।
षोडशे दिवसे प्राप्ते यः कुर्यादेकभोजनम् ॥ ७४ ॥
सदा द्वादश मासान्वै सोमयज्ञफलं लभेत् ।
सोमकन्यानिवासेषु सोऽध्यावसति नित्यशः ॥ ७५ ॥
सौम्यगन्धानुलिप्तश्च कामकारगतिर्भवेत् ।
सुदर्शनाभिर्नारीभिर्मधुराभिस्तथैव च ॥ ७६ ॥
अर्च्यते वै विमानस्थः कामभोगैश्च सेव्यते ।
फलं पद्मशतप्रख्यं महाकल्पं दशाधिकम् ॥ ७७ ॥

एक वार भोजन करते हैं, वे सहस्र राजसूय यज्ञका उत्तम फल पाते हैं, वे हंस-मयूरसेवित विविध मणिमण्डल मण्डित जातरूपसे परिपूरित, दिव्य-भूषणोंसे विभूषित, वाराङ्गनाओंसे युक्त मणिमुक्ता, प्रवालसे अलंकृत, एक स्तंभ चार द्वार सात भूमिका सम्पन्न उत्तम मङ्गलमय सहस्र वैजन्तीके द्वारा सुशोभित, गीतशब्दसे निनादित, दिव्य गुणयुक्त बिजलीकी प्रभासदृश विमानमें चढते हैं, वे खड्ग और कुञ्जर वाहनसे युक्त होकर उस दिव्य यानमें सहस्र युगतक वास किया करते हैं। (६९-७३)

जो लोग एक वर्षतक सदा सोलहवें दिन एकवार भोजन करते हैं, उन्हें सोमयज्ञका फल मिलता है, वे लोग सोमकन्यागणोंके स्थानमें सदा निवास किया करते हैं, वे सौम्य गन्धसे अनुलिप्त और कामचारी गतिसे युक्त होते हैं। जब वे विमान पर चढते हैं, तब उत्तम दर्शनीय मीठे वचनवाली स्त्रियां उनकी पूजा करती हैं, वे बहुतसे कामभोगके द्वारा सेवित होते हैं, ऐसे व्रतपरायण मनुष्य एक सौ दश पद्म परिमित महा-

आवर्तनानि चत्वारि साधयेच्चाप्यसौ नरः ।
दिवसे सप्तदशमे यः प्राप्ते प्राशते हविः ॥ ७८ ॥
सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसम् ।
स्थानं वारुणमैन्द्रं च रौद्रं चाप्यधिगच्छति ॥ ७९ ॥
मारुतौशनसे चैव ब्रह्मलोकं स गच्छति ।
तत्र दैवतकन्याभिरासनेनोपचर्यते ॥ ८० ॥
भूर्भुवं चापि देवर्षिं विश्वरूपमवेक्षते ।
तत्र देवाधिदेवस्य कुमार्यो रमयन्ति तम् ॥ ८१ ॥
द्वात्रिंशद्रूपधारिण्यो मधुराः समलंकृताः ।
चन्द्रादित्यावुभौ यावद्गगने चरतः प्रभो ॥ ८२ ॥
तावच्चरत्यसौ धीरः सुधामृतरसाशनः ।
अष्टादशे यो दिवसे प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥ ८३ ॥
सदा द्वादशमासान्वै सप्त लोकान्स पश्यति ।
रथैः सनन्दिघोषैश्च पृष्ठतः सोऽनुगम्यते ॥ ८४ ॥
देवकन्याधिरूढैस्तु भ्राजमानैः स्वलंकृतैः ।
व्याघ्रसिंहप्रयुक्तं च मेघस्वननिनादितम् ॥ ८५ ॥

कल्प और चारों आवर्त्तन परिमित समयतक फल भोग करते हैं। जो लोग एक वर्षतक अग्निमें आहुति देते हुए सतरहवां दिन उपस्थित होनेपर घृत प्राशन करते हैं, वे वरुण, इन्द्र और रौद्रलोक में अधिरोहण किया करते हैं और वेही पुरुष मारुत, औशनस तथा ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं, वहांपर देवकन्यागण आसन देके उनकी सेवा करती हैं; भूलोक, भुवर्लोक और देवर्षि विश्वरूपका दर्शन करते हैं। वहांपर बत्तीस भांतिकी रूपधारिणी, दर्शनीय, मृदु भली भांति अलंकृत देवाधिदेवकी कुमारीगण उनके सङ्ग क्रीडा करती हैं। (७४-८१)

हे प्रभु ! जबतक आदित्य और चन्द्रमा आकाशमण्डलमें विचरते हैं, तबतक उक्त वीर सुधा तथा देव-भोज्य अमृतरस पीते हुए रुद्रलोकमें निवास किया करते हैं। जो लोग बारह महीनेतक सदा अठारहवें दिनमें एकबार भोजन करते हैं, वे सातों लोकोंका दर्शन किया करते हैं, देवकन्याधिरूढ, भ्राज-मान, उत्तम रीतिसे अलंकृत वन्दिजनोंके शब्दसे युक्त रथ उनके पीछे चलते हैं, वे अत्यन्त सुखी होके सिंहव्याघ्रयुक्त

विमानमुत्तमं दिव्यं सुसुखी ह्यऽधिरोहति।
तत्र कल्पसहस्रं स कन्याभिः सह मोदते ॥ ८६ ॥
सुधारसं च भुञ्जीत अमृतोपममुत्तमम्।
एकोनविंशतिदिने यो भुङ्क्ते एकभोजनम् ॥ ८७ ॥
सदा द्वादशमासान्वै सप्त लोकान्स पश्यति।
उत्तमं लभते स्थानमप्सरोगणसेवितम् ॥ ८८ ॥
गन्धर्वैरुपगीतं च विमानं सूर्यवर्चसम्।
तत्रामरवरस्त्रीभिर्मोदते विगतज्वरः ॥ ८९ ॥
दिव्याम्बरधरः श्रीमानयुतानां शतं शतम्।
पूर्णेऽथ विंशे दिवसे यो भुङ्क्ते ह्येकभोजनम् ॥ ९० ॥
सदा द्वादश मासांस्तु सत्यवादी धृतव्रतः।
अमांसाशी ब्रह्मचारी सर्वभूतहिते रतः ॥ ९१ ॥
स लोकान्विपुलान् रम्यानादित्यानामुपाश्नुते।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च दिव्यमाल्यानुलेपनैः ॥ ९२ ॥
विमानैः काञ्चनैर्हृद्यैः पृष्ठतश्चाऽनुगम्यते।
एकविंशे तु दिवसे यो भुङ्क्ते ह्येकभोजनम् ॥ ९३ ॥

बादलसदृश शब्दसे परिपूरित उत्तम दिव्य विमानपर चढते हैं। वहांपर वे सहस्र कल्पतक कन्यागणोंके संग प्रमुदित हुआ करते हैं और अमृतसदृश उत्तम अमृत रस भोजन करते हैं। (८२—८७)

जो लोग सदा बारह महीनेतक उन्नीसवें दिन एक बार भोजन करते हैं, वे सप्तलोकोंको देखनेमें समर्थ होते हैं और अप्सराओंसे सेवित उत्तम स्थान पाते हैं, उन्हें गन्धर्वोंके द्वारा सूर्यवर्चस विमान मिलता है, वहांपर वे शोकरहित, दिव्याम्बरधारी तथा श्रीमान होकर सौ सौ अयुत परिमित समयतक देवताओंकी वाराङ्गनाओंके सहित प्रमुदित हुआ करते हैं। (८७-९०)

जो लोग बारह महीनेतक सत्यवादी, धृतव्रती, अमांसाशी, ब्रह्मचारी और सब जीवोंके हितमें रत होके बीसवां दिन पूरा होनेपर एक बार भोजन करते हैं, वे आदित्यगणोंके विपुल रमणीय लोकमें सुख भोग किया करते हैं। दिव्यमालाधारी गन्धर्व और अप्सरावृन्द तथा दिव्य सोनेके विमान उनके पीछे पीछे चलते हैं। जो लोग एक वर्षतक सदा अग्निमें आहुति देते हुए एकवीसवें

सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम्।
लोकमौशनसं दिव्यं शक्रलोकं च गच्छति ॥ ९४ ॥
अश्विनोर्मरुतां चैव सुखेष्वभिरतः सदा।
अनभिज्ञश्च दुःखानां विमानवरमास्थितः ॥ ९५ ॥
सेव्यमानो वरस्त्रीभिः क्रीडत्यमरवत्प्रभुः।
द्वाविंशे दिवसे प्राप्ते यो भुङ्क्ते ह्येकभोजनम् ॥ ९६ ॥
सदा द्वादश मासान्वै जुह्वानो जातवेदसम्।
अहिंसानिरतो धीमान् सत्यवागनसूयकः ॥ ९७ ॥
लोकान्वसूनामाप्नोति दिवाकरसमप्रभः।
कामचारी सुधाहारो विमानवरमास्थितः ॥ ९८ ॥
रमते देवकन्याभिर्दिव्याभरणभूषितः।
त्रयोविंशे तु दिवसे प्राशेद्यस्त्वेकभोजनम् ॥ ९९ ॥
सदा द्वादश मासांस्तु मिताहारो जितेन्द्रियः।
वायोरुशनसश्चैव रुद्रलोकं च गच्छति ॥ १०० ॥
कामचारी कामगमः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः।
अनेकयुगपर्यन्तं विमानवरमास्थित ॥ १०१ ॥
रमते देवकन्याभिर्दिव्याभरणभूषितः।
चतुर्विंशे तु दिवसे यः प्राप्ते प्राशते हविः ॥ १०२ ॥

दिनमें एकबार भोजन करते हैं, वे शुक्रलोक और दिव्य इन्द्रलोकको पाते हैं। तथा उनको सुखदुःख नहीं होते, श्रेष्ठ विमानमें बैठके सुखसे सुंदरी स्त्रियोंके साथ रमते हैं। जो लोग एक वर्ष तक सदा अग्निमें आहुति देते हुए बाईसवें दिन एक बार भोजन करते हैं और अहिंसामें रत, धीमान, सत्यवादी तथा अनसूयक हुआ करते हैं, वे सूर्यके सदृश प्रभायुक्त होके वसुलोकोंको पाते हैं, वे कामचारी, सुधाहारी होकर श्रेष्ठ विमानमें चढते और दिव्याभरणोंसे विभूषित होकर देवकन्याओंके सङ्ग क्रीडा करते हैं। जो मिताहारी और जितेन्द्रिय पुरुष बारह महीनेतक सदा तेईसवें दिन एक बार भोजन करता है, वह वायुलोक भार्गवलोक और रुद्रलोकमें गमन किया करता है, वह कामचारी और कामगामी अप्सराओंसे पूजित और दिव्याभरणभूषित विविध गुणोंसे युक्त विमानपर चढके देवकन्याओंके सहित क्रीडा करता है। (९१—१०२)

सदा द्वादश मासांश्च जुह्वानो जातवेदसम्।
आदित्यानामधीवासे मोदमानो वसेच्चिरम् ॥ १०३ ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धाऽनुलेपनः।
विमाने काञ्चने दिव्ये हंसयुक्ते मनोरमे ॥ १०४ ॥
रमते देवकन्यानां सहस्रैरयुतैस्तथा।
पञ्चविंशे तु दिवसे यः प्राशेदेकभोजनम् ॥ १०५ ॥
सदा द्वादशमासांस्तु पुष्कलं यानमारुहेत्।
सिंहव्याघ्रप्रयुक्तैस्तु मेघनिःस्वननादितैः ॥ १०६ ॥
स रथैर्नन्दिघोषैश्च पृष्ठतो ह्यनुगम्यते।
देवकन्यासमारूढैः काञ्चनैर्विमलैः शुभैः ॥ १०७ ॥
विमानमुत्तमं दिव्यमास्थाय सुमनोहरम्।
तत्र कल्पसहस्रं वै वसते स्त्रीशतावृते ॥ १०८ ॥
सुधारसं चोपजीवन्नमृतोपममुत्तमम्।
षड्विंशे दिवसे यस्तु प्रकुर्यादेकभोजनम् ॥ १०९ ॥
सदा द्वादश मासांस्तु नियतो नियताऽशनः।
जितेन्द्रियो वीतरागो जुह्वानो जातवेदसम् ॥ ११० ॥
स प्राप्नोति महाभागः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः।
सप्तानां मरुतां लोकान्वसूनां चापि सोऽश्नुते ॥१११॥

जो पुरुष बारह महीनेतक अग्निमें आहुति देते हुए चौबीसवां दिन उपस्थित होनेपर घृतप्राशन करता है, वह दिव्य माला और दिव्याम्बर धारण करके तथा दिव्यगन्धोंसे युक्त होकर आदित्यगणोंके निवासस्थानमें प्रमुदित होके सदा वास करता है, हंसयुक्त, मनोहर, दिव्य सुवर्णके विमानमें सहस्र और अयुत देवकन्याओंके सहित क्रीडा करता है। जो लोग बारह महीनेतक सदा पचीसवें दिन एकबार भोजन करते हैं, वे पुष्कल विमानमें चढते और सिंहव्याघ्रयुक्त बादलसदृश शब्द तथा आनन्दवर्धक ध्वनिसे युक्त देवकन्याओंसे परिपूर्ण सौ सौ विमल सुवर्णके रथ उनका अनुगमन करते हैं, वे अत्यन्त मनोहर उत्तम दिव्य विमानमें चढके उन सौ सौ स्त्रियोंसे परिपूरित स्थानमें अमृतसदृश सुधारस पीते हुए सहस्र कल्पतक निवास करते हैं। जो लोग सदा संयताहारी, जितेन्द्रिय और रागरहित होके एक वर्षतक अग्निमें

विमानैः स्फाटिकैर्दिव्यैः सर्वरत्नैरलंकृतैः।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च पूज्यमानः प्रमोदते ॥ ११२ ॥
द्वे युगानां सहस्रे तु दिव्ये दिव्येन तेजसा।
सप्तविंशेऽथ दिवसे यः कुर्यादेकभोजनम् ॥ ११३ ॥
सदा द्वादश मासांस्तु जुह्वानो जातवेदसम्।
फलं प्राप्नोति विपुलं देवलोके च पूज्यते ॥ ११४ ॥
अमृताशी वसंस्तत्र स वितृष्णः प्रमोदते।
देवर्षिचरितं राजन् राजर्षिभिरनुष्ठितम् ॥ ११५ ॥
अध्यावसति दिव्यात्मा विमानवरमास्थितः।
स्त्रीभिर्मनोभिरामाभी रममाणो मदोत्कटः ॥ ११६ ॥
युगकल्पसहस्राणि त्रीण्यावसति वै सुखम्।
योऽष्टाविंशे तु दिवसे प्राश्नीयादेकभोजनम् ॥ ११७॥
सदा द्वादश मासांस्तु जितात्मा विजितेन्द्रियः।
फलं देवर्षिचरितं विपुलं समुपाश्नुते ॥ ११८ ॥
भोगवांस्तेजसा भाति सहस्रांशुरिवामलः।
सुकुमार्यश्च नार्यस्तं रममाणाः सुवर्चसः ॥ ११९ ॥

आहुति देते हुए छब्बीसवें दिन एकवार भोजन करते हैं, वे सब रत्नोंसे अलंकृत दिव्य स्फटिक विमानके द्वारा सप्त मरुत् और अष्ट वसुके लोकोंको उपभोग करते हैं, दिव्य तेजसे युक्त होकर देवपरिमाणसे दो हजार युगतक गन्धर्व और अप्सराओंसे पूजित होकर प्रमुदित रहते हैं। (१०२—११२)

जो लोग बारह महीनेतक अग्निमें आहुति देते हुए सत्ताइसवें दिन सदा एकबार भोजन करते हैं, वे विपुल फल पाके देवलोकमें पूजित हुआ करते हैं, वहां अमृताशी होकर वास करते हुए तृष्णारहित होके प्रमुदित होते हैं। हे महाराज! वे दिव्यशरीरधारी मनुष्य श्रेष्ठ विमानमें चढके देवर्षिचरित तथा राजर्षियोंसे अनुष्ठित लोकोंमें वास करते हैं, वे मनोरमा स्त्रियोंके सहित मदमत्त होके रमण करते हुए तीन सहस्र युग परिमित कल्पतक सुखसे निवास किया करते हैं। जो लोग जितचित्त और जितेन्द्रिय होके बारह महीनेतक सदा अट्ठाइसवें दिन एकबार भोजन करते हैं, वे देवर्षिचरित विपुल फल भोग किया करते हैं, वे भोगवान् मनुष्य निज तेजके सहारे निर्मल सूर्यकी भांति

पीनस्तनोरुजघना दिव्याभरणभूषिताः।
रमयन्ति मनःकान्ते विमाने सूर्यसन्निभे ॥ १२० ॥
सर्वकामगमे दिव्ये कल्पायुतशतं समाः।
एकोनत्रिंशे दिवसे यः प्राशेदेकभोजनम् ॥ १२१ ॥
सदा द्वादश मासान्वै सत्यव्रतपरायणः।
तस्य लोकाः शुभा दिव्या देवराजर्षिपूजिताः ॥१२२॥
विमानं सूर्यचन्द्राभं दिव्यं समधिगच्छति।
जातरूपमयं युक्तं सर्वरत्नसमन्वितम् ॥ १२३ ॥
अप्सरोगणसंपूर्णं गन्धर्वैरभिनादितम्।
तत्र चैनं शुभा नार्यो दिव्याभरणभूषिताः॥ १२४ ॥
मनोभिरामा मधुरा रमयन्ति मदोत्कटाः।
भोगवांस्तेजसा युक्तो वैश्वानरसमप्रभः ॥ १२५ ॥
दिव्यो दिव्येन वपुषा भ्राजमान इवामरः।
वसूनां मरुतां चैव साध्यानामश्विनोस्तथा ॥ १२६ ॥
रुद्राणां च तथा लोकं ब्रह्मलोकं च गच्छति।
यस्तु मासे गते भुङ्क्ते एकभक्तं शमात्मकः ॥१२७॥
सदा द्वादश मासान्वै ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्।

प्रकाशित होते हैं। (११३—११९)

पीनस्तनयुक्त, दिव्याभरणविभूषित, तेजस्विनी, रमण करनेवाली सुकुमारी स्त्रियें सूर्यसदृश कामगामी मनोरम दिव्य विमानमें एक सौ अयुत कल्प परिमित वर्षतक उनका मन प्रसन्न करती हैं। जो लोग सत्यव्रतपरायण होके बारह महीनेतक सदा उन्तीसवें दिन एक बार भोजन करते हैं, उनके निमित्त देवर्षि और राजर्षियोंसे पूजित दिव्य पवित्र लोक तैयार रहते हैं, वे सब रत्नोंसे विभूषित अप्सराओं और गन्धर्वोंके गीतसे युक्त सूर्य तथा चन्द्रमासदृश सुवर्णमय दिव्य विमानमें चढते हैं, वह दिव्याभरणभूषित, मनको प्रसन्न करनेवाली, मदविह्वल, कोमलाङ्गी, पवित्र स्त्रियें उन्हें आनन्दित करती हैं। (१२०–१२४)

वे भोगवान तेजःसम्पन्न अग्निप्रभासदृश मूर्ति धारण करके देवताओंकी भांति प्रकाशमान दिव्य पुरुष वसुगण, मरुद्गण, साध्य, अश्विदेव, रुद्रगणके लोक और ब्रह्मलोकमें गमन करते हैं। जो शमगुणसे युक्त पुरुष एक वर्षतक सदा एक मास बीतनेपर एक बार मो·

सुधारसकृताहारः श्रीमान्सर्वमनोहरः ॥ १२८ ॥
तेजसा वपुषा लक्ष्म्या भ्राजते रश्मिवानिव ।
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धानुलेपनः ॥ १२९ ॥
सुखेष्वभिरतो भोगी दुःखानामविजानकः ।
स्वयम्प्रभाभिर्नारीभिर्विमानस्थो महीयते ॥ १३० ॥
रुद्रदेवर्षिकन्याभिः सततं चाभिपूज्यते ।
नानारमणरूपाभिर्नानारागाभिरेव च ॥ १३१ ॥
नानामधुरभाषाभिर्नानारतिभिरेव च ।
विमाने गगनाकारे सूर्यवैदूर्यसन्निभे ॥ १३२ ॥
पृष्ठतः सोमसङ्काशे उदर्के चाभ्रसन्निभे ।
दक्षिणायां तु रक्ताभे अधस्तान्नीलमण्डले ॥ १३३ ॥
ऊर्ध्वं विचित्रसङ्काशे नैको वसति पूजितः ।
यावद्वर्षसहस्रं वै जम्बुद्वीपे प्रवर्षति ॥ १३४ ॥
तावत्संवत्सराः प्रोक्ता ब्रह्मलोकेऽस्य धीमतः ।
विप्रुषश्चैव यावन्त्यो निपतन्ति नभस्तलात् ॥ १३५ ॥

जन करता है, उसे ब्रह्मलोक मिलता है, वह सुधारस पीके श्रीमान् और सर्वजनमनोहर हुआ करता है। तेज, श्री और शोभासे सूर्यकी भांति प्रकाशित होता है, वह दिव्य मालाम्बरधारी, दिव्य गन्धयुक्त, सुखमें रत, योगी, दुःख अनुभवमें अनभिज्ञ होके स्वयं प्रभायुक्त स्त्रियोंके सहित विमानमें विराजता है और रुद्र तथा देवर्षिकन्याओंके द्वारा सदा सब भांति पूजित होता है। (१२५—१३१)

विविध रीतिसे विनोद करनेवाली अनेक प्रकारकी स्त्रियोंके द्वारा बहुतसी भाषा तथा अनेक भांतिकी रतिचातुरीसे सूर्य तथा वैदूर्यसदृश आकाशसमान पृष्ठस्थानमें सोमसङ्काश सामनेके भागमें अभ्रसदृश, दक्षिणभागमें रक्तवर्ण आभायुक्त, अधःस्थानमें नीलमण्डलाकार, ऊर्ध्वमें विचित्रसङ्काश, विमानमें पूजित होकर अनेक देवकन्याओंके सहित निवास करता है। सहस्र वर्षतक जम्बूद्वीपमें वर्षाकी जितनी बूंद बरसती हैं, उस बुद्धिशक्तिसे युक्त योगीका उतने वर्षतक ब्रह्मलोकमें वास वर्णित है, वर्षाकालमें आकाशसे जितनी जलकी बूंद गिरती हैं, उतने समयतक वह अमरप्रभा अतिक्रम करके सुरपुरमें वास करता है। (१३१-१३५)

वर्षाणि वर्षतस्तावन्निवसत्यमरप्रभः ।
मासोपवासी वर्षैस्तु दशभिः स्वर्गमुत्तमम् ॥ १३६ ॥
महर्षित्वमथाऽऽसाद्य सशरीरगतिर्भवेत् ।
मुनिर्दान्तो जितक्रोधो जितशिश्नोदरः सदा ॥१३७॥
जुह्वन्नग्नींश्च नियतः सन्ध्योपासनसेविता ।
बहुभिर्नियमैरेवं शुचिरश्नाति यो नरः ॥ १३८ ॥
अभ्रावकाशशीलश्च तस्य भानोरिव त्विषः ।
दिवं गत्वा शरीरेण स्वेन राजन्यथाऽमरः ॥ १३९ ॥
स्वर्गं पुण्यं यथाकाममुपभुङ्क्ते तथाविधः ।
एष ते भरतश्रेष्ठ यज्ञानां विधिरुत्तमः ॥ १४० ॥
व्याख्यातो ह्याऽऽनुपूर्व्येण उपवासफलात्मकः ।
दरिद्रैर्मनुजैः पार्थ प्राप्तं यज्ञफलं यथा ॥ १४१ ॥
उपवासानिमान् कृत्वा गच्छेच्च परमां गतिम् ।
देवद्विजातिपूजायां रतो भरतसत्तम ॥ १४२ ॥
उपवासविधिस्त्वेष विस्तरेण प्रकीर्तितः ।
नियतेष्वप्रमत्तेषु शौचवत्सु महात्मसु ॥ १४३ ॥

महीनेभर उपवास करनेवाला मनुष्य दश वर्षतक ऐसे ही कठोर व्रत प्रतिपालन करते हुए महर्षित्व पद पाके सशरीरसे ही उत्कृष्ट स्वर्गलोकमें गमन किया करता है। मननशील, दान्त, क्रोधविजयी; सदा जितशिश्नोदर, तीनों अग्निमें आहुति देनेवाले, सदा सन्ध्या उपासना करनेवाले जो मनुष्य इस प्रकारके बहुतसे नियमोंसे पवित्र होके महीनेके शेषमें एक बार भोजन करते हैं, वे आकाशके अवकाशकी भांति निर्मल, शीलसम्पन्न और सूर्यकान्ति सदृश तेजस्वी पुरुष सशरीर सुरपुरमें जाके देवताओंकी भांति इच्छानुसार पवित्र स्वर्गसुख उपभोग करते हैं। (१३६—१४०)

हे भरतश्रेष्ठ महाराज! यह तुम्हारे समीप उपवासफलात्मक श्रेष्ठ यज्ञकी विधि विस्तारपूर्वक कही गई। हे पार्थ! दरिद्र मनुष्य इन्हीं उपवासोंको करके यज्ञका फल पाते हैं तथा उन्हें परम गति मिलती है। हे भरतसत्तम! तुम देव और द्विजोंकी पूजामें रत हो, इसी लिये तुम्हारे समीप यह उपवासकी विधि विस्तारपूर्वक वर्णित हुई। हे भारत! सदा अप्रमत्त, पवित्रतायुक्त,

दम्भद्रोहनिवृत्तेषु कृतबुद्धिषु भारत ।
अचलेष्वप्रकम्पेषु मा ते भूदत्र संशयः ॥ १४४ ॥ [७२८०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उपवासविधिर्नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

युधिष्ठिर उवाच- यद्वरं सर्वतीर्थानां तन्मे ब्रूहि पितामह ।
यत्र चैव परं शौचं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

भीष्म उवाच- सर्वाणि खलु तीर्थानि गुणवन्ति मनीषिणः ।
यत्तु तीर्थं च शौचं च तन्मे शृणु समाहितः ॥ २ ॥
अगाधे विमले शुद्धे सत्यतोये धृतिह्रदे ।
स्नातव्यं मानसे तीर्थे सत्त्वमालम्ब्य शाश्वतम् ॥ ३ ॥
तीर्थशौचमनर्थित्वमार्जवं सत्यमार्दवम् ।
अहिंसा सर्वभूतानामानृशंस्यं दमः शमः ॥ ४ ॥
निर्ममा निरहङ्कारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ।
शुचयस्तीर्थभूतास्ते ये भैक्ष्यमुपभुञ्जते ॥ ५ ॥
तत्त्ववित्त्वनहंबुद्धिस्तीर्थप्रवरमुच्यते ।
शौचलक्षणमेतत्ते सर्वत्रैवान्ववेक्षतः ॥ ६ ॥

दम्भद्रोहसे निवृत्त, कृतबुद्धि, अचञ्चल, असावधानरहित महानुभावोंके समीप इस विषयमें तुम्हें सन्देह न होवे । (१४०-१४४)

अनुशासनपर्वमें १०७ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १०८ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! सब तीर्थोंके बीच जो श्रेष्ठ है और जिससे पवित्रता होती है, उसे आप मेरे निकट वर्णन करिये । (१)

भीष्म बोले, सब तीर्थ मनीषियोंके लिये फलदायक हैं, उनके बीच जो पवित्र तीर्थ है, समाहित होके उसे सुनो । अपरिच्छिन्न, विमल, शुद्ध, सत्यजल और धैर्यरूपी तालाव युक्त मानस-तीर्थमें शाश्वत सत्य अवलम्बन करके स्नान करना उचित है । अनर्थित्व, आर्जव, मार्दव, सब जीवोंकी अहिंसा, अनृशंसता और शमदम ही पवित्र तीर्थ हैं । जो लोग ममतारहित निरहंकारी, सुख दुःख आदि द्वन्द्व सहनेवाले और निष्परिग्रह हैं तथा जो लोग भिक्षान्न भोजन करते हुए जीवन बिताते हैं, वेही पवित्र तीर्थस्वरूप हैं । (२-५)

अहंज्ञानसे रहित तत्त्ववित् पुरुषश्रेष्ठ

रजस्तमः सत्त्वमथो येषां निर्धौतमात्मनः।
शौचाशौचसमायुक्ताः स्वकार्यपरिमार्गिणः ॥ ७ ॥
सर्वत्यागेष्वभिरताः सर्वज्ञाः समदर्शिनः।
शौचेन वृत्तशौचार्थास्ते तीर्थाः शुचयश्च ये ॥ ८ ॥
नोदकक्लिन्नगात्रस्तु स्नात इत्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नातः सबाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥९ ॥
अतीतेष्वनपेक्षा ये प्राप्तेष्वर्थेषु निर्ममाः।
शौचमेव परं तेषां येषां नोत्पद्यते स्पृहा ॥ १० ॥
प्रज्ञानं शौचमेवेह शरीरस्य विशेषतः।
तथा निष्किञ्चनत्वं च मनसश्च प्रसन्नता ॥ ११ ॥
वृत्तशौचं मनःशौचं तीर्थशौचमतः परम्।
ज्ञानोत्पन्नं च यच्छौचं तच्छौचं परमं स्मृतम् ॥ १२ ॥
मनसा च प्रदीप्तेन ब्रह्मज्ञानजलेन च।
स्नाति यो मानसे तीर्थे तत्स्नानं तत्त्वदर्शिनः॥ १३ ॥
समारोपितशौचस्तु नित्यं भावसमाहितः।
केवलं गुणसंपन्नः शुचिरेव नरः सदा ॥ १४ ॥

तीर्थ कहके वर्णित होते हैं; सर्वत्र सम दर्शन ही पवित्रताका लक्षण है। जिनके चित्तसे रजोगुण, तमोगुण और सत्वगुण निवृत्त हुआ है, जो लोग शौचाशौच समायुक्त, स्वकार्य निभानेमें सदा तत्पर, सर्वत्यागमें सब भांतिसे अनुरक्त, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और शौचके सहारे जिनमें पवित्रता उत्पन्न हुई है, वेही तीर्थ तथा वेही पवित्र हैं। जलसे शरीर धोनेवाले पुरुषको स्नात नहीं कहा जाता,जो लोग दमस्नात हैं,उन्होंने ही स्नान किया है, वेही बाहर और भीतरसे पवित्र हैं। (६—९)

जो लोग अतीत विषयोंमें अनपेक्ष प्राप्तविषयमें ममतारहित तथा जिन्हें स्पृहा उत्पन्न नहीं होती, वेही परम पवित्र हैं। प्रज्ञान ही शरीरका विशेष शौच है और निष्किञ्चनत्व ही मनकी प्रसन्नता है। चरित्रशुद्धि, मनःशुद्धि और तीर्थशुद्धि, इन तीनों शुद्धियोंकी अपेक्षा ज्ञानसे उत्पन्न हुई शुद्धि ही परम पवित्र मानी गई है। ज्ञानसे निर्मल हुआ मन और ब्रह्मज्ञान जलके सहारे जो लोग मानस तीर्थमें स्नान करते हैं, उनका नहाना ही स्नान है; तत्वदर्शियोंको ऐसा ही स्नान अभिमत

शरीरस्थानि तीर्थानि प्रोक्तान्येतानि भारत ।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यानि शृणु तान्यपि ॥१५॥
शरीरस्य यथोद्देशाः शुचयः परिकीर्तिताः ।
तथा पृथिव्या भागाश्च पुण्यानि सलिलानि च ॥१६॥
कीर्तनाच्चैव तीर्थस्य स्नानाच्च पितृतर्पणात् ।
धुनन्ति पापं तीर्थेषु ते प्रयान्ति सुखं दिवम् ॥ १७ ॥
परिग्रहाच्च साधूनां पृथिव्याश्चैव तेजसा ।
अतीव पुण्यभागास्ते सलिलस्य च तेजसा ॥ १८ ॥
मनसश्च पृथिव्याश्च पुण्यास्तीर्थास्तथाऽपरे ।
उभयोरेव यः स्नायात्स सिद्धिं शीघ्रमाप्नुयात् ॥१९॥
यथा बलं क्रियाहीनं क्रिया वा बलवर्जिता ।
नेह साधयते कार्यं समायुक्ता तु सिध्यति ॥ २० ॥
एवं शरीरशौचेन तीर्थशौचेन चान्वितः ।
शुचिः सिद्धिमवाप्नोति द्विविधं शौचमुत्तमम् ॥२१॥ [७३०१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे शौचानुपृच्छा नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

है । शौचसम्पन्न, नियत भावसे समाहित, गुणवान मनुष्य निश्चय ही सदा पवित्र हैं । हे भारत ! ये सब शरीरस्थ तीर्थ कहे गये हैं, पृथ्वीके बीच जो सब पवित्र तीर्थ हैं, उसे भी सुनो । (१०-१५)

जैसे शरीरके अवयव पवित्र रूपसे वर्णित हुए हैं, वैसे ही पृथ्वीके सब अंश और जल पवित्ररूपसे कहे गये हैं । जो लोग तीर्थोंके नाम लेते, तीर्थोंमें स्नान और पितृतर्पण करते हैं, तीर्थोंमें पाप धोके सहजमें ही सुरपुरमें गमन किया करते हैं । साधुओंके संसर्ग तथा पृथ्वी और जलके तेजके सहारे तीर्थसेवी मनुष्य अत्यन्त पुण्यभागी होते हैं । मनके तीर्थके अतिरिक्त पृथ्वीके तीर्थ स्वतंत्र हैं; जो लोग दोनों तीर्थोंमें स्नान करते हैं, वे शीघ्र ही सिद्ध होते हैं । जैसे क्रियारहित बल और बलरहित क्रिया इस लोकमें कार्य साधन करनेमें समर्थ नहीं होती; परन्तु दोनोंके मिलनेपर कार्य सिद्ध होता है, वैसा ही शरीरशौच और तीर्थशौचसम्पन्न पवित्र मनुष्यको दो प्रकारकी श्रेष्ठ शौचरूपी सिद्धि प्राप्त होती है । (१६-२१)

अनुशासनपर्वमें १०८ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर उवाच- सर्वेषामुपवासानां यच्छ्रेयः सुमहत्फलम् ।
यच्चाप्यसंशयं लोके तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
भीष्म उवाच—शृणु राजन्यथा गीतं स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
यत्कृत्वा निर्वृतो भूयात्पुरुषो नाऽत्र संशयः ॥ २ ॥
द्वादश्यां मार्गशीर्षे तु अहोरात्रेण केशवम् ।
अर्च्याश्वमेधं प्राप्नोति दुष्कृतं चास्य नश्यति ॥ ३ ॥
तथैव पौषमासे तु पूज्यो नारायणेति च ।
वाजपेयमवाप्नोति सिद्धिं च परमां व्रजेत् ॥ ४ ॥
अहोरात्रेण द्वादश्यां माघमासे तु माधवम् ।
राजसूयमवाप्नोति कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ५ ॥
तथैव फाल्गुने मासि गोविन्देति च पूजयन् ।
अतिरात्रमवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति ॥ ६ ॥
अहोरात्रेण द्वादश्यां चैत्रे विष्णुरिति स्मरन् ।
पौण्डरीकमवाप्नोति देवलोकं च गच्छति ॥ ७ ॥
वैशाखमासे द्वादश्यां पूजयन्मधुसूदनम् ।

अनुशासनपर्वमें १० अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, जो सब उपवासोंके बीच कल्याणकारी, महत् फलजनक और लोकसमाजमें संशयरहित हो उसे ही आप मेरे समीप वर्णन करिये। (१)

भीष्म बोले, हे महाराज! स्वयंभूने स्वयं जिसका वर्णन किया है, जिसे करनेसे निःसंशय पुरुषोंको निर्वृति प्राप्त होती है, उसका विषय सुनो। मार्गशीर्ष महीनेकी द्वादशी तिथिमें अहोरात्र केशवकी पूजा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है, तथा जो लोग पूजा करते हैं, उनके पाप नष्ट होते हैं। वैसे ही पौष महीनेमें नारायणकी पूजा करनेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है और परम सिद्धि प्राप्त होती है। माघ महीनेकी द्वादशी तिथिमें अहोरात्र माधवकी पूजा करनेसे राजसूय यज्ञका फल मिलता है और पूजा करनेवाला निज कुलका उद्धार करता है। उसी भांति फाल्गुन महीनेकी द्वादशीमें जो लोग गोविन्दकी पूजा करते हैं, वे अतिरात्र यज्ञका फल पाते हैं और सोमलोकमें गमन किया करते हैं। (२-६)

चैत्र महीनेकी द्वादशीमें जो लोग अहोरात्र विष्णुको स्मरण करते हुए उनकी पूजा करते हैं, वे पुण्डरीक यज्ञका फल पाके देवलोकमें जाते हैं।

अग्निष्टोममवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति ॥ ८ ॥
अहोरात्रेण द्वादश्यां ज्येष्ठे मासि त्रिविक्रमम् ।
गवां मेधमवाप्नोति अप्सरोभिश्च मोदते ॥ ९ ॥
आषाढे मासि द्वादश्यां वामनेति च पूजयन् ।
नरमेधमवाप्नोति पुण्यं च लभते महत् ॥ १० ॥
अहोरात्रेण द्वादश्यां श्रावणे मासि श्रीधरम् ।
पञ्चयज्ञानवाप्नोति विमानस्थश्च मोदते ॥ ११ ॥
तथा भाद्रपदे मासि हृषीकेशेति पूजयन् ।
सौत्रामणिमवाप्नोति पूतात्मा भवते च हि ॥ १२ ॥
द्वादश्यामाश्विने मासि पद्मनाभेति चार्चयन् ।
गोसहस्रफलं पुण्यं प्राप्नुयान्नाऽत्र संशयः ॥ १३ ॥
द्वादश्यां कार्तिके मासि पूज्य दामोदरेति च ।
गवां यज्ञमवाप्नोति पुमान्स्त्री वा न संशयः ॥ १४ ॥
अर्चयेत्पुण्डरीकाक्षमेवं संवत्सरं तु यः ।
जातिस्मरत्वं प्राप्नोति विन्द्याद्बहुसुवर्णकम् ॥ १५ ॥

वैशाख महीनेकी द्वादशी तिथिमें जो लोग मधुसूदनकी पूजा करते हैं, वे अग्निष्टोम यज्ञका फल पाते और सोमलोकमें गमन किया करते हैं। ज्येष्ठ महीनेकी द्वादशी तिथिमें जो लोग अहोरात्र त्रिविक्रमकी पूजा करते हैं, वे गोमेध यज्ञका फल पाते और अप्सराओंके द्वारा प्रमुदित हुआ करते हैं। आषाढ महीनेकी द्वादशीको जो लोग वामनदेवकी पूजा करते हैं, वे मनुष्य नरमेध यज्ञका फल पाते और अप्सराओंके द्वारा आनन्दित हुआ करते हैं। सावन महीनेकी द्वादशीमें जो लोग अहोरात्र श्रीधरकी पूजा करते हैं, वे पञ्च यज्ञका फल पाते और देवलोकमें प्रमुदित होते हैं। (७—११)

भादो महीनेकी द्वादशीमें जो लोग हृषीकेशकी पूजा करते हैं, वे सौत्रामणि यज्ञका फल पाके पवित्रचित्त होते हैं। आश्विन महीनेकी द्वादशी तिथिमें जो लोग पद्मनाभकी पूजा करते हैं, वे निःसंदेह सहस्र गोदानका फल पाते हैं, कार्तिक महीनेकी द्वादशी तिथिमें दामोदरकी पूजा करनेसे सब यज्ञोंके पवित्र फल प्राप्त होते हैं, इस विषयमें सन्देह नहीं है। जो लोग इसी प्रकार वर्ष दिनतक पुण्डरीकाक्षकी पूजा करते हैं, वे जातिस्मर होते तथा उन्हें बहुतसा

अहन्यहनि तद्भावमुपेन्द्रं योऽधिगच्छति।
समाप्ते भोजयेद्विप्रानथ वा दापयेद् घृतम् ॥ १६ ॥
अतः परं नोपवासो भवतीति विनिश्चयः।
उवाच भगवान्विष्णुः स्वयमेव पुरातनम् ॥ १७ ॥ [५११८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विष्णोर्द्वादशकं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

वैशम्पायन उवाच– शरतल्पगतं भीष्मं वृद्धं कुरुपितामहम्।
उपगम्य महाप्राज्ञः पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १ ॥
युधिष्ठिर उवाच– अङ्गानां रूपसौभाग्यं प्रियं चैव कथं भवेत्।
धर्मार्थकामसंयुक्तः सुखभागी कथं भवेत् ॥ २ ॥
भीष्म उवाच– मार्गशीर्षस्य मासस्य चन्द्रे मूलेन संयुते।
पादौ मूलेन राजेन्द्र जङ्घायामथ रोहिणीम् ॥ ३ ॥
अश्विन्यां सक्थिनी चैव ऊरू चाषाढयोस्तथा।
गुह्यं तु फाल्गुनी विद्यात्कृत्तिका कटिकास्तथा ॥ ४ ॥
नाभिं भाद्रपदे विद्याद्रेवत्यामक्षिमण्डलम्।

सुवर्ण प्राप्त होता है जो लोग सदा विष्णुकी पूजा करते हैं, वे उनमें लीन होनेमें समर्थ होते हैं। इस व्रतके समाप्त होनेपर ब्राह्मणोंको भोजन करावे अथवा घृत दान करे; यह निश्चय है, इसके अनन्तर उपवास नहीं होता। सनातन विष्णु भगवानने यह कथा कही है। (११—१७)

अनुशासनपर्वमें १०९ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११० अध्याय।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महाप्राज्ञ युधिष्ठिरने शरशय्याशायी कुरुपितामह बूढे भीष्मके निकट जाके फिर प्रश्न किया। (१)

युधिष्ठिर बोले, अङ्ग लोगोंको रूप, सौभाग्य और प्रियत्व किस प्रकार हुआ करता है तथा धर्मार्थयुक्त पुरुष किसभांति सुखभागी होता है? (२)

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! मार्गशीर्ष महीनेकी शुक्लप्रतिपदामें मूल नक्षत्रके सहित चन्द्रमाका संयोग होनेपर निज देवताके सहित मूल नक्षत्रका चन्द्रमाके सङ्ग दो पद कल्पना करे और रोहिणी नक्षत्रके सहित चन्द्रमाकी जङ्घा कल्पना करे। अश्विनी नक्षत्रके सहित दोनों सक्थि; पूर्वाषाढा और उत्तराषाढाके सहित दोनों ऊरुस्थल, उत्तरा फल्गुनी नक्षत्रके सहित गुह्यकी कल्पना और कृत्ति-

पृष्ठमेव धनिष्ठासु अनुराधोत्तरास्तथा ॥ ५ ॥
बाहुभ्यां तु विशाखासु हस्तौ हस्तेन निर्दिशेत्।
पुनर्वस्वङ्गुली राजन्नाश्लेषासु नखास्तथा ॥ ६ ॥
ग्रीवां ज्येष्ठा च राजेन्द्र श्रवणेन तु कर्णयोः।
मुखं पुष्येण दानेन दन्तोष्ठौ स्वातिरुच्यते ॥ ७ ॥
हासं शतभिषां चैव मघां चैवाथ नासिकाम्।
नेत्रे मृगशिरो विद्याल्ललाटे मित्रमेव तु ॥ ८ ॥
भरण्यां तु शिरो विद्यात् केशानार्द्रां नराधिप।
समाप्ते तु घृतं दद्याद्ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ ९ ॥
सुभगो दर्शनीयश्च ज्ञानभाग्यथ जायते।
जायते परिपूर्णाङ्गः पौर्णमास्येव चन्द्रमाः ॥ १० ॥ [५३२८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

युधिष्ठिर उवाच– पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
श्रोतुमिच्छामि मर्त्यानां संसारविधिमुत्तमम् ॥ १ ॥

का नक्षत्रके सहित कटिकी कल्पना करे। पूर्व और उत्तर भाद्रपदाके सहित नाभी; रेवती नक्षत्रके सहित दोनों नेत्र; धनिष्ठा नक्षत्रके सहित पीठ, अनुराधा नक्षत्रके सहित उदर, विशाखा नक्षत्रके सहित दोनों भुजा और हस्त नक्षत्रके सहित चन्द्रमाका संयोग होनेपर दोनों हाथ निर्देश करे। हे महाराज! पुनर्वसु नक्षत्रके सहित चन्द्रमाका सम्बन्ध होनेपर अंगुलियें और आश्लेषा नक्षत्रके योगसे नखोंकी कल्पना करे। (३–६)

हे राजेन्द्र! ज्येष्ठा नक्षत्रके योगसे ग्रीवा और श्रवण नक्षत्रके संयोगसे दोनों कान, पुष्य और स्वाति नक्षत्रके योगसे शतभिष और मघायोगसे हास्य और नासिका, मृगशिरा नक्षत्रके योगसे दोनों नेत्र और चित्रा नक्षत्रके सहित ललाटकी कल्पना करे। भरणी नक्षत्रके योगसे सिर और आर्द्रा नक्षत्रके सहित चन्द्रमाका संयोग होनेपर उसके केशोंकी कल्पना करे। हे नरनाथ! इस चन्द्रव्रतके समाप्त होनेपर वेदपारग ब्राह्मणोंको घृत दान करे, इस प्रकार व्रत करनेसे मनुष्य सुभग, दर्शनीय तथा ज्ञानभागी होकर जन्मता है और पूर्णिमाके चन्द्रमा सदृश परिपूर्णाङ्ग हुआ करता है। (७—१०)

अनुशासनपर्वमें ११० अध्याय समाप्त।

केन वृत्तेन राजेन्द्र वर्तमाना नरा भुवि ।
प्राप्नुवन्त्युत्तमं स्वर्गं कथं च नरकं नृप ॥ २ ॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः ।
प्रयान्त्यमुं लोकमितः को वैताननुगच्छति ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच– अयमायाति भगवान् बृहस्पतिरुदारधीः ।
पृच्छैनं सुमहाभागमेतद्गुह्यं सनातनम् ॥ ४ ॥
नैतदन्येन शक्यं हि वक्तुं केनचिदद्य वै ।
वक्ता बृहस्पतिसमो न ह्यन्यो विद्यते क्वचित् ॥ ५ ॥
वैशम्पायन उवाच– तयोः संवदतोरेवं पार्थगाङ्गेययोस्तदा ।
आजगाम विशुद्धात्मा नाकपृष्ठाद् बृहस्पतिः ॥ ६ ॥
ततो राजा समुत्थाय धृतराष्ट्रपुरोगमः ।
पूजामनुपमां चक्रे सर्वे ते च सभासदः ॥ ७ ॥
ततो धर्मसुतो राजा भगवन्तं बृहस्पतिम् ।
उपगम्य यथान्यायं प्रश्नं पप्रच्छ तत्त्वतः ॥ ८ ॥
युधिष्ठिर उवाच– भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।

अनुशासनपर्वमें १११ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्वशास्त्रविशारद पितामह ! मनुष्योंकी श्रेष्ठ संसारविधि जाननेकी इच्छा करता हूं। हे राजेन्द्र नरपाल ! पृथ्वीमण्डलपर मनुष्योंको किस प्रकार उत्तम व्यवहार करनेसे श्रेष्ठ स्वर्ग अथवा नरक प्राप्त होता है ? पुरुष काष्ठ और लोष्टसदृश शरीरको त्यागके परलोकमें जाता है, तब उस समय कौन उनका अनुगमन किया करता है ? (१—३)

भीष्म बोले, ये उदार, बुद्धिशक्तियुक्त बृहस्पति आरहे हैं, इन्हीं महाभागसे यह सनातन गोपनीय विषय पूछो। इस समय इनके अतिरिक्त कोई भी यह विषय नहीं कह सकता, बृहस्पतिके समान दूसरा वक्ता कहीं भी विद्यमान नहीं है। (४—५)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, युधिष्ठिर और भीष्म इसी प्रकार वार्त्तालाप कर रहे थे, उसी समय पवित्र-चित्तवाले बृहस्पति स्वर्गसे उतरके आये। अनन्तर धृतराष्ट्र आदि राजाओंके सहित सब सभासदोंने उठके उनकी अनुपम पूजा की। तब धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर भगवान् बृहस्पतिके निकट जाके न्यायपूर्वक यथार्थ रीतिसे प्रश्न करनेमें प्रवृत्त हुए। (६–८)

मर्त्यस्य कः सहायो वै पिता माता सुतो गुरुः ॥ ९ ॥
ज्ञातिसम्बन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च।
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः ॥ १० ॥
गच्छन्त्यमुत्र लोकं वै क एनमनुगच्छति।
बृहस्पतिरुवाच-एकः प्रसूयते राजन्नेक एव विनश्यति ॥ ११ ॥
एकस्तरति दुर्गाणि गच्छत्येकस्तु दुर्गतिम्।
असहायः पिता माता तथा भ्राता सुतो गुरुः॥ १२ ॥
ज्ञातिसम्बन्धिवर्गश्च मित्रवर्गस्तथैव च।
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं जनाः ॥ १३ ॥
मुहूर्तमिव रोदित्वा ततो यान्ति पराङ्मुखाः।
तैस्तच्छरीरमुत्सृष्टं धर्म एकोऽनुगच्छति ॥ १४ ॥
तस्माद्धर्मः सहायश्च सेवितव्यः सदा नृभिः।
प्राणी धर्मसमायुक्तो गच्छेत्स्वर्गगतिं पराम् ॥ १५ ॥
तथैवाधर्मसंयुक्तो नरकं चोपपद्यते।
तस्मान्न्यायागतैरर्थैर्धर्मं सेवेत पण्डितः ॥ १६ ॥
धर्म एको मनुष्याणां सहायः पारलौकिकः।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्वशास्त्रविशारद सर्वधर्मज्ञ भगवन्! पिता, माता, पुत्र, गुरु, स्वजन, सम्बन्धी और मित्रमण्डलीके बीच मनुष्योंका सहाय कौन है? पुरुष काष्ठ और लोष्टसदृश मृत शरीरको परित्याग करके गमन करता है, तब परलोकमें कौन उसका अनुगमन किया करता है? (९-११)

बृहस्पति बोले, हे महाराज! पुरुष अकेला ही जन्मता और अकेलाही मरता है, अकेला ही क्लेशोंसे पार होता और अकेलेको ही दुःख भोगने पडते हैं। पिता, माता, पुत्र, मित्र, भ्राता, गुरु, स्वजन और सम्बन्धियोंमेंसे कोई भी इसका सहाय नहीं होता। पुरुष काष्ठ और लोष्टसदृश शरीर त्यागके मुहूर्त भरतक मानो रोदन करके अन्तमें विमुख होकर चला जाता है, तब अकेला धर्म ही उस पिता मातासे परित्यक्त पुरुषका अनुगमन करता है, इसलिये धर्म ही पुरुषोंका सहाय है, धर्मकी ही मनुष्योंको सदा सेवा करनी उचित है। धर्मयुक्त प्राणियोंको स्वर्गमें श्रेष्ठ गति मिलती है। और अधर्मयुक्त पुरुष नरकमें गमन किया करता है। इसलिये पण्डित पुरुष न्यायसे प्राप्त हुए धनसे धर्मकी

लोभान्मोहादनुक्रोशाद्भयाद्वाप्यबहुश्रुतः ॥ १७ ॥
नरः करोत्यकार्याणि परार्थे लोभमोहितः।
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रितयं जीविते फलम् ॥ १८ ॥
एतत्त्रयमवाप्तव्यमधर्मपरिवर्जितम्।
युधिष्ठिर उवाच–श्रुतं भगवतो वाक्यं धर्मयुक्तं परं हितम् ॥ १९ ॥
शरीरनिचयं ज्ञातुं बुद्धिस्तु मम जायते।
मृतं शरीरं हि नृणां सूक्ष्ममव्यक्ततां गतम् ॥ २० ॥
अचक्षुर्विषयं प्राप्तं कथं धर्मोऽनुगच्छति।
बृहस्पतिरुवाच–पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनोऽन्तगः॥ २१ ॥
बुद्धिरात्मा च सहिता धर्मं पश्यन्ति नित्यदा।
प्राणिनामिह सर्वेषां साक्षिभूता निशाऽनिशम् ॥२२॥
एतैश्च सह धर्मोऽपि तं जीवमनुगच्छति।
त्वगस्थिमांसं शुक्रं च शोणितं च महामते ॥ २३ ॥
शरीरं वर्जयन्त्येते जीवितेन विवर्जितम्।
ततो धर्मसमायुक्तः प्राप्नुते जीव एव हि ॥ २४ ॥
ततोऽस्य कर्म पश्यन्ति शुभं वा यदि वाऽशुभम्।

सेवा करे। अकेला धर्म ही परलोकमें मनुष्योंका सहायक होता है;अल्प बुद्धि-वाले मनुष्य पराये धनके लोभसे मोहित होके लोभ, मोह, अनुक्रोश और भय निबन्धसे अकार्योंको किया करते हैं; धर्म, अर्थ और काम ये तीनों जीवित-कालके फल हैं, इसलिये अधर्मको त्या-गके इन त्रिवर्गोंको प्राप्त करना उचित है। (११—१९)

युधिष्ठिर बोले,-आपके समीप मैंने धर्मयुक्त, परम हितकर वचन सुना, अब शरीरकी अवस्था जाननेके लिये अत्यंत अभिलाष हुई है। मनुष्योंका मृत शरीर सूक्ष्म रीतिसे अव्यक्तताको प्राप्त होनेसे नेत्रगोचर नहीं होता; तब धर्म किस प्रकार उसका अनुगामी होता है?१९-२१

बृहस्पति बोले,पृथ्वी, वायु,आकाश, जल, अग्नि, बुद्धि और आत्मा तथा साक्षीभूत रात्रि और दिन, ये सब मिलके इस लोकमें प्राणियोंके धर्मको सदा अवलोकन करते हैं, ये सब धर्म और जीवके अनुगामी होते हैं। हे महा-बुद्धिमान्! त्वचा, हड्डी, मांस, शुक्र और रुधिर ये जीवनरहित शरीरको छोड देते हैं, अनन्तर धर्मसंयुक्त जीव दूसरा शरीर धारण करता है, अन्तमें

देवताः पञ्चभूतस्थाः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ २५ ॥
ततो धर्मसमायुक्तः स जीवः सुखमेधते ।
इह लोके परे चैव किं भूयः कथयामि ते ॥ २६ ॥

युधिष्ठिर उवाच—तद्दर्शितं भगवता यथा धर्मोऽनुगच्छति ।
एतत्तु ज्ञातुमिच्छामि कथं रेतः प्रवर्तते ॥ २७ ॥

बृहस्पतिरुवाच—अन्नमश्नन्ति यद्देवाः शरीरस्था नरेश्वर ।
पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिर्मनस्तथा ॥ २८ ॥
ततस्तृप्तेषु राजेन्द्र तेषु भूतेषु पञ्चसु ।
मनःषष्ठेषु शुद्धात्मन् रेतः संपद्यते महत् ॥ २९ ॥
ततो गर्भः सम्भवति श्लेषात्स्त्रीपुंसयोर्नृप ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं भूयः किं श्रोतुमिच्छसि ॥ ३० ॥

युधिष्ठिर उवाच—आख्यातं मे भगवता गर्भः सञ्जायते तथा ।
यथा जातस्तु पुरुषः प्रपद्यति तदुच्यताम् ॥ ३१ ॥

बृहस्पतिरुवाच—आसन्नमात्रः पुरुषस्तैर्भूतैरभिभूयते ।
विप्रयुक्तश्च तैर्भूतैः पुनर्यात्यपरां गतिम् ॥ ३२ ॥

पञ्चतत्वोंके देवता उस जीवके शुभ वा अशुभ कर्मोको देखते हैं। धर्मके सहित वह जीव इस लोक और परलोकमें सुख पाता है। पुनर्वार तुमसे और कौनसा विषय कहूं? (२१—२६)

युधिष्ठिर बोले, धर्म जिस भांति अनुगमन करता है, उसे आपने कहा, अब किस प्रकार वीर्य प्रवृत्त होता है? मैं इसे जाननेकी इच्छा करता हूं। (२७)

बृहस्पति बोले, हे नरनाथ! जो अन्न पुरुष खाता है, शरीरमें रहनेवाले देवगण, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि और छठवें मनके सन्तुष्ट होनेपर वही भोजन किया हुआ अन्न महत् वीर्यस्वरूप होता है। हे राजन्! अनन्तर स्त्रीपुरुषोंके संयोगसे गर्भ उत्पन्न हुआ करता है। यह सब तुम्हारे समीप कहा गया, फिर क्या सुननेकी इच्छा है? (२८–३०)

युधिष्ठिर बोले, जिस प्रकार गर्भ उत्पन्न होता है, वह आपके द्वारा वर्णित हुआ; अब जिस भांति पुरुषकी उत्पत्ति होती है, उसे कहिये। (३१)

बृहस्पति बोले, उत्पत्तियुक्त पुरुष पञ्चतत्वोंके गुणोंसे अभिभूत होता है और उन्हीं संयुक्त तत्त्वोंसे अपरा गति प्राप्त हुआ करती है अर्थात् तादात्म्या-

सर्वभूतसमायुक्तः प्राप्नुते जीव एव हि।
ततोऽस्य कर्म पश्यन्ति शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
देवताः पञ्चभूतस्थाः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३३॥

युधिष्ठिर उवाच— त्वगस्थिमांसमुत्सृज्य तैश्च भूतैर्विवर्जितः।
जीवः स भगवन्कस्थः सुखदुःखे समश्नुते ॥ ३४॥

बृहस्पतिरुवाच— जीवः कर्मसमायुक्तः शीघ्रं रेतस्त्वमागतः।
स्त्रीणां पुष्पं समासाद्य सूते कालेन भारत ॥ ३५॥
यमस्य पुरुषैः क्लेशं यमस्य पुरुषैर्वधम्।
दुःखं संसारचक्रं च नरः क्लेशं स विन्दति ॥ ३६॥
इह लोके स च प्राणी जन्मप्रभृति पार्थिव।
सुकृतं कर्म वै भुङ्क्ते धर्मस्य फलमाश्रितः ॥ ३७॥
यदि धर्मं यथाशक्ति जन्मप्रभृति सेवते।
ततः स पुरुषो भूत्वा सेवते नित्यदा सुखम् ॥ ३८॥
अथान्तरा तु धर्मस्याप्यधर्ममुपसेवते।
सुखस्यानन्तरं दुःखं स जीवोऽप्यधिगच्छति ॥ ३९॥
अधर्मेण समायुक्तो यमस्य विषयं गतः।

भिमान रूप अभिभव हेतु यह सर्वभूत-सम्पन्न होकर कर्तृत्वादि अभिमानी होता है, उस समय पञ्चतत्त्वोंके देवता जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंको देखते हैं। फिर कौनसा विषय सुननेकी इच्छा है? (३२—३३)

युधिष्ठिर बोले हे भगवन्! त्वचा, हड्डी और मांस परित्याग करनेसे उन तत्त्वोंसे रहित होकर वह जीव किस स्थानमें रहके सुख दुःख भोग करता है? (३४)

बृहस्पति बोले, कर्मसे संयुक्त जीव शीघ्र ही वीर्यस्वरूप होकर स्त्रियोंके पुष्पको अवलम्बन करके यथा समयमें उत्पन्न होता है। यमके द्वारा बन्धन तथा क्लेश भोगके मनुष्य दुःखमय संसारचक्रमें क्लेशोंको भोगता है। हे महाराज! वह प्राणी इस लोकमें जन्मसेही धर्मफल अवलम्बन करनेसे सुकृत कर्मभोग किया करता है। जन्मसे ही यदि शक्तिके अनुसार धर्मकी सेवा करे, तो वह पुरुष सदा सुख भोग किया करता है। और धर्मके बीच यदि अधर्मकी सेवा करे, तो वह जीव सुखके अनन्तर दुःख भोगनेमें प्रवृत्त होता है। जो जीव अधर्मयुक्त

महद् दुःखं समासाद्य तिर्यग्योनौ प्रजायते ॥ ४० ॥
कर्मणा येन येनेह यस्यां योनौ प्रजायते ।
जीवो मोहसमायुक्तस्तन्मे निगदतः शृणु ॥ ४१ ॥
यदेतदुच्यते शास्त्रे सेतिहासे च छन्दसि ।
यमस्य विषयं घोरं मर्त्यो लोकः प्रपद्यते ॥ ४२ ॥
इह स्थानानि पुण्यानि देवतुल्यानि भूपते ।
तिर्यग्योन्यतिरिक्तानि गतिमन्ति च सर्वशः ॥ ४३ ॥
यमस्य भवने दिव्ये ब्रह्मलोकसमे गुणैः ।
कर्मभिर्नियतैर्बद्धो जन्तुर्दुःखान्युपाश्नुते ॥ ४४ ॥
येन येन तु भावेन कर्मणा पुरुषो गतिम् ।
प्रयाति परुषां घोरां तत्ते वक्ष्याम्यतः परम् ॥ ४५ ॥
अधीत्य चतुरो वेदान् द्विजो मोहसमन्वितः ।
पतितात्प्रतिगृह्याथ खरयोनौ प्रजायते ॥ ४६ ॥
खरो जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ।
खरो मृतो बलीवर्दः सप्त वर्षाणि जीवति ॥ ४७ ॥
बलीवर्दो मृतश्चापि जायते ब्रह्मराक्षसः ।

हैं, वे यमलोकमें जाके दुःखके सहित तिर्यग्योनिमें जन्मते हैं । मोहयुक्त जीव इस लोकमें जिन कर्मोंके सहारे जिन योनियोंमें उत्पन्न हुआ करता है, उसे मैं कहता हूं, सुनो। (३५-४१)

इतिहासके सहित शास्त्रों और वेदोंमें यह वर्णित है, कि मर्त्यलोकवासी जीव घोर यमपुरीमें गमन करते हैं। हे पृथ्वीनाथ ! वहांपर देवलोकसदृश पवित्रस्थान विद्यमान है, वहां तिर्यग्योनिमें उत्पन्न हुए जीव नहीं जासकते; इसके अतिरिक्त सब जीवोंकी ही उस स्थानमें गति हुआ करती है । ब्रह्मलोकसदृश दिव्य यमभवनमें जीव सदा कर्मगुणोंसे बद्ध होकर विविध दुःख भोग करता है । जैसे भाव और कर्मोंसे पुरुषको घोर कठोर गति प्राप्त होती है, इसके अनन्तर मैं तुमसे वह विषय कहता हूं । ब्राह्मण यदि चारों वेदोंको पढके मोहवश पतित पुरुषके प्रतिग्रह लेवे, तो वह गर्दभयोनिमें जन्मता है । (४२-४६)

हे भारत ! वह गधा होके पन्द्रह वर्ष जीवित रहता है, गधा मरनेपर बलवान बैल होता है, बलीवर्द सात वर्ष जीवित रहता है, बलीवर्द मरके

ब्रह्मरक्षश्च मासांस्त्रींस्ततो जायति ब्राह्मणः ॥ ४८ ॥
पतितं याजयित्वा तु कृमियोनौ प्रजायते ।
तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ॥ ४९ ॥
कृमिभावाद्विमुक्तस्तु ततो जायति गर्दभः ।
गर्दभः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि सूकरः ॥ ५० ॥
कुक्कुटः पञ्च वर्षाणि पञ्च वर्षाणि जम्बुकः ।
श्वा वर्षमेकं भवति ततो जायति मानवः ॥ ५१ ॥
उपाध्यायस्य यः पापं शिष्यः कुर्यादबुद्धिमान् ।
स जीव इह संसारांस्त्रीनाप्नोति न संशयः ॥ ५२ ॥
प्राक् श्वा भवति राजेन्द्र ततः क्रव्यात्ततः खरः ।
ततः प्रेतः परिक्लिष्टः पश्चाज्जायति ब्राह्मणः ॥ ५३ ॥
मनसाऽपि गुरोर्भार्यां यः शिष्यो याति पापकृत् ।
स उग्रान्प्रैति संसारानधर्मेणेह चेतसा ॥ ५४ ॥
श्वयोनौ तु स सम्भूतस्त्रीणि वर्षाणि जीवति ।
तत्रापि निधनं प्राप्तः कृमियोनौ प्रजायते ॥ ५५ ॥
कृमिभावमनुप्राप्तो वर्षमेकं तु जीवति ।

ब्रह्मराक्षस रूपसे जन्मता है, ब्रह्मराक्षस तीन महीने जीवित रहके मरनेपर ब्राह्मण होता है। पतित पुरुषका याजन करनेसे कृमियोनिमें जन्म हुआ करता है। हे भारत! वह कृमियोनिमें पन्द्रह वर्ष जीवित रहता है, कृमियोनिसे छुटके गर्दभयोनिमें जन्मता है, गधा होके पन्द्रह वर्ष, फिर शूकर होके पांच वर्ष, पांचवर्षतक कुक्कुट, पांच वर्षतक सियार और एक वर्षतक कुत्ता होके रहता है, अनन्तर मनुष्य होता है। (४७—५१)

जो निर्बुद्धि शिष्य उपाध्यायके निकट पाप करता है, वह जीव इस लोकमें तीनबार निःसन्देह तिर्यक्योनिमें उत्पन्न होता है। हे राजेन्द्र! वह पहले कुत्ता होता है, तिसके अनन्तर मांसभोजी हिंसक जन्तु होके जन्मता है, फिर गधा होके उत्पन्न होता है, अनन्तर प्रेतरूप होके पश्चात् ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होता है, जो पापाचारी शिष्य मनसेभी गुरुपत्नी गमन करता है, वह अधर्मयुक्त चित्तसे परलोकमें जाके इस लोकमें उग्र जन्म पाता है। वह पहले श्वयोनिमें उत्पन्न होकर तीन वर्षतक जीवित रहता है, श्वान योनिमें मरके कृमियो-

ततस्तु निधनं प्राप्तो ब्रह्मयोनौ प्रजायते ॥ ५६ ॥
यदि पुत्रसमं शिष्यं गुरुर्हन्यादकारणे ।
आत्मनः कामकारेण सोऽपि हिंस्रः प्रजायते ॥ ५७ ॥
पितरं मातरं चैव यस्तु पुत्रोऽवमन्यते ।
सोऽपि राजन्मृतो जन्तुः पूर्वं जायेत गर्दभः ॥ ५८ ॥
गर्दभत्वं तु संप्राप्य दश वर्षाणि जीवति ।
संवत्सरं तु कुम्भीरस्ततो जायेत मानवः ॥ ५९ ॥
पुत्रस्य मातापितरौ यस्य रुष्टावुभावपि ।
गुर्वपध्यानतः सोऽपि मृतो जायति गर्दभः ॥ ६० ॥
खरो जीवति मासांस्तु दश श्वा च चतुर्दश ।
बिडालः सप्त मासांस्तु ततो जायति मानवः ॥ ६१ ॥
मातापितरावाक्रुश्य सारिकः संप्रजायते ।
ताडयित्वा तु तावेव जायते कच्छपो नृप ॥ ६२ ॥
कच्छपो दश वर्षाणि त्रीणि वर्षाणि शल्यकः ।
व्यालो भूत्वा च षण्मासांस्ततो जायति मानुषः ॥६३॥

निमें जन्मता है । कृमि होके एक वर्ष-तक जीवित रहता है, अनन्तर मरके ब्राह्मणयोनिमें जन्मता है । गुरु यदि अपनी इच्छानुसार पुत्रतुल्य शिष्यके ऊपर विना कारणके ही प्रहार करता है तो वह भी हिंसक जन्तु होके उत्पन्न हुआ करता है । (५२—५७)

हे महाराज ! जो पुत्र पितामाताकी अवमानना करता है, वह मरके पहले गर्दभयोनिमें उत्पन्न होता है, गधा होके दश वर्षतक जीवित रहता है, एक वर्ष-तक कुम्भीर अर्थात् शतपदीयुक्त जन्तु-विशेष होकर अन्तमें मनुष्यजन्म पाता है । जिस पुत्रके ऊपर माता पिता दोनों ही रुष्ट होते हैं, वह गुरुजनोंके असन्तोष वशसे मरके गर्दभयोनिमें जन्मता है, गधा होके दश महीनेतक जीवित रहता, फिर कुत्ता होकर चौदह महीनेतक जीता है; अनन्तर बिडाल होकर सात महीना बिताके अन्तमें मनुष्यजन्म पाता है । (५८—६१)

जो पुरुष पितामाताके विषयमें आक्रोश प्रकाश करता है, वह सारिक अर्थात् शालिक पक्षी होके उत्पन्न होता है । हे महाराज ! पितामाताके ऊपर प्रहार करनेसे तीन वर्षतक कच्छप होके जन्मता है । कछुआ मरके तीन वर्षतक शल्यक और छः महीनेतक सांप होके

भर्तृपिण्डमुपाश्नन्यो राजद्विष्टानि सेवते ।
सोऽपि मोहसमापन्नो मृतो जायति वानरः ॥ ६४ ॥
वानरो दश वर्षाणि पञ्च वर्षाणि मूषिकः ।
श्वाऽथ भूत्वा तु षण्मासांस्ततो जायति मानुषः ॥६५॥
न्यासापहर्ता तु नरो यमस्य विषयं गतः ॥
संसाराणां शतं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ॥ ६६ ॥
तत्र जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ॥
दुष्कृतस्य क्षयं कृत्वा ततो जायति मानुषः ॥ ६७ ॥
असूयको नरश्चापि मृतो जायति शार्ङ्गकः ।
विश्वासहर्ता तु नरो मीनो जायति दुर्मतिः ॥ ६८ ॥
भूत्वा मीनोऽष्टवर्षाणि मृगो जायति भारत ।
मृगस्तु चतुरो मासांस्ततश्छागः प्रजायते ॥ ६९ ॥
छागस्तु निधनं प्राप्य पूर्णसंवत्सरे ततः ।
कीटः सञ्जायते जन्तुस्ततो जायति मानुषः ॥ ७० ॥
धान्यान्यवांस्तिलान्माषान्कुलत्थान्सर्षपांश्चणान् ।
कलायानथ मुद्गांश्च गोधूमानतसीस्तथा ॥ ७१ ॥

जीवित रहता है, अन्तमें मनुष्य होके जन्मता है, जो लोग स्वामीका अन्न खाते हुए राजविषयोंकी सेवा करते हैं, वे मोहयुक्त मनुष्य मरके वानरयोनिमें जन्मते हैं। बन्दर होके दशवर्ष, चूहा होके पांच वर्षके अनन्तर कुत्ता होके छः मास समय बिताके मरनेपर मनुष्य-जन्म पाते हैं। (६२—६५)

न्यस्त धन हरनेवाले मनुष्य यम-लोकमें जाकर सैकडों योनियोंमें भ्रमण करके शेषमें कृमियोनिमें जन्मते हैं। हे भारत! वे उस कृमियोनिमें पन्दरह वर्ष जीवित रहते हैं अनन्तर पाप नष्ट होनेपर मनुष्ययोनिमें जन्मते हैं। असूयक मनुष्य मरके मृगयोनिमें जन्मता है। विश्वासघाती, नीचबुद्धि मनुष्य मत्स्ययोनिमें उत्पन्न होता है। हे भारत! वह मछली होनेपर आठ वर्ष-तक जीवित रहके मृगयोनिमें जन्मता है, मृग होके चार महीनेके अनन्तर छागयोनिमें उत्पन्न होता है। एक वर्ष पूरा होनेपर बकरा मरके कीटयोनिमें जन्मता है, अनन्तर वही जीव फिर मनुष्ययोनि पाता है। (६६-७०)

हे महाराज! जो पुरुष मोहके वशमें अचेत होकर, धान्य, यव, कुलत्थ,

सस्यस्यान्यस्य हर्ता च मोहाज्जन्तुरचेतनः ।
स जायते महाराज मूषिको निरपत्रपः ॥ ७२ ॥
ततः प्रेत्य महाराज मृतो जायति सूकरः ।
सूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियते नृप ॥ ७३ ॥
श्वा ततो जायते मूढः कर्मणा तेन पार्थिव ।
भूत्वा श्वा पञ्च वर्षाणि ततो जायति मानवः ॥ ७४ ॥
परदाराभिमर्शं तु कृत्वा जायति वै वृकः ।
श्वा श‍ृगालस्ततो गृध्रो व्यालः कङ्को बकस्तथा ॥ ७५ ॥
भ्रातुर्भार्यां तु पापात्मा यो धर्षयति मोहितः ।
पुंस्कोकिलत्वमाप्नोति सोऽपि संवत्सरं नृप ॥ ७६ ॥
सखिभार्यां गुरोर्भार्यां राजभार्यां तथैव च ।
प्रधर्षयित्वा कामाय मृतो जायति सूकरः ॥ ७७ ॥
सूकरः पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि श्वाविधः ।
बिडालः पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि कुक्कुटः ॥ ७८ ॥
पिपीलिकस्तु मासांस्त्रीन्कीटः स्यान्मासमेव तु ।
एतानासाद्य संसारान् कृमियोनौ प्रजायते ॥ ७९ ॥
तत्र जीवति मासांस्तु कृमियोनौ चतुर्दश ।

सरसों, चना, उडद, मूंग, गेहूं, तीसी वा अन्य शस्योंको हरता है, वह निर्लज्ज मूषिकयोनिमें उत्पन्न हुआ करता है। हे महाराज! अनन्तर वह मरके मृग होता है, फिर सूकर होके जन्मता और उत्पन्न होते ही रोगके वशमें होकर पञ्चत्वको प्राप्त होता है। हे राजन्! अनन्तर वह निज कर्मवशसे श्वानयोनिमें जन्मता है, कुत्ता होके पांचवर्ष समय बिताके अन्तमें मनुष्य-जन्म पाता है। (७१-७४)

पराई स्त्री हरनेसे मनुष्य वृकयोनिमें उत्पन्न होता है, क्रमसे वह कुत्ता, सियार, गिद्ध, सांप और बगुला होता है। हे महाराज! जो पापी मोहित होकर भाईकी स्त्री हरता है, उसे वर्ष-भरतक पुंस्कोकिलत्व प्राप्त होता है। जो पुरुष कामके वशमें होकर मित्र-भार्या, गुरुपत्नी और राजभार्या गमन करता है, वह मरनेपर सूकरयोनिमें उत्पन्न होता है, सूकर होके पांचवर्ष समय बिताके दश वर्षतक भेडिया होके रहता है। अनन्तर पांच वर्षतक बिडाल, दश वर्षतक कुक्कुट, तीन

ततोऽधर्मक्षयं कृत्वा पुनर्जायति मानवः ॥ ८० ॥
उपस्थिते विवाहे तु यज्ञे दानेऽपि वा विभो ।
मोहात्करोति यो विघ्नं स मृतो जायते कृमिः ॥ ८१॥
कृमिर्जीवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ।
अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायति मानवः ॥ ८२ ॥
पूर्वं दत्त्वा तु यः कन्यां द्वितीये दातुमिच्छति ।
सोऽपि राजन्मृतो जन्तुः कृमियोनौ प्रजायते॥ ८३ ॥
तत्र जीवति वर्षाणि त्रयोदश युधिष्ठिर ।
अधर्मसंक्षये युक्तस्ततो जायति मानवः ॥ ८४ ॥
देवकार्यमकृत्वा तु पितृकार्यमथापि वा ।
अनिर्वाप्य समश्नन्वै मृतो जायति वायसः ॥ ८५ ॥
वायसः शतवर्षाणि ततो जायति कुक्कुटः ।
जायते व्यालकश्चापि मासं तस्मात्तु मानुषः ॥ ८६ ॥
ज्येष्ठं पितृसमं चापि भ्रातरं योऽवमन्यते ।
सोऽपि मृत्युमुपागम्य क्रौञ्चयोनौ प्रजायते ॥ ८७ ॥
क्रौञ्चो जीवति वर्षं तु ततो जायति चीरकः ।

महीनेतक चींटी और एक महीना कीट होनेके अनन्तर कृमियोनिमें जन्मता है, उस कीटयोनिमें चौदह महीनेतक जीवित रहता है। (७५–८०)

अन्तमें अधर्म नष्ट होनेपर फिर मनुष्ययोनिमें जन्मता है। हे भारत! विवाह, यज्ञ अथवा दानके समय जो मनुष्य मोहवशसे उसमें विघ्न करता है, वह मरके कृमियोनिमें जन्मता है, कृमि होके पन्द्रह वर्ष जीवित रहता है, अन्तमें अधर्म नष्ट होनेपर मनुष्यशरीर पाता है। हे महाराज! पहले एक पुरुषको कन्या दान करके जो दूसरे पुरुषको दान करनेकी इच्छा करता है, वह जीव मरके कृमियोनिमें उत्पन्न हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! कृमियोनिमें तेरह वर्षतक जीवित रहता है, अनन्तर अधर्म नष्ट होनेपर वह मनुष्ययोनिमें जन्मता है। (८०–८४)

जो पुरुष देवकार्य और पितृकार्य न करके स्वयं भोजन करता है, वह मरनेपर कौव्वा होता है, काग होके एक सौ वर्ष जीवित रहता है, अनन्तर कुक्कुट होता है, कुक्कुट जन्मके बाद एक महीनेतक काला सर्प होके रहता है, अन्तमें मनुष्यशरीर धारण करता

ततो निधनमापन्नो मानुषत्वमुपाश्नुते ॥ ८८ ॥
वृषलो ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते ।
ततः संप्राप्य निधनं जायते सूकरः पुनः ॥ ८९ ॥
सूकरो जातमात्रस्तु रोगेण म्रियते नृप ।
श्वा ततो जायते मूढः कर्मणा तेन पार्थिव ॥ ९० ॥
श्वा भूत्वा कृतकर्मासौ जायते मानुषस्ततः ।
तत्रापत्यं समुत्पाद्य मृतो जायति मूषिकः ॥ ९१ ॥
कृतघ्नस्तु मृतो राजन्यमस्य विषयं गतः ।
यमस्य पुरुषैः क्रुद्धैर्वधं प्राप्नोति दारुणम् ॥ ९२ ॥
दण्डं समुद्गरं शूलमग्निकुम्भं च दारुणम् ।
असिपत्रवनं घोरवालुकं कूटशाल्मलीम् ॥ ९३ ॥
एताश्चान्याश्च बह्वीश्च यमस्य विषयं गतः ।
यातनाः प्राप्य तत्रोग्रास्ततो वध्यति भारत ॥ ९४ ॥
ततो हतः कृतघ्नः स तत्रोग्रैर्भरतर्षभ ।
संसारचक्रमासाद्य कृमियोनौ प्रजायते ॥ ९५ ॥
कृमिर्भवति वर्षाणि दश पञ्च च भारत ।

है। जो पुरुष पितासदृश जेठे भाईकी अवमानना करता है, वह मरके क्रौञ्च-योनिमें जन्मता है। क्रौञ्च होके चौबीस महीना जीवित रहता है, अन्तमें मरके मनुष्यतनु पाता है। (८५-८८)

शूद्र ब्राह्मणी गमन करनेसे कृमि-योनिमें जन्मता है, अनन्तर फिर मरके सूकर होता है। हे महाराज! सूकर जन्म लेते ही रोगसे मरता है। हे राजन्! वह मूढ उक्त कर्मके वशमें होकर श्वानयोनिमें जन्मता है, कुत्ता होके कर्मफल भोगते हुए अन्तमें मनुष्य होता है। मनुष्यजन्ममें पुत्र उत्पन्न करके मरनेपर मूषिकयोनिमें जन्मता है। (८९—९१)

हे महाराज! कृतघ्न मनुष्य मरनेके अनन्तर यमपुरीमें जाकर क्रुद्ध यमदूतोंके द्वारा दारुण पीडा पाता है। हे भारत! वह यमके स्थानमें दण्ड, मुद्गर, शूल, दारुण अग्निकुण्ड, तरवारपत्रके घोर वन, बालु और कांटेयुक्त शाल्मली तथा और भी अनेक प्रकारकी उग्र यातना पाके अन्तमें वध्य हुआ करता है। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर वह कृतघ्न वहांपर प्रचण्डदण्डके द्वारा नष्ट होकर संसारचक्रको अवलम्बन करके कृमि-

ततो गर्भं समासाद्य तत्रैव म्रियते शिशुः ॥ ९६ ॥
ततो गर्भशतैर्जन्तुर्बहुभिः संप्रपद्यते ।
संसारांश्च बहून्गत्वा ततस्तिर्यक्षु जायते ॥ ९७ ॥
ततो दुःखमनुप्राप्य बहुवर्षगणानिह ।
अपुनर्भवसंयुक्तस्ततः कूर्मः प्रजायते ॥ ९८ ॥
दधि हृत्वा बकश्चापि प्लवो मत्स्यानसंस्कृतान् ।
चोरयित्वा तु दुर्बुद्धिर्मधु दंशः प्रजायते ॥ ९९ ॥
फलं वा मूलकं हृत्वा अपूपं वा पिपीलिकाः ।
चोरयित्वा च निष्पावं जायते हलगोलकः ॥ १०० ॥
पायसं चोरयित्वा तु तित्तिरित्वमवाप्नुते ।
हृत्वा पिष्टमयं पूपं कुम्भोलूकः प्रजायते ॥ १०१ ॥
अयो हृत्वा तु दुर्बुद्धिर्वायसो जायते नरः ।
कांस्यं हृत्वा तु दुर्बुद्धिर्हारितो जायते नरः ॥ १०२ ॥
राजतं भाजनं हृत्वा कपोतः संप्रजायते ।
हृत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते ॥ १०३ ॥
पत्रोर्णं चोरयित्वा तु कृकलत्वं निगच्छति ।

योनिमें जन्मता है। (९२-९५)

हे भारत! वह पन्दरह वर्ष कृमि होके रहता है, अनन्तर गर्भमें जाता है, वह गर्भ शिशु अवस्थामें ही नष्ट होता है; फिर सैकडों बार गर्भमें उत्पन्न होके मरता है, बहुतसे जन्मके बाद तिर्यक् योनिमें उत्पन्न होता है, अनन्तर इस लोकमें कई वर्षतक दुःख अनुभव करके पुनर्जन्मरहित होके कूर्मयोनिमें जन्मता है, नीचबुद्धि मनुष्य दही हरनेसे बक-पक्षी होता है और असंस्कृत मत्स्य हरनेसे प्लव अर्थात् कारण्डव पक्षी होके जन्मता है। जो दुर्बुद्धि पुरुष मधु हरता है, वह दंश होके उत्पन्न होता है। (९६-९९)

फलमूल और अपूप हरनेसे मनुष्य चींटियोनिमें जन्मता है; राजमाष हरनेसे हलगोलक अर्थात् लम्बी पूंछवाले गोलाकार कीटयोनिमें जन्म लेता है, पायस हरनेवाला तीतर पक्षी होता है, पिष्टमय पूप हरनेवाला उलूकयोनिमें उत्पन्न हुआ करता है। दुर्मति मनुष्य लोहा हरनेसे कागयोनिमें जन्मता है; नीचबुद्धि पुरुष कांसा हरनेसे हारीत पक्षी होता है; चांदीके पात्र हरनेवाला कपोतयोनिमें जन्म लेता है, स्वर्ण-

कौशिकं तु ततो हृत्वा नरो जायति वर्तकः ॥ १०४ ॥
अंशुकं चोरयित्वा तु शुको जायति मानवः ।
चोरयित्वा दुकूलं तु मृतो हंसः प्रजायते ॥ १०५ ॥
क्रौञ्चः कार्पासिकं हृत्वा मृतो जायति मानवः ।
चोरयित्वा नरः पट्टं त्वाविकं चैव भारत ॥ १०६ ॥
क्षौमं च वस्त्रमादाय शशो जन्तुः प्रजायते ।
वर्णान् हृत्वा तु पुरुषो मृतो जायति बर्हिणः ॥ १०७ ॥
हृत्वा रक्तानि वस्त्राणि जायते जीवजीवकः ।
वर्णकादींस्तथा गन्धांश्चोरयित्वेह मानवः ॥ १०८ ॥
छुच्छुन्दरित्वमाप्नोति राजँल्लोभपरायणः ।
तत्र जीवति वर्षाणि ततो दश च पञ्च च ॥ १०९ ॥
अधर्मस्य क्षयं गत्वा ततो जायति मानुषः ।
चोरयित्वा पयश्चापि बलाका संप्रजायते ॥ ११० ॥
यस्तु चोरयते तैलं नरो मोहसमन्वितः ।
सोऽपि राजन्मृतो जन्तुस्तैलपायी प्रजायते ॥ १११ ॥
अशस्त्रं पुरुषं हत्वा सशस्त्रः पुरुषाधमः ।

पात्र हरनेवाला कृमियोनिमें जन्मता है। (१००–१०३)

धोये हुए कौशेय वस्त्र हरनेवाला कुंकल पक्षी होके जन्मता है। कृमिकोशसे उत्पन्न हुए वस्त्रोंको हरनेसे मनुष्य वर्त्तक पक्षी होता है। साधारण वस्त्रोंको हरनेवाला मनुष्य मरके शुकपक्षी होता है; पट्टवस्त्र हरनेवाला पुरुष मरनेपर हंस होता है, सूती वस्त्र हरनेवाला मनुष्य मरनेके अनन्तर क्रौञ्चयोनिमें उत्पन्न होता है। हे भारत! पट्टवस्त्र तथा भेड प्रभृतिके रोमसे बने हुए कम्बल वा दुकूल वस्त्र हरनेसे मनुष्य शशजन्तु होके जन्मता है, हरितालादि वस्त्र हरनेसे पुरुष मरके मयूर योनिमें जन्मता है। (१०४—१०७)

लालवस्त्र हरनेवाला मनुष्य चकोर पक्षीयोनिमें जन्मता है। हे महाराज! लोभी मनुष्य इस लोकमें वर्णक (रङ्ग) प्रभृति तथा सुगन्धित वस्तु हरनेसे छुछुन्दर योनिमें जन्मता है। उस ही अवस्थामें पन्द्रह वर्ष जीवित रहता है, अनन्तर अधर्म नष्ट होनेपर मनुष्यजन्म पाता है। दूध हरनेवाला पुरुष बगुला होता है। हे महाराज! जो पुरुष मोहके वशमें होकर तेल हरता है, वह

अर्थार्थी यदि वा वैरी स मृतो जायते खरः॥ ११२ ॥
खरो जीवति वर्षे द्वे ततः शस्त्रेण वध्यते ।
स मृतो मृगयोनौ तु नित्योद्विग्नोऽभिजायते ॥ ११३ ॥
मृगो वध्यति शस्त्रेण गते संवत्सरे तु सः ।
हतो मृगस्ततो मीनः सोऽपि जालेन बध्यते ॥११४॥
मासे चतुर्थे संप्राप्ते श्वापदः संप्रजायते ।
श्वापदो दश वर्षाणि द्वीपी वर्षाणि पञ्च च ॥ ११५ ॥
ततस्तु निधनं प्राप्तः कालपर्यायचोदितः ।
अधर्मस्य क्षयं कृत्वा ततो जायति मानुषः ॥ ११६ ॥
स्त्रियं हृत्वा तु दुर्बुद्धिर्यमस्य विषयं गतः ।
बहून्क्लेशान्समासाद्य संसारांश्चैव विंशतिम् ॥ ११७ ॥
ततः पश्चान्महाराज कृमियोनौ प्रजायते ।
कृमिर्विंशतिवर्षाणि भूत्वा जायति मानुषः ॥ ११८ ॥
भोजनं चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः ।
मक्षिकासङ्घवशगो बहून्मासान्भवत्युत ॥ ११९ ॥
ततः पापक्षयं कृत्वा मानुषत्वमवाप्नुते ।
धान्यं हृत्वा तु पुरुषो लोमशः संप्रजायते ॥ १२० ॥

मरके तैलपायीयोनिमें उत्पन्न होता है।(१०८-१११)

धनकी इच्छासे अथवा वैरी होकर शस्त्रधारी अधम पुरुष अशस्त्र मनुष्यको मारनेसे मरनेके अनन्तर खरयोनिमें जन्मता है; गधा होके दो वर्ष जीवित रहता है, फिर शस्त्रसे मरके मृग होता और मृगयोनिमें सदा उद्विग्नरूपसे जन्म लेता है, एक वर्ष बीतनेपर वह मृग शस्त्रसे मरके मीनयोनिमें जालसे बद्ध होता है, अनन्तर श्वापद योनिमें जन्मता है, श्वापद होके दश वर्ष, फिर द्वीपी होके पांच वर्ष जीवित रहता है, अनन्तर मरके कालक्रमसे अधर्म नष्ट होनेपर मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है। (११२—११६)

हे महाराज! नीचबुद्धि मनुष्य परस्त्री हरनेसे यमके स्थानमें जाकर अनेक प्रकारके क्लेश भोगता हुआ इक्कीस योनिमें भ्रमण करके कीटयोनिमें उत्पन्न होता है; बीस वर्ष कृमियोनिमें रहके फिर मनुष्यजन्म पाता है। भोजनकी वस्तु हरनेसे मनुष्य मक्खी होके जन्मता है और कई महीनेतक मक्खी-

तथा पिण्याकसंमिश्रमशनं चोरयेन्नरः ।
स जायते बभ्रुसमो दारुणो मूषिको नरः ॥ १२१ ॥
दशन्वै मानुषान्नित्यं पापात्मा स विशाम्पते ।
घृतं हृत्वा तु दुर्बुद्धिः काकमद्गुः प्रजायते ॥ १२२ ॥
मत्स्यमांसमथो हृत्वा काको जायति दुर्मतिः ।
लवणं चोरयित्वा तु चिरिकाकः प्रजायते ॥ १२३ ॥
विश्वासेन तु निक्षिप्तं यो विनिह्नोति मानवः ।
स गतायुर्नरस्तात मत्स्ययोनौ प्रजायते ॥ १२४ ॥
मत्स्ययोनिमनुप्राप्य मृतो जायति मानुषः ।
मानुषत्वमनुप्राप्य क्षीणायुरुपपद्यते ॥ १२५ ॥
पापानि तु नराः कृत्वा तिर्यग्जायन्ति भारत ।
न चात्मनः प्रमाणं ते धर्मं जानन्ति किंचन ॥ १२६ ॥
ये पापानि नराः कृत्वा निरस्यन्ति व्रतैः सदा ।
सुखदुःखसमायुक्ता व्यथितास्ते भवन्त्युत ॥ १२७ ॥
असंवासाः प्रजायन्ते म्लेच्छाश्चापि न संशयः ।
नराः पापसमाचारा लोभमोहसमन्विताः ॥ १२८ ॥

समूहके वशमें रहता है, अनन्तर पाप नष्ट होनेपर मनुष्यत्व पाता है । धान्य हरनेवाला मनुष्य लोमश होके जन्मता है; पिण्याकयुक्त भोजनकी वस्तु हरनेसे मनुष्य बकरे सदृश बडा दारुण मूषिक होता है; वह पापात्मा मनुष्योंको दंशन करते हुए जीवित रहता है, दुर्बुद्धि मनुष्य घृत हरनेसे काकमद्गु अर्थात् शृङ्गवान जलपक्षी होता है, नीचबुद्धि मनुष्य मत्स्य हरनेसे कौवा होता है । नमक हरनेवाला चिरि काकरूपसे उत्पन्न होता है (११७—१२३)

जो मनुष्य विश्वासवशसे दूसरेके रखे हुए धनको हरता है, वह मरनेपर मत्स्ययोनिमें जन्मता है, मत्स्ययोनि पाके मरनेके अनन्तर मनुष्यजन्म पाता है, मनुष्यत्व पाके क्षीणायु होता है । हे भारत ! मनुष्य अनेक प्रकारके पाप- कर्म करके तिर्यक् योनिमें जन्मते हैं, वे आत्मप्रमाणके अनुसार कुछ भी धर्म नहीं जानते, जो सब मनुष्य अनेक प्रकारके पापाचरण करके व्रतावल- म्बनपूर्वक निवास करते हैं, वे सुख- दुःखसे संयुक्त होके सदा रोगी रहते हैं । लोभमोहसे युक्त पापी मनुष्य म्लेच्छतुल्य हैं, वे लोग निःसन्देह सह-

वर्जयन्ति च पापानि जन्मप्रभृति ये नराः ।
अरोगा रूपवन्तस्ते धनिनश्च भवन्त्युत ॥ १२९ ॥
स्त्रियोऽप्येतेन कल्पेन कृत्वा पापमवाप्नुयुः ।
एतेषामेव जन्तूनां भार्यात्वमुपयान्ति ताः ॥ १३० ॥
परस्वहरणे दोषाः सर्व एव प्रकीर्तिताः ।
एतद्धि लेशमात्रेण कथितं ते मयाऽनघ ॥ १३१ ॥
अपरस्मिन्कथायोगे भूयः श्रोष्यसि भारत ।
एतन्मया महाराज ब्रह्मणो गदतः पुरा ॥ १३२ ॥
सुरर्षीणां श्रुतं मध्ये पृष्टश्चापि यथातथम् ।
मयाऽपि तच्च कार्त्स्न्येन यथावदनुवर्णितम् ।
एतच्छ्रुत्वा महाराज धर्मे कुरु मनः सदा ॥ १३३ ॥ [५४६१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे संसारचक्रं नाम एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

युधिष्ठिर उवाच-अधर्मस्य गतिर्ब्रह्मन्कथिता मे त्वयाऽनघ ।
धर्मस्य तु गतिं श्रोतुमिच्छामि वदतां वर ॥ १ ॥
कृत्वा कर्माणि पापानि कथं यान्ति शुभां गतिम् ।
कर्मणा च कृतेनेह केन यान्ति शुभां गतिम् ॥ २ ॥

वासके योग्य नहीं हैं। (१२४-१२८)

जो मनुष्य जन्मसे ही पाप नहीं करते, वे रूपवान, रोगरहित तथा बलवान् होते हैं। स्त्रियें इन उपरोक्त कार्यों के करनेसे पापग्रस्त होके इन्हीं जन्तुओंकी भार्या हुआ करती हैं। हे भारत! परस्व हरनेसे जो सब दोष होते हैं, वे वर्णित हुए, यह विषय मैंने तुम्हारे समीप संक्षेपमें ही [illegible] है। हे भारत! अन्य कथाप्रसंगमें फिर सुनोगे। हे महाराज! मैंने पहले समयमें देवर्षियोंके बीच यह विषय ब्रह्माके मुखसे सुना था और तुम्हारे पूछनेपर पूरी रीतिसे वर्णन किया। हे महाराज! इसे सुनकर तुम सदा धर्ममें मन स्थिर करो। (१२९—१३३)

अनुशासनपर्वमें १११ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११२ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे अनघ, वक्तृवर ब्रह्मन्! आपने मेरे समीप अधर्मकी गति वर्णन की; अब मैं धर्मकी गति सुननेकी इच्छा करता हूं। पापकर्म करनेसे किस प्रकार उत्तम गति प्राप्त होती है? (१-२)

बृहस्पतिरुवाच—कृत्वा पापानि कर्माणि अधर्मवशमागतः।
मनसा विपरीतेन निरयं प्रतिपद्यते ॥ ३ ॥
मोहादधर्मं यः कृत्वा पुनः समनुतप्यते।
मनःसमाधिसंयुक्तो न स सेवेत दुष्कृतम् ॥ ४ ॥
यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हते।
तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते ॥ ५ ॥
यदि व्याहरते राजन्विप्राणां धर्मवादिनाम्।
ततोऽधर्मकृतात्क्षिप्रमपवादात्प्रमुच्यते ॥ ६ ॥
यथा यथा नरः सम्यगधर्ममनुभाषते।
समाहितेन मनसा विमुच्येत तथा तथा ॥ ७ ॥
भुजंग इव निर्मोकात्पूर्वमुक्ताज्जरान्वितात्।
दत्त्वा विप्रस्य दानानि विविधानि समाहितः ॥ ८ ॥
मनःसमाधिसंयुक्तः सुगतिं प्रतिपद्यते।
प्रदानानि तु वक्ष्यामि यानि दत्त्वा युधिष्ठिर ॥ ९ ॥
नरः कृत्वाऽप्यकार्याणि ततो धर्मेण युज्यते।
सर्वेषामेव दानानामन्नं श्रेष्ठमुदाहृतम्।
पूर्वमन्नं प्रदातव्यमृजुना धर्ममिच्छता ॥ १० ॥

बृहस्पति बोले, पुरुष अधर्मके वशमें होकर पापकर्म करता है और विपरीत ज्ञानसे नरक प्राप्त होता है। जो पुरुष मोहके वशमें होकर अधर्म करके शोक करता और मनको संयत रख सकता है, वह पापफल नहीं भोगता। जिसका अन्तःकरण जिस प्रकार पापकर्मकी निन्दा करता है, उस ही भांति उसी शरीरसे वह पुरुष अधर्मसे छूटता है। यदि पुरुष अपना किया हुआ पाप धर्मज्ञ ब्राह्मणसे कहे, तो वह उस ही समय अधर्मयुक्त अपवादसे छूट जाता है; मनुष्य अपने किये हुए पापोंको जिस प्रकार वर्णन करेगा, सावधानचित्त होके उस ही भांति मुक्त होगा। (३-७)

जैसे सर्प पुरानी केंचुली छोड देता है, वैसे ही समाहित चित्तसे ब्राह्मणोंको विविध दान देकर मनुष्य सद्गति पाता है। हे युधिष्ठिर! जो सब दान करना होता है, वह तुमसे कहता हूं, जिसे करनेसे मनुष्य धर्मके सहारे अधर्मसे छूट जाता है। सब दानके बीच अन्नदान ही श्रेष्ठ है, इसलिये धर्मकी इच्छा करनेवाला सरल भावसे

प्राणा ह्यन्नं मनुष्याणां तस्माज्जन्तुश्च जायते ।
अन्ने प्रतिष्ठितो लोकस्तस्मादन्नं प्रशस्यते ॥ ११ ॥
अन्नमेव प्रशंसन्ति देवर्षिपितृमानवाः ।
अन्नस्य हि प्रदानेन रन्तिदेवो दिवं गतः ॥ १२ ॥
न्यायलब्धं प्रदातव्यं द्विजातिभ्योऽन्नमुत्तमम् ।
स्वाध्यायं समुपेतेभ्यः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १३ ॥
यस्य ह्यन्नमुपाश्नन्ति ब्राह्मणानां शतं दश ।
हृष्टेन मनसा दत्तं न स तिर्यग्गतिर्भवेत् ॥ १४ ॥
ब्राह्मणानां सहस्राणि दश भोज्य नरर्षभ ।
नरोऽधर्मात्प्रमुच्येत योगेष्वभिरतः सदा ॥ १५ ॥
भैक्ष्येणान्नं समाहृत्य विप्रो वेदपुरस्कृतः ।
स्वाध्यायनिरते विप्रे दत्त्वेह सुखमेधते ॥ १६ ॥
अहिंसन्ब्राह्मणस्वानि न्यायेन परिपाल्य च ।
क्षत्रियस्तरसा प्राप्तमन्नं यो वै प्रयच्छति ॥ १७ ॥
द्विजेभ्यो वेदवृद्धेभ्यः प्रयतः सुसमाहितः ।
तेनापोहति धर्मात्मन्दुष्कृतं कर्म पाण्डव ॥ १८ ॥
षड्भागपरिशुद्धं च कृषेर्भागमुपार्जितम् ।

पहले अन्न दान करे। अन्न ही मनुष्यों का प्राण है, अन्नसे ही प्राणियोंका जन्म होता है, जीव उत्पन्न होके अन्नसे प्रतिष्ठित रहते हैं; इस ही निमित्त अन्न प्रशंसनीय है। (८—११)

देव, ऋषि, पितर और मनुष्यवृन्द अन्नकी ही प्रशंसा किया करते हैं; रन्तिदेवने अन्नदान करके स्वर्गलोक पाया है। शुद्धचित्तसे वेद पढनेवाले ब्राह्मणोंको न्यायसे प्राप्त हुआ अन्न दान करना चाहिये, एक सौ दश ब्राह्मण जिसके यहां शुद्धचित्तसे दिया हुआ अन्न भोजन करते हैं, उसका तिर्यग् योनिमें जन्म नहीं होता; और एक हजार दश ब्राह्मण जिसके दिये हुए अन्नको भोजन करते हैं वह पुरुष अधर्मसे छूटकर सदा योगशील होता है। जो ब्राह्मण भीख मांगके वेदपाठी ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक अन्नदान करता है, वह सुखी होता है। (१२-१६)

हे पाण्डव! जो क्षत्रिय ब्राह्मणके धनमें लोभ न करके निज उपार्जित धनके सहारे वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको पवित्र और समाहित होकर अन्न दान करत

वैश्यो ददद् द्विजातिभ्यः पापेभ्यः परिमुच्यते ॥ १९॥
अवाप्य प्राणसंदेहं कार्कश्येन समार्जितम् ।
अन्नं दत्त्वा द्विजातिभ्यः शूद्रः पापात्प्रमुच्यते ॥ २० ॥
औरसेन बलेनान्नमर्जयित्वाऽविहिंसकः ।
यः प्रयच्छति विप्रेभ्यो न स दुर्गाणि पश्यति ॥२१॥
न्यायेनैवाप्तमन्नं तु नरो हर्षसमन्वितः ।
द्विजेभ्यो वेदवृद्धेभ्यो दत्त्वा पापात्प्रमुच्यते ॥ २२ ॥
अन्नमूर्जस्करं लोके दत्त्वोर्जस्वी भवेन्नरः ।
सतां पन्थानमावृत्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २३ ॥
दानवद्भिः कृतः पन्था येन यान्ति मनीषिणः ।
ते हि प्राणस्य दातारस्तेभ्यो धर्मः सनातनः ॥ २४ ॥
सर्वावस्थं मनुष्येण न्यायेनान्नमुपार्जितम् ।
कार्यं पात्रागतं नित्यमन्नं हि परमा गतिः ॥ २५ ॥
अन्नस्य हि प्रदानेन नरो रौद्रं न सेवते ।
तस्मादन्नं प्रदातव्यमन्यायपरिवर्जितम् ॥ २६ ॥

है, वह उस ही धर्मके सहारे सब पाप-कर्मोंका नाश करता है। वैश्य यदि निज उपार्जित कृषिकार्यका छठवां भाग ब्राह्मणोंको दान करे, तो वह सब पापोंसे छूट जाता है। ब्राह्मणको प्राणसंशय उपस्थित होनेपर शूद्र अत्यन्त कठिनाईसे प्राप्त हुआ धन दान करनेसे पापरहित होता है। जो अहिंसक मनुष्य निजबलसे अन्न उत्पन्न करके ब्राह्मणोंको दान करता है, उसे दुःख नहीं मिलता। मनुष्य हर्षयुक्त होके वेदवृद्ध ब्राह्मणोंको न्यायसे प्राप्त हुआ अन्न दान करनेसे पापोंसे छूट जाता है। (१७-२२)

सत्पथकी अनुवृत्ति करनेसे पुरुषके सब पाप नष्ट होते हैं। इस लोकमें उर्जस्कर अन्न दान करके पुरुष उर्जस्वी होता है। दातृगणके द्वारा जो मार्ग बना हुआ है, मनीषि लोग उस ही पथसे गमन करते हैं, वेही प्राणदाता हैं, उन्हींसे सनातन धर्म रक्षित हुआ करता है। मनुष्योंको उचित है, कि सब समयमें न्यायसे उपार्जित अन्न ही सत्पात्रोंको दान करें, क्योंकि अन्नही परम गति है। अन्नदानके सहारे मनुष्य भयङ्कर विषयोंकी सेवा नहीं करता, इसलिये अन्यायरहित अन्नदान करना योग्य है। (२३--२६)

यतेद्ब्राह्मणपूर्वं हि भोक्तुमन्नं गृही सदा ।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्यादन्नदानेन मानवः ॥ २७ ॥
भोजयित्वा दशशतं नरो वेदविदां नृप ।
न्यायविद्धर्मविदुषामितिहासविदां तथा ॥ २८ ॥
न याति नरकं घोरं संसारांश्च न सेवते ।
सर्वकामसमायुक्तः प्रेत्य चाप्यश्नुते सुखम् ॥ २९ ॥
एवं खलु समायुक्तो रमते विगतज्वरः ।
रूपवान्कीर्तिमांश्चैव धनवांश्चोपपद्यते ॥ ३० ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातमन्नदानफलं महत् ।
मूलमेतत्तु धर्माणां प्रदानानां च भारत ॥ ३१ ॥ [५४९२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे संसारचक्रे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

युधिष्ठिर उवाच– अहिंसा वैदिकं कर्म ध्यानमिन्द्रियसंयमः ।
तपोऽथ गुरुशुश्रूषा किं श्रेयः पुरुषं प्रति ॥ १ ॥
बृहस्पतिरुवाच– सर्वाण्येतानि धर्म्याणि पृथग्द्वाराणि सर्वशः ।
शृणु सङ्कीर्त्यमानानि षडेव भरतर्षभ ॥ २ ॥
हन्त निःश्रेयसं जन्तोरहं वक्ष्याम्यनुत्तमम् ।

गृहस्थ मनुष्य पहले ब्राह्मणोंको भोजन कराके तब स्वयं अन्न भोजन करनेमें यत्नवान होजावे, अन्नदानसे मनुष्य दिन पूरा करे, हे महाराज ! मनुष्य न्यायपूर्वक दश सौ ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे घोर नरकमें नहीं जाता वा बार बार संसारमें भ्रमण नहीं करता; परलोकमें सर्वकामयुक्त होकर सुख भोग करता वा शोकरहित होके विलास करनेमें प्रवृत्त होता है, वही पुरुष रूपवान्, कीर्त्तिमान् और धनवान् हुआ करता है। हे भारत ! यह तुम्हारे निकट उत्तम अन्नदानका महत् फल कहा, यही समस्त धर्म और दानका मूल है। (२७—३१)

अनुशासनपर्वमें ११२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११३ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, अहिंसा, वैदिक कर्म, ध्यान, इन्द्रियसंयम, तपस्या और गुरुसेवा इन सबके बीच पुरुषके पक्षमें कल्याणकारी क्या है ? (१)

बृहस्पति बोले, हे भरतश्रेष्ठ ! ये छहों विषयही धर्मसंगत हैं, ये प्रत्येक ही पृथक् पृथक् धर्मके द्वार स्वरूप हैं,

अहिंसापाश्रयं धर्मं यः साधयति वै नरः ॥ ३ ॥
त्रीन्दोषान्सर्वभूतेषु निधाय पुरुषः सदा।
कामक्रोधौ च संयम्य ततः सिद्धिमवाप्नुते ॥ ४ ॥
अहिंसकानि भूतानि दण्डेन विनिहन्ति यः।
आत्मनः सुखमन्विच्छन्स प्रेत्य न सुखी भवेत् ॥ ५ ॥
आत्मोपमस्तु भूतेषु यो वै भवति पूरुषः।
न्यस्तदण्डो जितक्रोधः स प्रेत्य सुखमेधते ॥ ६ ॥
सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतानि पश्यतः।
देवाऽपि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः ॥ ७ ॥
न तत्परस्य संदध्यात्प्रतिकूलं यदाऽऽत्मनः।
एष संक्षेपतो धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते ॥ ८ ॥
प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाणमभिगच्छति ॥ ९ ॥
यथा परः प्रक्रमते परेषु तथाऽपरे प्रक्रमन्ते परस्मिन्।

इसलिये इनका विषय वर्णन करता हूं, सुनो। जो मनुष्य हिंसाश्रय धर्म साधन किया करता है, वह जीवोंको निरर्थक ही नष्ट करता है, इसलिये मैं उस धर्म-को श्रेष्ठ नहीं कहता। पुरुष काम, क्रोध और लोभरूपी तीनों दोषोंको सब भू-तोंमें अर्पण करके अपनेमें उक्त दोषों-को संयत करनेसे सिद्धिलाभ करता है। (२—४)

जो पुरुष अपने सुखकी इच्छासे अ-हिंसक जीवोंको दण्डसे मारता है, वह परलोकमें जाके सुखी नहीं होता। जो मनुष्य सब जीवोंके विषयमें आत्मसदृश, दण्डरहित और जितक्रोध हैं, वे परलो-कमें जाके सुखी होते हैं। जो निज दुः-खकी भांति दूसरोंके दुःखसे व्याकुल होते हैं, सब प्राणियोंको आत्मरूपसे तत्त्वदृष्टिके द्वारा देखते हैं, उन गति विषयमें अत्यन्त हीनत्व हेतु मार्गसूच-करहित स्थानान्वेषी पुरुषके पथदर्शन विषयमें देवता लोग भी मुग्ध होते हैं (५—७)

जो विषय अपने प्रतिकूल हो वह दूसरेके विषयमें सन्धान न करे; संक्षेप रीतिसे यही धर्म है, कामवशसे अन्य धर्म भी प्रवर्तित हुआ करता है। पुरुष प्रत्याख्यान, दान, प्रिय, अप्रिय, सुख और दुःखमें अपनी उपमाके द्वारा प्रमाण पाता है। अन्य पुरुष दूसरेके विषयमें जैसा व्यवहार करता है अर्थात्

तथैव तेऽस्तूपमा जीवलोके यथा धर्मो नैपुणेनोपदिष्टः ॥ १० ॥
वैशम्पायन उवाच- इत्युक्त्वा तं सुरगुरुर्धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
दिवमाचक्रमे धीमान्पश्यतामेव नस्तदा ॥ ११ ॥ [५५०३]
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे संसारचक्रसमाप्तौ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

वैशम्पायन उवाच-ततो युधिष्ठिरो राजा शरतल्पे पितामहम् ।
पुनरेव महातेजाः पप्रच्छ वदतां वरः ॥ १ ॥
युधिष्ठिर उवाच- ऋषयो ब्राह्मणा देवाः प्रशंसन्ति महामते ।
अहिंसालक्षणं धर्मं वेदप्रामाण्यदर्शनात् ॥ २ ॥
कर्मणा मनुजः कुर्वन्हिंसां पार्थिवसत्तम ।
वाचा च मनसा चैव कथं दुःखात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच- चतुर्विधेयं निर्दिष्टा ह्यहिंसा ब्रह्मवादिभिः ।
एकैकतोऽपि विभ्रष्टा न भवत्यरिसूदन ॥ ४ ॥
यथा सर्वश्चतुष्पाद्वै त्रिभिः पादैर्न तिष्ठति ।

हिंसित होकर हिंसा किया करता है और पाले जानेपर पालन करता है; इसलिये जीवोंको पालना चाहिये, हिंसा करनी योग्य नहीं है। जीव लोकमें इस ही उपमाके द्वारा जो धर्म हुआ करता है, वह निपुण पुरुषोंके सहारे उपदिष्ट हुआ है। (८—१०)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिशक्तिसे युक्त देवगुरु वृहस्पति धर्मराज युधिष्ठिरसे इतनी कथा कहके हम लोगोंके देखते ही स्वर्गलोकमें चले गये (११)

अनुशासनपर्वमें ११३ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११४ अध्याय।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर वक्तृवर महातेजस्वी राजा युधिष्ठिरने शरशय्यामें सोये हुए पितामहसे फिर प्रश्न किया। (१)

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान ! वेद प्रमाण दर्शन निबन्धसे ऋषि, ब्राह्मण और देवगण अहिंसालक्षण धर्मकी ही प्रशंसा किया करते हैं। हे राजसत्तम ! मनुष्य वचन मन, और कर्मसे हिंसा करते हुए किस प्रकार क्लेशोंसे मुक्त होता है ? (२-३)

भीष्म बोले, हे शत्रुसूदन ! ब्रह्मवादी ऋषि लोग अहिंसाको मन, वचन, कर्म और लक्षण भेदसे चारप्रकार कहा करते हैं, उसके बीच एकके व्यक्त होनेसे भी सब भांतिसे अहिंसा नहीं

तथैवेयं महीपाल कारणैः प्रोच्यते त्रिभिः ॥ ५ ॥
यथा नागपदेऽन्यानि पदानि पद्गामिनाम् ।
सर्वाण्येवापिधीयन्ते पदजातानि कौञ्जरे ॥ ६ ॥
एवं लोकेष्वहिंसा तु निर्दिष्टा धर्मतः पुरा ।
कर्मणा लिप्यते जन्तुर्वाचा च मनसाऽपि च ॥ ७ ॥
पूर्वं तु मनसा त्यक्त्वा तथा वाचाऽथ कर्मणा ।
न भक्षयति यो मांसं त्रिविधं स विमुच्यते ॥ ८ ॥
त्रिकारणं तु निर्दिष्टं श्रूयते ब्रह्मवादिभिः ।
मनोवाचि तथाऽऽस्वादे दोषा ह्येषु प्रतिष्ठिताः ॥ ९ ॥
न भक्षयन्त्यतो मांसं तपोयुक्ता मनीषिणः ।
दोषांस्तु भक्षणे राजन्मांसस्येह निबोध मे ॥ १० ॥
पुत्रमांसोपमं जानन्खादते यो विचक्षणः ।
मांसं मोहसमायुक्तः पुरुषः सोऽधमः स्मृतः ॥ ११ ॥
पितृमातृसमायोगे पुत्रत्वं जायते यथा ।
हिंसां कृत्वाऽवशः पापो भूयिष्ठं जायते तथा ॥ १२॥

होती। हे महाराज! जैसे सब चौपाये जीव तीन पांवसे स्थित नहीं होते वैसे ही यह अहिंसा तीन कारणोंसे वर्णित नहीं होती। जैसे पैरसे चलनेवाले जीवोंके क्षुद्र पदचिन्ह हाथीके पदचिन्हमें लीन होते हैं, वैसे ही अहिंसामें सब धर्म समाविष्ट हुआ करते हैं; इसलिये पहले समयसेही सब धर्मोंके बीच अहिंसा श्रेष्ठरूपसे वर्णित हुई है। जीव वचन, मन और कर्म द्वारा लिप्त होता है, पहले मनही मन त्याग करके अनन्तर वचन और कर्मसे परित्याग करते हुए जो लोग तीन प्रकारके मांस भक्षण नहीं करते, वे मुक्त हुआ करते हैं। (४—८)

ब्रह्मवादियोंने मन, वचन और आनन्द, इन तीनोंको ही कारण कहे हैं, ऐसा सुना जाता है, कि इन तीनोंमें ही सब दोष प्रतिष्ठित हैं। तपयुक्त मनीषि पुरुष इन्हीं कारणोंसे मांस भक्षण नहीं करते। हे राजन्! अब मेरे निकट मांसभक्षणके दोष सुनो। हे महाराज! जो मोहयुक्त मूढ पुरुष पुत्रमांससदृश मांस भक्षण करते हैं, वे अधम पुरुष कहाते हैं। जैसे सदा पितामाताके संयोगसे पुत्र जन्मता है, वैसे ही अवश पापाचारी हिंसा करके बार बार पापयोनिमें उत्पन्न हुआ करता

रसं च प्रति जिह्वाया ज्ञानं प्रज्ञायते यथा ।
तथा शास्त्रेषु नियतं रागो ह्यास्वादिताद्भवेत् ॥ १३ ॥
संस्कृताऽसंस्कृताः पक्का लवणाऽलवणास्तथा ।
प्रजायन्ते यथा भावास्तथा चित्तं निरुध्यते ॥ १४ ॥
भेरीमृदङ्गशब्दांश्च तन्त्रीशब्दांश्च पुष्कलान् ।
निषेविष्यन्ति वै मन्दा मांसभक्षाः कथं नराः ॥१५॥
अचिन्तितमनिर्दिष्टमसंकल्पितमेव च ।
रसगृद्ध्याऽभिभूता ये प्रशंसन्ति फलार्थिनः ॥ १६ ॥
प्रशंसा ह्येव मांसस्य दोषकर्मफलान्विता ।
जीवितं हि परित्यज्य बहवः साधवो जनाः ॥ १७ ॥
स्वमांसैः परमांसानि परिपाल्य दिवं गताः ॥ १८ ॥
एवमेषा महाराज चतुर्भिः कारणैर्वृता ।
अहिंसा तव निर्दिष्टा सर्वधर्मानुसंहिता ॥ १९ ॥[५५२२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे मांसवर्जनकथने चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

युधिष्ठिर उवाच- अहिंसा परमो धर्म इत्युक्तं बहुशस्त्वया ।
श्राद्धेषु च भवानाह पितॄनामिषकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥

है। प्रति जिह्वामें जिस प्रकार रसका ज्ञान होता है, वैसे ही आस्वादित वस्तुओंसे राग उत्पन्न होता है, ऐसा शास्त्रोंमें वर्णित है। (९—१३)

असंस्कृत नमकीन अथवा बिना लवणके जिस प्रकार भोजनकी वस्तु तैय्यार होती हैं; चित्त भी उसी भांति उसमें निरुद्ध हुआ करता है, मांस भक्षण करनेवाले नीच पुरुष परलोकमें भेरी, मृदङ्ग तथा अत्यन्त मधुरतन्त्रीके शब्दको किस प्रकार सुनेंगे; जो लोग अचिन्तित, अनिर्दिष्ट और असंकल्पित रसकी आकांक्षासे अभिभूत होते हैं, वे फलार्थी पुरुषही प्रशंसा किया करते हैं। मांसकी प्रशंसा भी दोषकर्मयुक्त है; बहुतेरे साधु पुरुष अपना जीवन त्यागके निज मांससे दूसरोंके जीवनकी रक्षा करके स्वर्गमें गये हैं। हे महाराज यह तुम्हारे निकट सर्वधर्मानुसंहित, चारों कारणोंसे परिवृत, अहिंसाका विषय कहा गया। (१४—१९)

अनुशासनपर्वमें ११४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११५ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, अहिंसाको आपने

मांसैर्बहुविधैः प्रोक्तस्त्वया श्राद्धविधिः पुरा ।
अहत्वा च कुतो मांसमेवमेतद्विरुध्यते ॥ २ ॥
जातो नः संशयो धर्मे मांसस्य परिवर्जने ।
दोषो भक्षयतः कः स्यात्कश्चाभक्षयतो गुणः ॥ ३ ॥
हत्वा भक्षयतो वापि परेणोपहृतस्य वा ।
हन्याद्वा यः परस्यार्थे क्रीत्वा वा भक्षयेन्नरः ॥ ४ ॥
एतदिच्छामि तत्त्वेन कथ्यमानं त्वयाऽनघ ।
निश्चयेन चिकीर्षामि धर्ममेतं सनातनम् ॥ ५ ॥
कथमायुरवाप्नोति कथं भवति सत्त्ववान् ।
कथमव्यङ्गतामेति लक्षण्यो जायते कथम् ॥ ६ ॥
भीष्म उवाच— मांसस्याभक्षणाद्राजन्यो धर्मः कुरुनन्दन ।
तन्मे शृणु यथातत्त्वं यथाऽस्य विधिरुत्तमः ॥ ७ ॥
रूपमव्यङ्गतामायुर्बुद्धिं सत्त्वं बलं स्मृतिम् ।

बार बार परम धर्म कहा है, परन्तु यह भी वर्णन किया है, कि श्राद्धमें पितर लोग मांसके अभिलाषी होते हैं । पहले आपने अनेक प्रकारके मांससे श्राद्धानुष्ठानका विषय कहा है, विना हिंसाके मांस कहां मिलेगी; इसलिये इस वाक्यके साथ पूर्व वाक्यका विरोध होता है, इसीसे मांसपरित्यागरूपी धर्ममें हम लोगोंको सन्देह उत्पन्न हुआ है; मांस खानेवालोंको क्या दोष होता है? और न खानेसेही कौनसे गुण हुआ करते हैं? (१—३)

स्वयं मारके खानेसे अथवा दूसरेके द्वारा मरे हुए जीवका मांस भक्षण करनेसे क्या दोष होता है? जो दूसरेके लिये पशु मारते हैं और जो लोग मोल लेके भ्रमण करते हैं, उन्हें क्या दोष होता है? हे पापरहित ! इस विषयको आप यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये, मैं इस सनातन धर्मको निश्चय करनेकी इच्छा करता हूं । पुरुषको किस प्रकार परमायु प्राप्त होती है? किस प्रकार मनुष्य बलवान् हुआ करता है? किस लिये अव्यङ्ग होता है और किस कारणसे लक्षणसम्पन्न होके जन्मता है? (४-६)

भीष्म बोले, हे कुरुनन्दन महाराज ! मांस भक्षण न करनेसे जो धर्म होता है और इस विषयमें जो श्रेष्ठ विधि है, उसे मेरे निकट यथार्थ रीतिसे सुनो । जो लोग सौन्दर्य, अव्यङ्गता, आयु, बुद्धि, सत्त्व, बल और स्मृति

प्राप्तुकामैर्नरैर्हिंसा वर्जिता वै महात्मभिः ॥ ८ ॥
ऋषीणामत्र संवादो बहुशः कुरुनन्दन ।
बभूव तेषां तु मतं यत्तच्छृणु युधिष्ठिर ॥ ९ ॥
यो यजेताश्वमेधेन मासि मासि यतव्रतः ।
वर्जयेन्मधुमांसं च सममेतद्युधिष्ठिर ॥ १० ॥
सप्तर्षयो वालखिल्यास्तथैव च मरीचिपाः ।
अमांसभक्षणं राजन्प्रशंसन्ति मनीषिणः ॥ ११ ॥
न भक्षयति यो मांसं न च हन्यान्न घातयेत् ।
तन्मित्रं सर्वभूतानां मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ १२ ॥
अधृष्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु ।
साधूनां संमतो नित्यं भवेन्मांसं विवर्जयन् ॥ १३ ॥
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।
नारदः प्राह धर्मात्मा नियतं सोऽवसीदति ॥ १४ ॥
ददाति यजते चापि तपस्वी च भवत्यपि ।
मधुमांसनिवृत्त्येति प्राह चैवं बृहस्पतिः ॥ १५ ॥
मासि मास्यश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ।

प्राप्त करनेकी कामना करते हैं, उन महानुभावोंके द्वारा हिंसा परित्यक्त हुआ करती है। हे कुरुनन्दन युधिष्ठिर! इस विषयमें ऋषियोंके बहुतसे संवाद हैं, इस लिये उन लोगोंका मत सुनो। हे युधिष्ठिर! जो लोग व्रतव्रती होके प्रति महीने अश्वमेध यज्ञ करते हैं, वे समकालमें ही मधुमांस परित्याग करें। (७—१०)

हे महाराज! सप्तर्षि, वालखिल्य मुनि और मरीचिप मनीषिवृन्द मांस भक्षण न करनेकी ही प्रशंसा किया करते हैं। जो लोग मांस भक्षण नहीं करते और पशुओंको नहीं मारते, स्वायम्भुव मनुने उन्हें ही सब प्राणियोंका मित्र कहा है। जो लोग मांस परित्याग करते हैं, वे सर्वभूतोंके अधर्षणीय, सब जीवोंके विश्वसनीय और सदा साधुसम्मत होते हैं। धर्मात्मा नारद मुनि कहते हैं, कि जो पुरुष दूसरेके मांससे निज मांसकी वृद्धि करनेकी इच्छा करते हैं, वे सदा अवसन्न होते हैं। बृहस्पति कहते हैं, मद्य पीने और मांस भक्षणसे निवृत्त होना, दान, यज्ञ तथा तपस्याके तुल्य है। (११—१५)

जो लोग एक सौ वर्षतक प्रति

न खादति च यो मांसं सममेतन्मतं मम ॥ १६ ॥
सदा यजति सत्रेण सदा दानं प्रयच्छति ।
सदा तपस्वी भवति मधुमांसविवर्जनात् ॥ १७ ॥
सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च भारत ।
यो भक्षयित्वा मांसानि पश्चादपि निवर्तते ॥ १८ ॥
दुष्करं च रसज्ञाने मांसस्य परिवर्जनम् ।
चर्तुं व्रतमिदं श्रेष्ठं सर्वप्राण्यभयप्रदम् ॥ १९ ॥
सर्वभूतेषु यो विद्वान्ददात्यभयदक्षिणाम् ।
दाता भवति लोके स प्राणानां नात्र संशयः ॥ २० ॥
एवं वै परमं धर्मं प्रशंसन्ति मनीषिणः ।
प्राणा यथाऽऽत्मनोऽभीष्टा भूतानामपि वै तथा ॥२१॥
आत्मौपम्येन मन्तव्यं बुद्धिमद्भिः कृतात्मभिः ।
मृत्युतो भयमस्तीति विदुषां भूतिमिच्छताम् ॥ २२ ॥
किं पुनर्हन्यमानानां तरसा जीवितार्थिनाम् ।
अरोगाणामपापानां पापैर्मांसोपजीविभिः ॥ २३ ॥

महीने अश्वमेध यज्ञ करते और जो लोग मांस भक्षणसे निवृत्त रहते हैं, मेरे मतमें वे दोनों ही समान हैं। मद्यमांस त्यागनेसे पुरुष सदा सत्र-द्वारा यजन करता है, सदा दान करनेका फल पाता और सदा तपस्वी हुआ करता है। हे भारत ! जो पुरुष मांस-भक्षण करके पश्चात् निवृत्त होता है, उससे जो फल हुआ करता है, उस फलको वेद प्रदान नहीं कर सकते और यज्ञ भी उस फलको प्रदान करनेके योग्य नहीं है। रसज्ञान होनेपर मांस परित्याग करना अत्यन्त दुष्कर कर्म है। सब प्राणियोंको अभयप्रद यह व्रताच-रण अत्यन्त श्रेष्ठ है। (१४—१९)

जो विद्वान् पुरुष सब जीवोंको अभय दक्षिणा दान करता है, वह लोकमें निःसन्देह प्राणदाता होता है। मनीषिवृन्द इस परम धर्मकी प्रशंसा करते हैं। जैसे अपना प्राण सबको प्रिय है, जीवोंका प्राण भी वैसा ही है; शुद्धचि-त्तवाले बुद्धिमान् मनुष्योंको आत्म-उपमाके सहारे मनन करना योग्य है। जब ऐश्वर्यके अभिलाषी विद्वानोंको भी मृत्युसे भय है, तब मांसोपजीवी पापी पुरुषोंके द्वारा हन्यमान रोगहीन निष्पाप जीवोंको तो मृत्युका भय होही सकता है (२०—२३)

तस्माद्विद्धि महाराज मांसस्य परिवर्जनम् ।
धर्मस्यायतनं श्रेष्ठं स्वर्गस्य च सुखस्य च ॥ २४ ॥
अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परं तपः ।
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते ॥ २५ ॥
न हि मांसं तृणात्काष्ठादुपलाद्वापि जायते ।
हत्वा जन्तुं ततो मांसं तस्माद्दोषस्तु भक्षणे ॥ २६ ॥
स्वाहा स्वधाऽमृतभुजो देवाः सत्यार्जवप्रियाः ।
क्रव्यादान् राक्षसान्विद्धि जिह्मानृतपरायणान् ॥२७॥
कान्तारेष्वथ घोरेषु दुर्गेषु गहनेषु च ।
रात्रावहनि संध्यासु चत्वरेषु सभासु च ॥ २८ ॥
उद्यतेषु च शस्त्रेषु मृगव्यालहतेषु च ।
अमांसभक्षणे राजन्भयमन्यैर्न गच्छति ॥ २९ ॥
शरण्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु ।
अनुद्वेगकरो लोके न चाप्युद्विजते सदा ॥ ३० ॥
यदि चेत्खादको न स्यान्न तदा घातको भवेत् ।
घातकः खादकार्थाय तद्घातयति वै नरः ॥ ३१ ॥

हे महाराज! इसलिये मांसत्यागको धर्म, अर्थ और सुखका उत्तम स्थान जानो; अहिंसा ही परम तपस्या और अहिंसा ही परम सत्य है अर्थात् अहिंसासे ही सत्य प्रवृत्त होता है। तृण, काष्ठ और पत्थरसे मांस नहीं उत्पन्न होता, जीवहिंसा करनेसेही मांस प्राप्त होता है, इसीसे उसके भक्षण करनेमें दोष हुआ करता है। सत्य और सरलताप्रिय देववृन्द स्वाहा और स्वधा मन्त्रोंसे प्रदान किया हुआ अमृत भोजन करते हैं और जिह्वारसपरायण मांसाशियोंको राजस प्रकृति जानो। हे महाराज! दुर्गम पथ, घोर, दुर्ग, गहन वन, रात्रि-दिन और सन्ध्याके समय, चौराहे, सभा, उद्यतशस्त्रमण्डली तथा सर्प भयसे मांस भक्षण न करनेसे दूसरोंके द्वारा भय नहीं होता। जो लोग मांस भक्षण नहीं करते, वे सब जीवोंके शरण्य, सबके विश्वासी, सब लोगोंके अनुद्वेगकर होते और स्वयं भी सदा व्याकुल नहीं होते। (२४-३०)

यदि खानेवाला न रहे, तो घातक नहीं होता; खानेवालेके निमित्त ही घातक होता है; मनुष्य मांस-भक्षकके लिये पशुओंका वध किया करते हैं,

अभक्ष्यमेतदिति वै इति हिंसा निवर्तते ।
खादकार्थमतो हिंसा मृगादीनां प्रवर्तते ॥ ३२ ॥
यस्माद्ग्रसति चैवायुर्हिंसकानां महाद्युते ।
तस्माद्विवर्जयेन्मांसं य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥ ३३ ॥
त्रातारं नाधिगच्छन्ति रौद्राः प्राणिविहिंसकाः ।
उद्वेजनीया भूतानां यथा व्यालमृगास्तथा ॥ ३४ ॥
लोभाद्वा बुद्धिमोहाद्वा बलवीर्यार्थमेव च ।
संसर्गादथ पापानामधर्मरुचिता नृणाम् ॥ ३५ ॥
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।
उद्विग्नवासो वसति यत्र यत्राभिजायते ॥ ३६ ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत् ।
मांसस्याभक्षणं प्राहुर्नियताः परमर्षयः ॥ ३७ ॥
इदं तु खलु कौन्तेय श्रुतमासीत्पुरा मया ।
मार्कण्डेयस्य वदतो ये दोषा मांसभक्षणे ॥ ३८ ॥
यो हि खादति मांसानि प्राणिनां जीवितैषिणाम् ।
हतानां वा मृतानां वा यथा हन्ता तथैव सः ॥ ३९ ॥

यह अभक्ष्य है, इसी निमित्त हिंसाकी निवृत्ति होती है; इसलिये खानेवालोंके ही लिये मृगादिकोंकी हिंसा प्रवर्त्तित हुई है । हे महाद्युति ! हन्यमान जीव हिंसकोंकी आयु ग्रास करता है, इसलिये जो लोग निज उन्नतिकी अभिलाष करते हैं, वे मांस भक्षण न करें, प्राणिहिंसक रौद्रकर्म करनेवाले मनुष्योंको किसी स्थानमें भी पवित्रता नहीं प्राप्त होती, वे मांसभक्षी जीवोंकी भांति सब जीवोंके ही उद्वेगजनक होते हैं । लोभ, बुद्धि, मोह, बलवीर्य अथवा पापियोंके संसर्गसे मनुष्योंकी अधर्ममें रुचि होती है । (३१—३५)

पराये मांससे निज मांसकी वृद्धि करनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य व्याकुल होके निवास करता और जहां वहां जन्म लिया करता है । संयतचित्तवाले परमर्षिगण मांसत्यागको धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला स्वर्गजनक तथा महत् स्वस्त्ययन कहते हैं । हे कौन्तेय ! मांसभक्षणसे जो सब दोष होते हैं, पहले समयमें महामुनि मार्कण्डेयके मुखसे मैंने उसे सुना था । जीनेकी इच्छा करनेवाले मृत वा मारे हुए जीवोंका जो पुरुष मांस भक्षण

धनेन क्रयिको हन्ति खादकश्चोपभोगतः ।
घातको वधबन्धाभ्यामित्येष त्रिविधो वधः ॥ ४० ॥
अखादन्ननुमोदंश्च भावदोषेण मानवः ।
योऽनुमोदति हन्यन्तं सोऽपि दोषेण लिप्यते॥ ४१ ॥
अधृष्यः सर्वभूतानामायुष्मान्निरुजः सदा ।
भवत्यभक्षयन्मांसं दयावान्प्राणिनामिह ॥ ४२ ॥
हिरण्यदानैर्गोदानैर्भूमिदानैश्च सर्वशः ।
मांसस्याभक्षणे धर्मो विशिष्ट इति नः श्रुतिः ॥ ४३ ॥
अप्रोक्षितं वृथामांसं विधिहीनं न भक्षयेत् ।
भक्षयन्निरयं याति नरो नास्त्यत्र संशयः ॥ ४४ ॥
प्रोक्षिताभ्युक्षितं मांसं तथा ब्राह्मणकाम्यया ।
अल्पदोषमिह ज्ञेयं विपरीते तु लिप्यते ॥ ४५ ॥
खादकस्य कृते जन्तून्यो हन्यात्पुरुषाधमः ।
महादोषतरस्तत्र घातको न तु खादकः ॥ ४६ ॥

करता है, वह मारनेवालेके सदृश है; कोई धनसे मांस क्रय करते हैं, कोई उपभोगके लिये भक्षण करते हैं, कोई वध और बन्धनादिसे पशुओंको मारते हैं। (३६—४०)

मांस क्रय करना, भक्षण और मारना, ये तीन प्रकारके वध हैं। जो पुरुष स्वयं मांस भक्षण न करके भक्षकका अनुमोदन करता अथवा मारनेवालेका अनुमोदन करनेमें प्रवृत्त होता है, वह पुरुष भी दोषोंसे लिप्त होता है; जो लोग मांस भक्षण न करके प्राणियोंके विषयमें दयावान् होते हैं, वे सब जीवोंके अनभिभवनीय,आयुष्मान्, रोगरहित और सुखी हुआ करते हैं। मैंने सुना है, कि हिरण्यदान, गोदान और भूमिदानकी अपेक्षा मांसभक्षण न करनेसे अधिक धर्म होता है। (४०-४३)

अपरोक्षित विधिसे रहित वृथा मांस भक्षण न करे; यदि मनुष्य वैसा मांस भक्षण करता है, तो निःसन्देह नरकमें जाता है। प्रोक्षित अथवा अभ्युक्षित अथवा ब्राह्मणोंकी कामनासे यदि मांस भक्षण करे, तो उसमें अल्प दोष जानना चाहिये और यदि इसके विपरीत किया जाय, तो मनुष्य दोषोंसे लिप्त हुआ करता है। जो अधम पुरुष खानेवालोंके लिये पशुओंको मारता है, उस विषयमें घातक ही महादोषसे लिप्त होता है, खानेवाले उसकी भांति दोषयुक्त

इज्यायज्ञश्रुतिकृतैर्यो मार्गैरबुधोऽधमः।
हन्याज्जन्तून्मांसगृध्नुः स वै नरकभाङ्नरः ॥ ४७ ॥
भक्षयित्वाऽपि यो मांसं पश्चादपि निवर्तते।
तस्यापि सुमहान्धर्मो यः पापाद्विनिवर्तते ॥ ४८ ॥
आहर्ता चानुमन्ता च विशस्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपभोक्ता च खादकाः सर्व एव ते ॥ ४९ ॥
इदमन्यत्तु वक्ष्यामि प्रमाणं विधिनिर्मितम्।
पुराणमृषिभिर्जुष्टं वेदेषु परिनिष्ठितम् ॥ ५० ॥
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मः प्रजार्थिभिरुदाहृतः।
यथोक्तं राजशार्दूल न तु तन्मोक्षकाङ्क्षिणाम् ॥ ५१ ॥
हविर्यत्संस्कृतं मन्त्रैः प्रोक्षिताभ्युक्षितं शुचि।
वेदोक्तेन प्रमाणेन पितॄणां प्रक्रियासु च ॥ ५२ ॥
अतोऽन्यथा वृथामांसमभक्ष्यं मनुरब्रवीत्।
अस्वर्ग्यमयशस्यं च रक्षोवद्भरतर्षभ ॥ ५३ ॥
विधिहीनं नरः पूर्वं मांसं राजन्न भक्षयेत्।

नहीं होते। (४४—४६)

जो यज्ञोपनिषद्बोधसे रहित मनुष्य अश्वमेध आदि यज्ञ तथा वेदमें कहे हुए उपायका अवलम्बन करके जीवहिंसा करते हैं, उस यज्ञच्छलसे मांसके अभिलाषी पुरुष नरकगामी होते हैं। जो पुरुष मांस खाके पश्चात् उसे भक्षण करनेसे विरत होता है, उसे भी महान् धर्म हुआ करता है; क्यों कि वह पापसे निवृत्त होता है। आहर्त्ता, अनुमन्ता, घातक और क्रय—विक्रय करनेवाले, संस्कारकारक और उपभोक्ता, ये सब कोई खादक हैं। प्राचीन ऋषियोंसे सेवित वेदोंमें प्रतिष्ठित विधिके अनुसार एक दूसरा प्रमाण कहता हूं। हे नृपश्रेष्ठ प्रजार्थी पुरुषोंने जो प्रवृत्तिलक्षणयुक्त धर्मका वर्णन किया करता है, वह मोक्षके अभिलाषी मनुष्योंका धर्म नहीं है। (४७—५१)

हे भरतश्रेष्ठ ! वेदोक्त प्रमाण और पितरोंके श्राद्धके समयमें जो मांस मन्त्रसे संस्कारयुक्त, प्रोक्षित और अभ्युक्षित होता है, वही पवित्र हविस्वरूप है; इसके विपरीत वृथा मांसको मनुने अभक्ष्य, अस्वर्ग्य, अयशस्य तथा राक्षसोंका भक्ष्य कहा है। हे महाराज ! पहले मनुष्य अवैध मांस भक्षण न करे, क्यों कि अप्रोक्षित, अवैध मांस

अप्रोक्षितं वृथामांसं विधिहीनं न भक्षयेत् ॥ ५४ ॥
य इच्छेत्पुरुषोऽत्यन्तमात्मानं निरुपद्रवम् ।
स वर्जयेत मांसानि प्राणिनामिह सर्वशः ॥ ५५ ॥
श्रूयते हि पुराकल्पे नृणां व्रीहिमयः पशुः ।
येनायजन्त यज्वानः पुण्यलोकपरायणाः ॥ ५६ ॥
ऋषिभिः संशयं पृष्टो वसुश्चेदिपतिः पुरा ।
अभक्ष्यमपि मांसं यः प्राह भक्ष्यमिति प्रभो ॥५७ ॥
आकाशादवनिं प्राप्तस्ततः स पृथिवीपतिः ।
एतदेव पुनश्चोक्त्वा विवेश धरणीतलम् ॥ ५८ ॥
प्रजानां हितकामेन त्वगस्त्येन महात्मना ।
आरण्याः सर्वदैवत्याः प्रोक्षितास्तपसा मृगाः ॥५९॥
क्रिया ह्येवं न हीयन्ते पितृदैवतसंश्रिताः ।
प्रीयन्ते पितरश्चैव न्यायतो मांसतर्पिताः ॥ ६० ॥
इदं तु शृणु राजेन्द्र कीर्त्यमानं मयाऽनघ ।
अभक्षणे सर्वसुखं मांसस्य मनुजाधिप ॥ ६१ ॥
यस्तु वर्षशतं पूर्णं तपस्तप्येत्सुदारुणम् ।
यश्चैव वर्जयेन्मांसं सममेतन्मतं मम ॥ ६२ ॥

मनुष्योंको भक्षण करना उचित नहीं है सुखकी इच्छा करनेवाला पुरुष सब प्रकारसे प्राणियोंके मांस भक्षण न करे। सुना जाता है, कि पहले समयमें मनुष्योंके व्रीहिमय पशु थे, पुण्यलोकपरायण यज्ञ करनेवाले उन्हींके सहारे यज्ञ करते थे। (५२—५६)

पहले समयमें ऋषियोंने चेदिपति वसुसे सन्देहयुक्त होकर प्रश्न किया था। उस समय उक्त महाभाग वसु राजाने अभक्ष्य मांसको भी भक्ष्य करके कहा। इस कारण वह भी फिर आकाशसे भूमिके तलमें प्रविष्ट हुए थे। प्रजाकी हितकामना करनेवाले महाभाग अगस्त्यने तपस्याके सहारे सर्वदैवत, आरण्यक मृगोंको प्रोक्षण किया था, पितर और देवसम्बन्धीय कार्य मांसके द्वारा किये जानेपर निकृष्ट नहीं होते। पितर लोग न्यायपूर्वक मांससे तृप्त होकर प्रीतियुक्त होते हैं। (५७-६०)

हे नरनाथ पापरहित राजेन्द्र! मांस भक्षण न करनेसे जो सुख होता है, उसे कहता हूं, सुनो। जो लोग एक सौ वर्षतक दारुण तपस्या करते और जो

कौमुदे तु विशेषेण शुक्लपक्षे नराधिप ।
वर्जयेन्मधुमांसानि धर्मो ह्यत्र विधीयते ॥ ६३ ॥
चतुरो वार्षिकान्मासान्यो मांसं परिवर्जयेत् ।
चत्वारि भद्राण्याप्नोति कीर्तिमायुर्यशो बलम् ॥ ६४ ॥
अथवा मासमेकं वै सर्वमांसान्यभक्षयन् ।
अतीत्य सर्वदुःखानि सुखं जीवेन्निरामयः ॥ ६५ ॥
वर्जयन्ति हि मांसानि मासशः पक्षशोऽपि वा ।
तेषां हिंसानिवृत्तानां ब्रह्मलोको विधीयते ॥ ६६ ॥
मांसं तु कौमुदं पक्षं वर्जितं पार्थ राजभिः ।
सर्वभूतात्मभूतस्थैर्विदितार्थपरावरैः ॥ ६७ ॥
नाभागेनाम्बरीषेण गयेन च महात्मना ।
आयुनाथानरण्येन दिलीपरघुपूरुभिः ॥ ६८ ॥
कार्तवीर्यानिरुद्धाभ्यां नहुषेण ययातिना ।
नृगेण विष्वगश्वेन तथैव शशबिन्दुना ॥ ६९ ॥
युवनाश्वेन च तथा शिबिनौशीनरेण च ।
मुचकुन्देन मान्धात्रा हरिश्चन्द्रेण वा विभो ॥ ७० ॥
सत्यं वदत माऽसत्यं सत्यं धर्मः सनातनः ।

लोग मांस परित्याग किया करते हैं, मेरे मतमें वे दोनों ही समान हैं। हे नरनाथ! कौमुदीमय शुक्लपक्षमें मधुमांस परित्याग करे, क्योंकि उससे धर्म होता है। जो लोग वर्षके बीच चार महीनेतक मांस त्यागते हैं, उन्हें कीर्ति, आयु यश और बल प्राप्त होता है। अथवा जो लोग एक महिना मांस भक्षण नहीं करते, वे सब क्लेशोंको अतिक्रम कर निरामय होके परम सुखसे जीवनका समय बिताते हैं। (६१-६५)

जो लोग एक महिना वा एक पक्ष मांस नहीं खाते, उन हिंसानिवृत्त लोगों के लिये ब्रह्मलोक विहित है। हे पार्थ! जिन्होंने सदसत् वस्तुओंको जाना है और सब जीवोंको आत्मस्वरूप जानते हैं, वे राजा लोग शुक्लपक्षमें मांस भक्षण नहीं करते। नाभाग, अम्बरीष, महानुभाव गय, आयु, अनरण्य, दिलीप, रघु, पूरु, कार्त्तवीर्य, अनिरुद्ध, नहुष, ययाति, नृग, विष्वगश्व, शशबिन्दु, युवनाश्व, शिबि, उशीनर, मुचुकुन्द, मान्धाता और हरिश्चन्द्र, इन सब राजाओंने शरत्कालके शुक्लपक्षमें मांसभक्षण

हरिश्चन्द्रश्चरति वै दिवि सत्येन चन्द्रवत् ॥ ७१ ॥
श्येनचित्रेण राजेन्द्र सोमकेन वृकेण च।
रैवते रन्तिदेवेन वसुना सृञ्जयेन च ॥ ७२ ॥
एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र कृपेण भरतेन च।
दुष्यन्तेन करूषेण रामालर्कनरैस्तथा।
विरूपाश्वेन निमिना जनकेन च धीमता ॥ ७३ ॥
ऐलेन पृथुना चैव वीरसेनेन चैव ह।
इक्ष्वाकुणा शम्भुना च श्वेतेन सगरेण च ॥ ७४ ॥
अजेन धुन्धुना चैव तथैव च सुबाहुना।
हर्यश्वेन च राजेन्द्र क्षुपेण भरतेन च ॥ ७५ ॥
एतैश्चान्यैश्च राजेन्द्र पुरा मांसं न भक्षितम्।
शारदं कौमुदं मासं ततस्ते स्वर्गमाप्नुवन् ॥ ७६ ॥
ब्रह्मलोके च तिष्ठन्ति ज्वलमानाः श्रियाऽन्विताः।
उपास्यमाना गन्धर्वैः स्त्रीसहस्रसमन्विताः ॥ ७७ ॥
तदेतदुत्तमं धर्ममहिंसाधर्मलक्षणम्।
ये चरन्ति महात्मानो नाकपृष्ठे वसन्ति ते ॥ ७८ ॥
मधुमांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह धार्मिकाः।
जन्मप्रभृति मद्यं च सर्वे ते मुनयः स्मृताः ॥ ७९ ॥

नहीं किया था। सत्य वचन कहो, झूठी बात मत कहो, सत्य ही सनातन धर्म है; राजा हरिश्चन्द्र सत्यके सहारे सुरपुरमें चन्द्रमाकी भांति विहार करते हैं। (६६-७१)

हे राजेन्द्र! श्येनचित्र, सोमक, वृक, रैवत, रन्तिदेव, वसु, सृञ्जय, कृप, भरत, दुष्यन्त, करूष, राम, अलर्क, नल, विरूपाश्व, निमि, धीमान् जनक, ऐल, पृथु, वीरसेन, इक्ष्वाकु, शम्भु, श्वेत, सगर, धुन्धु, सुबाहु, हर्यश्व, क्षुप और भरत, ये सब तथा दूसरे राजा लोग शरत्कालके शुक्लपक्षमें मांस-त्याग करनेसे स्वर्ग लोकमें गये हैं और श्रीसम्पन्न तथा दीप्यमान होके ब्रह्म-लोकमें निवास करते हुए सहस्रों स्त्रियोंसे युक्त होकर गन्धर्वोंसे पूजित हुआ करते हैं। इसलिये जो महात्मा इस अहिंसाधर्मलक्षणयुक्त उत्तम धर्मा-चरण करते हैं, स्वर्गमें वास किया करते हैं। (७२-७८)

इस लोकमें जो धार्मिक पुरुष जन्मसे

इमं धर्ममांसादं यश्चरेच्छ्रावयीत वा ।
अपि चेत्सुदुराचारो न जातु निरयं व्रजेत् ॥ ८० ॥
पठेद्वा य इदं राजञ्छृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ।
अमांसभक्षणविधिं पवित्रमृषिपूजितम् ॥ ८१ ॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः सर्वकामैर्महीयते ।
विशिष्टतां ज्ञातिषु च लभते नात्र संशयः ॥ ८२ ॥
आपन्नश्चापदो मुच्येद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
मुच्येत्तथाऽऽतुरो रोगाद्दुःखान्मुच्येत दुःखितः ॥ ८३॥
तिर्यग्योनिं न गच्छेत रूपवांश्च भवेन्नरः ।
ऋद्धिमान्वै कुरुश्रेष्ठ प्राप्नुयाच्च महद्यशः ॥ ८४ ॥
एतत्ते कथितं राजन्मांसस्य परिवर्जने ।
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च विधानमृषिनिर्मितम् ॥ ८५ ॥ [५६०७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे मांसभक्षणनिषेधे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

युधिष्ठिर उवाच- इमे वै मानवा लोके नृशंसा मांसगृद्धिनः ।

ही मधुमांस परित्याग करते और मद्य नहीं पीते, वेही मुनिरूपसे स्मृत होते हैं । जो लोग यह अमांसाद धर्माचरण करते अथवा दूसरोंको सुनाते हैं, वे यदि अत्यन्त दुराचारी भी हों, तौभी नरकमें नहीं जाते । हे महाराज ! जो लोग इस ऋषिपूजित पवित्र अमांसभक्षण धर्मका सदा पाठ करते अथवा निरन्तर सुनते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त होकर सर्वकामके द्वारा पूजित होते और उन्हें स्वजनोंके बीच विशिष्टता प्राप्त होती है, इस विषयमें सन्देह नहीं है । (७९—८२)

विपदयुक्त पुरुष आपदोंसे मुक्त होता है, बद्ध पुरुष कारागारसे छूट जाता है, आतुर मनुष्य रोगरहित हुआ करते और दुःखित पुरुषोंको दुःखसे छुटकारा मिलता है । हे कुरुश्रेष्ठ ! जो मनुष्य मांस भक्षण नहीं करता, उसे तिर्यक्‌योनि प्राप्त नहीं होती, वह रूपवान् और समृद्धिमान होके महत् यश पाता है । हे महाराज ! यह तुम्हारे निकट मांस परित्याग विषयमें प्रवृत्ति और निवृत्तियुक्त ऋषियोंकी कही हुई विधि वर्णित हुई । (८३—८५)

अनुशासनपर्वमें ११५ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें ११६ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, जगत्‌के बीच ये

विसृज्य विविधान्भक्ष्यान्महारक्षोगणा इव ॥ १ ॥
अपूपान्विविधाकारान् शाकानि विविधानि च ।
खाण्डवान्रसयोगान्न तथेच्छन्ति यथाऽऽमिषम् ॥ २ ॥
तत्र मे बुद्धिरत्रैव विषये परिमुह्यते ।
न मन्ये रसतः किंचिन्मांसतोऽस्तीति किंचन ॥ ३ ॥
तदिच्छामि गुणान् श्रोतुं मांसस्याभक्षणे प्रभो ।
भक्षणे चैव ये दोषास्तांश्चैव पुरुषर्षभ ॥ ४ ॥
सर्वं तत्त्वेन धर्मज्ञ यथावदिह धर्मतः ।
किं चाभक्ष्यमभक्ष्यं वा सर्वमेतद्वदस्व मे ॥ ५ ॥
यथैतद्यादृशं चैव गुणा ये चास्य वर्जने ।
दोषा भक्षयतो येऽपि तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ६ ॥
भीष्म उवाच–एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि भारत ।
न मांसात्परमं किंचिद्रसतो विद्यते भुवि ॥ ७ ॥
क्षतक्षीणाभितप्तानां ग्राम्यधर्मरतात्मनाम् ।
अध्वना कर्शितानां च न मांसाद्विद्यते परम् ॥ ८ ॥
सद्यो वर्धयति प्राणान्पुष्टिमग्र्यां दधाति च ।

मांसभोजी मनुष्य विविध भक्ष्य त्यागके महाराक्षससमूहकी भांति नृशंस होते हैं। ये लोग जिस प्रकार मांसभक्षणकी अभिलाष किया करते हैं, अनेक प्रकार के अपूप, शाक और खाण्डव वस्तुओंको भोजन करनेमें वैसी इच्छा नहीं करते; इसलिये इस विषयके विचारनेमें मेरी बुद्धि अत्यन्त मुग्ध होती है। मेरी समझमें मांससे बढके उत्तम मधुर रस-युक्त वस्तु और कुछ भी नहीं है। हे प्रभु भरतश्रेष्ठ! मांसके न खानेसे जो फल होता तथा भक्षण करनेसे जो दोष होते हैं, उसे भी सुननेकी इच्छा करता हूं। हे धर्मज्ञ! कौन वस्तु भक्ष्य है, कौनसी अभक्ष्य है, उसे धर्मपूर्वक पूरी रीतिसे कहिये। हे पितामह! यह विषय जैसा है, तथा इसके त्यागनेसे जो फल मिलते और भक्षण करनेसे जो दोष हुआ करते हैं, उसे मेरे समीप वर्णन करो। (१–६)

भीष्म बोले, हे महाबाहो भरतश्रेष्ठ! तुमने जो कहा, वह यथार्थ है; भूलोकमें मांससे बढके परम रस और कुछ भी नहीं है। कर्षित, क्षीण, सन्तप्त, ग्राम्य धर्ममें रत और मार्गसे थके हुए मनुष्योंके पक्षमें मांससे बढके श्रेष्ठ

न भक्ष्योऽभ्यधिकः कश्चिन्मांसादस्ति परन्तप ॥ ९ ॥
विवर्जिते तु बहवो गुणाः कौरवनन्दन ।
ये भवन्ति मनुष्याणां तान्मे निगदतः शृणु ॥ १० ॥
स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति ।
नास्ति क्षुद्रतरस्तस्मात्स नृशंसतरो नरः ॥ ११ ॥
न हि प्राणात्प्रियतरं लोके किंचन विद्यते ।
तस्माद्दयां नरः कुर्याद्यथाऽऽत्मनि तथा परे ॥ १२ ॥
शुक्राच्च तात संभूतिर्मांसस्येह न संशयः ।
भक्षणे तु महान्दोषो निवृत्त्या पुण्यमुच्यते ॥ १३ ॥
विधिना वेददृष्टेन तद्भुक्त्वेह न दुष्यति ।
यज्ञार्थे पशवः सृष्टा इत्यपि श्रूयते श्रुतिः ॥ १४ ॥
अतोऽन्यथा प्रवृत्तानां राक्षसो विधिरुच्यते ।
क्षत्रियाणां तु यो दृष्टो विधिस्तमपि मे शृणु ॥ १५ ॥
वीर्येणोपार्जितं मांसं यथा भुञ्जन्न दुष्यति ।

भक्ष्य दूसरा कुछ भी नहीं है । हे शत्रुतापन ! मांस सदाही बलको बढाता तथा उत्तम पुष्टिका विधान करता है; इसलिये कोई भक्ष्य भी मांससे श्रेष्ठ नहीं है । हे कौरवनन्दन ! मांस न खानेसे जो सब फल प्राप्त होते हैं, उसे मैं कहता हूं, सुनो । जो मनुष्य दूसरेके मांससे निज मांस बढानेकी अभिलाष करता है, उससे अत्यन्त क्षुद्र तथा नृशंस पुरुष दूसरा कोई भी नहीं है । (७–११)

जगत्‌के बीच प्राणसे अधिक प्रिय पदार्थ और कुछ भी विद्यमान नहीं है, इसलिये जिस प्रकार मनुष्य अपने प्राणको बचाता है, दूसरोंके विषयमें भी उसी भांति दया करे । हे तात ! शुक्रसे मांस उत्पन्न होता है, इस विषयमें सन्देह नहीं है; इसलिये उसे भक्षण करनेसे महान् दोष और भक्षण-निवृत्तिको ही पुण्य कहा जाता है; परन्तु इस लोकमें वेदविहित विधिके अनुसार मांस भक्षण करनेसे दोष नहीं होता; ऐसी श्रुति है, कि "यज्ञके लिये पशुवृन्द उत्पन्न हुए हैं ।" (१२–१४)

वेदविधिसे अन्यथा आचरणमें प्रवृत्त मनुष्योंके अनुष्ठानको राक्षसधर्म कहते हैं; क्षत्रियोंकी जो विधि दीख पडती है, उसे भी सुनो । क्षत्रिय बाहुबलसे प्राप्त हुए मांसको भक्षण करनेसे दोष-

आरण्याः सर्वदैवत्याः सर्वशः प्रोक्षिता मृगाः ॥१६॥
अगस्त्येन पुरा राजन्मृगया येन पूज्यते ।
नात्मानमपरित्यज्य मृगया नाम विद्यते ॥ १७ ॥
समतामुपसङ्गम्य भूतं हन्यति हन्ति वा ।
अतो राजर्षयः सर्वे मृगयां यान्ति भारत ॥ १८ ॥
न हि लिप्यन्ति पापेन न चैतत्पातकं विदुः ।
न ह्यतः सदृशं किंचिदिह लोके परत्र च ॥ १९ ॥
यत्सर्वेष्विह भूतेषु दया कौरवनन्दन ।
न भयं विद्यते जातु नरस्येह दयावतः ॥ २० ॥
दयावतामिमे लोकाः परे चापि तपस्विनाम् ।
अहिंसालक्षणो धर्म इति धर्मविदो विदुः ॥ २१ ॥
यदहिंसात्मकं कर्म तत्कुर्यादात्मवान्नरः ।
पितृदैवतयज्ञेषु प्रोक्षितं हविरुच्यते ॥ २२ ॥
अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापरः ।

युक्त नहीं होता । हे महाराज ! पहले समयमें अगस्त्य मुनिके द्वारा सर्व देवताओंके उद्देश्यसे जङ्गली पशु सब प्रकारसे प्रोक्षित हुए, इसहीसे मृगया प्रशंसनीय हुआ करता है, अपने प्राणकी आशाको विना त्यागे मृगया नहीं होता । हिंसक पशुओंसे अपने प्राणनाशकी सम्भावना रहती है, इसलिये प्राणपणसे होनेवाली मृगया दोषका कारण नहीं है; समतायुक्त होके मनुष्य मृगयामें पशुओंको मारता है अथवा पशुओंके द्वारा मारा जाता है । (१५–१८)

हे भारत ! इस ही लिये राजर्षि लोग मृगयाके निमित्त जाते हैं, इसमें वे पापसे लिप्त नहीं होते और मृगयाको पाप नहीं समझते । हे कौरवनन्दन ! सब जीवोंके विषयमें दया करनेके सदृश धर्म इस लोक और परलोकमें दूसरा कुछ भी नहीं है, दयावान मनुष्योंको कदापि भय नहीं होता, दयावान तपस्वियोंकी इस लोक और परलोकमें जय होती है । धर्मज्ञ पुरुष अहिंसाको ही धर्मका लक्षण जानते हैं; जो कर्म अहिंसायुक्त हो, आत्मवान् पुरुष उसे ही करे; पितृयज्ञ और देवयज्ञमें प्रोक्षित मांसही हवि रूपसे वर्णित हुई है । (१९—२२)

मैंने सुना है, कि जो लोग दयावान् होके सब जीवोंको अभयदान करते हैं,

अभयं तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुम ॥ २३ ॥
क्षतं च स्खलितं चैव पतितं कृष्टमाहतम् ।
सर्वभूतानि रक्षन्ति समेषु विषमेषु च ॥ २४ ॥
नैनं व्यालमृगा घ्नन्ति न पिशाचा न राक्षसाः ।
मुच्यते भयकालेषु मोक्षयेद्यो भये परान् ॥ २५ ॥
प्राणदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ।
न ह्यात्मनः प्रियतरं किंचिदस्तीह निश्चितम् ॥ २६ ॥
अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत ।
मृत्युकाले हि भूतानां सद्यो जायति वेपथुः ॥ २७ ॥
जातिजन्मजरादुःखैर्नित्यं संसारसागरे ।
जन्तवः परिवर्तन्ते मरणादुद्विजन्ति च ॥ २८ ॥
गर्भवासेषु पच्यन्ते क्षाराम्लकटुकै रसैः ।
मूत्रस्वेदपुरीषाणां परुषैर्भृशदारुणैः ॥ २९ ॥
जाताश्चाप्यवशास्तत्र छिद्यमानाः पुनः पुनः ।
पाच्यमानाश्च दृश्यन्ते विवशा मांसगृद्धिनः ॥ ३० ॥
कुम्भीपाके च पच्यन्ते तां तां योनिमुपागताः ।

सब जीव भी उन्हें अभय प्रदान करते हैं। घायल, स्खलित, क्षत, पतित, और कृष्ट पुरुषोंकी सम विषम स्थलमें सब जीव ही रक्षा किया करते हैं। जो पुरुष भयके समयमें दूसरोंका भय छुडाता है, उसे हिंसक जीव और पिशाच राक्षस भी नहीं मारते; वह भय उपस्थित होनेपर उससे छुटकारा पाता है। प्राणदानसे बढके परम दान न हुआ और न होगा। यह निश्चय है, कि आत्मासे अधिक प्रिय और कुछ भी नहीं है। हे भारत! मरना सब जीवोंको ही अनभिलषित है, जीवको मृत्युके समय सदा ही दुःख होता है, सब जीव गर्भवास और जन्म जरा दुःखके सहारे सदा संसार-सागरमें परिभ्रमण करते हैं और मरनेसे डरते हैं। (२३-२७)

सब प्राणी गर्भवासके समय मूत्र, श्लेष्म और पुरीष प्रभृतिकी अत्यन्त दारुण, उत्कट, क्षार, खट्टे और कडवे रसोंसे पच्यमान हुआ करते हैं, मांस-लोभी पुरुष जन्म लेके भी उस समय अवश तथा विवश रहनेसे बार बार छिद्यमान और पच्यमान दीख पडते हैं, वे लोग उन्हीं योनियोंमें जन्म लेके

आक्रम्य मार्यमाणाश्च भ्राम्यन्ते वै पुनः पुनः ॥ ३१ ॥
नात्मनोऽस्ति प्रियतरः पृथिवीमनुसृत्य ह ।
तस्मात्प्राणिषु सर्वेषु दयावानात्मवान्भवेत् ॥ ३२ ॥
सर्वमांसानि यो राजन्यावज्जीवं न भक्षयेत् ।
स्वर्गे स विपुलं स्थानं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥ ३३ ॥
ये भक्षयन्ति मांसानि भूतानां जीवितैषिणाम् ।
भक्ष्यन्ते तेऽपि भूतैस्तैरिति मे नास्ति संशयः॥ ३४ ॥
मां स भक्षयते यस्माद्भक्षयिष्ये तमप्यहम् ।
एतन्मांसस्य मांसत्वमनुबुद्ध्यस्व भारत ॥ ३५ ॥
घातको वध्यते नित्यं तथा वध्यति भक्षिता ।
आक्रोष्टा क्रुध्यते राजंस्तथा द्वेष्यत्वमाप्नुते ॥ ३६ ॥
येन येन शरीरेण यद्यत्कर्म करोति यः ।
तेन तेन शरीरेण तत्तत्फलमुपाश्नुते ॥ ३७ ॥
अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परो दमः ।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः ॥ ३८ ॥
अहिंसा परमो यज्ञस्तथाऽहिंसा परं फलम् ।

फिर कुम्भीपाक नरकमें पकते हैं, वे आक्रान्त तथा म्रियमाण होके बार बार भ्रमण करते हैं। पृथ्वीपर खोजनेसे आत्मासे अधिक प्रिय पदार्थ और कुछ भी नहीं देखा जाता, इसलिये आत्मवान् पुरुष सब प्राणियोंमें ही दयावान् होवे। हे महाराज! जो लोग जन्मसे ही मांस भक्षण नहीं करते, उन्हें निःसन्देह सुरपुरमें उत्तम महत् स्थान प्राप्त होता है। (२८—३३)

जो लोग जीनेकी इच्छा करनेवाले जीवोंका मांस भक्षण करते हैं, वे उन्हीं जीवोंके द्वारा भक्षित होते हैं, इस विषयमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। हे भारत! जब कि वह मुझे भक्षण करता है, तब मैं भी उसे भक्षण करूंगा, 'मांस' शब्दका यही मांसत्व मालूम करो। हे महाराज! घातक सदा ही वध्य होता है, अनन्तर भक्षक पुरुष वध्य हुआ करता है; आक्रोष्टा पुरुष सदा ही आक्रुष्ट होता और द्वेष करनेवालेको द्वेष्यत्व प्राप्त हुआ करता है। जो पुरुष जिस शरीरसे जैसा कर्म करता है, वह उस ही शरीरसे उन फलोंको भोगता है। (३४—३७)

अहिंसा परम धर्म, अहिंसाही परम

अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम् ॥ ३९ ॥
सर्वयज्ञेषु वा दानं सर्वतीर्थेषु वाऽऽप्लुतम् ।
सर्वदानफलं वाऽपि नैतत्तुल्यमहिंसया ॥ ४० ॥
अहिंस्रस्य तपोऽक्षय्यमहिंस्रो यजते सदा ।
अहिंस्रः सर्वभूतानां यथा माता यथा पिता ॥ ४१ ॥
एतत्फलमहिंसाया भूयश्च कुरुपुङ्गव ।
न हि शक्या गुणा वक्तुमपि वर्षशतैरपि ॥ ४२ ॥ [८६४९]

इति श्रीमहा०अनु०आनु०पर्वणि दानधर्मे अहिंसाफलकथने षोडशाधिकशततमोऽध्यायः॥११६॥

युधिष्ठिर उवाच– अकामाश्च सकामाश्च ये हताः स्म महामृधे ।
कां गतिं प्रतिपन्नास्ते तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥
दुःखं प्राणपरित्यागः पुरुषाणां महामृधे ।
जानासि त्वं महाप्राज्ञ प्राणत्यागं सुदुष्करम् ॥ २ ॥
समृद्धौ वाऽसमृद्धौ वा शुभे वा यदि वाऽशुभे ।
कारणं तत्र मे ब्रूहि सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः ॥ ३ ॥

भीष्म उवाच– समृद्धौ वाऽसमृद्धौ वा शुभे वा यदि वाऽशुभे ।

दम, अहिंसाही परम दान, अहिंसाही परम तपस्या है, अहिंसा परम यज्ञ, अहिंसाही परम तप, अहिंसा परम बल, अहिंसाही परम मित्र, अहिंसा परम सुख, अहिंसा परम सत्य और अहिंसा ही परम श्रुत है। सब यज्ञोंमें जो दान किया जाता है, सब तीर्थोंके स्नान तथा सब दानोंके फल अहिंसाके सदृश नहीं है। अहिंस मनुष्योंकी तपस्या अक्षय होती है, अहिंसक पुरुष सदा ही यज्ञ करता और हिंसारहित मनुष्य सब जीवोंके पितामाता सदृश है। हे कुरु-पुङ्गव! यह मैंने अहिंसाका फल कहा; इसकी अपेक्षा और जो सब अत्यन्त अधिक फल हैं, वे एक सौ वर्षमें भी नहीं कहे जा सकते। (३८-४२)

अनुशासनपर्वमें ११६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११७ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जो लोग अकाम अथवा सकाम होकर महारणमें मरते हैं, उन्हें कौनसी गति प्राप्त होती है? हे महाप्राज्ञ! महामृधमें मनुष्योंका प्राण त्यागना अत्यन्त दुःखकर है समृद्धि, असमृद्धि शुभ वा अशुभ समयमें प्राण परित्याग करना जो अत्यन्त दुष्कर है, उसे पाप जानते हैं; इसलिये उस विषयका कारण मेरे समीप वर्णन करिये। मैं आपको सर्वज्ञ जानता हूं। (१-३)

संसारेऽस्मिन्समायाताः प्राणिनः पृथिवीपते ॥ ४ ॥
निरता येन भावेन तत्र मे शृणु कारणम् ।
सम्यक्चायमनुप्रश्नस्त्वयोक्तस्तु युधिष्ठिर ॥ ५ ॥
अत्र ते वर्तयिष्यामि पुरावृत्तमिदं नृप ।
द्वैपायनस्य संवादं कीटस्य च युधिष्ठिर ॥ ६ ॥
ब्रह्मभूतश्चरन्विप्रः कृष्णद्वैपायनः पुरा ।
ददर्श कीटं धावन्तं शीघ्रं शकटवर्त्मनि ॥ ७ ॥
गतिज्ञः सर्वभूतानां भाषाज्ञश्च शरीरिणाम् ।
सर्वज्ञः स तदा दृष्ट्वा कीटं वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥
व्यास उवाच- कीट सन्त्रस्तरूपोऽसि त्वरितश्चैव लक्ष्यसे ।
क्व धावसि तदाचक्ष्व कुतस्ते भयमागतम् ॥ ९ ॥
कीट उवाच—शकटस्यास्य महतो घोषं श्रुत्वा भयं मम ।
आगतं वै महाबुद्धे स्वन एष हि दारुणः ॥ १० ॥
श्रूयते न च मां हन्यादिति तस्मादपक्रमे ।
श्वसतां च शृणोम्येनं गोपुत्राणां प्रतोद्यताम् ॥ ११ ॥

भीष्म बोले, हे पृथ्वीपति युधिष्ठिर! समृद्ध अथवा असमृद्ध, शुभ वा अशुभ वंशमें इस संसारके बीच उत्पन्न हुए प्राणिवृन्द जिस भावसे रत रहते हैं, मेरे समीप उसका कारण सुनो; तुमने यह उत्तम प्रश्न किया है। हे राजन् युधिष्ठिर! इस विषयमें द्वैपायन और कीटके संवादयुक्त पुराना इतिहास कहता हूं। पहले समयमें विप्रवर कृष्ण-द्वैपायन ब्रह्मरूपसे विचर रहे थे, उस समय उन्होंने शकटके मार्गमें शीघ्रताके सहित दौडते हुए एक कीटको देखा। सब जीवोंके गतिज्ञ और शरीरधारी सब भूतोंकी भाषा जाननेवाले सर्वज्ञ वेद-व्यासने उस समय कीटको देखकर यह वचन कहा। (४-८)

व्यासदेव बोले, हे कीट! तुम अत्यन्त भयभीत और आतुर दीख पडते हो, तुम दौडके कहां जाओगे? तुम्हें किससे भय हुआ है? (९)

कीट बोला, हे महाबुद्धिमान्! इस वृहत् शकटका शब्द सुनके मुझे भय हुआ है, वह अत्यन्त दारुण शब्द सुन-नेमें आता है, परन्तु उसने मेरा जीवन नष्ट नहीं किया, इसी लिये इस स्थानसे जाता हूं। प्रहार करने में जिस प्रकार निश्वासयुक्त गऊके बछडों का शब्द होता है, वैसे ही इस

वहतां सुमहाभारं सन्निकर्षे स्वनं प्रभो ।
नृणां च संवाहयतां श्रूयते विविधः स्वनः ॥ १२ ॥
श्रोतुमस्मद्विधेनैष न शक्यः कीटयोनिना ।
तस्मादतिक्रमाम्येष भयादस्मात्सुदारुणात् ॥ १३ ॥
दुःखं हि मृत्युर्भूतानां जीवितं च सुदुर्लभम् ।
अतो भीतः पलायामि गच्छेयं नासुखं सुखात् ॥१४॥
भीष्म उवाच- इत्युक्तः स तु तं प्राह कुतः कीट सुखं तव ।
मरणं ते सुखं मन्ये तिर्यग्योनौ तु वर्तसे ॥ १५ ॥
शब्दं स्पर्शं रसं गन्धं भोगांश्चोच्चावचान्बहून् ।
नाभिजानासि कीट त्वं श्रेयो मरणमेव ते ॥ १६ ॥
कीट उवाच- सर्वत्र निरतो जीव इतश्चापि सुखं मम ।
चिन्तयामि महाप्राज्ञ तस्मादिच्छामि जीवितुम् ॥१७॥
इहापि विषयः सर्वो यथादेहं प्रवर्तितः ।
मानुषाः स्थैर्यजाश्चैव पृथग्भोगा विशेषतः ॥ १८ ॥
अहमासं मनुष्यो वै शूद्रो बहुधनः प्रभो ।

शब्दको सुनता हूं । बहुतसा भार ढोनेवाले मनुष्योंके सन्निकर्षनिबन्धनसे शकटके अनेक प्रकारके शब्द कानके छिद्रमें प्रविष्ट होते हैं। मेरे सदृश कीट-योनिमें उत्पन्न हुए जीव ऐसे शब्दको नहीं सुन सकते, इस ही निमित्त अत्यन्त दारुण भयसे इस स्थानको छोडके दूसरे स्थानमें जाता हूं, जीवोंको मृत्युमें ही दुःख है, जीवन अत्यन्त दुर्लभ है, इसीलिये मैं डरके भागता हूं और सुख छोडके दुःखमें भी नहीं जाता हूं । (१०-१४)

भीष्म बोले, व्यासदेवने कीटका ऐसा वचन सुनके उससे कहा, हे कीट! किस प्रकार तुम्हें सुख होता है, तुम तिर्यग्योनिमें रहते हो, इससे तुझे मरणही सुख है, ऐसा मुझे दीखता है। तुम शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध और अनेक भांतिकी भोज्यवस्तुओंको भोग-ना नहीं जानते । हे कीट ! इस-लिये तुम्हारा मरनाही कल्याणकारी है । (१५—१६)

कीट बोला, हे महाप्राज्ञ ! जीव सब ठौर रत रहता है, इसलिये इस योनिमें भी मुझे सुख है, ऐसा जानके ही मैं जीवित रहनेकी अभिलाष करता हूं। इस कीटशरीरमें भी देहके अनुसार सब विषय प्रवर्तित हुए हैं, जङ्गम और

अब्रह्मण्यो नृशंसश्च कदर्यो वृद्धिजीवनः ॥ १९ ॥
वाक्तीक्ष्णो निकृतिप्रज्ञो द्वेष्टा विश्वस्य सर्वशः ।
मिथ्याकृतोऽपि विधिना परस्वहरणे रतः ॥ २० ॥
भृत्यातिथिजनश्चापि गृहे पर्यशितो मया ।
मात्सर्यात्स्वादुकामेन नृशंसेन बुभुक्षता ॥ २१ ॥
देवार्थं पितृयज्ञार्थमन्नं श्रद्धाहृतं मया ।
न दत्तमर्थकामेन देयमन्नं पुरा किल ॥ २२ ॥
गुप्तं शरणमाश्रित्य भयेषु शरणागताः ।
अकस्मात्ते मया त्यक्ता न त्राता अभयैषिणः ॥ २३॥
धनं धान्यं प्रियान्दारान्यानं वासस्तथाद्भुतम् ।
श्रियं दृष्ट्वा मनुष्याणामसूयामि निरर्थकम् ॥ २४ ॥
ईर्ष्युः परसुखं दृष्ट्वा अन्यस्य न बुभूषकः ।
त्रिवर्गहन्ता चान्येषामात्मकामानुवर्तकः ॥ २५ ॥
नृशंसगुणभूयिष्ठं पुरा कर्म कृतं मया ।
स्मृत्वा तदनुतप्येऽहं हित्वा प्रियमिवात्मजम् ॥२६ ॥

स्थावर जीवोंके भोग पृथक् पृथक् हैं । हे प्रभु! मैं पहले जन्ममें अधिक धनवाला शूद्र जातीय मनुष्य था, मैं ब्रह्मनिष्ठ न होकर नृशंस, कृपण, वृद्धजीवी, तीक्ष्ण-वादी, अतिनिकृतिप्रज्ञ और सब भांतिसे लोगोंका द्वेषी था। परस्परमें छल करके परधन हरनेमें रत रहता था, गृहके बीच सेवकों और अतिथियोंको परित्याग करके स्वयं पहले भोजन करता और मत्सरतासे स्वादुकाम तथा नृशंस होकर भोजन करनेकी इच्छा करता, अर्थकाम होके देव और पितृ-यज्ञके लिये श्रद्धापूर्वक अन्न प्रदान नहीं करता था; पहले अन्नदान करनेकी इच्छा करके भी फिर उससे विमुख रहता था। (१७—२२)

गुप्तभावसे जो लोग शरणागत होनेके लिये मेरा आसरा करते और जो लोग डरके मेरे शरणागत होते थे, मैं अकस्मात् उन्हें परित्याग करता था और जो लोग अभय प्रार्थना करते थे, उनका परित्राण नहीं करता था। दूसरोंके धन, धान्य, पीनेकी वस्तु, अद्भुत वस्त्र और सम्पत्ति देखके मैं निरर्थक डाह करता था, मैं दूसरेके ऐश्वर्यकी इच्छा न करके लोगोंके सुख-को देखनेसे ही ईर्षा करता था। अपने प्रयोजनके लिये दूसरोंका

शुभानां नाभिजानामि कृतानां कर्मणां फलम् ।
माता च पूजिता वृद्धा ब्राह्मणश्चार्चितो मया ॥ २७ ॥
सकृज्जातिगुणोपेतः संगत्या गृहमागतः ।
अतिथिः पूजितो ब्रह्मंस्तेन मां नाजहात्स्मृतिः ॥२८॥
कर्मणा पुनरेवाहं सुखमागामि लक्षये ।
तच्छ्रोतुमहमिच्छामि त्वत्तः श्रेयस्तपोधन ॥ २९ ॥[५६७८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे कीटोपाख्याने सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

व्यास उवाच-शुभेन कर्मणा यद्वै तिर्यग्योनौ न मुह्यसे ।
ममैव कीट तत्कर्म येन त्वं न प्रमुह्यसे ॥ ॥ १ ॥
अहं त्वां दर्शनादेव तारयामि तपोबलात् ।
तपोबलाद्धि बलवद्बलमन्यन्न विद्यते ॥ २ ॥
जानामि पापैः स्वकृतैर्गतं त्वां कीट कीटताम् ।
अवाप्स्यसि पुनर्धर्मं धर्मं तु यदि मन्यसे ॥ ३ ॥
कर्मभूमिकृतं देवा भुञ्जते तिर्यगाश्च ये ।

भी धर्म, अर्थ और काम नष्ट करता था, पूर्व जन्ममें मैंने नृशंस तथा बहुतसे दुष्ट गुणयुक्त कार्य किये थे; मुझे जिस प्रकार अपने पुत्रको परित्याग करनेसे दुःख होता है, मैं इस समय उन कर्मोंको स्मरण करके उसी भांति शोक करता हूं। (२३—२६)

मैंने जो कुछ सत्कर्म किया था, उसका कुछ भी फल नहीं जानता; मैं बूढी जननीका सत्कार करता तथा ब्राह्मण लोग भी मेरे द्वारा पूजित हुए थे। हे ब्रह्मन्! एकवार जाति-गुणसे युक्त कोई अतिथि सङ्गतिक्रमसे मेरे गृहपर आया था, मैंने उनकी पूजा की थी, इसही लिये स्मरणशक्तिने मुझे परित्याग नहीं किया। हे तपोधन! मैं कर्मके सहारे भविष्यत् सुख देखता हूं, इसलिये आपके समीप उस कल्याणके विषयको सुननेकी अभिलाष करता हूं। २७—२९)

अनुशासनपर्वमें ११७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११८ अध्याय।

व्यासदेव बोले, हे कीट तू जो तिर्यक्योनिमें जन्म लेके शुभकर्मके सहारे मोहित नहीं होता है, वह मेरा ही कार्य है, मैं तपोबलसे देखते ही तेरा उद्धार करूंगा, तपोबलसे प्रबल और कुछ भी नहीं है। मैं जानता हूं

धर्मोऽपि हि मनुष्येषु कामार्थश्च तथा गुणाः ॥ ४ ॥
वाग्बुद्धिपाणिपादैश्च व्यपेतस्य विपश्चितः ।
किं हास्यति मनुष्यस्य मन्दस्यापि हि जीवतः ॥ ५ ॥
जीवन्हि कुरुते पूजां विप्राग्र्यः शशिसूर्ययोः ।
ब्रुवन्नपि कथां पुण्यां तत्र कीट त्वमेष्यसि ॥ ६ ॥
गुणभूतानि भूतानि तत्र त्वमुपभोक्ष्यसे ।
तत्र तेऽहं विनेष्यामि ब्रह्मत्वं यत्र वैष्यसि ॥ ७ ॥
स तथेति प्रतिश्रुत्य कीटो वर्त्मन्यतिष्ठत ।
शकटो व्रजंश्च सुमहानागतश्च यदृच्छया ॥ ८ ॥
चक्राक्रमेण भिन्नश्च कीटः प्राणान्मुमोच ह ।
सम्भूतः क्षत्रियकुले प्रसादादमितौजसः ॥ ९ ॥
तमृषिं द्रष्टुमगमत्सर्वास्वन्यासु योनिषु ।
श्वाविद्गोधावराहाणां तथैव मृगपक्षिणाम् ॥ १० ॥
श्वपाकशूद्रवैश्यानां क्षत्रियाणां च योनिषु ।
स कीट एवमाभाष्य ऋषिणा सत्यवादिना ।

कि तू अपने किये हुए पापकर्मोंसे कीटानुकीट हुआ है, यदि धर्मको माने, तो फिर धर्म प्राप्त होगा। देव और तिर्यक् प्रभृति सब कोई कर्मभूमिमें अपने किये हुए पाप पुण्यका फल भोग किया करते हैं। मनुष्योंका धर्म और गुण कामका हेतु हुआ करता है। वचन, बुद्धि, हाथ, पांवसे रहित विपश्चित् अथवा मूर्ख जो जीवित रहते हैं, उनका लोग उपहास करते हैं; श्रेष्ठ विप्र जीवित रहके सूर्यचन्द्रमाकी पूजा करते और उत्तम कथा कहा करते हैं। (१—६)

हे कीट! इसलिये मैं तुझे उस ही ब्राह्मणयोनिमें प्रेरण करूंगा, तू ब्राह्मणत्व पानेसे कर्मोंका फल भोगेगा और सब जीवोंको परित्याग करेगा, तब मैं तुझे परब्रह्ममें लीन करूंगा अर्थात् तुझे ब्रह्मविद्या दान करूंगा। वह कीट 'ऐसा ही हो,' यह वचन कहके मार्गमें ही स्थित हुआ, इतने ही समयमें यदृच्छाक्रमसे बृहत् शकटसमूह आ पहुंचा, पहियेके नीचे दबकर उस कीटने उसी समय प्राण परित्याग किया, अत्यन्त तेजस्वी व्यासदेवकी कृपासे वह कीट अनेक योनियोंमें जन्म लेकर अन्तमें क्षत्रियवंशमें उत्पन्न हुआ; वह श्वावित्, गोधा, वराह, मृग, पक्षी, चाण्डाल, शूद्र और क्रमसे वैश्यजातीय होकर जब

प्रतिस्मृत्याथ जग्राह पादौ मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥ ११ ॥

कीटक उवाच- इदं तदतुलं स्थानमीप्सितं दशभिर्गुणैः ।
यदहं प्राप्य कीटत्वमागतो राजपुत्रताम् ॥ १२ ॥
वहन्ति मामतिबला कुञ्जरा हेममालिनः ।
स्यन्दनेषु च काम्बोजा युक्ताः परमवाजिनः ॥ १३ ॥
उष्ट्राश्वतरयुक्तानि यानानि च वहन्ति माम् ।
सबान्धवः सहामात्यश्चाश्नामि पिशितौदनम् ॥ १४ ॥
गृहेषु स्वनिवासेषु सुखेषु शयनेषु च ।
वरार्हेषु महाभाग स्वपामि च सुपूजितः ॥ १५ ॥
सर्वेष्वपररात्रेषु सूतमागधबन्दिनः ।
स्तुवन्ति मां यथा देवा महेन्द्रं प्रियवादिनः ॥ १६ ॥
प्रसादात्सत्यसन्धस्य भवतोऽमिततेजसः ।
यदहं कीटतां प्राप्य संप्राप्तो राजपुत्रताम् ॥ १७ ॥
नमस्तेऽस्तु महाप्राज्ञ किं करोमि प्रशाधि माम् ।
त्वत्तपोबलनिर्दिष्टमिदं ह्यधिगतं मया ॥ १८ ॥

जिस योनिमें जन्मता था, तभी उस ऋषिसत्तमका दर्शन करनेके लिये जाता था। (९—११)

वह कीट उस सत्यवादी ऋषिके द्वारा इसी प्रकार उपदिष्ट होके प्रतिजन्ममें ही स्मरण करते हुए दोनों हाथ जोडके सिरसे उनका चरण छूता था। अनन्तर वह कीट क्षत्रिय होके बोला, मैंने दशजन्ममें यह अभिलषित अतुल पद पाया है, क्यों कि मैं कीटत्व प्राप्त करके राजपुत्र हुआ हूं; मैं सुवर्णमालासे युक्त अत्यन्त बलवान हाथियोंपर चढता हूं। रथमें जुते हुए काम्बोज देशीय घोडे, ऊंट और अश्वतरी मुझे ले चलनेके लिये तय्यार हैं; मैं बान्धवों और सेवकोंके सहित पलान्न भक्षण करता हूं। हे महाराज! मैं महामूल्यवान् शय्यापर उत्तम रीतिसे पूजित होकर सुखसे सोता हूं। (११-१५)

जिस प्रकार देववृन्द इन्द्रकी स्तुति करते हैं, वैसे ही रात बीतनेपर सूत, मागध और बन्दीजन मेरी स्तुति किया करते हैं। आप अत्यन्त तेजस्वी और सत्यसन्ध हैं, आपकी कृपासे मैंने कीट होके भी राजपुत्रत्व पाया है। हे महाप्राज्ञ! इसलिये मैं आपको प्रणाम करता हूं, कहिये कौनसा कार्य करूं? मैंने आपके तपोबलके सहारे यह निर्दिष्ट

व्यास उवाच- अर्चितोऽहं त्वया राजन् वाग्भिरद्य यदृच्छया।
अद्य ते कीटतां प्राप्य स्मृतिर्जाता जुगुप्सिता ॥ १९ ॥
न तु नाशोऽस्ति पापस्य यत्त्वयोपचितं पुरा।
शूद्रेणार्थप्रधानेन नृशंसेनाततायिना ॥ २० ॥
मम ते दर्शनं प्राप्तं तच्च वै सुकृतं त्वया।
तिर्यग्योनौ स्म जातेन मम चाभ्यर्चनात्तथा ॥ २१ ॥
इतस्त्वं राजपुत्रत्वाद्ब्राह्मण्यं समवाप्स्यसि।
गोब्राह्मणकृते प्राणान् हुत्वाऽऽत्मानं रणाजिरे ॥२२॥
राजपुत्र सुखं प्राप्य क्रतूंश्चैवाप्तदक्षिणान्।
अथ मोदिष्यसे स्वर्गे ब्रह्मभूतोऽव्ययः सुखी ॥ २३ ॥
तिर्यग्योन्याः शूद्रतामभ्युपैति शूद्रो वैश्यं क्षत्रियत्वं च वैश्यः।
वृत्तश्लाघी क्षत्रियो ब्राह्मणत्वं स्वर्गं पुण्यं ब्राह्मणः साधुवृत्तः ॥ २४ ॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे कीटोपाख्याने अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥ [५७०२]
भीष्म उवाच- क्षत्रधर्ममनुप्राप्तः स्मरन्नेव च वीर्यवान्।
त्यक्त्वा स कीटतां राजंश्चचार विपुलं तपः ॥ १ ॥

पद पाया है। (१६—१८)

व्यासदेव बोले, हे राजन्! आज मैं तुम्हारे यदृच्छावचनसे पूजित हुआ, कीटत्वको प्राप्त होके भी तुम्हें इस समय जुगुप्सित स्मृतिशक्ति उत्पन्न हुई है। पहले तुमने अत्यन्त आततायी धनी शूद्र होके जिन पापोंको किया था, उसका विनाश नहीं है। तुमने जो तिर्यक्योनिमें जन्म लेकर मेरी पूजा की थी, उस ही सुकृतके सहारे मेरा दर्शन पाया है। तुम रण-भूमिमें ब्राह्मणके निमित्त अपना प्राण देके राजपुत्रत्व त्यागके ब्राह्मणत्व पाओगे। हे राजपुत्र! तुम सहजमें ही आप्तदक्षिण यज्ञ पूरा करके स्वर्गलोकमें सुखी तथा अव्यय ब्रह्ममय होके प्रमु-दित होगे। तिर्यक्योनिसे शूद्रत्व प्राप्त होता है, शूद्रत्वसे वैश्यत्व और वैश्य-त्वसे क्षत्रियत्व प्राप्त हुआ करता है, साधुवृत्त क्षत्रिय ब्राह्मणत्व पाते और सत्स्वभाव सुशील ब्राह्मणोंको स्वर्गलोक मिलता है। (१९—२४)

अनुशासनपर्वमें ११८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें ११९ अध्याय।

भीष्म बोले, हे महाराज! उस वीर्यवान कीटने क्षत्रियत्व पाके पूर्व

तस्य धर्मार्थविदुषो दृष्ट्वा तद्विपुलं तपः।
आजगाम द्विजश्रेष्ठः कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ २ ॥

व्यास उवाच- क्षात्रं देवव्रतं कीट भूतानां परिपालनम्।
क्षात्रं देवव्रतं ध्यायंस्ततो विप्रत्वमेष्यसि ॥ ३ ॥
पाहि सर्वाः प्रजाः सम्यक् शुभाशुभविदात्मवान्।
शुभैः संविभजन्कामैरशुभानां च पावनैः ॥ ४ ॥
आत्मवान्भव सुप्रीतः स्वधर्माचरणे रतः।
क्षात्रीं तनुं समुत्सृज्य ततो विप्रत्वमेष्यसि ॥ ५ ॥

भीष्म उवाच- सोऽप्यरण्यमनुप्राप्य पुनरेव युधिष्ठिर।
महर्षेर्वचनं श्रुत्वा प्रजा धर्मेण पाल्य च ॥ ६ ॥
अचिरेणैव कालेन कीटः पार्थिवसत्तम।
प्रजापालनधर्मेण प्रेत्य विप्रत्वमागतः ॥ ७ ॥
ततस्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा पुनरेव महायशाः।
आजगाम महाप्राज्ञः कृष्णद्वैपायनस्तदा ॥ ८ ॥

व्यास उवाच- भो भो ब्रह्मर्षभ श्रीमन्मा व्यथिष्ठाः कथंचन।
शुभकृच्छुभयोनीषु पापकृत्पापयोनिषु ॥ ९ ॥

वृत्तान्त स्मरण करते हुए विपुल तपस्या की थी; उस धर्मार्थवेत्ताकी वैसी महत् तपस्या देखकर उस समय कृष्णद्वैपायन उसके समीप गये। (१—२)

व्यासदेव बोले, हे कीट! क्षात्रधर्म सब प्राणियोंका प्रतिपालन करनेसे देवव्रत है, इसलिये क्षत्रियधर्मको देवव्रतरूपसे ध्यान करते हुए मरनेपर तुम्हें विप्रत्व प्राप्त होगा। तुम शुभाशुभवेत्ता और आत्मवान् होकर पूरी रीतिसे प्रजाका पालन करो। पवित्र शुभकार्योंसे अशुभ कर्मोंका संविभाग करो; स्वधर्माचरणमें रत रहके आत्मवान् तथा प्रसन्न रहो, अनन्तर क्षत्रियशरीर त्यागनेपर ब्राह्मणत्व पाओगे। (३—५)

भीष्म बोले, हे नरसत्तम युधिष्ठिर! वह कीट महर्षि कृष्णद्वैपायनका वचन सुनके धर्मपूर्वक प्रजा पालन करके अन्तमें वनवासी हुआ और प्रजा पालन करनेसे परलोकमें जाकर ब्राह्मणत्व पाया। अनन्तर महायशस्वी महाप्राज्ञ कृष्णद्वैपायन मुनि उस समय उसे ब्राह्मण देखकर फिर उसके निकट गये। (६—८)

वेदव्यास बोले, हे श्रीमान् विप्रवर!

उपपद्यन्ति धर्मज्ञ यथा पापफलोपगम् ।
तस्मान्मृत्युभयात्कीट मा व्यथिष्ठाः कथंचन ॥ १० ॥
धर्मलोपभयं ते स्यात्तस्माद्धर्मं चरोत्तमम् ।
कीट उवाच- सुखात्सुखतरं प्राप्तो भगवंस्त्वत्कृते ह्यहम् ॥ ११ ॥
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य पाप्मा नष्ट इहाद्य मे ।
भीष्म उवाच- भगवद्वचनात्कीटो ब्राह्मण्यं प्राप्य दुर्लभम् ॥ १२ ॥
अकरोत्पृथिवीं राजन्यज्ञयूपशताङ्किताम् ।
ततः सालोक्यमगमद्ब्रह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥ १३ ॥
अवाप च परं कीटः पार्थ ब्रह्म सनातनम् ।
स्वकर्मफलनिर्वृत्तं व्यासस्य वचनात्तदा ॥ १४ ॥
तेऽपि यस्मात्प्रभावेण हताः क्षत्रियपुङ्गवाः ।
संप्राप्तास्ते गतिं पुण्यां तस्मान्मा शोच पुत्रक ॥१५॥ [८७१७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे कीटोपाख्याने एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

युधिष्ठिर उवाच- विद्यातपोभ्यां दानाच्च किमेतेषां विशिष्यते ।
पृच्छामि त्वां सतां श्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

तुमने शुभयोनिमें शुभकर्म किया और पापयोनिमें पापाचरण किया है, तथापि तुम किसी प्रकार व्यथित न होना; पाप-पुण्यके अनुसार फल प्राप्त होगा। अतः तुझे मृत्युभयसे व्यथित होना योग्य नहीं है। यदि तुम्हें धर्मलोपका भय हो, तो उत्तम धर्माचरण करो। (९—११)

कीट बोला, हे भगवन्! आपकी कृपासेही मैंने सुखसे भी अधिक सुख पाया है; धर्ममूल सम्पत्तियोंको पानेसे अब मेरा पाप नष्ट हुआ है। (११-१२)

भीष्म बोले, हे महाराज! कीटने भगवान् व्यासदेवके वचनानुसार दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाके पृथ्वीको सैकडों यज्ञयूपोंसे अङ्कित किया। हे पार्थ! अनन्तर उस ब्रह्मवित्तम कीटने ब्रह्मसालोक्य पाके व्यासदेवके वाक्यके अनुसार उस समय स्वकर्मफलनिर्वृत्त सनातन ब्रह्म-पद पाया। हे तात! तुम्हारे प्रभावसे जो सब क्षत्रिय युद्धमें मरे हैं, उन्होंनेभी पवित्र गति पाई है, इसलिये तुम शोक मत करो। (१२—१५)

अनुशासनपर्वमें ११९ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १२० अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे साधुश्रेष्ठ पितामह! विद्या, तपस्या और दान, इन तीनोंके

भीष्म उवाच- अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
मैत्रेयस्य च संवादं कृष्णद्वैपायनस्य च ॥ २ ॥
कृष्णद्वैपायनो राजन्नज्ञातचरितं चरन् ।
वाराणस्यामुपातिष्ठन्मैत्रेयं स्वैरिणीकुले ॥ ३ ॥
तमुपस्थितमासीनं ज्ञात्वा स मुनिसत्तमम् ।
अर्चित्वा भोजयामास मैत्रेयोऽशनमुत्तमम् ॥ ४ ॥
तदन्नमुत्तमं भुक्त्वा गुणवत्सार्वकामिकम् ।
प्रतिष्ठमानोऽस्मयत प्रीतः कृष्णो महामनाः ॥ ५ ॥
तमुत्स्मयन्तं संप्रेक्ष्य मैत्रेयः कृष्णमब्रवीत् ।
कारणं ब्रूहि धर्मात्मन्व्यस्मयिष्ठाः कुतश्च ते ॥ ६ ॥
तपस्विनो धृतिमतः प्रमोदः समुपागतः ।
एतत्पृच्छामि ते विद्वन्नभिवाद्य प्रणम्य च ।
आत्मनश्च तपोभाग्यं महाभाग्यं तवेह च ॥ ७ ॥
पृथगाचरतस्तात पृथगात्मसुखात्मनोः ।
अल्पान्तरमहं मन्ये विशिष्टमपि चान्वयात् ॥ ८ ॥

बीच श्रेष्ठ क्या है ? इस विषयको आप मेरे समीप वर्णन करिये । (१)

भीष्म बोले, इस विषयमें प्राचीन लोग मैत्रेय और कृष्णद्वैपायनके संवादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं । हे महाराज ! कृष्णद्वैपायन मुनि अज्ञातरूपसे विचरते हुए काशीपुरीमें मुनिमण्डलीके बीच मैत्रेयके समीप उपस्थित हुए। मुनिसत्तम मैत्रेयने उन्हें समागत और समासीन जानकर उनकी पूजा की और उत्तम भोजन कराया । महामना वेदव्यास मुनि उस श्रेष्ठ, सुगन्धियुक्त, सार्वकामिक, उत्तम अन्न भोजन करके प्रस्थान करते हुए प्रसन्न तथा विस्मित हुए । मैत्रेय ऋषि उस कृष्णद्वैपायन मुनिको विस्मययुक्त जानके बोले, हे धर्मात्मन् ! आप किस निमित्त विस्मित हुए ? उसका कारण कहिये । (२—६)

हे विद्वन् ! आप तपस्वी और धृतिमान् हैं, तब आपको किस लिये प्रमोद हुआ ? मैं आपको प्रणाम करके पूछता हूं, कि यह आपका तपोभाग्य अथवा सुखभाग्य है ? क्यों कि आश्चर्यदर्शनके अतिरिक्त विस्मय नहीं होता । उपाधिपरिच्छिन्न जीव और अनुपाधिक ब्रह्म पृथक् आचरण करनेपर भी जीवन्मुक्त और मुक्तामुक्त उभयात्मक आ-

व्यास उवाच- अतिच्छेदातिवादाभ्यां स्मयोऽयं समुपागतः।
असत्यं वेदवचनं कस्माद्वेदोऽनृतं वदेत् ॥ ९ ॥
त्रीण्येव तु पदान्याहुः पुरुषस्योत्तमं व्रतम्।
न द्रुह्येच्चैव दद्याच्च सत्यं चैव परं वदेत् ॥ १० ॥
इति वेदोक्तमृषिभिः पुरस्तात्परिकल्पितम्।
इदानीं चैव नः कृत्यं पुरस्ताच्च परिश्रुतम् ॥ ११ ॥
अल्पोऽपि तादृशो दायो भवत्युत महाफलः।
तृषिताय च ते दत्तं हृदयेनानसूयता ॥ १२ ॥
तृषितस्तृषिताय त्वं दत्त्वैतदशनं मम।
अजैषीर्महतो लोकान्महायज्ञैरिव प्रभो ॥ १३ ॥
ततो दानपवित्रेण प्रीतोऽस्मि तपसैव च।
पुण्यस्यैव हि ते सत्त्वं पुण्यस्यैव च दर्शनम् ॥ १४ ॥
पुण्यस्यैवाभिगन्धस्ते मन्ये कर्मविधानजम्।
अधिकं मार्जनात्तात तथा चैवानुलेपनात् ॥ १५ ॥

रसाकी अपेक्षा मैं आत्माको अल्पान्तर जानता हूं, क्यों कि आप मेरा भाग्य देखकर विस्मित हुए हैं; इसलिये मैं आपकी अपेक्षा आत्माको अल्पान्तर रूपसे अनुमान करता हूं और मित्रवंशसे आपको विशिष्ट समझता हूं। (७—८)

व्यासदेव बोले, मशकके समुद्र शोषणसदृश अत्यन्त अशक्य विषय अतिच्छेद और अतिवादके द्वारा यह विसय पूरी रीतिसे उत्पन्न हुआ है, यह कैसे सम्भव हो सकता है, कि वेदवचन सत्य नहीं है? वेद किसलिये मिथ्या कहेगा? पुरुषके इन तीनों विषयोंको पण्डित लोग उत्तम व्रत कहते हैं, किसीसे द्रोह न करना, दान और सत्य वचन कहना। ऋषियोंके द्वारा यह वेदोक्त विधि पहले ही परिकल्पित हुई है, इस समय इसे ही करना चाहिये और पहले भी ऐसा ही सुना गया था। (९-११)

अवश्य कर्त्तव्य दान अल्प होनेपर भी महाफलजनक हुआ करता है। तुमने असूयारहित हृदयसे प्यासे पुरुषको जल दान किया है, तुमने स्वयं तृषित होके भी मुझे प्यासा जानकर यह अन्न दान किया है, इसलिये महायज्ञके सहारे जिन लोकोंको जय किया जाता है, तुमने इस अन्नके सहारे उन महत् लोकोंको जय किया है, इसी लिये मैं तुम्हारे पवित्र दान और तपस्यासे विस्मित हुआ हूं। तुम्हारे सत्त्व पुण्यसे

शुभं सर्वपवित्रेभ्यो दानमेव परं द्विज ।
नो चेत्सर्वपवित्रेभ्यो दानमेव परं भवेत् ॥ १६ ॥
यानीमान्युत्तमानीह वेदोक्तानि प्रशंससि ।
तेषां श्रेष्ठतरं दानमिति मे नात्र संशयः ॥ १७ ॥
दानकृद्भिः कृतः पन्था येन यान्ति मनीषिणः ।
ते हि प्राणस्य दातारस्तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः ॥ १८ ॥
यथा वेदाः स्वधीताश्च यथा चेन्द्रियसंयमः ।
सर्वत्यागो यथा चेह तथा दानमनुत्तमम् ॥ १९ ॥
त्वं हि तात महाबुद्धे सुखमेष्यसि शोभनम् ।
सुखात्सुखतरप्राप्तिमाप्नुते मतिमान्नरः ॥ २० ॥
तन्नः प्रत्यक्षमेवेदमुपलभ्यमसंशयम् ।
श्रीमन्तः प्राप्नुवन्त्यर्थान्दानं यज्ञं तथा सुखम् ॥२१॥
सुखादेव परं दुःखं दुःखादप्यपरं सुखम् ।
दृश्यते हि महाप्राज्ञ नियतं वै स्वभावतः ॥ २२ ॥
त्रिविधानीह वृत्तानि नरस्याहुर्मनीषिणः ।

तुम्हारा दर्शनभी पुण्यसापेक्ष है,तुम्हारा विधानज कर्म भी पुण्यगन्धयुक्त मालूम होता है । हे तात ! तीर्थ और वेदव्रत समाप्त करनेकी अपेक्षा तुम्हारे दर्शनादि अत्यन्त पवित्र हैं। (१२—१५)

हे द्विज ! सब पवित्र विषयोंके बीच दान ही परम शुभ है, यदि सब पवित्र विषयोंसे दान श्रेष्ठ न होवे, तब तुम जिन उत्तम वेदोक्त विधानोंकी प्रशंसा करते हो, उन सबसे दान ही उत्तम है, इस विषयमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। दातृगणने जो मार्ग बनाया है, मनीषी लोग उस ही मार्गसे गमन किया करते हैं, वेही प्राणदाता हैं, उन दातागणमें ही सबके धर्म प्रतिष्ठित हैं। उत्तम रीतिसे पढा हुआ वेद जिस प्रकार श्रेष्ठ है, इन्द्रिय संयम और सर्वत्याग जैसा विशिष्ट है, दान भी उसी भांति अत्यन्त श्रेष्ठ है।(१६-१९)

हे तात ! तुम सहजमें ही उत्तम सुख पावोगे, बुद्धिमान् मनुष्य सुखसे भी अधिक सुख पाता है । हमारे प्रत्यक्षमें निःसन्देह इसके मिलनेपर अर्थ, दान और समस्त यज्ञोंके फल श्रीमान् पुरुषको सुखसे प्राप्त होते हैं । हे महाप्राज्ञ! सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके बाद सुख सदा स्वाभाविकही दिखाई देते हैं । (२०—२२)

पुण्यमन्यत्पापमन्यन्न पुण्यं न च पापकम् ॥ २३ ॥
न वृत्तं मन्यते तस्य मन्यते न च पातकम् ।
तथा स्वकर्मनिर्वृत्तं न पुण्यं न च पापकम् ॥ २४ ॥
यज्ञदानतपःशीला नरा वै पुण्यकर्मिणः ।
येऽभिद्रुह्यन्ति भूतानि ते वै पापकृतो जनाः ॥ २५ ॥
द्रव्याण्याददते चैव दुःखं यान्ति पतन्ति च ।
ततोऽन्यत्कर्म यत्किंचिन्न पुण्यं न च पातकम् ॥ २६॥
रमस्वैधस्व मोदस्व देहि चैव यजस्व च ।
न त्वामभिभविष्यन्ति वैद्या न च तपस्विनः॥ २७॥ [५७४४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे मैत्रेयभिक्षायां विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

भीष्म उवाच- एवमुक्तः प्रत्युवाच मैत्रेयः कर्मपूजकः ।
अत्यन्तश्रीमति कुले जातः प्राज्ञो बहुश्रुतः ॥ १ ॥
मैत्रेय उवाच— असंशयं महाप्राज्ञ यथैवात्थ तथैव तत् ।
अनुज्ञातश्च भवता किंचिद् ब्रूयामहं विभो ॥ २ ॥
व्यास उवाच— यद्यदिच्छसि मैत्रेय यावद्यावद्यथा यथा ।

पण्डित लोग मनुष्योंके तीन प्रकारके वृत्त वर्णन करते हैं; पुण्य, पाप और पुण्यपातक; इन तीनोंके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, स्वकर्मसे निर्वृत्त पुण्य पापकी भांति ब्रह्मनिष्ठ पुरुषका पुण्यपाप नहीं गिना जाता। यज्ञ, दान तथा तपस्या करनेवाले मनुष्य ही पुण्यात्मा हैं और जो लोग जीवोंके विषयमें द्रोह करते, वेही पापी हैं; जो दूसरेका द्रव्य लेते, वे दुःखी तथा पतित होते हैं; इसके अतिरिक्त अन्य जो सब कर्म हैं, वे न पुण्य हैं और न पापही हैं। क्रीडा करो, वृद्धिवान् हो, आनन्दित रहो, दान और यज्ञ करो, तो वैद्य तथा तपस्वीवृन्द तुम्हें अभिभव करनेमें समर्थ न होंगे। (२३—२७)

अनुशासनपर्वमें १२० अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १२१ अध्याय।

भीष्म बोले, अत्यन्त श्रीसम्पन्न कुलमें उत्पन्न बुद्धिमान,बहुदर्शी, कर्मकी प्रशंसा करनेवाले मैत्रेय ऋषिने ऐसा वचन सुनके उत्तर दिया। (१)

मैत्रेय बोले, हे महाप्राज्ञ! आपने जैसा कहा, वह निःसन्देह वैसा ही है। हे विभु! परन्तु मैं आपकी अनुमतिसे कुछ कहनेकी इच्छा करता हूं। (२)

ब्रूहि तत्त्वं महाप्राज्ञ शुश्रूषे वचनं तव ॥ ३ ॥
मैत्रेय उवाच— निर्दोषं निर्मलं चैवं वचनं दानसंहितम् ।
विद्यातपोभ्यां हि भवान्भावितात्मा न संशयः ॥४॥
भवतो भावितात्मत्वाल्लाभोऽयं सुमहान्मम ।
भूयो बुद्ध्यानुपश्यामि सुसमृद्धतपा इव ॥ ५ ॥
अपि नो दर्शनादेव भवतोऽभ्युदयो भवेत् ।
मन्ये भवत्प्रसादोऽयं तद्धि कर्म स्वभावतः ॥ ६ ॥
तपः श्रुतं च योनिश्चाप्येतद्ब्राह्मण्यकारणम् ।
त्रिभिर्गुणैः समुदितस्ततो भवति वै द्विजः ॥ ७ ॥
अस्मिंस्तृप्ते च तृप्यन्ते पितरो दैवतानि च ।
न हि श्रुतवतां किंचिदधिकं ब्राह्मणादृते ॥ ८ ॥
अन्धं स्यात्तम एवेदं न प्रज्ञायेत किंचन ।
चातुर्वर्ण्यं न वर्तेत धर्माधर्मावृतानृते ॥ ९ ॥
यथा हि सुलभे क्षेत्रे फलं विन्दति मानवः ।
एवं दत्त्वा श्रुतवति फलं दाता समश्नुते ॥ १० ॥

व्यासदेव बोले, हे महाप्राज्ञ मैत्रेय! आप जिस विषयको जहांतक कहनेकी इच्छा करते हैं, उसे यथार्थ रीतिसे कहिये, मैं तुम्हारा वचन सुननेकी अभिलाष करता हूं। (३)

मैत्रेय बोले, दानसम्बन्धीय वचन विद्या और तपस्यासे भी निर्मल है, आपने निःसन्देह आत्मज्ञान लाभ किया है, आपको आत्मज्ञान निबन्धनसे महत् लाभ हुआ है, मैं फिर सुसमृद्ध तपस्यायुक्तकी भांति न्यायबुद्धिसे आलोचना करके देखता हूं, आपके दर्शनसे हम लोगोंका अभ्युदय होता है। ये जो स्वाभाविक कार्य होते हैं, उसे मैं आपकी कृपासे ही हुआ समझता हूं। तपस्या, शास्त्रज्ञान और योनि, ये सभी ब्राह्मणत्वकी हेतु हैं, इन तीनों गुणोंसे समुदित होनेपर पुरुष द्विज हुआ करता है। (४—७)

ब्राह्मणोंके तृप्त होनेपर पितर और देववृन्द तृप्त होते हैं, शास्त्रज्ञानयुक्त ब्राह्मणसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है; अज्ञ ही तपस्वरूप है, अज्ञके बिना कुछ भी मालूम नहीं होता, चारों वर्णोंके विधान, धर्माधर्म और सत्य-मिथ्या कुछ भी नहीं रहते। जैसे मनुष्यको उत्तम रीतिसे जुते हुए खेतमें फल प्राप्त होते हैं, वैसे ही दाता शास्त्र-

ब्राह्मणश्चेन्न विन्देत श्रुतवृत्तोपसंहितः ।
प्रतिग्रहीता दानस्य मोघं स्याद्धनिनां धनम् ॥ ११ ॥
अदन्नविद्वान्हन्त्यन्नमद्यमानं च हन्ति तम् ।
तं चान्नं पाति यश्चान्नं स हन्ता हन्यतेऽबुधः ॥ १२ ॥
प्रभुर्ह्यन्नमदन्विद्वान्पुनर्जनयतीश्वरः ।
स चान्नाज्जायते तस्मात्सूक्ष्म एष व्यतिक्रमः ॥ १३ ॥
यदेव ददतः पुण्यं तदेव प्रतिगृह्णतः ।
न ह्येकचक्रं वर्तेत इत्येवमृषयो विदुः ॥ १४ ॥
यत्र वै ब्राह्मणाः सन्ति श्रुतवृत्तोपसंहिताः ।
तत्र दानफलं पुण्यमिह चामुत्र चाश्नुते ॥ १५ ॥
ये योनिशुद्धाः सततं तपस्यभिरता भृशम् ।
दानाध्ययनसंपन्नास्ते वै पूज्यतमाः सदा ॥ १६ ॥
तैर्हि सद्भिः कृतः पन्थास्तेन यातो न मुह्यते ।
ते हि स्वर्गस्य नेतारो यज्ञवाहाः सनातनाः ॥ १७ ॥ [५७६१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे मैत्रेयभिक्षायां एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

सम्पन्न ब्राह्मणोंको दान करनेसे उसका फल भोग किया करता है। (८-१०)

शास्त्रज्ञान और सुचरित्रयुक्त दानका प्रतिग्रहीता ब्राह्मण यदि विद्यमान न रहे, तो धनियोंका धन निरर्थक होता है। अविद्वान् पुरुषके अन्नभक्षण करनेसे अन्नका नाश होता है। और अद्यमान अन्न भी उसे नष्ट करता है। जो अन्नकी रक्षा करता है, उसकी अन्न रक्षा करता है। जो अन्नको नष्ट करता है, वह मूर्ख पुरुष नष्ट होता है। विद्वान् पुरुष ही अन्न भोजन करनेके लिये योग्य हैं, वेही ईश्वर होके अन्न उत्पन्न करते और अन्नसे ईश्वरको उत्पन्न करते हैं; यह विषय अत्यन्त सूक्ष्म है। (११-१३)

दाता को जैसा पुण्य होता है, प्रतिग्रहीताको भी उस ही प्रकार पुण्य हुआ करता है; ऋषियोंने ऐसा कहा है, कि दाता और प्रतिग्रहीता दोनों ही लोकतन्त्र निभाते हैं। शास्त्रज्ञान और सुचरित्रयुक्त ब्राह्मण जिस स्थानमें निवास करते हैं, उसी स्थानमें पवित्र दानका फल इस लोक और परलोकमें भोग किया जाता है। जो लोग शुद्ध- योनिमें उत्पन्न होके सदा तपस्या कर- नेमें रत रहते हैं और जो लोग दान

महाभारत।

आर्योंके विजयका प्राचीन इतिहास

इस समय तक छपकर तैयार पर्व

पर्वका नाम	अंक	कुल अंक	पृष्ठसंख्या	मूल्य	डा. व्यय
१ आदिपर्व	[१ से ११]	११	११२५	६) छः	रु १)
२ सभापर्व	[१२ " १५]	४	३५६	२) दो	।-)
३ वनपर्व	[१६ " ३०]	१५	१५३८	८) आठ	१।)
४ विराटपर्व	[३१ " ३३]	३	३०६	१॥) डेढ	।-)
५ उद्योगपर्व	[३४ " ४२]	९	९५३	५) पांच	१)
६ भीष्मपर्व	[४३ " ५०]	८	८००	४) चार	॥।)
७ द्रोणपर्व	[५१ " ६४]	१४	१३६४	७॥) साडेसात	१।=)
८ कर्णपर्व	[६५ " ७०]	६	६३७	३॥) साढेतीन	,, ॥।)
९ शल्यपर्व	[७१ " ७४]	४	४३५	२॥) अढाइ	" ।=)
१० सौप्तिकपर्व	[७५]	१	१०४	॥।) बारह आ.	।)
११ स्त्रीपर्व	[७६]	१	१०८	॥।) "	।)
१२ शान्तिपर्व ।					
१ राजधर्मपर्व	[७७—८३]	७	६९४	३॥) साढे तीन	॥)
२ आपद्धर्मपर्व	[८४—८५]	२	२३२	१।) सवा	।-)
३ मोक्षधर्मपर्व	[८६—९६]	११	११००	६) छः	१)
				कुल मूल्य ५२।)	कुल डा. व्य. ९।=)

सूचना— ये पर्व छप कर तैयार हैं। अतिशीघ्र मंगवाइये। मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेज देंगे तो आधा डाकव्यय माफ करेंगे; अन्यथा प्रत्येक रु० के मूल्यके ग्रंथको तीन आने डाकव्यय मूल्यके अलावा देना होगा। मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्री० दा० सातवळेकर, भारतमुद्रणालय, औंध जि० सातारा.

REGISTERED NO. B. 1819

अङ्क १०५ ॥ ॐ ॥ [अनुशासनपर्व १]

महाभारत ।

भाषा-भाष्य-समेत

संपादक- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)

१२अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी.पी. से ७) विदेशके लिये ८)

भीष्म उवाच— एवमुक्तः स भगवान्मैत्रेयं प्रत्यभाषत ।
दिष्ट्यैवं त्वं विजानासि दिष्ट्या ते बुद्धिरीदृशी ॥ १ ॥
लोको ह्यार्यगुणानेव भूयिष्ठं तु प्रशंसति ।
रूपमानवयोमानश्रीमानाश्चाप्यसंशयम् ॥ २ ॥
दिष्ट्या नाभिभवन्ति त्वां दैवस्तेऽयमनुग्रहः ।
यत्ते भृशतरं दानाद्वर्तयिष्यामि तच्छृणु ॥ ३ ॥
यानीहागमशास्त्राणि याश्च काश्चित्प्रवृत्तयः ।
तानि वेदं पुरस्कृत्य प्रवृत्तानि यथाक्रमम् ॥ ४ ॥
अहं दानं प्रशंसामि भवानपि तपःश्रुते ।
तपः पवित्रं वेदस्य तपः स्वर्गस्य साधनम् ॥ ५ ॥
तपसा महदाप्नोति विद्यया चेति नः श्रुतम् ।
तपसैव चापनुदेद्यच्चान्यदपि दुष्कृतम् ॥ ६ ॥
यद्यद्धि किंचित्संधाय पुरुषस्तप्यते तपः ।
सर्वमेतदवाप्नोति विद्यया चेति नः श्रुतम् ॥ ७ ॥

तथा अध्ययनयुक्त हैं, वे सदा पूजने योग्य हैं, उन साधुओंने जो पथ तय्यार किया है, उस ही मार्गसे गमन करनेपर मनुष्य मुग्ध नहीं होता, वे लोग सनातन यज्ञवाह स्वर्गमार्गके प्रदर्शक हैं। (१४—१७)

अनुशासनपर्वमें १२१ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १२२ अध्याय ।

भीष्म बोले, भगवान् वेदव्यासने मैत्रेयका ऐसा वचन सुनके उत्तर दिया; कि भाग्यसे ही तुम ऐसे ज्ञानवान् हुए हो, भाग्यसेही तुम्हारी ऐसी बुद्धि हुई है, लोग आर्य पुरुषोंके गुणोंकी भली भांति प्रशंसा करते हैं। भाग्यसे ही रूपमान, वयोमान और श्रीमानोंने तुम्हें निःसन्देह अभिभव नहीं किया, यह तुम्हारे ऊपर दैवकी कृपा है। दानसे बढके जो कुछ श्रेष्ठवस्तु है, उसे तुम्हारे समीप कहता हूं। इस लोकमें जो सब आगमशास्त्र तथा जो कुछ प्रवृत्ति हैं, वे वेदको अगाडी करके यथारीतिसे प्रवृत्त हुई हैं। (१—४)

मैं दानकी प्रशंसा किया करता हूं, आप तपस्याज्ञानकी प्रशंसा करते हैं; तपस्या ही पवित्र और तपस्या ही वेद तथा स्वर्गकी साधन है। तपस्या और विद्यासे मनुष्यको महत्त्व मिलता है, मैंने ऐसा सुना है, कि जितने दुष्कृत हैं, वे तपस्यासे नष्ट होते हैं। हमने ऐसा सुना है कि जिस किस पदार्थकी

दुरन्वयं दुष्प्रधर्षं दुरापं दुरतिक्रमम् ।
सर्वं वै तपसाऽभ्येति तपो हि बलवत्तरम् ॥ ८ ॥
सुरापोऽसंमतादायी भ्रूणहा गुरुतल्पगः ।
तपसा तरते सर्वमेनसश्च प्रमुच्यते ॥ ९ ॥
सर्वविद्यस्तु चक्षुष्मानपि यादृशतादृशम् ।
तपस्विनं तथैवाहुस्ताभ्यां कार्यं सदा नमः ॥ १० ॥
सर्वे पूज्याः श्रुतधनास्तथैव च तपस्विनः ।
दानप्रदाः सुखं प्रेत्य प्राप्नुवन्तीह च श्रियम् ॥ ११ ॥
इमं च ब्रह्मलोकं च लोकं च बलवत्तरम् ।
अन्नदानैः सुकृतिनः प्रतिपद्यन्ति लौकिकाः ॥ १२ ॥
पूजिताः पूजयन्त्येते मानिता मानयन्ति च ।
स दाता यत्र यत्रैति सर्वतः संप्रणूयते ॥ १३ ॥
अकर्ता चैव कर्ता च लभते यस्य यादृशम् ।
यदि चोर्ध्वं यद्यधो वा स्वांल्लोकानभियास्यति ॥ १४ ॥
प्राप्स्यसि त्वन्नपानानि यानि वाञ्छसि कानिचित् ।

इच्छासे पुरुष तपस्या करता है वह पदार्थ तपस्या और विद्या इनके सहारे पाता है। दुरन्वय, दुष्प्रधर्ष, दुष्प्राप्य और दुरतिक्रम जो कुछ विषय हैं, वे सब तपस्यासे प्राप्त होते हैं, इसलिये तपस्या ही बलवान् है। सुरा पीनेवाले, परधनहारी, भ्रूणहत्यारे और गुरुतल्पगामी मनुष्य तपस्याके सहारे सब पापोंसे उत्तीर्ण होते तथा समस्त पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। (५—९)

जो लोग सर्वज्ञ होकर ज्ञाननेत्रसे सब विषयोंको अवलोकन करते हैं और जो लोग किसी प्रकारके तपस्वी हों, उन्हें नमस्कार करना उचित है। शास्त्रज्ञानयुक्त तथा तपस्वी मनुष्य सबके ही पूजनीय हैं; दान देनेवाले मनुष्य इसलोकमें श्रीसम्पन्न होकर परलोकमें सुख पाते हैं। जो लोग यहांपर सुकृत कर्म करते हैं, वे अन्नदानके सहारे इस लोक, ब्रह्मलोक तथा बलवत्तर लोकोंको पाते हैं। पूजित पुरुष इनकी पूजा करते और सम्मानित मनुष्य सम्मान करते हैं; वे दाता पुरुष जिन स्थानोंमें जाते हैं, उन्हीं स्थानोंमें सब भांतिसे प्रशंसित होते हैं। (१०—१३)

चाहे अकर्त्ता हो, चाहे कर्त्ता ही होवे, जिसका जैसा कर्म है, वह वैसा ही फल पाता है। चाहे ऊर्ध्वमें हो, चाहे

मेधाव्यसि कुले जातः श्रुतवाननृशंसवान् ॥ १५ ॥
कौमारचारी व्रतवान्मैत्रेय निरतो भव ।
एतद् गृहाण प्रथमं प्रशस्तं गृहमेधिनाम् ॥ १६ ॥
यो भर्ता वासितातुष्टो भर्तुस्तुष्टा च वासिता ।
यस्मिन्नेवं कुले सर्वं कल्याणं तत्र वर्तते ॥ १७ ॥
अद्भिर्गात्रान्मलमिव तमोऽग्निप्रभया यथा ।
दानेन तपसा चैव सर्वपापमपोहति ॥ १८ ॥
स्वस्ति प्राप्नुहि मैत्रेय गृहान्साधु व्रजाम्यहम् ।
एतन्मनसि कर्तव्यं श्रेय एवं भविष्यति ॥ १९ ॥
तं प्रणम्याथ मैत्रेयः कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
स्वस्ति प्राप्नोतु भगवानित्युवाच कृताञ्जलिः ॥ २० ॥ [५७८१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे मैत्रेयभिक्षायां द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

युधिष्ठिर उवाच- सत्स्त्रीणां समुदाचारं सर्वधर्मविदां वर ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वत्तस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

अधोभागमें ही होवे, तुम निजलोकमें ही जाओगे और वहां खानेपीनेकी अथवा जो कुछ इच्छा करोगे, उसे ही पाओगे । तुम मेधावी सद्वंशमें उत्पन्न हुए हो, शास्त्रज्ञानसंपन्न, अनृशंसतायुक्त कौमार ब्रह्मचारी और व्रतवान् हो, इसलिये जीवोंके सुहृद बनो; गृहमेधियोंका यह पहला धर्म ग्रहण करो । (१४-१६)

जो पति भार्यासे प्रसन्न रहता है और जो भार्या पतिसे सन्तुष्ट रहती है, जिस कुलमें सब कोई इसी प्रकार हैं, उसी वंशमें कल्याण विद्यमान रहता है। जैसे जलसे शरीर निर्मल रहता है और जिस प्रकार अग्निप्रकाशसे अन्धकार दूर हो जाता है, वैसे ही दान और तपस्यासे सब पाप नष्ट हुआ करते हैं ।

हे मैत्रेय ! तुम्हारी स्वस्ति होवे, मैं निजस्थानपर जाता हूं, इस विषयको मनमें रखना, ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा । अनन्तर मैत्रेयने प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की और हाथ जोडके बोले, कि " आपको स्वस्ति प्राप्त होवे । " (१७-२०)

अनुशासनपर्वमें १२२ अध्याय समाप्त

अनुशासनपर्वमें १२३ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्वधर्मज्ञ पितामह! मैं आपके समीप सती स्त्रियोंके समुदा-

भीष्म उवाच- सर्वज्ञां सर्वतत्त्वज्ञां देवलोके मनस्विनीम् ।
कैकयी सुमना नाम शाण्डिलीं पर्यपृच्छत ॥ २ ॥
केन वृत्तेन कल्याणि समाचारेण केन वा ।
विधूय सर्वपापानि देवलोकं त्वमागता ॥ ३ ॥
हुताशनशिखेव त्वं ज्वलमाना स्वतेजसा ।
सुता ताराधिपस्येव प्रभया दिवमागता ॥ ४ ॥
अरजांसि च वस्त्राणि धारयन्ती गतक्लमा ।
विमानस्था शुभा भासि सहस्रगुणमोजसा ॥ ५ ॥
न त्वमल्पेन तपसा दानेन नियमेन वा ।
इमं लोकमनुप्राप्ता त्वं हि तत्त्वं वदस्व मे ॥ ६ ॥
इति पृष्टा सुमनया मधुरं चारुहासिनी ।
शाण्डिली निभृतं वाक्यं सुमनामिदमब्रवीत् ॥ ७ ॥
नाहं काषायवसना नापि वल्कलधारिणी ।
न च मुण्डा च जटिला भूत्वा देवत्वमागता ॥ ८ ॥
अहितानि च वाक्यानि सर्वाणि परुषाणि च ।
अप्रमत्ता च भर्तारं कदाचिन्नाहमब्रुवम् ॥ ९ ॥

चार सुननेकी इच्छा करता हूं, इसलिये आप मेरे समीप इस विषयको वर्णन करिये। (१)

भीष्म बोले, सुमना नामी कैकय-राजकी पुत्रीने देवलोकमें सर्वज्ञा, सब तत्त्वोंको जाननेवाली मनस्विनी शाण्डिलीसे प्रश्न किया। हे कल्याणि! तुम कैसे चरित्र और कैसे आचारसे देवलोकमें आई हो? तुम अग्निशिखाकी भांति निज तेजसे प्रज्वलित होती हो और ताराधिपकी पुत्रीसदृश अपने प्रभावसे द्युलोकमें आई हो; क्लान्तिहीन होके तुमने रजोरहित श्वेतवस्त्र धारण किया है। हे शुभे! विमानमें रहके अपने तेजके द्वारा तुम्हें सहस्रगुण शोभा प्राप्त हुई है। (२-५)

तुम अल्प तपस्या, दान और नियमके सहारे इस लोकमें नहीं आई हो; इसलिये मुझसे तुम अपना यथार्थ वृत्तान्त कहो। चारुहासिनी शाण्डिलीने सुमनाका ऐसा प्रश्न सुनके मधुर भावसे उत्तर दिया। मैं गेरुआवस्त्र धारण करनेवाली तथा वल्कलधारिणी नहीं हूं, मैंने सिर मुडाने अथवा जटायुक्त होनेसे स्वर्गलोक नहीं पाया; मैंने अप्रमत्त रहके कदाचित् पतिको अहित वा कठोर

देवतानां पितॄणां च ब्राह्मणानां च पूजने ।
अप्रमत्ता सदा युक्ता श्वश्रूश्वशुरवर्तिनी ॥ १० ॥
पैशून्ये न प्रवर्तामि न ममैतन्मनोगतम् ।
अद्वारि न च तिष्ठामि चिरं न कथयामि च ॥ ११ ॥
असद्वा हसितं किंचिदहितं वाऽपि कर्मणा ।
रहस्यमरहस्यं वा न प्रवर्तामि सर्वथा ॥ १२ ॥
कार्यार्थे निर्गतं चापि भर्तारं गृहमागतम् ।
आसनेनोपसंयोज्य पूजयामि समाहिता ॥ १३ ॥
यदन्नं नाभिजानाति यद्भोज्यं नाभिनन्दति ।
भक्ष्यं वा यदि वा लेह्यं तत्सर्वं वर्जयाम्यहम् ॥ १४ ॥
कुटुम्बार्थे समानीतं यत्किंचित्कार्यमेव तु ।
प्रातरुत्थाय तत्सर्वं कारयामि करोमि च ॥ १५ ॥
प्रवासं यदि मे याति भर्ता कार्येण केनचित् ।
मङ्गलैर्बहुभिर्युक्ता भवामि नियता तदा ॥ १६ ॥
अञ्जनं रोचनां चैव स्नानं माल्यानुलेपनम् ।

वचन नहीं कहा है । देवताओं, पितरों और ब्राह्मणोंकी पूजामें सदा सावधान रहती सास-ससुरकी सेवा करनेमें सदा नियुक्त रहती थी । (९-१०)

चुगलीके कार्यमें कभी प्रवृत्त नहीं होती थी और न यह मुझे अभिमत है, घरके बाहर कदापि निवास नहीं करती थी और बहुत समयतक किसीके साथ वार्तालाप भी नहीं करती थी । किसी असत्कर्म, हांसी अथवा कार्यसे अहित किंवा रहस्य वा अरहस्य किसी विषयमें ही सर्वथा प्रवृत्त नहीं होती थी । कार्यके निमित्त घरसे निकलके फिर जब मेरे पति गृहपर आते थे तब उन्हें बैठाके सावधान होकर उनकी पूजा करती थी । मेरे पति जिस अन्नको उत्तम नहीं जानते और जिसका अभिनन्दन नहीं करते थे, वैसी भक्ष्य वा लेह्य वस्तुओं-को मैं परित्याग करती थी । (११-१४)

परिवारके निमित्त जो कुछ वस्तु लाई जाती तथा जो कुछ कर्त्तव्यकार्य रहता था, भोरके समय उठके मैं स्वयं उन कार्योंको करती तथा दूसरोंसे कराती थी; किसी कार्यसे यदि मेरे पति विदेशमें जाते थे, तो उस समय मैं माङ्गलिक सूत्र धारण करके संयत होके रहती थी । पतिके विदेश जानेपर मैं अञ्जन, महावर, स्नान, मालाधारण,

प्रसाधनं च निष्क्रान्ते नाभिनन्दामि भर्तरि ॥ १७ ॥
नोत्थापयामि भर्तारं सुखसुप्तमहं सदा।
आन्तरेष्वपि कार्येषु तेन तुष्यति मे मनः ॥ १८ ॥
नायासयामि भर्तारं कुटुम्बार्थेऽपि सर्वदा।
गुप्तगुह्या सदा चास्मि सुसंमृष्टनिवेशना ॥ १९ ॥
इमं धर्मपथं नारी पालयन्ती समाहिता।
अरुन्धतीव नारीणां स्वर्गलोके महीयते ॥ २० ॥
भीष्म उवाच—एतदाख्याय सा देवी सुमनायै तपस्विनी।
पतिधर्मं महाभागा जगामादर्शनं तदा ॥ २१ ॥
यश्चेदं पाण्डवाख्यानं पठेत्पर्वणि पर्वणि।
स देवलोकं संप्राप्य नन्दने स सुखी वसेत् ॥ २२ ॥ [५८०३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे शाण्डिलीसुमनासंवादे त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥

युधिष्ठिर उवाच-साम्नि चापि प्रदाने च ज्यायः किं भवतो मतम्।
प्रब्रूहि भरतश्रेष्ठ यदत्र व्यतिरिच्यते ॥ १ ॥
भीष्म उवाच-साम्ना प्रसाद्यते कश्चिद्दानेन च तथा परः।

उबटन और प्रसाधनका अभिनन्दन नहीं करती थी। (१५—१७)

पतिके सुखसे शयन करनेपर मैं आन्तरिक कार्य रहनेपर भी उठके उन्हें परित्याग करके नहीं जाती थी, उससे मेरा मन सन्तुष्ट रहता था। कुटुम्बके निमित्त स्वामीको सदा आयासयुक्त नहीं करती थी, गोपनीय विषयोंको गुप्त रखती और सदा हर्षयुक्त रहती थी। जो स्त्री सावधान होकर इस धर्म-पद्धतिको पालन करती है, वह स्त्रियोंके बीच अरुन्धतीकी भांति स्वर्गलोकमें निवास किया करता है। (१८–२०)

भीष्म बोले, महाभागा तपस्विनी शाण्डिली देवी सुमनासे यह पतिधर्म कहके उस समय अन्तर्द्धान हुई। हे पाण्डव! जो लोग प्रतिपर्वमें यह आ-ख्यान पाठ करते हैं, वे देवलोक पाके नन्दनकाननमें सुखी हुआ करते हैं। (२१—२२)

अनुशासनपर्वमें १२३ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १२४ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! साम और दान इन दोनोंमेंसे आपके मतमें कौनसा श्रेष्ठ है? इन दोनोंके बीच जो उत्तम हो, आप उसे ही कहिये (१)

पुरुषप्रकृतिं ज्ञात्वा तयोरेकतरं भजेत् ॥ २ ॥
गुणांस्तु शृणु मे राजन्सान्त्वस्य भरतर्षभ।
दारुणान्यपि भूतानि सान्त्वेनाराधयेद्यथा ॥ ३ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
गृहीत्वा रक्षसा मुक्तो द्विजातिः कानने यथा ॥ ४ ॥
कश्चिद्वाग्बुद्धिसम्पन्नो ब्राह्मणो विजने वने।
गृहीतः कृच्छ्रमापन्नो रक्षसा भक्षयिष्यता ॥ ५ ॥
स बुद्धिश्रुतिसम्पन्नस्तं दृष्ट्वाऽतीव भीषणम्।
सामैवास्मिन्प्रयुयुजे न मुमोह न विव्यथे ॥ ६ ॥
रक्षस्तु वाचं संपूज्य प्रश्नं पप्रच्छ तं द्विजम्।
मोक्ष्यसे ब्रूहि मे प्रश्नं केनास्मि हरिणः कृशः ॥ ७ ॥
मुहूर्तमथ संचिन्त्य ब्राह्मणस्तस्य रक्षसः।
आभिर्गाथाभिरव्यग्रः प्रश्नं प्रतिजगाद ह ॥ ८ ॥
ब्राह्मण उवाच- विदेशस्थो विलोकस्थो विना नूनं सुहृज्जनैः।
विषयानतुलान्भुङ्क्षे तेनासि हरिणः कृशः ॥ ९ ॥

भीष्म बोले, कोई पुरुष सान्त्वना-वाक्यसे प्रसन्न होते और कोई दानसे प्रसन्न हुआ करते हैं; इसलिये पुरुष-प्रकृतिको मालूम करके साम और दान की सेवा करे। हे भरतश्रेष्ठ! प्रचण्ड प्राणी भी जिस प्रकार सान्त्ववादसे आराधना करते हैं, उस सामवादके समस्त गुण मेरे समीप सुनो। (२-३)

किसी वनमें एक ब्राह्मण राक्षस द्वारा पकडे जानेपर जिस प्रकार छूटा था, इस विषयमें प्राचीन लोग उस ही पुरातन इतिहासको कहा करते हैं। किसी वाग्बुद्धियुक्त ब्राह्मणने वनके बीच भूखे राक्षसके द्वारा पकडे जानेपर क्लेश पाया था; उस बुद्धिशक्तिसे युक्त, शास्त्र-ज्ञाननिपुण ब्राह्मणने मुग्ध वा व्यथित न होकर अत्यन्त भयङ्कर राक्षसको देखके उसके विषयमें सान्त्ववाक्य प्रयोग किया। राक्षसने उस ब्राह्मणको वचनसे सम्मानित करके कहा, कि मेरे प्रश्नका उत्तर देनेसे तुम्हें छुटकारा मिलेगा। मैं किसलिये पाण्डुवर्ण तथा कृश हुआ हूं? मेरे इस ही प्रश्नका उत्तर दो। अनन्तर ब्राह्मणने मुहूर्त्त भर सोचके अव्यग्रभावसे इस गाथाके सहारे निशाचरके प्रश्नका उत्तर दिया। (४-८)

ब्राह्मण बोला, तुम विदेशमें रहकर

नूनं मित्राणि ते रक्षः साधूपचरितान्यपि ।
स्वदोषादपरज्यन्ते तेनासि हरिणः कृशः ॥ १० ॥
धनैश्वर्याधिकाः स्तब्धास्त्वद्गुणैः परमावराः ।
अवजानन्ति नूनं त्वां तेनासि हरिणः कृशः ॥ ११ ॥
गुणवान्विगुणानन्यान्नूनं पश्यसि सत्कृतान् ।
प्राज्ञोऽप्राज्ञान्विनीतात्मा तेनासि हरिणः कृशः ॥१२॥
अवृत्त्या क्लिश्यमानोऽपि वृत्त्युपायान्विगर्हयन् ।
माहात्म्याद्व्यथसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ १३ ॥
संपीड्यात्मानमार्यत्वात्त्वया कश्चिदुपस्कृतः ।
जितं त्वां मन्यते साधो तेनासि हरिणः कृशः ॥१४॥
क्लिश्यमानान्विमार्गेषु कामक्रोधावृतात्मनः ।
मन्ये त्वं ध्यायसि जनांस्तेनासि हरिणः कृशः॥१५॥
प्रज्ञासम्भावितो नूनमप्रज्ञैरुपसंहितः ।
ह्रीयमाणोऽसि दुर्वृत्तैस्तेनासि हरिणः कृशः ॥ १६ ॥

अन्य स्थानोंमें रहनेवाले सुहृदोंके अतिरिक्त अकेले ही विपुल ऐश्वर्य भोगते हो, इस ही निमित्त पाण्डुवर्ण तथा कृश हुए हो। हे निशाचर! तुम्हारे मित्रगण उत्तम रीतिसे सेवा करनेपर भी निज दोषसे तुम्हारे विषयमें विरक्त हुए हैं, इस ही लिये तुम पाण्डुवर्ण वा कृशित होते हो। समान अथवा अधिक धन ऐश्वर्ययुक्त तथा तुम्हारे गुणोंकी अपेक्षा अत्यन्त निकृष्ट मूर्ख लोग बोध होता है, तुम्हारी अवज्ञा करते हैं, इसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो। बोध होता है, कि तुम गुणवान् होकर अन्य संमानयुक्त मनुष्योंको निर्गुण देखते हो और तुम विनीतचित्त तथा प्राज्ञ होकर अन्य पुरुषोंको मूर्ख जानते हो, इसीसे पीले वा कृश होते हो। मालूम होता है, कि तुम वृत्तिके विना क्लेशित होके भी वृत्तिप्राप्तिकी निन्दा करते हुए महानुभावताके कारण दुःखित होनेसे पीले और दुबले हुए हो। (९-१३)

हे साधु! श्रेष्ठत्वके वशमें होकर आपको पीडित करके कोई पुरुष तुम्हारे द्वारा भरके तुम्हें पराजित समझता है, इसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। मुझे बोध होता है, कि काम-क्रोधके वशमें रहनेवाले पुरुष कुपथमें पडके क्लेश पाते हैं, तुम उनके निमित्त सोच करते हो, इसीसे पाण्डुवर्ण और कृश होते हो मालूम होता है, तुम

नूनं मित्रमुखः शत्रुः कश्चिदार्यवदाचरन्।
वञ्चयित्वा गतस्त्वां वै तेनासि हरिणः कृशः ॥ १७ ॥
प्रकाशार्थगतिर्नूनं रहस्यकुशलः कृती।
तज्ज्ञैर्न पूज्यसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ १८ ॥
असत्स्वपि निविष्टेषु ब्रुवतो मुक्तसंशयम्।
गुणास्ते न विराजन्ते तेनासि हरिणः कृशः ॥ १९ ॥
धनबुद्धिश्रुतैर्हीनः केवलं तेजसाऽन्वितः।
महत्प्रार्थयसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ २० ॥
तपःप्रणिहितात्मानं मन्ये त्वारण्यकाङ्क्षिणम्।
बान्धवा नाभिनन्दन्ति तेनासि हरिणः कृशः ॥ २१ ॥
इष्टभार्यस्य ते नूनं प्रातिवेश्यो महाधनः।
युवा सुललितः कामी तेनासि हरिणः कृशः ॥ २२ ॥
नूनमर्थवतां मध्ये तव वाक्यमनुत्तमम्।
न भाति कालेऽभिहितं तेनासि हरिणः कृशः ॥ २३ ॥

बुद्धिमान् होके भी मूर्खोंसे मिलकर दुर्वृत्त लोगोंसे ह्रियमाण होनेसे पीले और दुबले हुए हो। बोध होता है, कि मित्रमुख शत्रुने साधुकी भांति आचरण करके तुम्हें ठगा है, इसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। जान पडता है, तुम प्रकाशार्थ गति और रहस्य विषयमें निपुण तथा कृती होनेपर भी तत्त्वज्ञ पुरुषोंसे पूजित नहीं होते, इसी निमित्त पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। (१४—१८)

अभिनिविष्ट असत् पुरुषोंके निकट तुम्हारे संशयरहित विषयोंके कहनेपरभी तुम्हारे गुणका विकास नहीं हुआ, उसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो। मालूम होता है, कि तुम धन, बुद्धि और शास्त्रज्ञानसे रहित होके केवल तेजस्वितासे ही महत्पदकी इच्छा करते हो, उसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। मैं तुम्हें तपस्याके सहारे प्रणिहितचित्त और वनवासका अभिलाषी जानता हूं, बान्धवगण तुम्हें अभिनन्दित नहीं करते हैं, इसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो। तुम भार्याके विषयमें प्रीति किया करते हो, कोई तुम्हारा प्रतिवेशी महाधनशाली युवा पुरुष सुन्दर और कामी है, इसीलिये तुम पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो।(१९-२२)

अर्थवान् पुरुषोंके बीच यथासमयमें अभिहित तुम्हारा उत्तम वचन शोभित

दृढपूर्वं श्रुतं मूर्खं कुपितं हृदयप्रियम् ।
अनुनेतुं न शक्नोषि तेनासि हरिणः कृशः ॥ २४ ॥
नूनमासञ्जयित्वा त्वां कृत्ये कस्मिंश्चिदीप्सिते ।
कश्चिदर्थयते नित्यं तेनासि हरिणः कृशः ॥ २५ ॥
नूनं त्वां सुगुणैर्युक्तं पूजयानं सुहृद् ध्रुवम् ।
ममार्थ इति जानीते तेनासि हरिणः कृशः ॥ २६ ॥
अन्तर्गतमभिप्रायं नूनं नेच्छसि लज्जया ।
विवेक्तुं प्राप्तिशैथिल्यात्तेनासि हरिणः कृशः ॥ २७ ॥
नानाबुद्धिरुचो लोके मनुष्यान्नूनमिच्छसि ।
ग्रहीतुं स्वगुणैः सर्वांस्तेनासि हरिणः कृशः ॥ २८ ॥
अविद्वान्भीरुरल्पार्थे विद्याविक्रमदानजम् ।
यशः प्रार्थयसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ २९ ॥
चिराभिलषितं किंचित्फलमप्राप्तमेव ते ।
कृतमन्यैरपहृतं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३० ॥

नहीं हुआ, इस ही निमित्त तुम पाण्डु-वर्ण और कृश होते हो। दृढरूपसे हृदयप्रिय श्रुतपूर्व क्रुद्ध मूर्खको विनय-पूर्वक माननेमें समर्थ नहीं हुए, इसीसे तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। मालूम होता है, कि किसी ईप्सित कार्यमें कोई तुम्हें आसक्त करके सदा तुम्हारे समीप प्रार्थना करता है, इस ही हेतु तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। मालूम होता है, तुम्हें सुन्दर गुण युक्त और पूज्यमान जानके कोई सुहृद अपना अर्थज्ञान करता है, इस ही निमित्त तुम पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। भीतरी अभिप्राय रहनेपर भी बोध होता है, कि तुम लज्जापूर्वक अभिप्रेत विषयकी इच्छा नहीं कर सकते, और प्राप्त विषयोंमें शिथिलता निब-न्धनसे विचार करनेमें असमर्थ हो, इसीलिये पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। (२३—२७)

जगत्में अनेक प्रकारकी बुद्धि और रुचियुक्त मनुष्योंको तुम निज गुणोंके सहारे ग्रहण करनेकी इच्छा करते हो, बोध होता है, इस ही हेतु तुम कृश तथा पाण्डुवर्ण हुए हो। तुम मूर्ख और भीरु होके अल्प धन, विद्या, विक्रम तथा दानसे यशकी इच्छा करते हो, इस ही निमित्त पाण्डुवर्ण और कृश होते हो। तुमने किसी चिराभिलषित फलको नहीं पाया और अन्य पुरु-

नूनमात्मकृतं दोषमपश्यन्किंचिदात्मनः ।
अकारणेऽभिशस्तोऽसि तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३१ ॥
साधून् गृहस्थान्दृष्ट्वा च तथा साधून्वनेचरान् ।
मुक्तांश्चावसथे सक्तांस्तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३२ ॥
सुहृदां दुःखमानानां न प्रमोक्ष्यसि हानिजम् ।
अलमर्थगुणैर्हीनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३३ ॥
धर्म्यमर्थ्यं च काम्यं च काले चाभिहितं वचः ।
न प्रतीयन्ति ते नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३४ ॥
दत्तानकुशलैरर्थान्मनीषी सञ्जिजीविषुः ।
प्राप्य वर्तयसे नूनं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३५ ॥
पापान्प्रवर्धतो दृष्ट्वा कल्याणानवसीदतः ।
ध्रुवं गर्हयसे नित्यं तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३६ ॥
परस्परविरुद्धानां प्रियं नूनं चिकीर्षसि ।
सुहृदामुपरोधेन तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३७ ॥

योंने तुम्हारी बुराई की है, इस ही कारण तुम पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो । (२८—३०)

बोध होता है, तुम अपने किये हुए दोषोंको न देखकर अकारण ही अभिशप्त होनेसे पाण्डुवर्ण और कृश होते हो । तुम साधुओंको गृहस्थ, दुष्टोंको वनवासी और मुक्त पुरुषोंको आश्रममें देखके पाण्डुवर्ण तथा कृश होते हो । तुमने सुहृदों और आर्त्त पुरुषोंकी पीडा तथा दुःख दूर नहीं किया, तुम अत्यन्त अर्थहीन और गुणरहित हो, इस ही लिये पाण्डुवर्ण और कृश होते हो । लोग तुम्हारे यथा समयमें अभिहित धर्म, अर्थ और कामयुक्त वचनमें विश्वास नहीं करते मालूम होता है, इस ही लिये तुम पाण्डु वर्ण और कृश होते हो । (३१—३४)

तुम मनीषी तथा जिज्ञासु होकर अनिपुण लोगोंके द्वारा धन देके उसे पाकर जीविका निर्वाह करते हो, बोध होता है इस ही निमित्त पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो । मालूम होता है, कि बुद्धियुक्त मनुष्योंके पाप और अवसन्न मनुष्योंके कल्याणको देखकर तुम सदा निन्दा किया करते हो, इसही लिये पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो । तुम सुहृदोंके अनुरोधसे परस्पर विरुद्ध पुरुषोंके प्रियकार्यको करनेकी इच्छा किया करते हो, बोध होता है, इस ही निमित्त पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो । तुम श्रो-

श्रोत्रियांश्च विकर्मस्थान्प्राज्ञांश्चाप्यजितेन्द्रियान् ।
मन्येऽनुध्यायसि जनांस्तेनासि हरिणः कृशः ॥ ३८ ॥
एवं संपूजितं रक्षो विप्रं तं प्रत्यपूजयत् ।
सखायमकरोच्चैनं संयोज्यार्थैर्मुमोच ह ॥ ३९ ॥ [७८४२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे हरिणकृशकाख्याने चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

युधिष्ठिर उवाच-जन्म मानुष्यकं प्राप्य कर्मक्षेत्रं सुदुर्लभम् ।
श्रेयोऽर्थिना दरिद्रेण किं कर्तव्यं पितामह ॥ १ ॥
दानानामुत्तमं यच्च देयं यच्च यथा यथा ।
मान्यान्पूज्यांश्च गाङ्गेय रहस्यं वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥
वैशम्पायन उवाच-एवं पृष्टो नरेन्द्रेण पाण्डवेन यशस्विना ।
धर्माणां परमं गुह्यं भीष्मः प्रोवाच पार्थिवम् ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच-शृणुष्वावहितो राजन्धर्मगुह्यानि भारत ।
यथा हि भगवान्व्यासः पुरा कथितवान्मयि ॥ ४ ॥
देवगुह्यमिदं राजन्यमेनाक्लिष्टकर्मणा ।

त्रिय पुरुषोंको विकर्मस्थ और ज्ञानियोंको अजितेन्द्रिय समझते हो, मालूम होता है, इस ही निमित्त पाण्डुवर्ण और कृश हुए हो, इसही प्रकार राक्षसने अत्यन्त पूजित होकर उस ब्राह्मण की पूजा करके उसके सङ्ग मित्रता की और बहुतसा धन देके उसे विदा किया। (३५—३९)

अनुशासनपर्वमें १२४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १२५ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह गङ्गानन्दन! अत्यन्त दुर्लभ कर्मक्षेत्रमें मनुष्यजन्म पाके कल्याणकी इच्छा करनेवाले दरिद्र पुरुषोंका जो कर्त्तव्य हो सब दानोंके बीच जो उत्कृष्ट तथा मान्य हो और पूज्य पुरुषोंको जो वस्तु जिस प्रकार देनी योग्य है, आप उस रहस्य विषयको वर्णन करिये। (१-२)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज यशस्वी पाण्डुपुत्रका प्रश्न सुनके भीष्मने उनसे सब धर्मोंका परम गोपनीय विषय कहना आरंभ किया। (३)

भीष्म बोले, हे भरतवंशावतंस महाराज! पहले समयमें भगवान् व्यासदेवने मेरे समीप जिन गोपनीय धर्मोंका वर्णन किया था, तुम सावधान होके उसे ही सुनो। हे महाराज! यह विषय देवताओंके समीप भी गोपनीय है।

नियमस्थेन युक्तेन तपसा महतः फलम् ॥ ५ ॥
येन यः प्रीयते देवः प्रीयन्ते पितरस्तथा ।
ऋषयः प्रमथाः श्रीश्च चित्रगुप्तो दिशां गजाः ॥ ६ ॥
ऋषिधर्मः स्मृतो यत्र सरहस्यो महाफलः ।
महादानफलं चैव सर्वयज्ञफलं तथा ॥ ७ ॥
यश्चैतदेवं जानीयाज्ज्ञात्वा वा कुरुतेऽनघ ।
सदोषोऽदोषवांश्चेह तैर्गुणैः सह युज्यते ॥ ८ ॥
दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ।
दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः ॥ ९ ॥
अर्धेनैतानि सर्वाणि नृपतिः कथ्यतेऽधिकः ।
त्रिवर्गसहितं शास्त्रं पवित्रं पुण्यलक्षणम् ॥ १० ॥
धर्मव्याकरणं पुण्यं रहस्यश्रवणं महत् ।
श्रोतव्यं धर्मसंयुक्तं विहितं त्रिदशैः स्वयम् ॥ ११ ॥
पितॄणां यत्र गुह्यानि प्रोच्यन्ते श्राद्धकर्मणि ।

पहले अक्लिष्टकर्मा यमने नियुक्त होके इसे पाया था। हे अनघ! जिसके सहारे देव, पितर, ऋषि, राक्षसगण, श्री, चित्रगुप्त और सब दिग्गज प्रीतियुक्त होते हैं, जिसमें सरहस्य, महाफलजनक ऋषिधर्म स्मृत हुआ करता है और जिसमें महादान तथा समस्त यज्ञोंके फल स्मृत होते हैं; चाहे लोग दोषयुक्त हों वा निर्दोष होवें, जो इस विषयको जानते हैं अथवा जानके इसका आचरण करते हैं, वे उन सब गुणोंसे युक्त होते हैं। (४—८)

जिस स्थानमें दश पशु मारे जाते हैं, उस स्थान और पशुघाती जातीको दससूना कहते हैं, एक चक्रवान् तैलिक दशसूनाके तुल्य है, ध्वज अर्थात् सुरा पीनेवाला दश चक्र अर्थात् तेलीके सदृश है, एक वेश्या दश सुरा पीनेवालेके समान है और एक क्षुद्र राजा दशवेश्याके तुल्य है। राजा इन सबको अर्द्धरूपसे तुलना करते हुए अधिक कहा गया है, प्रतिग्रहके निमित्त यह सब तारतम्य वर्णित हुआ करता है। दुष्प्रतिग्रहसे विमुख मनुष्योंको पुण्यलक्षणयुक्त पवित्र धर्मार्थ काम शास्त्रको जानना उचित है; देवताओंके द्वारा विहित हुआ पवित्र धर्मव्याकरण महत् रहस्य और धर्मसंयुक्त आख्यान सुनना चाहिये। (९—११)

श्राद्धकर्ममें जो पितरोंका गुप्त विषय

देवतानां च सर्वेषां रहस्यं कथ्यतेऽखिलम् ॥ १२ ॥
ऋषिधर्मः स्मृतो यत्र सरहस्यो महाफलः ।
महायज्ञफलं चैव सर्वदानफलं तथा ॥ १३ ॥
ये पठन्ति सदा मर्त्या येषां चैवोपतिष्ठति ।
श्रुत्वा च फलमाचष्टे स्वयं नारायणः प्रभुः ॥ १४ ॥
गवां फलं तीर्थफलं यज्ञानां चैव यत्फलम् ।
एतत्फलमवाप्नोति यो नरोऽतिथिपूजकः ॥ १५ ॥
श्रोतारः श्रद्दधानाश्च येषां शुद्धं च मानसम् ।
तेषां व्यक्तं जिता लोकाः श्रद्दधानेन साधुना ॥ १६ ॥
मुच्यते किल्बिषाच्चैव न स पापेन लिप्यते ।
धर्मं च लभते नित्यं प्रेत्य लोकगतो नरः ॥ १७ ॥
कस्यचित्त्वथ कालस्य देवदूतो यदृच्छया ।
स्थितो ह्यन्तर्हितो भूत्वा पर्यभाषत वासवम् ॥ १८ ॥
यौ तौ कामगुणोपेतावश्विनौ भिषजां वरौ ।
आज्ञयाऽहं तयोः प्राप्तः सनरान् पितृदेवतान् ॥ १९ ॥
कस्माद्धि मैथुनं श्राद्धे दातुर्भोक्तुश्च वर्जितम् ।

और समस्त देवताओंका अखिल रहस्य कहा जाता है; जिसमें सरहस्य महाफल-जनक ऋषिधर्म स्मृत होता है। जो मनुष्य इसे पाठ करते हैं, उन्हें महायज्ञ और समस्त दानोंके फल प्राप्त होते और उनके समीप सब शास्त्र पूरी रीतिसे स्फुरित हुआ करते हैं, जो लोग सुनके फल कहते हैं, वे स्वयं नारायण स्वरूप हैं। जो मनुष्य अतिथियोंकी पूजा करते हैं, उन्हें गोदान, तीर्थफल और यज्ञों-का फल मिलता है। (१२-१५)

जो लोग शास्त्र सुनते और श्रद्धायुक्त होके कार्य करते हैं, जिनका अन्तःकरण पवित्र है, उन श्रद्धावान् साधु पुरुषोंके द्वारा सब लोक विजित हो रहे हैं, श्रद्धावान् साधु पुरुष पापोंसे छूट जाते, वे कभी किसी पापमें लिप्त नहीं होते, परलोकमें जानेपर उन्हें सदा धर्म प्राप्त होता है। (१६-१७)

कुछ समयके अनन्तर देवदूत ने अन्तर्हित होके इन्द्रसे पूछा, उस काम गुणसे युक्त भिषग्वर दोनों अश्वि-नीकुमारोंकी आज्ञासे मैं मनुष्यों, पितरों और देवताओंके समीप उपस्थित हुआ हूं; किसलिये श्राद्ध विषयमें कर्त्ता और भोक्ता मैथुनविवर्जित हुए हैं और

किमर्थं च त्रयः पिण्डाः प्रविभक्ताः पृथक् पृथक् ॥२०॥
प्रथमः कस्य दातव्यो मध्यमः क्व च गच्छति ।
उत्तरश्च स्मृतः कस्य एतदिच्छामि वेदितुम् ॥ २१ ॥
श्रद्दधानेन दूतेन भाषितं धर्मसंहितम् ।
पूर्वस्थास्त्रिदशाः सर्वे पितरः पूज्य खेचरम् ॥ २२ ॥
पितर ऊचुः— स्वागतं तेऽस्तु भद्रं ते श्रूयतां खेचरोत्तम ।
गूढार्थः परमः प्रश्नो भवता समुदीरितः ॥ २३ ॥
श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च पुरुषो यः स्त्रियं व्रजेत् ।
पितरस्तस्य तं मासं तस्मिन् रेतसि शेरते ॥ २४ ॥
प्रविभागं तु पिण्डानां प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।
पिण्डोऽधस्ताद्गच्छंस्तु अप आविश्य भावयेत् ॥२५॥
पिण्डं तु मध्यमं तत्र पत्नी त्वेका समश्नुते ।
पिण्डस्तृतीयो यस्तेषां तं दद्याज्जातवेदसि ॥ २६ ॥
एष श्राद्धविधिः प्रोक्तो यथा धर्मो न लुप्यते ।
पितरस्तस्य तुष्यन्ति प्रहृष्टमनसः सदा ॥ २७ ॥

किस लिये तीन पिण्ड पृथक् पृथक् प्रविभक्त हुए हैं। (१८—२०)

पहला पिण्ड किसे देना चाहिये मध्यम पिण्ड किसे मिलता है और पिछला पिण्ड किसके लिये स्मृत हुआ है? इसे मैं जाननेकी इच्छा करता हूं। श्रद्धावान् दूतका यह धर्मसंगत वचन सुनके पूर्व दिशामें स्थित देवताओं और पितरोंने उस खेचरकी पूजा करके कहा। (२१—२२)

पितृगण बोले, हे खेचरोत्तम! तुमने सुखसे आगमन किया है न? तुम्हारा मङ्गल हो, तुमने गूढार्थयुक्त परम उत्तम प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुनो। जो पुरुष श्राद्ध करके वा श्राद्धमें भोजन करके स्त्रीके समीप जाता है, उसके पितर उस महीनेमें उस ही वीर्यके बीच शयन किया करते हैं। अब तीनों पिण्डोंके विभागको विस्तारके सहित कहता हूं। जो पिण्ड नीचेको गमन करता है, उसे जलमें आविष्ट हुआ जाने, मध्यम पिण्डको पत्नी भोग किया करती है, उनमेंसे जो तीसरा पिण्ड है, उसे अग्निमें डाले, यह धर्मपूर्वक कही गई श्राद्धविधि कदापि लुप्त नहीं होती। जो लोग श्राद्ध करते हैं, उनके पितर प्रसन्नचित्त और सदा सन्तुष्ट रहते हैं, उनकी सन्तान वृद्धि

प्रजा विवर्धते चास्य अक्षयं चोपतिष्ठति।

देवदूत उवाच— आनुपूर्व्येण पिण्डानां प्रविभागः पृथक् पृथक्॥२८॥
पितॄणां त्रिषु सर्वेषां निरुक्तं कथितं त्वया।
एकः समुद्धृतः पिण्डो ह्यधस्तात्कस्य गच्छति॥२९॥
कं वा प्रीणयते देवं कथं तारयते पितॄन्।
मध्यमं तु तदा पत्नी भुङ्क्तेऽनुज्ञातमेव हि॥३०॥
किमर्थं पितरस्तस्य कव्यमेव च भुञ्जते।
अत्र यस्त्वन्तिमः पिण्डो गच्छते जातवेदसम्॥३१॥
भवते का गतिस्तस्य कं वा समनुगच्छति।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं पिण्डेषु त्रिषु या गतिः॥३२॥
फलं वृत्तिं च मार्गं च यश्चैनं प्रतिपद्यते।

पितर ऊचुः— सुमहानेष प्रश्नो वै यस्त्वया समुदीरितः॥३३॥
रहस्यमद्भुतं चापि पृष्टाः स्म गगनेचर।
एतदेव प्रशंसन्ति देवाश्च मुनयस्तथा॥३४॥
तेऽप्येवं नाभिजानन्ति पितृकार्यविनिश्चयम्।
वर्जयित्वा महात्मानं चिरजीविनमुत्तमम्॥३५॥

होती तथा उसका धन अक्षय होता है। (२३—२७)

देवदूत बोला, आप लोगोंने विस्तारपूर्वक क्रमसे सब पिण्डोंके पृथक् पृथक् विभागके विषय कहे और तीनों पिण्डोंमें पितरोंका निरुक्त भी वर्णन किया; एक मात्र समुद्धृत पिण्ड अधःप्रदेशमें किसके समीप जाता है और वह किस प्रकार देवताओंको प्रसन्न करता तथा पितरोंका उद्धार किया करता है? पत्नी अनुज्ञात मध्यम पिण्ड भोजन करती है, पितरगण किस निमित्त उसका कव्य भोग किया करते हैं? इसके बीच जो अन्तिम पिण्ड अग्निके निकट जाता है, उसकी क्या गति होती है और वह किसके निकट गमन किया करता है? तीनों पिण्डोंकी जो गति होती है और पिण्डदाताको जो फलव्यवहार तथा पथ प्राप्त होता है, उसे सुननेकी इच्छा करता हूं। (२८-३२)

पितृगण बोले, हे गगनेचर! तुमने जो प्रश्न किया वह अत्यन्त महत् रहस्ययुक्त और अद्भुत है, हम लोग इससे प्रसन्न हुए हैं, देवता तथा मुनिगण ऐसे ही प्रश्नकी प्रशंसा किया करते हैं, वेभी इसी प्रकार पितृकार्यका विशेष

(पितृभक्तस्तु यो विप्रो वरलब्धो महायशाः ।
त्रयाणामपि पिण्डानां श्रुत्वा भगवतो गतिम् ॥३६॥
देवदूतेन यः पृष्टः श्राद्धस्य विधिनिश्चयः ।)
गतिं त्रयाणां पिण्डानां शृणुष्वावहितो मम ॥ ३७ ॥
अपो गच्छति यो ह्यत्र शशिनं ह्येष प्रीणयेत् ।
शशी प्रीणयते देवान् पितृंश्चैव महामते ॥ ३८ ॥
भुङ्क्ते तु पत्नी यं चैषामनुज्ञाता तु मध्यमम् ।
पुत्रकामाय पुत्रं तु प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ ३९ ॥
हव्यवाहे तु यः पिण्डो दीयते तन्निबोध मे ।
पितरस्तेन तृप्यन्ति प्रीताः कामान् दिशन्ति च ॥४०॥
एतत्ते कथितं सर्वं त्रिषु पिण्डेषु या गतिः ।
ऋत्विग्यो यजमानस्य पितृत्वमनुगच्छति ॥ ४१ ॥
तस्मिन्नहनि मन्यन्ते परिहार्यं हि मैथुनम् ।
शुचिना तु सदा श्राद्धं भोक्तव्यं खेचरोत्तम ॥ ४२ ॥
ये मया कथिता दोषास्ते तथा स्युर्न चान्यथा ।

निर्णय नहीं जानते । केवल महानुभाव चिरजीवी मार्कण्डेय मुनि जो कि पितृभक्तिसे वर पाके महायशस्वी हुए हैं, उनके अतिरिक्त दूसरे लोग इस विषयको नहीं जानते । भगवान्के समीप तीनों पिण्डोंकी गति सुनके देव-दूतने श्राद्धविधिके निश्चयमें जो प्रश्न किया था, सावधान होकर मेरे समीपसे उन तीनों पिण्डोंकी गति सुनो। (३३-३७)

जो पिण्ड जलमें समर्पण किया जाता है, वह चन्द्रमाको प्रसन्न करता है । हे महाबुद्धिमान् ! चन्द्रमा, देवताओं और पितरोंको प्रीतियुक्त करते हैं । पुत्र-कामनावाली पत्नी पितरोंकी आज्ञानुसार जो मध्यम पिण्ड भोजन करती है, उससे पितामहगण पुत्र प्रदान किया करते हैं । जो पिण्ड अग्निमें डाला जाता है, उसका विषय सुनो; उससे पितर-वृन्द परितृप्त होते और प्रसन्न होके अभिलषित दान किया करते हैं । तीनों पिण्डोंके बीच जैसी गति होती है, वह विषय तुम्हारे समीप कहा गया। श्राद्ध-भोक्ता ब्राह्मण यजमानके पितृत्वको प्राप्त होता है । (३८—४१)

श्राद्धके दिन मैथुन न करना साधु-सम्मत है, हे खेचरोत्तम ! सदा पवित्र होकर श्राद्धभोजन करना चाहिये, मैंने जिन सब दोषोंकी कथा कही है,

तस्मात्स्नातः शुचिः क्षान्तः श्राद्धं भुञ्जीत वै द्विजः॥४३॥
प्रजा विवर्धते चास्य यश्चैवं संप्रयच्छति।
ततो विद्युत्प्रभो नाम ऋषिराह महातपाः ॥ ४४ ॥
आदित्यतेजसा तस्य तुल्यं रूपं प्रकाशते।
स च धर्मरहस्यानि श्रुत्वा शक्रमथाब्रवीत् ॥ ४५ ॥
तिर्यग्योनिगतान्सत्त्वान् मर्त्या हिंसन्ति मोहिताः।
कीटान्पिपीलिकान्सर्पान् मेषान्समृगपक्षिणः॥ ४६ ॥
किल्बिषं सुबहु प्राप्ताः किंस्विदेषां प्रतिक्रिया।
ततो देवगणाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ॥ ४७ ॥
पितरश्च महाभागाः पूजयन्ति स्म तं मुनिम्।
शक्र उवाच— कुरुक्षेत्रं गयां गङ्गां प्रभासं पुष्कराणि च ॥ ४८ ॥
एतानि मनसा ध्यात्वा अवगाहेत्ततो जलम्।
तथा मुच्यति पापेन राहुणा चन्द्रमा यथा ॥ ४९ ॥
त्र्यहं स्नातः स भवति निराहारश्च वर्तते।
स्पृशते यो गवां पृष्ठं बालधिं च नमस्यति ॥ ५० ॥
ततो विद्युत्प्रभो वाक्यमभ्यभाषत वासवम्।

वे उस ही प्रकार होते हैं, अन्यथा नहीं होते; इसलिये ब्राह्मण स्नान करके पवित्र और क्षमाशील होकर श्राद्धान्न भोजन करे; जो लोग पूरी रीतिसे इस ही प्रकार अनुष्ठान करते हैं, उनकी प्रजाकी वृद्धि होती है। (४२—४४)

अनन्तर विद्युत्प्रभ नामक महातपस्वी ऋषि जिनका रूप सूर्यके तेज-सदृश प्रकाशमान था, वह धर्मरहस्योंको सुनके देवराजसे बोले, मनुष्य मोहित होकर तिर्यक्‌योनिके समस्त कीट, चींटी, सर्प, मेढे, मृग और पक्षियोंकी हिंसा किया करते हैं, इस कार्यसे वे लोग अत्यन्त ही पापभाजन होते हैं, इसलिये इन लोगोंकी प्रतिक्रिया किस प्रकार होसकती है? अनन्तर देवताओं, तपस्वियों, ऋषियों और महाभाग पितरोंने उस मुनिकी पूजा की। (४५-४८)

इन्द्र बोले, कुरुक्षेत्र, गया, गङ्गा, प्रभास और पुष्कर प्रभृति सब तीर्थोंका मनही मन ध्यान करके अन्तमें जलसे स्नान करनेपर पुरुष इस प्रकार पापोंसे छूट जाता है, जैसे राहुके मुखसे चन्द्रमा मुक्त हुआ करता है, वह मनुष्य तीन दिन स्नान करके निराहारी रहे और गौवोंकी पीठ स्पर्श करके बालधीको

अयं सूक्ष्मतरो धर्मस्तं निबोध शतक्रतो ॥ ५१ ॥
घृष्टो वटकषायेण अनुलिप्तः प्रियङ्गुणा ।
क्षीरेण षष्टिकान्भुक्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५२ ॥
श्रूयतां चापरं गुह्यं रहस्यमृषिचिन्तितम् ।
श्रुतं मे भाषमाणस्य स्थाणोः स्थाने बृहस्पतेः ॥ ५३ ॥
रुद्रेण सह देवेश तन्निबोध शचीपते ।
पर्वतारोहणं कृत्वा एकपादो विभावसुम् ॥ ५४ ॥
निरीक्षेत निराहार ऊर्ध्वबाहुः कृताञ्जलिः ।
तपसा महता युक्त उपवासफलं लभेत् ॥ ५५ ॥
रश्मिभिस्तापितोऽर्कस्य सर्वपापमपोहति ।
ग्रीष्मकालेऽथवा शीते एवं पापमपोहति ॥ ५६ ॥
ततः पापात्प्रमुक्तस्य द्युतिर्भवति शाश्वती ।
तेजसा सूर्यवद्दीप्तो भ्राजते सोमवत्पुनः ॥ ५७ ॥
मध्ये त्रिदशवर्गस्य देवराजः शतक्रतुः ।
उवाच मधुरं वाक्यं बृहस्पतिमनुत्तमम् ॥ ५८ ॥
धर्मगुह्यं तु भगवन्मानुषाणां सुखावहम् ।

नमस्कार करे । (४८—५०)

अनन्तर विद्युत्प्रभने इन्द्रसे कहा, हे देवराज ! यह अत्यन्त सूक्ष्म धर्म है, इसलिये इसे सुनो । वटजटाकषाय द्वारा घृष्ट और प्रियंगुसे अनुलिप्त होकर मनुष्य क्षीरके सहित साठ रात्रितक पके धान्यको भक्षण करनेसे सब पापोंसे रहित होता है, ऋषियोंका विचारा हुआ और एक गोपनीय रहस्य सुनो । इसे मैंने महादेवके समीप उनके सङ्ग वार्तालाप करते हुए बृहस्पतिके मुखसे सुना है, हे देवेश शचीपति ! तुम उसे सुनो, मनुष्य पहाडपर चढके एक पांवसे स्थित होकर निराहारी, ऊर्ध्वबाहु तथा हाथ जोडके सूर्यको देखे । इस ही प्रकार महत् तपस्यायुक्त पुरुष उपवासका फल पाता है और सूर्यकिरणोंसे परितापित होकर पापोंसे रहित होता है, ग्रीष्मकाल और शीतके समय ऐसा आचरण करनेसे सब पाप नष्ट होते हैं । (५१-५६)

अनन्तर पापहीन पुरुषोंकी शाश्वती द्युति हुआ करती है, तब वे निज तेजसे सूर्यकी भांति प्रकाशित होके फिर चन्द्रमा समान शोभित होते हैं । अनन्तर देवताओंके बीच देवराज शतक्रतु

सरहस्याश्च ये दोषास्तान्यथावदुदीरय ॥ ५९ ॥

बृहस्पतिरुवाच– प्रतिमेहन्ति ये सूर्यमनिलं द्विषते च ये ।

हव्यवाहे प्रदीप्ते च समिधं ये न जुह्वति ॥ ६० ॥

बालवत्सां च ये धेनुं दुहन्ति क्षीरकारणात् ।

तेषां दोषान्प्रवक्ष्यामि तान्निबोध शचीपते ॥ ६१ ॥

भानुमाननिलश्चैव हव्यवाहश्च वासव ।

लोकानां मातरश्चैव गावः सृष्टाः स्वयम्भुवा ॥ ६२ ॥

लोकांस्तारयितुं शक्ता मर्त्येष्वेतेषु देवताः ।

सर्वे भवन्तः शृण्वन्तु एकैकं धर्मनिश्चयम् ॥ ६३ ॥

वर्षाणि षडशीतिं तु दुर्वृत्ताः कुलपांसनाः ।

स्त्रियः सर्वाश्च दुर्वृत्ताः प्रतिमेहन्ति या रविम् ॥ ६४ ॥

अनिलद्वेषिणः शक्र गर्भस्था च्यवते प्रजा ।

हव्यवाहस्य दीप्तस्य समिधं ये न जुह्वति ॥ ६५ ॥

अग्निकार्येषु वै तेषां हव्यं नाश्नाति पावकः ।

क्षीरं तु बालवत्सानां ये पिबन्तीह मानवाः ॥ ६६ ॥

न तेषां क्षीरपाः केचिज्जायन्ते कुलवर्धनाः ।

बृहस्पतिसे अत्युत्तम मधुर वचन बोले, मनुष्योंके गोपनीय धर्म और रहस्यके सङ्ग जो सब दोष हैं, उसे आप यथावत् वर्णन करिये। (५७—५९)

बृहस्पती बोले, हे शचिपति! जो लोग सूर्यकी ओर मलमूत्र परित्याग करते, वायुके विषयमें द्वेष करते, जलती हुई अग्निमें समिध होम नहीं करते, जो लोग दूधके निमित्त बालवत्सा गऊ दूहते हैं, उनके दोषोंको कहता हूं, सुनो। हे इन्द्र! सूर्य, वायु, अग्नि और लोकमाता गौवोंको ब्रह्माने उत्पन्न किया है, ये सब देववृन्द तथा मनुष्योंके परित्राण करनेमें समर्थ हैं। आप सब कोई एक एक धर्मनिश्चय सुनिये। जो सब दुर्वृत्त पुरुष और दुर्वृत्ता स्त्रियें सूर्यकी ओर मल मूत्र परित्याग करती हैं, वे छियासी वर्ष कुलपांसन हुआ करती हैं। (६०-६४)

हे देवराज! जो लोग वायुमें द्वेष करते हैं उनकी गर्भस्थ प्रजा च्युत होती है। जो लोग महाप्रदीप्त अग्निमें समिध होम नहीं करते, उनके अग्निकार्यमें पावकदेवता हव्य भक्षण नहीं करते। इस लोकमें जो मनुष्य बालवत्सा गौवोंका दूध पीता है, उनके दुग्धपोष्य

प्रजाक्षयेण युज्यन्ते कुलवंशक्षयेण च ॥ ६७ ॥
एवमेतत्पुरा दृष्टं कुलवृद्धैर्द्विजातिभिः ।
तस्माद्वर्ज्यानि वर्ज्यानि कार्यं कार्यं च नित्यशः ॥ ६८ ॥
भूतिकामेन मर्त्येन सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ।
ततः सर्वा महाभाग देवताः समरुद्गणाः ॥ ६९ ॥
ऋषयश्च महाभागाः पृच्छन्ति स्म पितॄंस्ततः ।
पितरः केन तुष्यन्ति मर्त्यानामल्पचेतसाम् ॥ ७० ॥
अक्षयं च कथं ज्ञानं भवेच्चैवौर्ध्वदेहिकम् ।
आनृण्यं वा कथं मर्त्या गच्छेयुः केन कर्मणा ॥ ७१ ॥
एतदिच्छामहे श्रोतुं परं कौतूहलं हि नः ।
पितर ऊचुः— न्यायतो वै महाभागाः संशयः समुदाहृतः ॥७२ ॥
श्रूयतां येन तुष्यामो मर्त्यानां साधुकर्मणाम् ।
नीलषण्डप्रमोक्षेण अमावास्यां तिलोदकैः ॥ ७३ ॥
वर्षासु दीपकश्चैव पितृणामनृणो भवेत् ।
अक्षयं निर्व्यलीकं च दानमेतन्महाफलम् ॥ ७४ ॥

कुलवर्द्धन सन्तान नहीं जन्मती। इसलिये प्रजाक्षय निबन्धनसे उसका कुल और वंश नष्ट होता है, कुलवृद्ध द्विजातियोंने पहले समयमें इसे देखा था; इसलिये मैं सत्य कहता हूं, कि ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य त्यागनेयोग्य विषयोंको परित्याग करे और कर्त्तव्य विषयोंका अनुष्ठान करनेमें सदा यत्नवान् रहे। (६५—६९)

अनन्तर मरुद्गणके सहित देवताओं और महाभाग ऋषियोंने पितरोंसे प्रश्न किया, कि अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंके किन कार्योंसे पितर लोग प्रसन्न होते हैं और उर्ध्वदेहिक दान किस प्रकार अक्षय होता है? मनुष्य लोग कैसे कार्यों द्वारा पितरोंके अऋण होते हैं, इसे हम लोग सुननेकी इच्छा करते हैं; इस विषयमें हम लोगोंको अत्यन्त कौतूहल हुआ है। (६९—७२)

पितृगण बोले, हे महाभाग! आप लोगोंने न्यायपूर्वक यह सन्देहका विषय पूछा है, उत्तम कार्य करनेवाले मनुष्योंके जिन कर्मोंसे हम लोग प्रसन्न होते हैं, उसे सुनो। मनुष्य अमावस्या तिथिमें काले रङ्गका वृषभ छोडके तिलोदकसे तर्पण करे और वर्षाकालमें दीपकदान करनेसे पितरोंके निकट अऋण, निर्व्यलीक और महाफलदायक है, इससे

अस्माकं परितोषश्च अक्षयः परिकीर्त्यते ।
श्रद्धावन्तश्च ये मर्त्या आहरिष्यन्ति संततिम् ॥ ७५ ॥
दुर्गात्ते तारयिष्यन्ति नरकात्प्रपितामहान् ।
पितॄणां भाषितं श्रुत्वा हृष्टरोमा तपोधनः ॥ ७६ ॥
वृद्धगार्ग्यो महातेजास्तानेवं वाक्यमब्रवीत् ।
के गुणा नीलषण्डस्य प्रमुक्तस्य तपोधनाः ॥ ७७ ॥
वर्षासु दीपदानेन तथैव च तिलोदकैः ।
पितर ऊचुः— नीलषण्डस्य लाङ्गूलं तोयमभ्युद्धरेद्यदि ॥ ७८ ॥
षष्टिं वर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः ।
यस्तु शृङ्गगतं पङ्कं कूलादुद्धृत्य तिष्ठति ॥ ७९ ॥
पितरस्तेन गच्छन्ति सोमलोकमसंशयम् ।
वर्षासु दीपदानेन शशिवच्छोभते नरः ॥ ८० ॥
तमोरूपं न तस्यास्ति दीपकं यः प्रयच्छति ।
अमावास्यां तु ये मर्त्याः प्रयच्छन्ति तिलोदकम् ॥ ८१ ॥
पात्रमौदुम्बरं गृह्य मधुमिश्रं तपोधन ।
कृतं भवति तैः श्राद्धं सरहस्यं यथार्थवत् ॥ ८२ ॥
हृष्टपुष्टमनास्तेषां प्रजा भवति नित्यदा ।

हम लोगोंको सन्तोष होता है, इसीसे यह अक्षय रूपसे वर्णित हुआ है। जो मनुष्य श्रद्धावान होकर सन्तान उत्पन्न करते हैं, वे प्रपितामहगणको दुर्गम नरकसे उद्धार किया करते हैं। महातेजस्वी तपस्वी गर्ग पितरोंका वचन सुनके पुलकित होकर उनसे बोले, हे तपोधनगण! नीलवर्ण वृषभ छोडने, वर्षाकालमें दीपदान करने तथा तिलोदकसे तर्पण करनेसे क्या फल होता है? (७२—७८)

पितृगण बोले, काले बैलकी पूंछसे यदि जल उठे, तो उससे पितृगण साठ हजार वर्षतक तृप्त हुआ करते हैं। यदि वृषभ तटसे शृङ्गगत कीचड उद्धार करके स्थित हो, तो पितरगण उसके सहारे निःसंदेह सोमलोकमें गमन करते हैं। वर्षाकालमें दीप दान करनेसे मनुष्य चन्द्रमाकी भांति शोभित होता है, जो लोग दीपक दान करते हैं, वे तमोरूप नहीं होते। हे तपोधन! जो मनुष्य अमावस्या तिथिमें उदुम्बरपात्रसे मधुयुक्त तिलोदक दान करते हैं, उनका यथार्थमें रहस्यके सहित श्राद्धकार्य

कुलवंशस्य वृद्धिस्तु पिण्डदस्य फलं भवेत् ॥
श्रद्दधानस्तु यः कुर्यात्पितॄणामनृणो भवेत् ॥ ८३ ॥
एवमेष समुद्दिष्टः श्राद्धकालक्रमस्तथा ।
विधिः पात्रं फलं चैव यथावदनुकीर्तितम् ॥ ८४ ॥ [५९७६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पितृरहस्यं नामपञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥

भीष्म उवाच- केन ते च भवेत्प्रीतिः कथं तुष्टिं तु गच्छसि ।
इति पृष्टः सुरेन्द्रेण प्रोवाच हरिरीश्वरम् ॥ १ ॥

विष्णुरुवाच— ब्राह्मणानां परीवादो मम विद्वेषणं महत् ।
ब्राह्मणैः पूजितैर्नित्यं पूजितोऽहं न संशयः ॥ २ ॥
नित्याभिवाद्या विप्रेन्द्रा भुक्त्वा पादौ तथाऽऽत्मनः ।
तेषां तुष्यामि मर्त्यानां यश्चक्रे च बलिं हरेत् ॥ ३ ॥
वामनं ब्राह्मणं दृष्ट्वा वराहं च जलोत्थितम् ।
उद्धृतां धरणीं चैव मूर्ध्ना धारयते तु यः ॥ ४ ॥
न तेषामशुभं किंचित्कल्मषं चोपपद्यते ।

सिद्ध होता है, उनकी सन्तान सदा हृष्टचित्त हुआ करती है । पिण्डदाताको कुल और वंश वृद्धिरूपी फल प्राप्त होता है, जो लोग श्रद्धावान् होके श्राद्ध करते हैं, वे पितरोंके समीप अऋण होते हैं, इस ही प्रकार श्राद्धका समय और श्राद्धकी विधि निर्दिष्ट हुई है, इसलिये विधि, पात्र और फल पूरी रीतिसे कही गई (७८—८४)

अनुशासनपर्वमें १२५ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १२६ अध्याय ।

भीष्म बोले, अनन्तर देवराजने विष्णुसे पूछा, कि किन कार्योंसे आप प्रसन्न होते और किस प्रकार आपको सन्तोष होता है (१)

विष्णु बोले, ब्राह्मणोंका परिवाद मुझे अत्यन्त ही विद्विष्ट है, ब्राह्मणोंके सदा पूजित होनेपर मैं निःसन्देह पूजित होता हूं । ब्राह्मण लोग सदा प्रणाम करनेके योग्य हैं, भोजनके अनन्तर सन्ध्याके समय शिष्टाचारके हेतु आपने दोनों पग अभिवादनीय हैं, जो मनुष्य गोमयसे लीपकर सुदर्शन मन्त्रके द्वारा पूजा करते हैं, मैं उन सब मनुष्योंके विषयमें प्रसन्न होता हूं । (१—३)

वामन ब्राह्मण और जलसे निकले हुए वराहको देखके जो उद्धृत धरणी सिरपर रखते हैं, उन्हें कोई अशुभ वा

अश्वत्थं रोचनां गां च पूजयेद्यो नरः सदा ॥ ५ ॥
पूजितं च जगत्तेन सदेवासुरमानुषम् ।
तेन रूपेण तेषां च पूजां गृह्णामि तत्त्वतः ॥ ६ ॥
पूजा ममैषा नास्त्यन्या यावल्लोकाः प्रतिष्ठिताः ।
अन्यथा हि वृथा मर्त्याः पूजयन्त्यल्पबुद्धयः ॥ ७ ॥
नाहं तत्प्रतिगृह्णामि न सा तुष्टिकरी मम ॥ ८ ॥

इन्द्र उवाच— चक्रं पादौ वराहं च ब्राह्मणं चापि वामनम् ।
उद्धृतां धरणीं चैव किमर्थं त्वं प्रशंससि ॥ ९ ॥
भवान्सृजति भूतानि भवान्संहरति प्रजाः ।
प्रकृतिः सर्वभूतानां समर्त्यानां सनातनी ॥ १० ॥

भीष्म उवाच- संप्रहस्य ततो विष्णुरिदं वचनमब्रवीत् ।
चक्रेण निहता दैत्याः पद्भ्यां क्रान्ता वसुन्धरा ॥११॥
वाराहं रूपमास्थाय हिरण्याक्षो निपातितः ।
वामनं रूपमास्थाय जितो राजा मया बलिः ॥ १२ ॥
परितुष्टो भवाम्येवं मानुषाणां महात्मनाम् ।
तन्मां ये पूजयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः॥ १३ ॥

पाप नहीं होता । जो मनुष्य सदा अश्वत्थ और रोचना गऊकी पूजा करता है, उसके द्वारा देव, असुर तथा मनुष्योंके सहित समस्त जगत् पूजित होता है, मैं अपना रूप प्रकाशित करके यथार्थ रीतिसे उसकी पूजा ग्रहण करता हूं। जबतक सब लोग प्रतिष्ठित रहते हैं, तबतक यह मेरीही पूजा है, दूसरेकी न जानना; अल्पबुद्धि मनुष्य इसे अन्यथा समझकर वृथा पूजा किया करते हैं, मैं उसे प्रतिग्रह नहीं करता, वह मुझे सन्तुष्ट नहीं करती। (४—८)

इन्द्र बोले, चक्र, दोनों चरण, वराह, वामन ब्राह्मण और उद्धृत धरणीकी आप किसलिये प्रशंसा करते हैं ? आपने सब जीवोंको उत्पन्न किया है, आप ही सब प्राणियोंका संहार करते हैं, आप ही सब जीवों और मनुष्योंकी सनातनी प्रकृति हैं। (९—१०)

भीष्म बोले, अनन्तर विष्णुने हंसके यह वचन कहा. कि चक्रसे दैत्यदलका नाश हुआ है और पदसे वसुन्धरा आक्रान्त हुई थी; वराह रूप धरके मैंने हिरण्याक्ष दैत्यको मारा और वामनरूप धरके राजा बलिको जय किया था; इसलिये मैं इस ही प्रकार महानुभाव

अपि वा ब्राह्मणं दृष्ट्वा ब्रह्मचारिणमागतम्।
ब्राह्मणाग्न्याहुतिं दत्त्वा अमृतं तस्य भोजनम् ॥१४॥
ऐन्द्रीं सन्ध्यामुपासित्वा आदित्याभिमुखः स्थितः।
सर्वतीर्थेषु स स्नातो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ १५ ॥
एतद्वः कथितं गुह्यमखिलेन तपोधनाः।
संशयं पृच्छमानानां किं भूयः कथयाम्यहम् ॥ १६ ॥
बलदेव उवाच- श्रूयतां परमं गुह्यं मानुषाणां सुखावहम्।
अजानन्तो यदबुधाः क्लिश्यन्ते भूतपीडिताः ॥ १७ ॥
कल्य उत्थाय यो मर्त्यः स्पृशेद्गां वै घृतं दधि।
सर्षपं च प्रियङ्गुं च कल्मषात्प्रतिमुच्यते ॥ १८ ॥
भूतानि चैव सर्वाणि अग्रतः पृष्ठतोऽपि वा।
उच्छिष्टं वाऽपि छिद्रेषु वर्जयन्ति तपोधनाः॥ १९ ॥
देवा ऊचुः— प्रगृह्यौदुम्बरं पात्रं तोयपूर्णं उदङ्मुखः।
उपवासं तु गृह्णीयाद्यद्वा संकल्पयेद् व्रतम् ॥ २० ॥
देवतास्तस्य तुष्यन्ति कामिकं चापि सिध्यति।

मनुष्योंके विषयमें प्रसन्न होता हूं, जो लोग मेरी पूजा करते हैं, उनकी पराभव नहीं होती। ब्राह्मण वा ब्रह्मचारीको आया हुआ देखके अगाडी ब्राह्मणको आहुति प्रदान करनेसे उसका अमृत भोजन होता है। जो लोग सूर्यकी ओर मुख करके प्रातःसन्ध्या उपासना करते हैं, उन्हें सब तीर्थोंके स्नानका फल प्राप्त होता और वे सब पापोंसे छूट जाते हैं। हे तपोधनगण! आप लोगोंने जो सन्देहयुक्त होके प्रश्न किया था, उसका गुप्त विषय कहा गया, फिर क्या कहूं? (११-१६)

बलदेव बोले, मनुष्योंको सुख देने-वाला परम गुह्य विषय सुनो; जिसे मूढ लोग न जाननेसे प्राणियोंके द्वारा पीडित होके क्लेश पाते हैं। भोरके समय उठके जो मनुष्य गऊ, घृत, दही, सरसों और प्रियङ्गुफल स्पर्श करते हैं, वे पापरहित हुआ करते हैं। तपस्वी लोग अगाडी और पश्चात् भागमें समस्त प्राणियों तथा छिद्र विषयक उच्छिष्टको परित्याग करते हैं।(१७-१९)

देववृन्द बोले, उत्तर दिशाकी ओर मुंह करके जल भरे उदुम्बर पात्र लेकर जो मनुष्य व्रतसंकल्प तथा उपवास करता है, उससे देवता लोग प्रसन्न होते और उसकी कामना सिद्ध

अन्यथा हि वृथा मर्त्याः कुर्वते स्वल्पबुद्धयः ॥ २१ ॥
उपवासे बलौ चापि ताम्रपात्रं विशिष्यते।
बलिर्भिक्षा तथाऽर्घ्यं च पितॄणां च तिलोदकम् ॥२२॥
ताम्रपात्रेण दातव्यमन्यथाऽल्पफलं भवेत्।
गुह्यमेतत्समुद्दिष्टं यथा तुष्यन्ति देवताः ॥ २३ ॥
धर्म उवाच— राजपौरुषिके विप्रे घाण्टिके परिचारिके।
गोरक्षके वाणिजके तथा कारुकुशीलवे ॥ २४ ॥
मित्रद्रुह्यनधीयाने यश्च स्याद् वृषलीपतिः।
एतेषु दैवं पित्र्यं वा न देयं स्यात्कथंचन ॥ २५ ॥
पिण्डदास्तस्य हीयन्ते न च प्रीणाति वै पितॄन्।
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ॥ २६ ॥
पितरस्तस्य देवाश्च अग्नयश्च तथैव हि।
निराशाः प्रतिगच्छन्ति अतिथेरप्रतिग्रहात् ॥ २७ ॥
स्त्रीघ्नैर्गोघ्नैः कृतघ्नैश्च ब्रह्मघ्नैर्गुरुतल्पगैः।
तुल्यदोषो भवत्येभिर्यस्यातिथिरनर्चितः ॥ २८ ॥
अग्निरुवाच— पादमुद्यम्य यो मर्त्यः स्पृशेद्गाश्च सुदुर्मतिः।

होती है, इसके विपरीत मूर्ख लोग वृथा उपवास करते हैं। उपवास और पूजाके कार्यमें ताम्रपात्र श्रेष्ठ है। ताम्रपात्रसे ही बलि, भिक्षा, अर्घ और पितरोंको तिलोदक देना योग्य है, अन्यथा करनेसे अल्प फल होता है। देववृन्द जिस प्रकार प्रसन्न होते हैं, वह गुप्त विधि वर्णित हुई। (२०-२३)

धर्म बोले, राजपुरुषोंके कार्य करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण, घण्टा बजानेवाले सेवक, गोरक्षक, वाणिज्य करनेवाले, कारुकुशीलव, मित्रद्रोही, अपढ और वृषलीपतिको देव तथा पितृकार्यमें किसी प्रकार दान देना उचित नहीं है, उन्हें दान देनेसे पिण्डदाताकी हीनता होती है और वह पितरोंको प्रसन्न नहीं कर सकता। अतिथि आशारहित होकर जिसके घरसे लौट जाता है; उसके पितर, देवता और तीनों अग्नि अतिथिके अप्रतिग्रह निबन्धनसे निराश होकर उसके गृहसे प्रस्थान करते हैं। जिसके गृहपर आके अतिथि अपूजित होकर चला जाता है, वह स्त्रीघ्न, गोघ्न, कृतघ्न, ब्रह्मघाती और गुरुतल्पग पुरुषके सदृश दोषभागी होता है। (२४—२८)

अग्निदेव बोले, जो नीचबुद्धि मनुष्य

ब्राह्मणं वा महाभागं दीप्यमानं तथाऽनलम् ॥ २९ ॥
तस्य दोषान्प्रवक्ष्यामि तच्छृणुध्वं समाहिताः।
दिवं स्पृशत्यशब्दोऽस्य त्रस्यन्ति पितरश्च वै ॥ ३० ॥
वैमनस्यं च देवानां कृतं भवति पुष्कलम्।
पावकश्च महातेजा हव्यं न प्रतिगृह्णति ॥ ३१ ॥
आजन्मनां शतं चैव नरके पच्यते तु सः।
निष्कृतिं च न तस्यापि अनुमन्यन्ति कर्हिचित् ॥३२॥
तस्माद्गावो न पादेन स्प्रष्टव्या वै कदाचन।
ब्राह्मणश्च महातेजा दीप्यमानस्तथाऽनलः ॥ ३३ ॥
श्रद्दधानेन मर्त्येन आत्मनो हितमिच्छता।
एते दोषा मया प्रोक्तास्त्रिषु यः पादमुत्सृजेत् ॥ ३४ ॥
विश्वामित्र उवाच– श्रूयतां परमं गुह्यं रहस्यं धर्मसंहितम्।
परमान्नेन यो दद्यात्पितॄणामौपहारिकम् ॥ ३५ ॥
गजच्छायायां पूर्वस्यां कुतपे दक्षिणामुखः।
यदा भाद्रपदे मासि भवते बहुले मघा ॥ ३६ ॥

पैरसे गौवों, महाभाग ब्राह्मणों और दीप्यमान अग्निको छूते हैं, उनके दोषोंको कहता हूं, सुनो। जो पुरुष ऐसा कार्य करता है, उसका नाम-वाचक शब्द स्वर्गको स्पर्श नहीं करता, उसके पितर भयभीत होते हैं और उससे देवताओंकी अधिक अप्रसन्नता होती है; महातेजस्वी अग्निदेव उसका हव्य ग्रहण नहीं करते। वह एकसौ जन्म नरकमें पडता है, किसी स्थानमें भी उसकी निष्कृति नहीं है; इसलिये गौओंको कदापि पांवसे छूना उचित नहीं है और महातेजस्वी ब्राह्मणों तथा दीप्यमान अग्निको पैरसे स्पर्श न करना चाहिये। जो श्रद्धावान् मनुष्य अपने हितकी कामना करें, वे गऊ, ब्राह्मण और अग्निको पांवसे स्पर्श न करें। जो पुरुष इन तीनोंको पैरसे छूता है, उसके विषयमें ये सब उपरोक्त दोष मेरे द्वारा वर्णित हुए। (२९-३४)

विश्वामित्र बोले, धर्मविषय सम्बन्धीय परम गोपनीय रहस्य सुनो। भादों महीनेके कृष्णपक्षमें मघा नक्षत्रकी त्रयोदशी तिथिमें गजच्छाया योग होनेपर जो लोग दक्षिण ओर मुंह करके कुतपके समय परम अन्नसे पितरोंकी पूजा करते हैं, उस दानसे जैसा अधिक फल होता है, उसे सुनो। पूर्वोक्त रीतिसे जो लोग

श्रूयतां तस्य दानस्य यादृशो गुणविस्तरः ।
कृतं तेन महच्छ्राद्धं वर्षाणीह त्रयोदश ॥ ३७ ॥
गाव ऊचुः— बहुले समङ्गे ह्यकुतोभये च क्षेमे च सख्येव हि भूयसी च ।
यथा पुरा ब्रह्मपुरे सवत्सा शतक्रतोर्वज्रधरस्य यज्ञे ॥३८॥
भूयश्च या विष्णुपदे स्थिता या विभावसोश्चापि पथे स्थिता या ।
देवाश्च सर्वे सह नारदेन प्रकुर्वते सर्वसहेति नाम ॥ ३९ ॥
मंत्रेणैतेनाभिवन्देत यो वै विमुच्यते पापकृतेन कर्मणा ।
लोकानवाप्नोति पुरन्दरस्य गवां फलं चन्द्रमसो द्युतिं च ॥ ४० ॥
एतं हि मन्त्रं त्रिदशाभिजुष्टं पठेत यः पर्वसु गोष्ठमध्ये ।
न तस्य पापं न भयं न शोकः सहस्रनेत्रस्य च याति लोकम् ॥ ४१॥
भीष्म उवाच-अथ सप्त महाभागा ऋषयो लोकविश्रुताः ।
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे ब्रह्माणं पद्मसंभवम् ॥ ४२ ॥
प्रदक्षिणमभिक्रम्य सर्वे प्राञ्जलयः स्थिताः ।
उवाच वचनं तेषां वसिष्ठो ब्रह्मवित्तमः ॥ ४३ ॥
सर्वप्राणिहितं प्रश्नं ब्रह्मक्षत्रे विशेषतः ।

पितरोंका उपहार दान करते हैं, उनके द्वारा इस लोकमें तेरह वर्षमें होनेवाला उत्तम महत् श्राद्धकर्म सिद्ध होता है । (३५-३७)

गौवोंने कहा, पहले समय ब्रह्मपुरमें इन्द्रके यज्ञ विष्णुपद और विभावसुके पथमें स्थिर गौवोंका बहुला, समङ्गा, अकुतोभया, क्षेमा, सखी और भूयसी नाम हुए थे । अनन्तर नारदके सहित सब देवताओंने सर्वसहा नाम रखा था । जो लोग इस मन्त्रके सहारे गौवोंको अभिनन्दित करते हैं, उनके सब पाप कर्म नष्ट होते और उन्हें इन्द्र-लोक मिलता है, इसलिये गौवोंकी सेवा करनेसे चन्द्रमाकी भांति द्युति प्राप्त होती है । जो लोग पर्वके समय गोसमूहके बीच इस देवगणसेवित मन्त्रको पढते हैं, उन्हें न पाप है, न भय है, न शोक है और वे लोग इन्द्रलोक में गमन किया करते हैं । (३८—४१)

भीष्म बोले, अनन्तर लोकविख्यात वसिष्ठ प्रभृति महानुभाव सप्तर्षिगण पद्मयोनि प्रजापतिकी प्रदक्षिण करके हाथ जोडकर खडे हुए तब उनके बीच ब्रह्मवित् वसिष्ठदेव यह वक्ष्यमाण वचन कहनेमें प्रवृत्त हुए । यह प्रश्न सब प्राणियोंको विशेष करके ब्राह्मण

द्रव्यहीनाः कथं मर्त्या दरिद्राः साधुवर्तिनः ॥ ४४ ॥
प्राप्नुवन्तीह यज्ञस्य फलं केन च कर्मणा ।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥ ४५ ॥

ब्रह्मोवाच— अहो प्रश्नो महाभागा गूढार्थः परमः शुभः ।
सूक्ष्मः श्रेयांश्च मर्त्यानां भवद्भिः समुदाहृतः ॥ ४६ ॥
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये निखिलेन तपोधनाः ।
यथा यज्ञफलं मर्त्यो लभते नात्र संशयः ॥ ४७ ॥
पौषमासस्य शुक्ले वै यदा युज्येत रोहिणी ।
तेन नक्षत्रयोगेन आकाशशयनो भवेत् ॥ ४८ ॥
एकवस्त्रः शुचिः स्नातः श्रद्दधानः समाहितः ।
सोमस्य रश्मयः पीत्वा महायज्ञफलं लभेत् ॥ ४९ ॥
एतद्वः परमं गुह्यं कथितं द्विजसत्तमाः ।
यन्मां भवन्तः पृच्छन्ति सूक्ष्मतत्त्वार्थदर्शिनः ॥ ५० ॥ [५९७६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे देवरहस्ये षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

विश्वावसुरुवाच—सलिलस्याञ्जलिं पूर्णमक्षताश्च घृतोत्तराः ।

और क्षत्रियोंको हितकर है । द्रव्यहीन, सच्चरित्र दरिद्र मनुष्य किस प्रकार किसी कर्मके सहारे इस लोकमें यज्ञका फल पाते हैं ? प्रजापति उनका वचन सुनके कहने लगे । (४२—४५)

ब्रह्मा बोले, हे महाभागगण ! तुम लोगोंने जो प्रश्न किया है, उसका अर्थ अत्यन्त गूढ और सूक्ष्म है, यह मनुष्योंके लिये परम शुभ तथा कल्याणकारी है । हे तपोधनगण ! जिस प्रकार मनुष्योंको निःसन्देह यज्ञका फल प्राप्त होता है, उसे मैं विस्तारपूर्वक कहता हूं, सुनो । पौष महीनेके शुक्लपक्षमें जिस दिन रोहिणी नक्षत्रका योग हुआ करता है, उस नक्षत्रयोगमें मनुष्य सूने स्थानमें शयन करे और एकवस्त्रधारी, पवित्र, स्नात, श्रद्धायुक्त तथा समाहित होकर सोमरश्मि पान करनेसे महायज्ञका फल पा सकेगा । हे सूक्ष्मतत्त्वार्थदर्शी द्विजसत्तमगण ! तुम लोगोंने मुझसे जो प्रश्न किया, मैंने तुम्हारे समीप उसका यह परम गुह्य विषय कहा है । (४६-५०)

अनुशासनपर्वमें १२६ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १२७ अध्याय ।

विश्वावसु बोले, जो मनुष्य पौर्ण-

सोमस्योत्तिष्ठमानस्य तज्जलं चाक्षतांश्च तान् ॥ १ ॥
स्थितो ह्यभिमुखो मर्त्यः पौर्णमास्यां बलिं हरेत् ।
अग्निकार्यं कृतं तेन हुताश्चास्याग्नयस्त्रयः ॥ २ ॥
वनस्पतिं च यो हन्यादमावास्यामबुद्धिमान् ।
अपि ह्येकेन पत्रेण लिप्यते ब्रह्महत्यया ॥ ३ ॥
दन्तकाष्ठं तु यः खादेदमावास्यामबुद्धिमान् ।
हिंसितश्चन्द्रमास्तेन पितरश्चोद्विजन्ति च ॥ ४ ॥
हव्यं न तस्य देवाश्च प्रतिगृह्णन्ति पर्वसु ।
कुप्यन्ते पितरश्चास्य कुले वंशोऽस्य हीयते ॥ ५ ॥
श्रीरुवाच- प्रकीर्णं भाजनं यत्र भिन्नभाण्डमथासनम् ।
योषितश्चैव हन्यन्ते कश्मलोपहते गृहे ॥ ६ ॥
देवताः पितरश्चैव उत्सवे पर्वणीषु वा ।
निराशाः प्रतिगच्छन्ति कश्मलोपहताद् गृहात् ॥ ७ ॥
अङ्गिरा उवाच-यस्तु संवत्सरं पूर्णं दद्याद्दीपं करञ्जके ।
सुवर्चलामूलहस्तः प्रजा तस्य विवर्धते ॥ ८ ॥

मासी तिथिमें उदय होते हुए चन्द्रमाकी ओर मुंह करके उसे अञ्जली भरके जल और घृतयुक्त अक्षत बलि उपहार रूपसे प्रदान करता है, उसका अग्निकार्य सिद्ध होता अर्थात् तीनों अग्निमें होम करनेसे जो फल हुआ करता है, वह सिद्ध होता है। जो मूर्ख मनुष्य अमावस्या तिथिमें वनस्पतियोंकी शाखा-पल्लव काटता है, वह एक पत्ता तोडनेसे भी ब्रह्महत्या दोषसे लिप्त होता है। जो मूर्ख मनुष्य अमावस्यामें दतून करता है, उससे चन्द्रमा हिंसित होते और उसके पितर व्याकुल हुआ करते हैं; पर्वके समय सुपर्णगण उसके हव्यको ग्रहण नहीं करते, उसके पितरवृन्द क्रुद्ध होते हैं और उसका कुल वंशहीन होजाता है। (१—५)

लक्ष्मी बोली, जिस पापयुक्त गृहमें जल पीनेके पात्र, आसन तथा अन्य भोजन इधर उधर पडे रहते हैं और स्त्रियें आहत होती हैं, उस पापयुक्त गृहसे उत्सव और पर्वके समय देवता तथा पितृगण निराश होके गमन करते हैं। (६—७)

अंगिरा बोले, जो पुरुष एकवर्षतक सुवर्चला लताकी जड हाथमें लेकर करञ्जक वृक्षके समीप दीपदान करता है, उसकी प्रजा बढती है। (८)

गार्ग्य उवाच-आतिथ्यं सततं कुर्याद्दीपं दद्यात्प्रतिश्रये।
वर्जयानो दिवा स्वापं न च मांसानि भक्षयेत् ॥ ९ ॥
गोब्राह्मणं न हिंस्याच्च पुष्कराणि च कीर्तयेत्।
एष श्रेष्ठतमो धर्मः सरहस्यो महाफलः ॥ १० ॥
अपि क्रतुशतैरिष्ट्वा क्षयं गच्छति तद्धविः।
न तु क्षीयन्ति ते धर्माः श्रद्दधानैः प्रयोजिताः ॥११॥
इदं च परमं गुह्यं सरहस्यं निबोधत।
श्राद्धकल्पे च दैवे च तैर्थिके पर्वणीषु च ॥ १२ ॥
रजस्वला च या नारी श्वित्रिकाऽपुत्रिका च या।
एताभिश्चक्षुषा दृष्टं हविर्नाश्नन्ति देवताः ॥ १३ ॥
पितरश्च न तुष्यन्ति वर्षाण्यपि त्रयोदश।
शुक्लवासाः शुचिर्भूत्वा ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयेत्।
कीर्तयेद्भारतं चैव तथा स्यादक्षयं हविः ॥ १४ ॥
धौम्य उवाच-भिन्नभाण्डं च खट्वां च कुक्कुटं शुनकं तथा।
अप्रशस्तानि सर्वाणि यश्च वृक्षो गृहेरुहः ॥ १५ ॥
भिन्नभाण्डे कलिं प्राहुः खट्वायां तु धनक्षयः।
कुक्कुटे शुनके चैव हविर्नाश्नन्ति देवताः।

गार्ग्य बोले, मनुष्य सदा अतिथि-सेवा करे, यज्ञशालामें दीपदान करे, दिनको न सोवे और मांसभक्षण न न करे। गऊ ब्राह्मणोंकी हिंसा न करे, तीर्थोंका नाम लेवे; यह महाफलजनक सरहस्य धर्म श्रेष्ठ है। सैकडों यज्ञ करनेवालेका हवि क्षययुक्त होता है, परन्तु श्रद्धावान् मनुष्योंके आचरित धर्मका नाश नहीं होता, इसके अतिरिक्त श्राद्धविधि, तीर्थसम्बन्धीय देवकार्य और पूर्वकालका यह परम गोपनीय विषय सुनो। रजस्वला, श्वित्ररोगवाली और वन्ध्या स्त्री जिस हविको देखती हैं, उसे देववृन्द भक्षण नहीं करते; जिसके हविको पूर्वोक्त स्त्रियें देखती हैं, उसके पितर तेरह वर्षतक असन्तुष्ट रहते हैं। श्वेतवस्त्र पहरके पवित्र होकर ब्राह्मणोंसे स्वस्ति-वाचन और महाभारतका पाठ करावे, तो हवि अक्षय होती है। (९-१४)

धौम्य बोले, टूटे पात्र, खाट, कुत्ता, और कुक्कुट तथा गृहमें जो वृक्ष रहते हैं, वे सब अप्रशस्त हैं। पहलेके आचार्योंने कहा है, कि फूटे बरतन

वृक्षमूले ध्रुवं सत्त्वं तस्माद् वृक्षं न रोपयेत् ॥ १६ ॥

जमदग्निरुवाच- यो यजेदश्वमेधेन वाजपेयशतेन च।

अवाक्शिरा वा लम्बेत सत्रं वा स्फीतमाहरेत् ॥१७॥

न यस्य हृदयं शुद्धं नरकं स ध्रुवं व्रजेत्।

तुल्यं यज्ञश्च सत्यं च हृदयस्य च शुद्धता ॥ १८ ॥

शुद्धेन मनसा दत्वा सक्तुप्रस्थं द्विजातये।

ब्रह्मलोकमनुप्राप्तः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १९ ॥ [५९९५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे देवरहस्ये सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

वायुरुवाच— किंचिद्धर्मं प्रवक्ष्यामि मानुषाणां सुखावहम्।

सरहस्याश्च ये दोषास्तान् शृणुध्वं समाहिताः ॥ १ ॥

अग्निकार्यं च कर्तव्यं परमान्नेन भोजनम्।

दीपकश्चापि कर्तव्यः पितॄणां सतिलोदकः ॥ २ ॥

एतेन विधिना मर्त्यः श्रद्दधानः समाहितः।

चतुरो वार्षिकान्मासान्यो ददाति तिलोदकम् ॥ ३ ॥

रहनेसे कलह होता है, टूटी खाट रहनेसे धनका नाश हुआ करता है, कुक्कुट अथवा कुत्ता रहनेपर देवगण हवि भक्षण नहीं करते, वृक्षकी जडमें निश्चय ही सर्प बिच्छू आदि प्राणी रहते हैं; इसलिये घरके बीच वृक्ष लगाना उचित नहीं है। (१५-१६)

जमदग्नि बोले, जो पुरुष सैकडों अश्वमेध वाजपेय यज्ञ करता है अथवा अवाक्शिरा होके लटकता है, तथा बहुतसे सत्र करता है, परन्तु यदि उसका हृदय शुद्ध न रहे, तो वह निश्चयही नरकमें गमन किया करता है। यज्ञ, सत्र और अन्तःकरणकी शुद्धि ये तीनों ही तुल्य हैं। किसी पुरुषने शुद्धचित्तसे ब्राह्मणको एक प्रस्थ सत्तू दान करके ब्रह्मलोकमें गमन किया था, इस विषयमें उसहीका प्रमाण पर्याप्त है। (१७—१९)

अनुशासनपर्वमें १२७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १२८ अध्याय।

वायु बोले, मनुष्योंके लिये सुखदायक कुछ धर्मविषय कहता हूं और रहस्यके सहित जो सब दोष हैं उसे सावधान होकर सुनो। जो लोग वर्षभरके बीच चार महीनेतक वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंको तिलोदक दान करते और शक्तिके अनुसार भोजन कराते हैं, अवश्य

भोजनं च यथाशक्त्या ब्राह्मणे वेदपारगे।
पशुबन्धशतस्येह फलं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥ ४ ॥
इदं चैवापरं गुह्यमप्रशस्तं निबोधत।
अग्नेस्तु वृषलो नेता हविर्मूढाश्च योषितः ॥ ५ ॥
मन्यते धर्म एवेति स चाधर्मेण लिप्यते।
अग्नयस्तस्य कुप्यन्ति शूद्रयोनिं स गच्छति ॥ ६ ॥
पितरश्च न तुष्यन्ति सह देवैर्विशेषतः।
प्रायश्चित्तं तु यत्तत्र ब्रुवतस्तन्निबोध मे ॥ ७ ॥
यत्कृत्वा तु नरः सम्यक् सुखी भवति विज्वरः।
गवां मूत्रपुरीषेण पयसा च घृतेन च ॥ ८ ॥
अग्निकार्यं त्र्यहं कुर्यान्निराहारः समाहितः।
ततः संवत्सरे पूर्णे प्रतिगृह्णन्ति देवताः ॥ ९ ॥
हृष्यन्ति पितरश्चास्य श्राद्धकाल उपस्थिते।
एष ह्यधर्मो धर्मश्च सरहस्यः प्रकीर्तितः ॥ १० ॥
मर्त्यानां स्वर्गकामानां प्रेत्य स्वर्गसुखावहः ॥ ११ ॥ [६००६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे देवरहस्ये अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

कर्त्तव्य अग्निकार्य निभाते, परम अन्नके सहारे भोजन कराते, पितरोंको तिलोदक देते और दीपदान करते हैं, वे श्रद्धावान् समाहित मनुष्य इस ही विधिसे एक सौ पशुबन्ध यज्ञका पुष्कल फल पाते हैं। (१-४)

इसे भी परम गोपनीय और अप्रशस्त जानो कि शूद्र यदि अरणीकी अग्निको देशान्तरमें ले जाय और यदि स्त्रियें सोमाज्यपय प्रभृति यज्ञसे बचे हुए हविके द्वारा मूढ होवें, उसे जो ब्राह्मण धर्म समझता है, वह अधर्मसे लिप्त हुआ करता है। तीनों अग्नि उसपर क्रुद्ध होती, उसे शूद्रयोनि प्राप्त होती है, विशेष करके देव और पितृगण उसके विषयमें प्रसन्न नहीं रहते। उस विषयमें जो प्रायश्चित्त है, जिसे करनेसे मनुष्य भली भांति सुखी और शोकरहित होता है, उसे कहता हूं, सुनो। (५-८)

मनुष्य निराहारी और समाहित होकर तीन दिन गोमय, दूध और घृतसे अग्निकार्य करे; अनन्तर एक वर्ष पूरा होनेपर देवगण उसकी दान

लोमश उवाच— परदारेषु ये सक्ता अकृत्वा दारसंग्रहम्।
निराशाः पितरस्तेषां श्राद्धकाले भवन्ति वै ॥ १ ॥
परदाररतिर्यश्च यश्च वन्ध्यामुपासते।
ब्रह्मस्वं हरते यश्च समदोषा भवन्ति ते ॥ २ ॥
असंभाष्या भवन्त्येते पितॄणां नात्र संशयः।
देवताः पितरश्चैषां नाभिनन्दन्ति तद्धविः ॥ ३ ॥
तस्मात्परस्य वै दारांस्त्यजेद्वन्ध्यां च योषितम्।
ब्रह्मस्वं हि न हर्तव्यमात्मनो हितमिच्छता ॥ ४ ॥
श्रूयतां चापरं गुह्यं रहस्यं धर्मसंहितम्।
श्रद्दधानेन कर्त्तव्यं गुरूणां वचनं सदा ॥ ५ ॥
द्वादश्यां पौर्णमास्यां च मासि मासि घृताक्षतम्।
ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छेत तस्य पुण्यं निबोधत ॥ ६ ॥
सोमश्च वर्धते तेन समुद्रश्च महोदधिः।
अश्वमेधचतुर्भागं फलं सृजति वासवः ॥ ७ ॥

की हुई वस्तु प्रतिग्रह करते हैं और श्राद्धका समय उपस्थित होनेपर उसके पितर हर्षित होते हैं। यह रहस्यके सहित अधर्म और धर्मविषय कहा गया, स्वर्गकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंके परलोकमें गमन करनेपर यह स्वर्गमें सुखदायक हुआ करता है। (८-११)

अनुशासनपर्वमें १२८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १२९ अध्याय।

लोमश बोले, जो लोग दारपरिग्रह न करके पराई स्त्रीमें आसक्त होते हैं, श्राद्धकाल उपस्थित होनेपर उनके पितृगण निराश हुआ करते हैं। जो पुरुष पराई स्त्रीमें रत रहता, जो वन्ध्याकी उपासना करता और जो मनुष्य ब्रह्मस्व हरता है, वे तीनों ही तुल्य दोषभागी होते हैं; उनके पितर निःसन्देह असन्तुष्ट हुआ करते हैं; देवता और पितृगण उनके दिये हुए हविको आदरपूर्वक ग्रहण नहीं करते; इसलिये परस्त्री तथा वन्ध्या नारीको परित्याग करे। (१-४)

जो लोग अपने ऐश्वर्यकी इच्छा करें, उन्हें ब्रह्मस्व हरना उचित नहीं है; धर्मसम्बन्धीय एक और गुप्त रहस्य सुनो। जो श्रद्धावान् मनुष्य सदा गुरुजनोंकी आज्ञा प्रतिपालन करता और प्रतिमहीनेकी द्वादशी और पूर्णिमासीके दिन ब्राह्मणोंको घृत और अक्षता दान करता है, उसका पुण्य सुनो। उसके द्वारा चन्द्रमा तथा

दानेनैतेन तेजस्वी वीर्यवांश्च भवेन्नरः ।
प्रीतश्च भगवान्सोम इष्टान्कामान्प्रयच्छति ॥ ८ ॥
श्रूयतां चापरो धर्मः सरहस्यो महाफलः ।
इदं कलियुगं प्राप्य मनुष्याणां सुखावहः ॥ ९ ॥
कल्यमुत्थाय यो मर्त्यः स्नातः शुक्लेन वाससा ।
तिलपात्रं प्रयच्छेत ब्राह्मणेभ्यः समाहितः ॥ १० ॥
तिलोदकं च यो दद्यात्पितॄणां मधुना सह ।
दीपकं कृसरं चैव श्रूयतां तस्य यत्फलम् ॥ ११ ॥
तिलपात्रे फलं प्राह भगवान्पाकशासनः ।
गोप्रदानं च यः कुर्याद् भूमिदानं च शाश्वतम् ॥ १२ ॥
अग्निष्टोमं च यो यज्ञं यजेत बहुदक्षिणम् ।
तिलपात्रं सहैतेन समं मन्यन्ति देवताः ॥ १३ ॥
तिलोदकं सदा श्राद्धे मन्यन्ते पितरोऽक्षयम् ।
दीपे च कृसरे चैव तुष्यन्तेऽस्य पितामहाः ॥ १४ ॥
स्वर्गे च पितृलोके च पितृदेवाभिपूजितम् ।
एवमेतन्मयोद्दिष्टमृषिदृष्टं पुरातनम् ॥ १५ ॥ [६०२१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे लोमशरहस्ये ऊनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥

महोदधि समुद्रकी वृद्धि होती है, इन्द्र उस प्रदाताको अश्वमेध यज्ञका चौथा भाग फल स्वरूप प्रदान करते हैं। इस दानसे मनुष्य तेजस्वी और वीर्यशाली होता है। और इस दानसे चंद्रमाभी संतुष्ट होकर इच्छित वस्तु प्रदान करता है। एक दूसरा रहस्ययुक्त महाफलजनक धर्म सुनो, यह इस कलियुगमें मनुष्योंको सुख देनेवाला है। (४—९)

जो मनुष्य अत्यन्त भोरके समय उठके स्नान करता और समाहित होके ब्राह्मणोंको सफेद वस्त्र और तिल-पात्र दान किया करता तथा जो मधुके सहित पितरोंको तिलोदक, दीप और कृसर प्रदान करता है, उसका फल सुनो। भगवान् इन्द्रने तिलपात्र दान-का फल कहा है, कि जो लोग गोदान तथा शाश्वत भूमि प्रदान करते हैं तथा जो लोग बहुतसी दक्षिणायुक्त अश्वमेध यज्ञ करते हैं, देवगण तिलपात्र दानके सहित उन सब दानों और यज्ञके

भीष्म उवाच-ततस्त्वृषिगणाः सर्वे पितरश्च सदेवताः।
अरुन्धतीं तपोवृद्धामपृच्छन्त समाहिताः ॥ १ ॥
समानशीलां वीर्येण वसिष्ठस्य महात्मनः।
त्वत्तो धर्मरहस्यानि श्रोतुमिच्छामहे वयम्।
यत्ते गुह्यतमं भद्रे तत्प्रभाषितुमर्हसि ॥ २ ॥
अरुन्धत्युवाच-तपोवृद्धिर्मया प्राप्ता भवतां स्मरणेन वै।
भवतां च प्रसादेन धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥ ३ ॥
सगुह्यान्सरहस्यांश्च तान् शृणुध्वमशेषतः।
श्रद्दधाने प्रयोक्तव्या यस्य शुद्धं तथा मनः ॥ ४ ॥
अश्रद्दधानो मानी च ब्रह्महा गुरुतल्पगः।
असंभाष्या हि चत्वारो नैषां धर्मं प्रकाशयेत् ॥ ५ ॥
अहन्यहनि यो दद्यात्कपिलां द्वादशीः समाः।

फलोंको तुल्य समझते हैं। पितर लोग श्राद्धके समय तिलोदकको सदा अक्षय जानते हैं, दीपदान और कृसर दान करनेसे दाताके पितामहगण प्रसन्न होते हैं। स्वर्गलोक और पितृलोकमें देवताओं तथा पितरोंसे पूजित यह ऋषिदृष्ट पुरातन विषय मैंने कहा है। (१०—१८)

अनुशासनपर्वमें १२९ अध्याय समाप्त

अनुशासनपर्वमें १३० अध्याय।

भीष्म बोले, अनन्तर सब ऋषियों, देवताओं और पितरोंने सावधान होकर तपोवृद्धा अरुन्धतीसे प्रश्न किया। अरुन्धती तपोवृद्धा समान व्रतचारिणी है और जैसा महानुभाव वसिष्ठका प्रभाव है, इसका चरित्र भी वैसा ही है; इसलिये ऋषि लोग इसी भांति निश्चय करके अरुन्धतीसे बोले, हे भद्रे! हम लोग तुम्हारे समीप धर्मरहस्य सुननेकी अभिलाष करते हैं, तुम्हारे समीप जो धर्म अत्यन्त गोपनीय भावसे विद्यमान हो, तुम्हें उसका विषय वर्णन करना योग्य है। (१—२)

अरुन्धती बोली, हे तपोधनगण! आप लोगोंके स्मरण करनेसे ही मेरे तपकी वृद्धि हुई, आप लोगोंकी कृपासे मैं रहस्यके सहित शाश्वत धर्म कहती हूं, उसे पूरी रीतिसे सुनिये। श्रद्धावान् मनुष्य तथा जिनका मन पवित्र हो, उन्हींके समीप इसे कहना योग्य है। अश्रद्धावान्, अहङ्कारी, ब्रह्महत्यारे और गुरुतल्पगामी, इन चारों पुरुषोंके सङ्ग वार्त्तालाप करना योग्य नहीं है। इसलिये इनके निकट

मासि मासि च सत्रेण यो यजेत सदा नरः ॥ ६ ॥
गवां शतसहस्रं च यो दद्याज्ज्येष्ठपुष्करे।
न तद्धर्मफलं तुल्यमतिथिर्यस्य तुष्यति ॥ ७ ॥
श्रूयतां चाऽपरो धर्मो मनुष्याणां सुखावहः।
श्रद्दधानेन कर्तव्यः सरहस्यो महाफलः ॥ ८ ॥
कल्यमुत्थाय गोमध्ये गृह्य दर्भान्सहोदकान्।
निषिञ्चेत गवां शृङ्गे मस्तकेन च तज्जलम् ॥ ९ ॥
प्रतीच्छेत निराहारस्तस्य धर्मफलं शृणु।
श्रूयन्ते यानि तीर्थानि त्रिषु लोकेषु कानिचित् ॥१०॥
सिद्धचारणजुष्टानि सेवितानि महर्षिभिः।
अभिषेकः समस्तेषां गवां शृङ्गोदकस्य च ॥ ११ ॥
साधु साध्विति चोद्दिष्टं दैवतैः पितृभिस्तथा।
भूतैश्चैव सुसंहृष्टैः पूजिता साऽप्यरुन्धती ॥ १२ ॥
पितामह उवाच—अहो धर्मो महाभागे सरहस्य उदाहृतः।
वरं ददामि ते धन्ये तपस्ते वर्धतां सदा ॥ १३ ॥

धर्म प्रकाश न करे। (३—५)

जो लोग बारह बरसतक प्रतिदिन एक एक कपिला गऊ प्रदान करते, जो मनुष्य प्रति महीने सदा सत्र किया करते और जो लोग ज्येष्ठ पुष्करमें सहस्र गौ दान करते हैं, उनके धर्मका फल जिसके गृहमें अतिथि सन्तुष्ट होते हैं, उसके सदृश नहीं है। मनुष्योंको सुख देनेवाला दूसरा धर्म सुनो। श्रद्धावान् मनुष्योंको यह महाफल, रहस्ययुक्त धर्म प्रतिपालन करना उचित है। भोरके समय उठके जलयुक्त दाभ ग्रहण करके वही जल गोशृंगमें सेचन करे और निराहारी रहके वही जल माथेपर चढावे, उससे जो फल होता है, उसे सुनो। (९–१०)

तीनों लोकोंके बीच जो सब सिद्ध, चारणों और मनीषियोंसे सेवित तीर्थ हैं, उनमें स्नान करनेसे जो फल होता है, गौवोंके शृङ्गोदकसे अभिषिक्त होने पर उसके समान फल हुआ करता है। अरुन्धतीका ऐसा वचन सुनके देवताओं, पितरों और सब प्राणियोंने सन्तुष्ट होकर धन्य धन्य कहके उसकी पूजा की। (१०—१२)

ब्रह्मा बोले, हे महाभागे! तुमने जो रहस्ययुक्त धर्म कहा, वह अत्यन्त आश्चर्ययुक्त है। हे धन्ये! मैं तुम्हें वर

यम उवाच— रमणीया कथा दिव्या युष्मत्तो या मया श्रुता।
श्रूयतां चित्रगुप्तस्य भाषितं मम च प्रियम् ॥ १४ ॥
रहस्यं धर्मसंयुक्तं शक्यं श्रोतुं महर्षिभिः।
श्रद्दधानेन मर्त्येन आत्मनो हितमिच्छता ॥ १५ ॥
न हि पुण्यं तथा पापं कृतं किंचिद्विनश्यति।
पर्वकाले च यत्किंचिदादित्यं चाधितिष्ठति ॥ १६ ॥
प्रेतलोकं गते मर्त्ये तत्तत्सर्वं विभावसुः।
प्रतिजानाति पुण्यात्मा तच्च तत्रोपयुज्यते ॥ १७ ॥
किंचिद्धर्मं प्रवक्ष्यामि चित्रगुप्तमतं शुभम्।
पानीयं चैव दीपं च दातव्यं सततं तथा ॥ १८ ॥
उपानहौ च च्छत्रं च कपिला च यथायथम्।
पुष्करे कपिला देया ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ १९ ॥
अग्निहोत्रं च यत्नेन सर्वशः प्रतिपालयेत्।
अयं चैवाऽपरो धर्मश्चित्रगुप्तेन भाषितः ॥ २० ॥
फलमस्य पृथक्त्वेन श्रोतुमर्हन्ति सत्तमाः।
प्रलयं सर्वभूतैस्तु गन्तव्यं कालपर्ययात् ॥ २१ ॥

देता हूं, सदा तुम्हारे तपकी वृद्धि हो। (१३)

यम बोले, तुम्हारे समीप मैंने जो दिव्य कथा सुनी, वह अत्यन्त रमणीय है। अब हमारे प्रिय चित्रगुप्तका वचन सुनो। यह धर्मयुक्त रहस्य महर्षियोंको भी सुनना योग्य है, जो श्रद्धावान् मनुष्य अपने हितकी इच्छा करते हैं, उनका किया हुआ पापपुण्य कुछ भी विनष्ट नहीं होता। पर्वके समय जो कुछ आदित्यके समीप पहुंचता है, मनुष्यके परलोकमें जानेपर भगवान् सूर्य उन सब विषयोंको जानते हैं और पुण्यात्मा मनुष्य उन्हीं विषयोंको भोग किया करते हैं। चित्रगुप्तका कुछ पवित्र मत कहता हूं; जल, दीपक, पादुका और कपिला गऊ सदा दान करना योग्य है, पुष्कर तीर्थमें वेद जाननेवाले ब्राह्मणको कपिला (कामधेनु) गऊ दान करना उचित है (१४—१९)

सब भांतिसे यत्नपूर्वक अग्निहोत्र करे, इसके अतिरिक्त दूसरे धर्म भी चित्रगुप्तके द्वारा वर्णित हुए हैं। हे सत्तमगण! इसके फल पृथक् पृथक् रीतिसे सुनने योग्य हैं। कालक्रमसे सब प्राणी ही प्रलयको प्राप्त होंगे, उस

तत्र दुर्गमनुप्राप्ताः क्षुत्तृष्णापरिपीडिताः ।
दह्यमाना विपच्यन्ते न तत्रास्ति पलायनम् ॥ २२ ॥
अन्धकारं तमो घोरं प्रविशन्त्यल्पबुद्धयः ।
तत्र धर्मं प्रवक्ष्यामि येन दुर्गाणि सन्तरेत् ॥ २३ ॥
अल्पव्ययं महार्थं च प्रेत्य चैव सुखोदयम् ।
पानीयस्य गुणा दिव्याः प्रेतलोके विशेषतः ॥ २४ ॥
तत्र पुण्योदका नाम नदी तेषां विधीयते ।
अक्षयं सलिलं तत्र शीतलं ह्यमृतोपमम् ॥ २५ ॥
स तत्र तोयं पिबति पानीयं यः प्रयच्छति ।
प्रदीपस्य प्रदानेन श्रूयतां गुणविस्तरः ॥ २६ ॥
तमोऽन्धकारं नियतं दीपदो न प्रपश्यति ।
प्रभां चास्य प्रयच्छन्ति सोमभास्करपावकाः ॥ २७ ॥
देवताश्चानुमन्यन्ते विमलाः सर्वतोदिशः ।
द्योतते च यथाऽऽदित्यः प्रेतलोकगतो नरः ॥ २८ ॥
तस्माद्दीपः प्रदातव्यः पानीयं च विशेषतः ।
कपिलां ये प्रयच्छन्ति ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ २९ ॥

समयमें वे दुर्गम स्थानोंमें पहुंचके भूख प्याससे पीडित तथा दह्यमान होकर परिपाकावस्था लाभ करेंगे, वहां भागनेका उपाय नहीं है, अल्पबुद्धि मनुष्य घोर अन्धकारमें प्रवेश करेंगे । उस समय जिसके सहारे पुरुष दुर्गम स्थानोंसे पार होता है, वह धर्म कहता हूं । (२०—२३)

थोडे व्ययसे होनेवाले महत् प्रयोजनसाधक कार्यसे परलोकमें सुख मिलता है जलदानके दिव्य फल परलोकमें विशेष रीतिसे उपकारक हुआ करते हैं, वहांपर जलदाताके लिये पुण्योदका नदी विहित है, उसमें अक्षय शीतल जल अमृतसदृश हुआ करता है । जो लोग इस लोकमें जलदान करते हैं, वे परलोकमें उस नदीके जलको पीनेके अधिकारी हैं । दीपकदानसे जो फल होता है, उसे सुनो । दीपदाता मनुष्यको सदा अन्धकार नहीं दिखाई देता, उसे चन्द्रमा, अग्नि और सूर्य प्रभा प्रदान करते हैं, देववृन्द उसका संमान किया करते और सब दिशा उसके समीप निर्मल होती हैं । दीपदान करनेवाला मनुष्य परलोकमें जाकर सूर्यकी भांति प्रकाशित होता है, इसलिये दीपदान

पुष्करे च विशेषेण श्रूयतां तस्य यत्फलम् ।
गोशतं सवृषं तेन दत्तं भवति शाश्वतम् ॥ ३० ॥
पापं कर्म च यत्किंचिद्ब्रह्महत्यासमं भवेत् ।
शोधयेत्कपिला ह्येका प्रदत्तं गोशतं यथा ॥ ३१ ॥
तस्मात्तु कपिला देया कौमुद्यां ज्येष्ठपुष्करे ।
न तेषां विषमं किंचिन्न दुःखं न च कण्टकाः ॥ ३२ ॥
उपानहौ च यो दद्यात्पात्रभूते द्विजोत्तमे ।
छत्रदाने सुखां छायां लभते परलोकगः ॥ ३३ ॥
न हि दत्तस्य दानस्य नाशोऽस्तीह कदाचन ।
चित्रगुप्तमतं श्रुत्वा हृष्टरोमा विभावसुः ॥ ३४ ॥
उवाच देवताः सर्वाः पितॄंश्चैव महाद्युतिः ।
श्रुतं हि चित्रगुप्तस्य धर्मगुह्यं महात्मनः ॥ ३५ ॥
श्रद्दधानाश्च ये मर्त्या ब्राह्मणेषु महात्मसु ।
दानमेतत्प्रयच्छन्ति न तेषां विद्यते भयम् ॥ ३६ ॥
धर्मदोषास्त्विमे पञ्च येषां नास्तीह निष्कृतिः ।

और विशेष रीतिसे जल दान करना चाहिये। जो लोग पुष्कर तीर्थमें वेद-पारग ब्राह्मणको कपिला गऊ प्रदान करते हैं, उनका उस विषयमें विशेष फल सुनो। (२४—३०)

जो लोग पुष्करमें कामधेनु दान करते हैं, उन्हें वृषभके सहित एक सौ गऊका फल मिलता है, जो कोई पाप ब्रह्महत्याके सदृश भी हो, उसे भी वह दान की हुई एक सौ गौवोंके सदृश कपिला गऊ दूर करती है, इसलिये पुष्करतीर्थमें जाके शुक्लपक्षमें कपिला गऊ अवश्य दान करना चाहिये। जो लोग सत्पात्र ब्राह्मणको दो पादुका दान करते हैं, उन्हें किसी विषयमें कुछ दुःख तथा काँटे का भय नहीं होता। (३०—३२)

छत्र दान करनेवाले मनुष्यको पर-लोकमें जानेपर सुखकी छाया प्राप्त होती है, इस लोकमें दान करनेसे कदापि उसका विनाश नहीं होता। चित्र-गुप्तका मत सुनके महातेजस्वी भगवान् सूर्य पुलकित होकर सब देवताओं और पितरोंसे बोले, कि जो श्रद्धावान् मनुष्य महानुभाव ब्राह्मणोंको यह सब वस्तु दान करते हैं, उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं होता। कर्मदोषयुक्त नीचे कहे हुए इन पाचों पुरुषोंकी

असंभाष्या अनाचारा वर्जनीया नराधमाः ॥ ३७ ॥
ब्रह्महा चैव गोघ्नश्च परदाररतश्च यः ।
अश्रद्दधानश्च नरः स्त्रियं यश्चोपजीवति ॥ ३८ ॥
प्रेतलोकगता ह्येते नरके पापकर्मिणः ।
पच्यन्ते वै यथा मीनाः पूयशोणितभोजनाः ॥ ३९ ॥
असंभाष्याः पितॄणां च देवानां चैव पञ्च ते ।
स्नातकानां च विप्राणां ये चाऽन्ये च तपोधनाः ॥४०॥ [६०६१]

इति श्रीमहा०अनु०पर्वणि दानधर्मे अरुन्धतीचित्रगुप्तरहस्ये त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३०॥

भीष्म उवाच— ततः सर्वे महाभागा देवाश्च पितरश्च ह ।
ऋषयश्च महाभागाः प्रमथान्वाक्यमब्रुवन् ॥ १ ॥
भवन्तो वै महाभागा अपरोक्षनिशाचराः ।
उच्छिष्टानशुचीन्क्षुद्रान्कथं हिंसथ मानवान् ॥ २ ॥
के च स्मृताः प्रतीघाता येन मर्त्यांन्न हिंसथ ।
रक्षोघ्नानि च कानि स्युर्यैर्गृहेषु प्रणश्यथ ।
श्रोतुमिच्छाम युष्माकं सर्वमेतन्निशाचराः ॥ ३ ॥

प्रमथा ऊचुः— मैथुनेन सदोच्छिष्टाः कृते चैवाऽधरोत्तरे ।

निष्कृति नहीं है, वे असम्भाष्य, अनाचारी अधम मनुष्य परित्याज्य हैं; ब्रह्महत्यारे, गोघाती, परस्त्रीरत, अश्रद्धावान् और जो पुरुष स्त्रीको उपजीव्य किया करता है, ये सब पापकर्म करनेवाले प्रेतलोकमें जाकर रुधिरपूय खानेवाली मछलियों को भांति परिपाक लाभ करते हैं। पितर, देवता, स्नातक ब्राह्मण और इनके अतिरिक्त जो सब तपस्वी हैं, उन्हें योग्य है, कि उक्त पांच पुरुषोंसे वार्त्तालाप न करें। (३२—४०)

अनुशासनपर्वमें १३१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १३२ अध्याय।

भीष्म बोले, अनन्तर महाभाग देवताओं, पितरों और ऋषियोंने राक्षसोंसे कहा। हे निशाचरगण! तुम सब कोई महाऐश्वर्यशाली अपरोक्ष-निशाचर हो, तुम किस प्रकार जूठे, अपवित्र और क्षुद्र मनुष्योंकी हिंसा किया करते हो? ऐसा रक्षोघ्न उपाय क्या है, जिसके सहारे तुम लोग गृहके बीच ही प्रनष्ट होजाओ, हम लोग इस विषयको तुम्हारे समीप सुननेकी इच्छा करते हैं। (१—३)

निशाचरोंने कहा, मनुष्य मैथुनके

मोहान्मांसानि खादेत वृक्षमूले च यः स्वपेत् ॥ ४ ॥
आमिषं शीर्षतो यस्य पादतो यश्च संविशेत् ।
तत उच्छिष्टकाः सर्वे बहुच्छिद्राश्च मानवाः ॥ ५ ॥
उदके चाप्यमेध्यानि श्लेष्माणं च प्रमुञ्चति ।
एते भक्ष्याश्च वध्याश्च मानुषा नात्र संशयः ॥ ६ ॥
एवंशीलसमाचारान्धर्षयामो हि मानवान् ।
श्रूयतां च प्रतीघातान्यैर्न शक्नुम हिंसितुम् ॥ ७ ॥
गोरोचनासमालम्भो वचाहस्तश्च यो भवेत् ।
घृताक्षतं च यो दद्यान्मस्तके तत्परायणः ॥ ८ ॥
ये च मांसं न खादन्ति तान्न शक्नुम हिंसितुम् ।
यस्य चाग्निर्गृहे नित्यं दिवा रात्रौ च दीप्यते ॥ ९ ॥
तरक्षोश्चर्मदंष्ट्राश्च तथैव गिरिकच्छपः ।
आज्यधूमो बिडालश्च च्छागः कृष्णोऽथ पिङ्गलः॥१०॥
येषामेतानि तिष्ठन्ति गृहेषु गृहमेधिनाम् ।

द्वारा सदा जूठे होते हैं और जो लोग हीन पुरुषोंको श्रेष्ठ करते और उत्तम जनोंका अपमान किया करते हैं, वे सदा जूठे हैं। जो मनुष्य मोहवश होकर मांस भक्षण किया करते, वृक्षकी जडमें सोते शिरपर मांस रखके शयन किया करते तथा शय्यापर पांवके स्थानमें सिर रखके सोते हैं, वे सभी जूठे हैं, इसलिये मनुष्योंके बहुतसे छिद्र हैं। जो लोग जलके बीच अपवित्र वस्तु और श्लेष्म परित्याग करते हैं, वे सब मनुष्य निःसन्देह हम लोगोंके भक्ष्य और वध्य हैं, जिनके इसी प्रकार स्वभाव और ऐसे ही व्यवहार हैं, उन्हीं मनुष्योंको हम लोग धर्षण किया करते हैं और जिसके कारणसे हम हिंसा करनेमें असमर्थ होते हैं, उन प्रतिघात विषयों को सुनो। (४—७)

जो पुरुष गोरोचन समालम्भन और हाथमें वचा धारण करता है और उसमें रत होके माथेपर घृताक्षत लगाता है तथा जो लोग मांस भक्षण नहीं करते, हम उनकी हिंसा करनेमें समर्थ नहीं हैं। जिसके गृहमें रातदिन अग्नि जलती रहती है, जिन गृहस्थोंके घरमें तरक्षु व्याघ्रके चमडे तथा दांत रहते हैं, पर्वतकी गुफामें शयन करनेवाले स्थूल कच्छप, घृतका धूआं, बिडाल और काले तथा पीले बकरे विद्यमान

तान्यधृष्याण्यगाराणि पिशिताशैः सुदारुणैः ॥ ११ ॥
लोकानस्मद्विधा ये च विचरन्ति यथासुखम् ।
तस्मादेतानि गेहेषु रक्षोघ्नानि विशांपते ।
एतद्वः कथितं सर्वं यत्र वः संशयो महान् ॥ १२ ॥ [६०७१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे प्रमथरहस्ये एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

भीष्म उवाच-ततः पद्मप्रतीकाशः पद्मोद्भूतः पितामहः ।
उवाच वचनं देवान्वासवं च शचीपतिम् ॥ १ ॥
अयं महाबलो नागो रसातलचरो बली ।
तेजस्वी रेणुको नाम महासत्त्वपराक्रमः ॥ २ ॥
अतितेजस्विनः सर्वे महावीर्या महागजाः ।
धारयन्ति महीं कृत्स्नां सशैलवनकाननाम् ॥ ३ ॥
भवद्भिः समनुज्ञातो रेणुकस्तान्महागजान् ।
धर्मगुह्यानि सर्वाणि गत्वा पृच्छतु तत्र वै ॥ ४ ॥
पितामहवचः श्रुत्वा ते देवा रेणुकं तदा ।
प्रेषयामासुरव्यग्रा यत्र ते धरणीधराः ॥ ५ ॥
रेणुक उवाच-अनुज्ञातोऽस्मि देवैश्च पितृभिश्च महाबलाः ।

रहते हैं, महाघोर राक्षसगण उन गृहोंमें जानेमें समर्थ नहीं हैं। हमारे समान पुरुष सुखपूर्वक सब लोकोंमें विचरते हैं, इसलिये गृहमें इन सब विषयोंके रहनेपर राक्षस लोग उन गृहोंमें उपद्रव नहीं कर सकते। जिसमें तुम लोगोंको महान् सन्देह हुआ था, वह विषय तुम्हारे समीप वर्णित हुआ। (८-१२)

अनुशासनपर्वमें १३१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १३२ अध्याय।

भीष्म बोले, अनन्तर पद्मप्रतीकाश कमलयोनि ब्रह्मा देवताओं तथा शची-पति इन्द्रसे यह वचन बोले, यह रसातलचारी महाबली पराक्रमी रेणुक नाम तेजस्वी नाग है। इसके अतिरिक्त अत्यन्त तेजस्वी महाबलवान महा हस्तीगण पर्वत और वनके सहित समस्त पृथ्वीमण्डलको धारण कर रहे हैं; रेणुक तुम लोगोंकी अनुमतिके अनुसार वहां जाकर उन महागजोंसे गोपनीय धर्म पूछे। देवताओंने पितामहका वचन सुनके उस समय जिन स्थानोंमें वे धरणीधर दिग्गज अव्यक्त प्रभावसे वर्त्तमान थे, वहां रेणुकको भेजा। (१-५)

धर्मगुह्यानि युष्माकं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
कथयध्वं महाभागा यद्वस्तत्त्वं मनीषितम् ॥ ६ ॥
दिग्गजा ऊचुः-कार्तिके मासि चाऽश्लेषा बहुलस्याष्टमी शिवा ।
तेन नक्षत्रयोगेन यो ददाति गुडौदनम् ॥ ७ ॥
इमं मन्त्रं जपञ्छ्राद्धे यताहारो ह्यकोपनः ।
बलदेवप्रभृतयो ये नागा बलवत्तराः ॥ ८ ॥
अनन्ता ह्यक्षया नित्यं भोगिनः सुमहाबलाः ।
तेषां कुलोद्भवा ये च महाभूता भुजङ्गमाः ॥ ९ ॥
ते मे बलिं प्रयच्छन्तु बलतेजोऽभिवृद्धये ।
यदा नारायणः श्रीमानुज्जहार वसुन्धराम् ॥ १० ॥
तद्बलं तस्य देवस्य धरामुद्धरतस्तथा ।
एवमुक्त्वा बलिं तत्र वल्मीके तु निवेदयेत् ॥ ११ ॥
गजेन्द्रकुसुमाकीर्णं नीलवस्त्रानुलेपनम् ।
निर्वपेत्तं तु वल्मीके अस्तं याते दिवाकरे ॥ १२ ॥
एवं तुष्टास्ततः सर्वे अधस्ताद्भारपीडिताः ।
श्रमं तं नावबुध्यामो धारयन्तो वसुन्धराम् ॥ १३ ॥

रेणुक बोले, हे महाबली गजगण ! मैं आप लोगोंके समीप गोपनीय धर्मोंको सुननेके लिये देवताओं और पितरोंकी आज्ञासे आया हूं। हे महाभागगण ! इसलिये आप लोग समाहित होकर धर्मविषय कहिये। (६)

दिग्गजगण बोले, कार्तिक महीनेमें कृष्णपक्षके आश्लेषा नक्षत्रयुक्त अष्टमी तिथिमें लोग श्राद्धके समय यताहारी और क्रोधरहित होकर नीचे कहे हुए मन्त्रको जपकर गुडौदन दान करें। बलदेव प्रभृति जो सब बलवान अनन्त अक्षय नित्यभोगी महाबली नाग हैं और उनके कुलमें उत्पन्न हुए जो महाभूत सर्प हैं, वे बल और तेजकी वृद्धिके लिये मेरे बलिको प्रतिग्रह करें। जिस समय श्रीमान् नारायणने वसुन्धराका उद्धार किया था, पृथ्वीका उद्धार करनेवाले उस ही विष्णुके सदृश बल होवे, इस मन्त्रको पढके बिलके बीच बलि निवेदन करें; जब सूर्यका अस्त होजाय, तब गजेन्द्र पुष्पसे युक्त काले वस्त्रसे ढकी हुई बलिको बिलमें डाले। (७-१२)

इसके प्रभावसे रसातलमें हम लोग भारसे अत्यन्त पीडित होनेपर भी सन्तुष्ट होते हैं और पृथ्वीको धारण करनेका

एवं मन्यामहे सर्वे भारार्ता निरपेक्षिणः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यद्युपोषितः ॥ १४ ॥
एवं संवत्सरं कृत्वा दानं बहुफलं लभेत् ।
वल्मीके बलिमादाय तन्नो बहुफलं मतम् ॥ १५ ॥
ये च नागा महावीर्यास्त्रिषु लोकेषु कृत्स्नशः ।
कृतातिथ्या भवेयुस्ते शतं वर्षाणि तत्त्वतः ॥ १६ ॥
दिग्गजानां च तच्छ्रुत्वा देवताः पितरस्तथा ।
ऋषयश्च महाभागाः पूजयन्ति स्म रेणुकम् ॥ १७ ॥ [६०९०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे दिग्गजानां रहस्ये द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

महेश्वर उवाच-सारमुद्धृत्य युष्माभिः साधुधर्म उदाहृतः ।
धर्मगुह्यमिदं मत्तः शृणुध्वं सर्व एव ह ॥ १ ॥
येषां धर्माश्रिता बुद्धिः श्रद्दधानाश्च ये नराः ।
तेषां स्यादुपदेष्टव्यः सरहस्यो महाफलः ॥ २ ॥
निरुद्विग्नस्तु यो दद्यान्मासमेकं गवाह्निकम् ।
एकभक्तं तथाऽश्नीयाच्छ्रूयतां तस्य यत्फलम् ॥ ३ ॥

परिश्रम मालूम नहीं होसकता, हम लोग इस ही प्रकार भारार्त और निरपेक्ष होकर सब विषयोंको जानते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यदि उपवासी होकर एक वर्षतक इस ही प्रकार दान करें, तो उन्हें बहुत फल होता है। वल्मीकमें बलि प्रदान करनेपर हमारे मतसे अत्यन्त फल हुआ करता है, तीनों लोकोंमें जो सब महापराक्रमी नाग हैं, एक सौ वर्षतक यथार्थ रीतिसे उनका आतिथ्य होता है। देवताओं, पितरों और महाभाग ऋषियोंने दिग्गजोंका ऐसा वचन सुनके रेणुककी विधिवत् पूजा की। (१३-१७)

अनुशासनपर्वमें १३२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १३३ अध्याय।

महेश्वर बोले, तुम लोगोंने सारतत्त्व उद्धार करके साधु-धर्म वर्णन किया, अब मेरे समीप सब कोई गोपनीय धर्म सुनो। जिन मनुष्योंकी बुद्धि धर्म-युक्त है और जो श्रद्धावान हैं, उन्हें यह महाफलजनक रहस्ययुक्त धर्म उपदेश करना चाहिये। जो लोग सावधान होकर एक महीनेतक गवाह्निक नाम गोसेवा करते और दिनमें एकवार भोजन किया करते हैं, उन्हें जो फल मिलता है, उसे सुनो। (१—३)

इमा गावो महाभागाः पवित्रं परमं स्मृताः ।
त्रीँल्लोकान्धारयन्ति स्म सदेवासुरमानुषान् ॥ ४ ॥
तासु चैव महापुण्यं शुश्रूषा च महाफलम् ।
अहन्यहनि धर्मेण युज्यते वै गवाह्निकः ॥ ५ ॥
मया ह्येता ह्यनुज्ञाताः पूर्वमासन्कृते युगे ।
ततोऽहमनुनीतो वै ब्रह्मणा पद्मयोनिना ॥ ६ ॥
तस्माद्ध्वजस्थानगतस्तिष्ठत्युपरि मे वृषः ।
रमेऽहं सह गोभिश्च तस्मात्पूज्याः सदैवताः ॥ ७ ॥
महाप्रभावा वरदा वरं दद्युरुपासिताः ।
ता गावोऽस्यानुमन्यन्ते सर्वकर्मसु यत्फलम् ॥ ८ ॥
तस्य तत्र चतुर्भागो यो ददाति गवाह्निकम् ॥ ९ ॥ [६०९९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे महादेवरहस्ये त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

स्कन्द उवाच— ममाप्यनुमतो धर्मस्तं शृणुध्वं समाहिताः ।
नीलषण्डस्य शृङ्गाभ्यां गृहीत्वा मृत्तिकां तु यः ॥ १ ॥
अभिषेकं त्र्यहं कुर्यात्तस्य धर्मं निबोधत ।

ये सब महाभाग गौवें परम पवित्र रूपसे कही गई हैं, ये देव, असुर और मनुष्योंके सहित तीनों लोकोंको धारण कर रही हैं, इनकी सेवा करनेसे महापुण्य और महाफल मिलता है। गौवोंकी सेवा करनेवाले पुरुष प्रतिदिन धर्म उपार्जन किया करते हैं; पहले सत्ययुगमें गोगण मेरे द्वारा अनुज्ञात हुई थीं, अनन्तर पद्मयोनि प्रजापतिने मुझसे विनय की, उस ही निमित्त वृषभ मेरे ध्वजस्थानमें निवास करता है, मैं गौवोंके साहित क्रीडा करता हूं, इस ही निमित्त वे सदा पूजनीय हैं। महाप्रभावयुक्त वर देनेवाली गौवें उपासित होनेपर वरदान करती हैं, मनुष्य सब कर्मोंके करनेसे जो फल पाता है, गौवें वह सब अनुमोदन किया करती हैं। जो लोग एक महीनेतक गौवोंकी सेवा करते हैं उन्हें उस फलका चौथा भाग प्राप्त होता है। (४—९)

अनुशासनपर्वमें १३३ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १३४ अध्याय।

स्कन्द बोले, सब कोई सावधान होके मेरा अनुमत धर्म सुनो। काले वृषभके दोनों सींगोंसे मृत्तिका लेकर

शोधयेदशुभं सर्वमाधिपत्यं परत्र च ॥ २ ॥
यावच्च जायते मर्त्यस्तावच्छूरो भविष्यति।
इदं चाप्यपरं गुह्यं सरहस्यं निबोधत ॥ ३ ॥
प्रगृह्यौदुम्बरं पात्रं पक्वान्नं मधुना सह।
सोमस्योत्तिष्ठमानस्य पौर्णमास्यां बलिं हरेत् ॥ ४ ॥
तस्य धर्मफलं नित्यं श्रद्दधाना निबोधत।
साध्या रुद्रास्तथाऽऽदित्या विश्वेदेवास्तथाश्विनौ ॥ ५ ॥
मरुतो वसवश्चैव प्रतिगृह्णन्ति तं बलिम्।
सोमश्च वर्धते तेन समुद्रश्च महोदधिः ॥ ६ ॥
एष धर्मो मयोद्दिष्टः सरहस्यः सुखावहः ॥ ७ ॥
विष्णुरुवाच- धर्मगुह्यानि सर्वाणि देवतानां महात्मनाम्।
ऋषीणां चैव गुह्यानि यः पठेदाह्निकं सदा ॥ ८ ॥
शृणुयाद्वाऽनसूयुर्यः श्रद्दधानः समाहितः।
नास्य विघ्नः प्रभवति भयं चास्य न विद्यते ॥ ९ ॥
ये च धर्माः शुभाः पुण्याः सरहस्या उदाहृताः।
तेषां धर्मफलं तस्य यः पठेत जितेन्द्रियः ॥ १० ॥

जो लोग तीन दिन अभिषेक करते हैं, उस धर्मका फल कहता हूं। वे सब पापोंसे रहित होकर परलोकमें आधिपत्य पाते हैं और वे मनुष्य जन्म लेनेपर शूर होते हैं। और भी एक दूसरा गोपनीय रहस्य सुनो। उदुम्बर-पात्रमें मधुके सहित पक्वान्न रखके पौर्णमासी तिथिमें उदय होते हुए चन्द्रमाको बलि प्रदान करे। हे श्रद्धावान् तपोधनगण! उस विषयका नित्य धर्मफल सुनो। साध्यगण, रुद्र-गण, आदित्यगण, विश्वदेवगण, दोनों अश्विनीकुमार मरुद्गण और वसुगण उस बलिको प्रतिग्रह करते हैं, उससे चन्द्रमा और महोदधि समुद्रकी वृद्धि होती है। यह रहस्ययुक्त सुखदायक धर्म मेरे द्वारा वर्णित हुआ। (१-७)

विष्णु बोले, जो पुरुष असूयारहित, श्रद्धावान् और सावधान होकर प्रतिदिन देवताओं तथा ऋषियोंके गोपनीय धर्मोंका पाठ करता अथवा सुनता है, उसे कुछ भी विघ्न नहीं प्राप्त होते और न किसी भांतिका भय रहता है। जो सब रहस्ययुक्त, शुभ और पवित्र धर्म वर्णित हुए हैं, जो पुरुष विशेष रीतिसे जितेन्द्रिय होके उसका पाठ

नास्य पापं प्रभवति न च पापेन लिप्यते ।
पठेद्वा श्रावयेद्वाऽपि श्रुत्वा वा लभते फलम् ॥ ११ ॥
भुञ्जते पितरो देवा हव्यं कव्यमथाक्षयम् ।
श्रावयंश्चापि विप्रेन्द्रान्पर्वसु प्रयतो नरः ॥ १२ ॥
ऋषीणां देवतानां च पितॄणां चैव नित्यदा ।
भवत्यभिमतः श्रीमान्धर्मेषु प्रयतः सदा ॥ १३ ॥
कृत्वाऽपि पापकं कर्म महापातकवर्जितम् ।
रहस्यधर्मं श्रुत्वेमं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १४ ॥
भीष्म उवाच– एतद्धर्मरहस्यं वै देवतानां नराधिप ।
व्यासोद्दिष्टं मया प्रोक्तं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ १५ ॥
पृथिवी रत्नसंपूर्णा ज्ञानं चेदमनुत्तमम् ।
इदमेव ततः श्राव्यमिति मन्येत धर्मवित् ॥ १६ ॥
नाश्रद्दधानाय न नास्तिकाय न नष्टधर्माय न निर्घृणाय ।
न हेतुदुष्टाय गुरुद्विषे वा नानात्मभूताय निवेद्यमेतत् ॥ १७ ॥ [६११६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे स्कन्ददेवरहस्ये चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

करता है, उसे उन्हीं धर्मोंका फल प्राप्त होता है, उसके पाप छूट जाते और वह पापोंसे लिप्त नहीं होता। (८-११)

यह सब धर्मरहस्य पढके सुनानेवालोंको भी फल मिलता है, पितर और देवगण उनका अक्षय हव्यकव्य भोग करते हैं। जो मनुष्य पर्वके समय सावधान होके ब्राह्मणोंको यह विषय सुनाते हैं, वे ऋषियों, देवताओं और पितरोंके अभिमत, श्रीमान् और धर्म विषयमें सदा प्रवृत्त हुआ करते हैं; मनुष्य महापातकके अतिरिक्त सब पाप कर्म करके भी यह रहस्यधर्म सुननेसे पापहीन होता है। (११—१४)

भीष्म बोले, हे नरनाथ! व्यासदेवके कहे हुए सर्वदेवनमस्कृत देवताओंका यह धर्मरहस्य मेरे द्वारा वर्णित हुआ, यह रत्नपूरित पृथ्वीमें अत्यन्त उत्तम ज्ञानस्वरूप है; इसलिये धर्मज्ञ मनुष्योंको यह विषय अवश्य सुनना चाहिये। अश्रद्धावान्, नास्तिक, नष्टधर्म, नीच कर्म करनेवाले दुष्ट, अनात्मभूत पुरुषों और गुरुद्रोहियोंके निकट यह कथा न कहे। (१५-१७)

अनुशासनपर्वमें १३४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर उवाच- के भोज्या ब्राह्मणस्येह के भोज्याः क्षत्रियस्य ह ।
तथा वैश्यस्य के भोज्याः के शूद्रस्य च भारत ॥ १ ॥
भीष्म उवाच- ब्राह्मणा ब्राह्मणस्येह भोज्या ये चैव क्षत्रियाः ।
वैश्याश्चापि तथा भोज्याः शूद्राश्च परिवर्जिताः ॥ २ ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या भोज्या वै क्षत्रियस्य ह ।
वर्जनीयास्तु वै शूद्राः सर्वभक्षा विकर्मिणः ॥ ३ ॥
वैश्यास्तु भोज्या विप्राणां क्षत्रियाणां तथैव च ।
नित्याग्नयो विविक्ताश्च चातुर्मास्यरताश्च ये ॥ ४ ॥
शूद्राणामथ यो भुङ्क्ते स भुङ्क्ते पृथिवीमलम् ।
मलं नृणां स पिबति मलं भुङ्क्ते जनस्य च ॥ ५ ॥
शूद्राणां यस्तथा भुङ्क्ते स भुङ्क्ते पृथिवीमलम् ।
पृथिवीमलमश्नन्ति ये द्विजाः शूद्रभोजिनः ॥ ६ ॥
शूद्रस्य कर्मनिष्ठायां विकर्मस्थोऽपि पच्यते ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो विकर्मस्थश्च पच्यते ॥ ७ ॥
स्वाध्यायनिरता विप्रास्तथा स्वस्त्ययने नृणाम् ।

अनुशासनपर्वमें १३५ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत ! इस संसारमें ब्राह्मणोंका भोज्य अन्न क्या है ? क्षत्रिय किसका अन्न भोजन करे ? वैश्यका भोज्य क्या है और शूद्र लोग किसका अन्न खायंगे । (१)

भीष्म बोले, ब्राह्मणोंको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यका अन्न भोजन करनेमें कुछ हानि नहीं है, केवल शूद्रका अन्न ब्राह्मणोंके लिये वर्जित है । क्षत्रियके विषयमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यका अन्न भोज्य है । केवल नीचकर्म करनेवाले सर्वभक्षी शूद्रोंका अन्न परित्याज्य है । वैश्योंके लिये ब्राह्मण और क्षत्रियोंका अन्न भोज्य है; जो लोग सदा अग्निहोत्र किया करते, विविक्त और चातुर्मास्य व्रतमें रत हैं, उन वैश्योंका ब्राह्मण और क्षत्रियोंको अन्न खाना योग्य है । जो ब्राह्मण शूद्रका अन्न खाता है, वह पृथ्वीका मल भोग किया करता है, वह मनुष्यों तथा सब लोगोंका मल-भोजन किया करता है । (१-५)

जो ब्राह्मण शूद्रोंका अन्न खानेवाले हैं, वे पृथ्वीका मल भोजन करते तथा पृथ्वीका सारा मल भोग किया करते हैं । सन्ध्यावन्दन आदि श्रेष्ठकर्मोंसे युक्त ब्राह्मण लोग यदि शूद्रकी सेवा करें, तो वे सब कोई नरकगामी होते

रक्षणे क्षत्रियं प्राहुर्वैश्यं पुष्ट्यर्थमेव च ॥ ८ ॥
करोति कर्म यद्वैश्यस्तद्गत्वा ह्युपजीवति ।
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यमकुत्सा वैश्यकर्मणि ॥ ९ ॥
शूद्रकर्म तु यः कुर्यादवहाय स्वकर्म च ।
स विज्ञेयो यथा शूद्रो न च भोज्यः कदाचन ॥ १० ॥
चिकित्सकः काण्डपृष्ठः पुराध्यक्षः पुरोहितः ।
सांवत्सरो वृथाध्यायी सर्वे ते शूद्रसंमिताः ॥ ११ ॥
शूद्रकर्मस्वथैतेषु यो भुङ्क्ते निरपत्रपः ।
अभोज्यभोजनं भुक्त्वा भयं प्राप्नोति दारुणम् ॥१२॥
कुलं वीर्यं च तेजश्च तिर्यग्योनित्वमेव च ।
स प्रयाति यथा श्वा वै निष्क्रियो धर्मवर्जितः ॥१३॥
भुङ्क्ते चिकित्सकस्यान्नं तदन्नं च पुरीषवत् ।
पुंश्चल्यन्नं च मूत्रं स्यात्कारुकान्नं च शोणितम् ॥१४॥
विद्योपजीविनोऽन्नं च यो भुङ्क्ते साधुसंमतः ।
तदप्यन्नं यथा शौद्रं तत्साधुः परिवर्जयेत् ॥ १५ ॥

हैं। ब्राह्मणगण स्वाध्यायपाठ और मनुष्योंके स्वस्त्ययनमें रत रहें। क्षत्रिय लोगोंकी रक्षा और वैश्य मनुष्योंके पुष्टिकार्यमें प्रवृत्त होवे। प्राचीन ऋषियोंने कहा है, कि वैश्य जो कार्य करके धन प्राप्त करता है, उसे दान करनेसे जीवित रहता है, खेती, गोरक्षा और वाणिज्य वैश्योंके कर्म हैं, इसलिये इसमें कुछ निन्दा नहीं है। (६—९)

जो पुरुष अपना कार्य छोडके शूद्रका कर्म करता है, उसे शूद्रसदृश जानो, उसका अन्न किसी प्रकार भोजनके योग्य नहीं है। वैद्य, शस्त्रजीवी, पुराध्यक्ष, पुरोहित और बरस दिनतक वृथाध्यायी, ये सब कोई शूद्रके समान हैं। इनके यहां जो पुरुष निर्लज्ज होकर संतोषसे भोजन करता है, उसे अभोज्य भोजन करनेसे दारुण भय प्राप्त होता है, उसका कुल, वीर्य और तेज नष्ट होजाता है, और वह धर्मसे रहित होके कुत्तेकी भांति क्रियाहीन होनेसे मरके तिर्यक्योनिमें जन्मता है। जो पुरुष वैद्यका अन्न भोजन करता है, वह पुरीष भक्षण किया करता है, पुंश्चलीका अन्न मूत्र स्वरूप है, शिल्पीका अन्न रुधिरके तुल्य है। (१०—१४)

जो साधुसम्मत ब्राह्मण विद्योपजीवि का अन्न भोजन करता है, उसे

वचनीयस्य यो भुङ्क्ते तमाहुः शोणितं ह्रदम् ।
पिशुनं भोजनं भुङ्क्ते ब्रह्महत्यासमं विदुः ॥ १६ ॥
असत्कृतमवज्ञातं न भोक्तव्यं कदाचन ॥ १७ ॥
व्याधिं कुलक्षयं चैव क्षिप्रं प्राप्नोति ब्राह्मणः ।
नगरीरक्षिणो भुङ्क्ते श्वपचप्रवणो भवेत् ॥ १८ ॥
गोघ्ने च ब्राह्मणघ्ने च सुरापे गुरुतल्पगे ।
भुक्त्वाऽन्नं जायते विप्रो रक्षसां कुलवर्धनः ॥ १९ ॥
न्यासापहारिणो भुक्त्वा कृतघ्ने क्लीबवर्तिनि ।
जायते शबरावासे मध्यदेशबहिष्कृते ॥ २० ॥
अभोज्याश्चैव भोज्याश्च मया प्रोक्ता यथाविधि ।
किमन्यदद्य कौन्तेय मत्तस्त्वं श्रोतुमिच्छसि ॥ २१ ॥ [६१३७]

इतिश्रीमहाभारते० अनु० आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे भोज्याभोज्यान्नकथनं नाम पंचत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

युधिष्ठिर उवाच– उक्तास्तु भवता भोज्यास्तथाऽभोज्याश्च सर्वशः ।
अत्र मे प्रश्नसन्देहस्तन्मे वद पितामह ॥ १ ॥

शूद्रान्न भोजनका फल मिलता है, इसलिये साधु ब्राह्मण वैसे अन्नको भोजन न करे। प्राचीन लोग कहा करते हैं, कि निन्दनीय पुरुषका अन्न खाना रुधिरह्रदके भक्षणसदृश है। पण्डित लोग खलान्न भोजनको ब्रह्महत्यासदृश जानते हैं, असत्कृत तथा विना निमन्त्रणके कदापि भोजन न करना चाहिये यदि ब्राह्मण इस प्रकार भोजन करे तो वह शीघ्र ही व्याधियुक्त होता और उसका कुल नष्ट होता है। नगररक्षकका अन्न भोजन करनेसे चाण्डालत्व प्राप्त हुआ करता है। गोघाती, ब्रह्मघाती, सुरा पीनेवाले और विमातृगामीका अन्न भोजन करनेसे ब्राह्मण राक्षसोंके कुलकी वृद्धि करता है। न्यस्त धन हरनेवाले, क्लीब और कृतघ्नका अन्न भोजन करनेसे मध्यदेशसे बाहर शबरस्थानमें जन्म हुआ करता है। हे कुन्तीपुत्र! यह मैंने अभोज्य और भोज्यका विषय विधिपूर्वक वर्णन किया, अब मेरे समीप तुम दूसरे किस विषयको सुननेकी इच्छा करते हो? (१५—२१)

अनुशासनपर्वमें १३५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १३६ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने जिसका अन्न भोज्य है और जिसका अभोज्य है, उसे वर्णन किया, परन्तु

ब्राह्मणानां विशेषेण हव्यकव्यप्रतिग्रहे।
नानाविधेषु भोज्येषु प्रायश्चित्तानि शंस मे ॥ २ ॥

भीष्म उवाच– हन्त वक्ष्यामि ते राजन्ब्राह्मणानां महात्मनाम्।
प्रतिग्रहेषु भोज्ये च मुच्यते येन पाप्मनः ॥ ३ ॥
घृतप्रतिग्रहे चैव साविञ्रीसमिदाहुतिः।
तिलप्रतिग्रहे चैव सममेतद्युधिष्ठिर ॥ ४ ॥
मांसप्रतिग्रहे चैव मधुनो लवणस्य च।
आदित्योदयनं स्थित्वा पूतो भवति ब्राह्मणः ॥ ५ ॥
काञ्चनं प्रतिगृह्याथ जपमानो गुरुश्रुतिम्।
कृष्णायसं च विवृतं धारयन्मुच्यते द्विजः ॥ ६ ॥
एवं प्रतिगृहीतेऽथ धने वस्त्रे तथा स्त्रियाम्।
एवमेव नरश्रेष्ठ सुवर्णस्य प्रतिग्रहे ॥ ७ ॥
अन्नप्रतिग्रहे चैव पायसेक्षुरसे तथा।
इक्षुतैलपवित्राणां त्रिसन्ध्येऽप्सु निमज्जनम् ॥ ८ ॥
व्रीहौ पुष्पे फले चैव जले पिष्टमये तथा।
यावके दधिदुग्धे च सावित्रीं शतशोऽन्विताम् ॥९॥

मुझे इस विषयमें सन्देह होता है; इसलिये आप उस संशयको दूर करिये। ब्राह्मणोंका हव्यकव्य प्रतिग्रहमें विशेष करके अनेक प्रकारके भोज्य विषयोंमें जो सब प्रायश्चित्त हैं, वह विषय आप मेरे समीप कहिये। (१—२)

भीष्म बोले, हे महाराज! महानुभाव ब्राह्मण लोग प्रतिग्रह और भोज्य विषयोंमें जिसके सहारे पापोंसे छूटते हैं, वह तुम्हारे समीप कहता हूं। हे युधिष्ठिर! घृत प्रतिग्रह करनेसे सावित्री मन्त्रके द्वारा समिध होम करना होता है, तिल प्रतिग्रहको भी घृतके समान जानो। मधु मांस और नमक प्रतिग्रह करनेसे सूर्यके उदयकाल पर्यन्त खडा रहके ब्राह्मण पवित्र होता है। काञ्चन प्रतिग्रह करनेसे ब्राह्मण गुरुश्रुति जप करते हुए लोगोंके सम्मुख कृष्णायस धारण करके सब पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। (३—६)

हे पुरुषश्रेष्ठ! इस ही प्रकार स्त्रियोंके धन और वस्त्र प्रतिग्रह करनेसे ब्राह्मण उपरोक्त जप करनेसे पापरहित होता है। अन्न प्रतिग्रह करने और पायस, ईखका रस, ईख, तेल तथा पवित्र वस्तुओंको लेनेसे त्रिसन्ध्या जलमें निम-

उपानहौ च च्छत्रं च प्रतिगृह्यौर्ध्वदेहिके ।
जपेच्छतं समायुक्तस्तेन मुच्येत पाप्मना ॥ १० ॥
क्षेत्रप्रतिग्रहे चैव ग्रहसूतकयोस्तथा ।
त्रीणि रात्राण्युपोषित्वा तेन पापाद्विमुच्यते ॥ ११ ॥
कृष्णपक्षे तु यः श्राद्धं पितृणामश्नुते द्विजः ।
अन्नमेतदहोरात्रात्पूतो भवति ब्राह्मणः ॥ १२ ॥
न च सन्ध्यामुपासीत न च जाप्यं प्रवर्तयेत् ।
न सङ्किरेत्तदन्नं च ततः पूयेत ब्राह्मणः ॥ १३ ॥
इत्यर्थमपराह्ने तु पितृणां श्राद्धमुच्यते ।
यथोक्तानां यदश्नीयुर्ब्राह्मणाः पूर्वकोलिताः ॥ १४ ॥
मृतकस्य तृतीयाहे ब्राह्मणो योऽन्नमश्नुते ।
स त्रिवेलं समुन्मज्य द्वादशाहेन शुध्यति ॥ १५ ॥
द्वादशाहे व्यतीते तु कृतशौचो विशेषतः ।
ब्राह्मणेभ्यो हविर्दत्त्वा मुच्यते तेन पाप्मना ॥ १६ ॥
मृतस्य दशरात्रेण प्रायश्चित्तानि दापयेत् ।

जन करना होगा । धान्य, फूल, जल, पिष्टमय वस्तु, यावक और दही, दूध प्रतिग्रह करनेसे एक एक सौ बार गायत्री जप करे । उर्ध्वदेहिक कार्य सम्बन्धीय पादुका और वस्त्र प्रतिग्रह करनेसे समाहित होकर एक सौ बार गायत्री जपनेपर पापोंसे मुक्ति होती है । ग्रहण और अशौचकालमें क्षेत्र प्रतिग्रह करनेसे त्रिरात्र उपवास करके उस पापसे छूटेगा । (७—११)

जो ब्राह्मण कृष्णपक्षमें पितरोंका श्राद्धान्न भोजन करता है, वह उस अन्न भोजनके निमित्त रात दिन उपवास करनेसे पवित्र हुआ करता है; विना स्नान किये सन्ध्या उपासना न करे, जप करनेमें प्रवृत्त न होवे और दिनमें दूसरी बार भोजन न करे, तो ब्राह्मण पवित्र होगा । अपराह्नमें क्षुद्बोधके हेतु पितरोंका श्राद्ध कहा गया है, उस समय पहले निमन्त्रित लोग अन्न भोजन करें । मृत पुरुषके घरमें तीसरे दिन जो ब्राह्मण अन्न भोजन करता है, वह त्रिसन्ध्या स्नान करते हुए बारहवें दिन पवित्र होता तथा द्वादशाह बीतनेपर विशेष रीतिसे पवित्र होकर ब्राह्मणोंको घृतदान करनेसे पापरहित होगा । दश रात्रितक मृत पुरुषके घरमें अन्न भोजन करनेसे निम्नलिखित प्रायश्चित्त करना

सावित्रीं रैवतीमिष्टिं कूश्माण्डमघमर्षणम् ॥ १७ ॥
मृतकस्य त्रिरात्रे यः समुद्दिष्टे समश्नुते।
सप्तत्रिषवणं स्नात्वा पूतो भवति ब्राह्मणः ॥ १८ ॥
सिद्धिमाप्नोति विपुलामापदं चैव नाप्नुयात् ॥ १९ ॥
यस्तु शूद्रैः समश्नीयाद्ब्राह्मणोऽप्येकभोजने।
अशौचं विधिवत्तस्य शौचमत्र विधीयते ॥ २० ॥
यस्तु वैश्यैः सहाश्नीयाद्ब्राह्मणोऽप्येकभोजने।
स वै त्रिरात्रं दीक्षित्वा मुच्यते तेन कर्मणा ॥ २१ ॥
क्षत्रियैः सह योऽश्नीयाद्ब्राह्मणोऽप्येकभोजने।
आप्लुतः सह वासोभिस्तेन मुच्येत पाप्मना ॥ २२ ॥
शूद्रस्य तु कुलं हन्ति वैश्यस्य पशुबान्धवान्।
क्षत्रियस्य श्रियं हन्ति ब्राह्मणस्य सुवर्चसम् ॥ २३ ॥
प्रायश्चित्तं च शान्तिं च जुहुयात्तेन मुच्यते।
सावित्रीं रैवतीमिष्टिं कूश्माण्डमघमर्षणम् ॥ २४ ॥
तथोच्छिष्टमथाऽन्योन्यं संप्राशेन्नात्र संशयः।
रोचना विरजा रात्रिर्मङ्गलालम्भनानि च ॥ २५ ॥ [६१६२]

इतिश्रीमहाभारते० अनु० आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे प्रायश्चित्तविधिर्नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

होगा, गायत्रीजप, रैवत नाम पवित्रेष्टि 'यद्देवादेवहेडन' यह अनुवाकपञ्चक और अघमर्षण मन्त्र जप करे। (१२-१७)

जो लोग मृत पुरुषके गृहमें त्रिरात्र भोजन करते हैं, वे ब्राह्मण सप्त-त्रिषवण स्नान करनेसे पवित्र होकर विपुल सिद्धि लाभ करते तथा आपद्ग्रस्त नहीं होते। जो ब्राह्मण शूद्रके सङ्ग एकत्र भोजन करता है, उसका विधि-पूर्वक अशौच ग्रहणके सहारे शुद्धि विहित है। जो ब्राह्मण वैश्यके साथ एकत्र भोजन करता है, त्रिरात्र भिक्षा करके जीवन व्यतीत करनेसे उस पापसे मुक्त होगा। जो ब्राह्मण क्षत्रियके सहित एकत्र भोजन करता है, वह वस्त्रके सहित नहानेसे उस पापसे रहित हुआ करता है; एकत्र भोजन शूद्रके कुलको नष्ट करता, वैश्योंके पशु और बान्धवोंको विध्वंस करता, क्षत्रियोंको श्रीभ्रष्ट और ब्राह्मणोंका तेज नष्ट करता है; इसलिये उसके प्रायश्चित और शान्तिके लिये होम, गायत्री जप, रैवत नाम इष्टि

युधिष्ठिर उवाच- दानेन वर्ततेत्याह तपसा चैव भारत।
तदेतन्मे मनोदुःखं व्यपोह त्वं पितामह।
किं स्वित्पृथिव्यां ह्येतन्मे भवाञ्छंसितुमर्हति ॥ १ ॥
भीष्म उवाच- शृणु यैर्धर्मनिरतैस्तपसा भावितात्मभिः।
लोका ह्यसंशयं प्राप्ता दानपुण्यरतैर्नृपैः ॥ २ ॥
सत्कृतश्च तथाऽऽत्रेयः शिष्येभ्यो ब्रह्म निर्गुणम्।
उपदिश्य तदा राजन् गतो लोकाननुत्तमान् ॥ ३ ॥
शिबिरौशीनरः प्राणान् प्रियस्य तनयस्य च।
ब्राह्मणार्थमुपाकृत्य नाकपृष्ठमितो गतः ॥ ४ ॥
प्रतर्दनः काशिपतिः प्रदाय तनयं स्वकम्।
ब्राह्मणायातुलां कीर्तिमिह चामुत्र चाऽश्नुते ॥ ५ ॥
रन्तिदेवश्च सांकृत्यो वसिष्ठाय महात्मने।
अर्घ्यं प्रदाय विधिवल्लेभे लोकाननुत्तमान् ॥ ६ ॥
दिव्यं शतशलाकं च यज्ञार्थं काञ्चनं शुभम्।

'यद्देवा देवहेडनं' इत्यादि पांच अनुवाक और अघमर्षण प्रभृति जप करे। यदि परस्परमें जूठा भोजन किया जावे, तो रोचना, दूब और हरिद्रादि मङ्गल समालम्भन करे, इस विषयमें सन्देह नहीं है। (१८--२५)

अनुशासनपर्वमें १३६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १३७ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत पितामह! दान तपस्यामेंसे कौन विषय श्रेष्ठ है? उसे कहके आप हमारे मनका दुःख दूर करिये। (१)

भीष्म बोले, जिन दानपुण्यमें रत, धर्ममें तत्पर, तपस्याके सहारे शुद्धचित्त राजाओंने सन्देहरहित होकर श्रेष्ठ लोकोंको पाया है, उसे सुनो। हे महाराज! आत्रेय मुनिने शिष्योंसे सत्कृत होकर उन्हें निर्गुण ब्रह्मका उपदेश करके उत्तम लोगोंको पाया था। औशीनर शिबिराजा ब्राह्मणके लिये अपना पुत्र प्रदान करके इस लोकसे स्वर्गमें गये थे। काशीपति प्रतर्द्दन ब्राह्मणके निमित्त अपना पुत्र दान करनेसे इस लोक और परलोकमें अतुल कीर्त्ति भोगते हैं। सांकृतिपुत्र रन्तिदेवने महानुभाव वसिष्ठको विधिपूर्वक अर्घ-प्रदान करके उत्तम लोकोंको पाया है। (२-६)

देवावृध राजाने यज्ञके निमित्त ब्राह्मणोंको एक सौ शलाकायुक्त दिव्य सुवर्ण-

छत्रं देवावृधो दत्त्वा ब्राह्मणायास्थितो दिवम् ॥ ७ ॥
भगवानम्बरीषश्च ब्राह्मणायामितौजसे ।
प्रदाय सकलं राष्ट्रं सुरलोकमवाप्तवान् ॥ ८ ॥
सावित्रः कुण्डलं दिव्यं यानं च जनमेजयः ।
ब्राह्मणाय च गा दत्त्वा गतो लोकाननुत्तमान् ॥ ९ ॥
वृषादर्भिश्च राजर्षी रत्नानि विविधानि च ।
रम्यांश्चावसथान्दत्त्वा द्विजेभ्यो दिवमागतः ॥ १० ॥
निमी राष्ट्रं च वैदर्भिः कन्यां दत्त्वा महात्मने ।
अगस्त्याय गतः स्वर्गं सपुत्रपशुबान्धवः ॥ ११ ॥
जामदग्न्यश्च विप्राय भूमिं दत्त्वा महायशाः ।
रामोऽक्षयांस्तथा लोकान् जगाम मनसोऽधिकान् ॥१२॥
अवर्षति च पर्जन्ये सर्वभूतानि देवराट् ।
वसिष्ठो जीवयामास येन यातोऽक्षयां गतिम् ॥ १३ ॥
रामो दाशरथिश्चैव हुत्वा यज्ञेषु वै वसु ।
स गतो ह्यक्षयान् लोकान्यस्य लोके महद्यशः ॥१४॥
कक्षसेनश्च राजर्षिर्वसिष्ठाय महात्मने ।
न्यासं यथावत्संन्यस्य जगाम सुमहायशाः ॥ १५ ॥

सय शुभ छत्र प्रदान करके सुरपुरमें गमन किया है। भगवान् अम्बरीष राजाने अत्यन्त तेजस्वी ब्राह्मणोंको समस्त राज्य दान करके सुरलोक पाया है। सूर्यवंशीय जनमेजय राजाने ब्राह्मणको दिव्य कुण्डल और गऊ दान करके उत्तम लोकोंमें गमन किया है। राजर्षि वृषादर्भि ब्राह्मणोंको विविध रत्न और रमणीय आश्रम दान करके अमरलोकमें गये हैं। विदर्भराजपुत्र निमिने अगस्त्यको राष्ट्र और कन्या दान करके पुत्र, पशु और बांधवोंके सहीत स्वर्गमें गमन किया। महायशस्वी जामदग्न्य रामने ब्राह्मणोंको भूमिदान करनेसे और मन सङ्कल्पसे भी अधिक अक्षय लोकोंमें गमन किया। देवराज इंद्रने अवर्षण करनेपर वसिष्ठको प्राणियोंके जीवित रखनेसे अक्षय गति प्राप्त हुई है। (७—१३)

दशरथपुत्र राम, जिसका जगत्के बीच महत् यश विख्यात है, उन्होंने यज्ञोंमें धनदान करके अक्षय लोकोंमें गमन किया है। राजर्षि कक्षसेन महानुभाव वसिष्ठको विधिपूर्वक न्यस्त धन

करन्धमस्य पौत्रस्तु मरुत्तोऽविक्षितः सुतः।
कन्यामाङ्गिरसे दत्त्वा दिवमाशु जगाम सः ॥ १६ ॥
ब्रह्मदत्तस्य पाञ्चाल्यो राजा धर्मभृतां वरः।
निधिं शंखमनुज्ञाप्य जगाम परमां गतिम् ॥ १७ ॥
राजा मित्रसहश्चैव वसिष्ठाय महात्मने।
मदयन्तीं प्रियां भार्यां दत्त्वा च त्रिदिवं गतः ॥ १८ ॥
मनोः पुत्रश्च सुद्युम्नो लिखिताय महात्मने।
दण्डमुद्धृत्य धर्मेण गतो लोकाननुत्तमान् ॥ १९ ॥
सहस्रचित्यो राजर्षिः प्राणानिष्टान्महायशाः।
ब्राह्मणार्थे परित्यज्य गतो लोकाननुत्तमान् ॥ २० ॥
सर्वकामैश्च संपूर्णं दत्त्वा वेश्म हिरण्मयम्।
मौद्गल्याय गतः स्वर्गं शतद्युम्नो महीपतिः ॥ २१ ॥
भक्ष्यभोज्यस्य च कृतान् राशयः पर्वतोपमान्।
शाण्डिल्याय पुरा दत्त्वा सुमन्युर्दिवमास्थितः ॥ २२ ॥
नाम्ना च द्युतिमान्नाम शाल्वराजो महाद्युतिः।
दत्त्वा राज्यमृचीकाय गतो लोकाननुत्तमान् ॥ २३ ॥
मदिराश्वश्च राजर्षिर्दत्त्वा कन्यां सुमध्यमाम्।

प्रदान करनेसे अत्यन्त यशस्वी होकर स्वर्गमें गये हैं। करन्धम अविक्षितका पुत्र मरुत्त अङ्गिराको कन्या दान करके शीघ्र ही स्वर्गलोकमें गया। धार्मिकश्रेष्ठ पाञ्चालदेशीय राजा ब्रह्मदत्तको शङ्खरत्न दान करके परम गति पाई है। मित्रसह राजा महात्मा वसिष्ठको मदयन्ती नाम्नी प्रिय भार्या दान करके देवलोकमें गया है। (१४-१८)

मनुके पुत्र सुद्युम्नने महात्मा लिखितको धर्मपूर्वक चौरयोग्य हस्तच्छेदरूपी दण्डसे उद्धार करके उत्तम लोकोंको पाया है। महायशस्वी राजर्षि सहस्रचित्यने ब्राह्मणोंके लिये प्रिय प्राण परित्याग करके उत्तम लोकोंमें गमन किया है। शतद्युम्न राजा मौद्गल्य मुनिको सर्वकामयुक्त स्वर्णमय गृह दान करके स्वर्गमें गया है। पहले समयमें सुमन्यु राजा शाण्डिल्य मुनिको पर्वतसदृश भक्ष्य भोज्य वस्तुओंकी राशि दान करके स्वर्ग लोकमें गये हैं। (१९-२२)

द्युतिमान् नाम महातेजस्वी शाल्वराजने ऋचीक ऋषिको राज्य दान करके अत्यन्त उत्तम लोकोंमें गमन

हिरण्यहस्ताय गतो लोकान्देवैरधिष्ठितान् ॥ २४ ॥
लोमपादश्च राजर्षिः शान्तां दत्त्वा सुतां प्रभुः ।
ऋष्यशृङ्गाय विपुलैः सर्वैः कामैरयुज्यत ॥ २५ ॥
कौत्साय दत्त्वा कन्यां तु हंसीं नाम यशस्विनीम् ।
गतोऽक्षयानतो लोकान् राजर्षिश्च भगीरथः ॥ २६ ॥
दत्त्वा शतसहस्रं तु गवां राजा भगीरथः ।
सवत्सानां कोहलाय गतो लोकाननुत्तमान् ॥ २७ ॥
एते चान्ये च बहवो दानेन तपसा च ह ।
युधिष्ठिर गताः स्वर्गं निवर्तन्ते पुनः पुनः ॥ २८ ॥
तेषां प्रतिष्ठिता कीर्तिर्यावत्स्थास्यति मेदिनी ।
गृहस्थैर्दानतपसा यैर्लोका वै विनिर्जिताः ॥ २९ ॥
शिष्टानां चरितं ह्येतत्कीर्तितं मे युधिष्ठिर ।
दानयज्ञप्रजासर्गैरेते हि दिवमास्थिताः ॥ ३० ॥
दत्त्वा तु सततं तेऽस्तु कौरवाणां धुरन्धर ।
दानयज्ञक्रियायुक्ता बुद्धिर्धर्मोपचायिनी ॥ ३१ ॥
यत्र ते नृपशार्दूल संदेहो वै भविष्यति ।
श्वः प्रभाते हि वक्ष्यामि संध्या हि समुपस्थिता ॥३२॥ [६१९४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

किया है। राजर्षि मदिराश्वने हिरण्यहस्त मुनिको सुमध्यमा कन्या दान करके देवताओंके अधिष्ठित लोकोंमें गमन किया है। राजर्षि लोमपाद ऋष्यशृङ्गको शान्तानामी कन्या दान करके सर्वकामयुक्त हुए। राजर्षि भगीरथने कौत्स ऋषिको हंसी नाम्नी यशस्विनी कन्या दान करके अक्षयलोकोंमें गमन किया है, राजा भगीरथने कोहल मुनिको सौ हजार सवत्सा गऊ दान करके उत्तम लोकोंको पाया है। (२३-२७)

हे युधिष्ठिर! ये सब तथा दूसरे बहुतेरे राजा दान तथा तपस्याके सहारे स्वर्गमें गये हैं और बार बार निवृत्त होते हैं; जबतक पृथ्वी है, तबतक उनकी कीर्त्ति प्रतिष्ठित रहेगी। हे युधिष्ठिर! जिन गृहस्थोंने दान और तपस्याके सहारे सब लोकोंको जय किया है, यह उन शिष्ट पुरुषोंका चरित मैंने वर्णन किया, इन्होंने दान, यज्ञ

युधिष्ठिर उवाच- श्रुतं मे भवतस्तात सत्यव्रतपराक्रम ।
दानधर्मेण महता ये प्राप्तास्त्रिदिवं नृपाः ॥ १ ॥
इमांस्तु श्रोतुमिच्छामि धर्मान्धर्मभृतां वर ।
दानं कतिविधं देयं किं तस्य च फलं लभेत् ॥ २ ॥
कथं केभ्यश्च धर्म्यं च दानं दातव्यमिष्यते ।
कैः कारणैः कतिविधं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच- शृणु तत्त्वेन कौन्तेय दानं प्रति ममानघ ।
यथा दानं प्रदातव्यं सर्ववर्णेषु भारत ॥ ४ ॥
धर्मादर्थाद्भयात्कामात्कारुण्यादिति भारत ।
दानं पञ्चविधं ज्ञेयं कारणैर्यैर्निबोध तत् ॥ ५ ॥
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ।
इति दानं प्रदातव्यं ब्राह्मणेभ्योऽनसूयता ॥ ६ ॥
ददाति वा दास्यति वा मह्यं दत्तमनेन वा ।

और पुत्रोत्पादनके द्वारा स्वर्गलोक पाया है। हे कुरुकुलधुरन्धर ! पूर्वोक्त राजा लोग सदा दान करते हुए धर्म-युक्तबुद्धिको दान तथा यज्ञकार्यमें नियुक्त रखते थे। हे नृपश्रेष्ठ ! जिस विषयमें सन्देह हो, उसे कल्ह भोरके समय कहना; क्यों कि, अब सन्ध्याका समय उपस्थित हुआ है। (२८—३२)

अनुशासनपर्वमें १३७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १३८ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे सत्यव्रत सत्यपराक्रमी पितामह ! उत्तम महत् दान-धर्मके सहारे जो सब राजा देवलोकमें गये हैं, मैंने वह सब आपके समीप सुना। हे धार्मिकश्रेष्ठ ! अब कितने प्रकारके दान देने योग्य हैं और उनसे क्या फल प्राप्त होता है ? किस प्रकार, किन लोगोंको, किन कारणोंसे और कई प्रकारका धर्मपूर्वक दान करना उचित है, यह सब धर्मविषय यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं। (१-३)

भीष्म बोले, हे पापरहित भरत-वंशावतंस कुन्तीपुत्र ! सब वर्णोंको जिस प्रकार दान करना होता है, वह मेरे समीप यथार्थ रीतिसे सुनो। हे भारत ! धर्म, अर्थ, भय, काम और कारुण्यवशसे दानको पांच प्रकारका जानो। जिस कारणसे जो दान किया जाता है, उसे सुनो। असूयारहित होके ब्राह्मणोंको दान करना योग्य है, दान करनेसे मनुष्य इस लोकमें परम कीर्त्ति-मान् होकर परलोकमें सुख पाता है।

इत्यर्थिभ्यो निशम्यैव सर्वं दातव्यमर्थिने ॥ ७ ॥
नास्याहं न मदीयोऽयं पापं कुर्याद्विमानितः ।
इति दद्याद्भयादेव दृढं मूढाय पण्डितः ॥ ८ ॥
प्रियो मेऽयं प्रियोऽस्याहमिति संप्रेक्ष्य बुद्धिमान् ।
वयस्यायैवमक्लिष्टं दानं दद्यादतन्द्रितः ॥ ९ ॥
दीनश्च याचते चायमल्पेनापि हि तुष्यति ।
इति दद्याद्दरिद्राय कारुण्यादिति सर्वथा ॥ १० ॥
इति पञ्चविधं दानं पुण्यकीर्तिविवर्धनम् ।
यथाशक्त्या प्रदातव्यमेवमाह प्रजापतिः ॥ ११ ॥ [६२०५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥

युधिष्ठिर उवाच- पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
आगमैर्बहुभिः स्फीतो भवान्नः प्रवरे कुले ॥ १ ॥
त्वत्तो धर्मार्थसंयुक्तमायत्यां च सुखोदयम् ।
आश्चर्यभूतं लोकस्य श्रोतुमिच्छाम्यरिन्दम ॥ २ ॥
अयं च कालः संप्राप्तो दुर्लभो ज्ञातिबान्धवैः ।

यह पुरुष मुझे दान करता है, करेगा अथवा किया है, अर्थियोंका ऐसा वचन सुनके उन्हें सब वस्तु दान करनी योग्य है। (४—७)

न मैं इसका हूं और न यह पुरुष मेरा है, परन्तु यह अवमानित होनेपर पापकार्य करेगा, ऐसा समझके पण्डित लोग दृढ भयसे मूढ मनुष्योंको दान करते हैं। यह मेरा प्यारा है और मैं भी इसे प्रिय हूं, बुद्धिमान पुरुष ऐसा जानके सावधान होकर मित्र पुरुषको दान करते हैं। यह पुरुष अत्यन्त दीन है, इसलिये जांचता है और थोडेमें ही सन्तुष्ट होगा, ऐसा विचार कर करुणावशसे दरिद्रोंको दान करे। प्रजापतिने कहा है, कि ये पांच प्रकारके दान पुण्य और कीर्त्तिकी वृद्धि करते हैं; इसलिये शक्तिके अनुसार दान करना योग्य होता है। (८—११)

अनुशासनपर्वमें १३८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १३९ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्वशास्त्रविशारद महाप्राज्ञ पितामह! आप हमारे इस श्रेष्ठवंशमें अनेक प्रकारके शास्त्रज्ञानसे युक्त हैं। हे अरिंदमन! आपके समीप उत्तरकालमें सुखदायक और लोगोंके

शास्ता च न हि नः कश्चित्त्वामृते पुरुषर्षभ ॥ ३ ॥
यदि तेऽहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सहितोऽनघ ।
वक्तुमर्हसि नः प्रश्नं यत्त्वां पृच्छामि पार्थिव ॥ ४ ॥
अयं नारायणः श्रीमान्सर्वपार्थिवसंमतः ।
भवन्तं बहुमानेन प्रश्रयेण च सेवते ॥ ५ ॥
अस्य चैव समक्षं त्वं पार्थिवानां च सर्वशः ।
भ्रातृणां च प्रियार्थं मे स्नेहाद्भाषितुमर्हसि ॥ ६ ॥
वैशम्पायन उवाच– तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स्नेहादागतसंभ्रमः ।
भीष्मो भागीरथीपुत्र इदं वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥
भीष्म उवाच– अहं ते कथयिष्यामि कथामतिमनोहराम् ।
अस्य विष्णोः पुरा राजन्प्रभावो यो मया श्रुतः ॥८॥
यश्च गोवृषभाङ्कस्य प्रभावस्तं च मे शृणु ।
रुद्राण्याः संशयो यश्च दंपत्योस्तं च मे शृणु ॥ ९ ॥
व्रतं चचार धर्मात्मा कृष्णो द्वादशवार्षिकम् ।
दीक्षितं चागतौ द्रष्टुमुभौ नारदपर्वतौ ॥ १० ॥

लिये आश्चर्यस्वरूप धर्मार्थयुक्त वचन सुननेकी अभिलाष करता हूं। यह समय स्वजनों और बान्धवोंके लिये दुर्लभ है। हे पुरुषश्रेष्ठ! आपके अतिरिक्त हम लोगोंके लिये दूसरा कोई भी उपदेष्टा नहीं है। हे पापरहित! मैं भाइयोंके सहित यदि आपका कृपापात्र होऊं, तो मैं जो पूछता हूं उसका आपको उत्तर देना उचित है। ये सब राजाओंके सम्मानभाजन श्रीमान् नारायण आपका बहुमान और विनयके सहित सेवा करते हैं, इनके और सब राजाओंके सम्मुख मेरे और भ्रातृगणोंकी प्रीतिके निमित्त आप इस विषयको विस्तारपूर्वक वर्णन करिये। (१—६)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, गङ्गानन्दन भीष्मने युधिष्ठिरका वचन सुनके प्रीतिपूर्वक सम्भ्रमयुक्त होकर यह वक्ष्यमाण वचन कहा। (७)

भीष्म बोले, पहले समयमें मैंने विष्णुका जो प्रभाव सुना था, वह अत्यन्त मनोहर कथा तुम्हारे समीप कहूंगा। वृषभध्वजका जैसा प्रभाव सुना है उसे और रुद्र रुद्राणीको जिस प्रकार संशय हुआ था, वह कथा भी मेरे समीप सुनो। पहले समयमें धर्मात्मा कृष्णने बारह वर्षका व्रताचरण किया था, दीक्षित होनेपर पर्वत, नारद,

कृष्णद्वैपायनश्चैव धौम्यश्च जपतां वरः ।
देवलः काश्यपश्चैव हस्तिकाश्यप एव च ॥ ११ ॥
अपरे ऋषयः सन्तो दीक्षादमसमन्विताः ।
शिष्यैरनुगताः सिद्धैर्देवकल्पैस्तपोधनैः ॥ १२ ॥
तेषामतिथिसत्कारमर्चनीयं कुलोचितम् ।
देवकीतनयः प्रीतो देवकल्पमकल्पयत् ॥ १३ ॥
हरितेषु सुवर्णेषु बार्हिष्केषु नवेषु च ।
उपोपविविशुः प्रीता विस्तरेषु महर्षयः ॥ १४ ॥
कथाश्चक्रुस्ततस्ते तु मधुरा धर्मसंहिताः ।
राजर्षीणां सुराणां च ये वसन्ति तपोधनाः ॥ १५ ॥
ततो नारायणं तेजो व्रतचर्येन्धनोत्थितम् ।
वक्त्रान्निःसृत्य कृष्णस्य वह्निरद्भुतकर्मणः ॥ १६ ॥
सोऽग्निर्ददाह तं शैलं सद्रुमं सलताक्षुपम् ।
सपक्षिमृगसंघातं सश्वापदसरीसृपम् ॥ १७ ॥
मृगैश्च विविधाकारैर्हाहाभूतमचेतनम् ।
शिखरं तस्य शैलस्य मथितं दीनदर्शनम् ॥ १८ ॥
स तु वह्निर्महाज्वालो दग्ध्वा सर्वमशेषतः ।

कृष्णद्वैपायन, जापकश्रेष्ठ धौम्य, देवल, काश्यप, हस्तिकाश्यप और दूसरे बहुतेरे दीक्षादमयुक्त शिष्योंके सहित साधु महर्षिगण तथा देवकल्प सिद्ध तपस्वियोंने उनका दर्शन करनेके लिये आगमन किया। (८—१२)

देवकीपुत्र कृष्णने उन लोगोंके आनेसे प्रसन्न होकर देवतुल्य पूजनीय अतिथियोंका यथायोग्य कुलके अनुसार सत्कार किया, महर्षिगण हरे और सुवर्ण वर्ण बर्हिनिर्मित नवीन आसनोंपर कृष्णके समीप बैठे। अनन्तर वे तपस्वी राजर्षि लोग और देवताओंके धर्मयुक्त मधुर कथा कहने लगे। अनन्तर अद्भुत कर्म करनेवाले कृष्णके मुखमण्डलसे व्रतचर्यारूपी इन्धनके सहारे नारायण तेजस्वरूप अग्नि निकलकर वृक्ष, लता, क्षुद्र तरु, पक्षी, मृग, श्वापद और सरीसृपोंके सहित उस पर्वतको जलाने लगी। (१३-१७)

अनेक प्रकारके मृगसमूह हाहाकार करते हुए अचेत हुए, उस पर्वतका शिखरस्थान दीनदशायुक्त और मथित होने लगा; उस महाज्वालायुक्त अग्निने

विष्णोः समीप आगम्य पादौ शिष्यवदस्पृशत् ॥१९॥
ततो विष्णुर्गिरिं दृष्ट्वा निर्दग्धमरिकर्शनः।
सौम्यैर्दृष्टिनिपातैस्तं पुनः प्रकृतिमानयत् ॥ २० ॥
तथैव स गिरिर्भूयः प्रपुष्पितलताद्रुमः।
स पक्षिगणसंघुष्टः सश्वापदसरीसृपः ॥ २१ ॥
तमद्भुतमचिन्त्यं च दृष्ट्वा मुनिगणस्तदा।
विस्मितो हृष्टरोमा च बभूवास्राविलेक्षणः ॥ २२ ॥
ततो नारायणो दृष्ट्वा तानृषीन्विस्मयान्वितान्।
प्रश्रितं मधुरं स्निग्धं पप्रच्छ वदतां वरः ॥ २३ ॥
किमर्थमृषिपूगस्य त्यक्तसंगस्य नित्यशः।
निर्ममस्यागमवतो विस्मयः समुपागतः ॥ २४ ॥
एतन्मे संशयं सर्वं याथातथ्यमनिन्दिताः।
ऋषयो वक्तुमर्हन्ति निश्चितार्थं तपोधनाः ॥ २५ ॥
ऋषय ऊचुः– भवान्विसृजते लोकान् भवान्संहरते पुनः।
भवान् शीतं भवानुष्णं भवानेव च वर्षति ॥ २६ ॥
पृथिव्यां यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।

निःशेष रूपसे सबको जलाकर विष्णुके निकट आके शिष्यकी भाँति उनके दोनों चरणोंको स्पर्श किया। अरिकर्षण नारायणने उस पर्वतको निःशेष रीतिसे जलते हुए देखकर सौम्यदृष्टिके सहारे फिर उसे प्रकृतिस्थ किया। (१८–२०)

वह पर्वत पहलेकी भाँति वृक्ष, लता, पुष्प और पक्षियोंके शब्द और श्वापद सरीसृपोंसे परिपूरित हुआ, मुनिगण उस समय उस अद्भुत और अचिन्त्य व्यापारको देखकर अश्रुपूरित नेत्रयुक्त हुए। अनन्तर वक्तृवर नारायण उन ऋषियोंको विस्मित देखकर विनयपूर्वक नम्र, मधुर, तथा स्निग्ध वचन बोले। सदा आसक्ति और ममतारहित, वेद जाननेवाले ऋषियोंको किस निमित्त विस्मय उपस्थित हुआ? हे तपोधनगण! आप लोग सब कोई अनिन्दित ऋषि हैं, इसलिये आप लोगोंको मेरे इस संदिग्ध विषयका निश्चित अर्थ कहना उचित है। (२१–२५)

ऋषिगण बोले, हे मधुसूदन! आपने ही सब लोकोंकी सृष्टि की है, फिर आपही सबका संहार करते हैं, तुम्हीं शीत हो, तुम ही उष्ण हो और तुम ही वर्षा करते हो। पृथिवीपर जो सब

तेषां पिता त्वं माता त्वं प्रभुः प्रभव एव च ॥ २७ ॥
एवं नो विस्मयकरं संशयं मधुसूदन।
त्वमेवार्हसि कल्याण वक्तुं वह्निविनिर्गमम् ॥ २८ ॥
ततो विगतसंत्रासा वयमप्यरिकर्शन।
यच्छ्रुतं यच्च दृष्टं नस्तत्प्रवक्ष्यामहे हरे ॥ २९ ॥

वासुदेव उवाच– एतद्वै वैष्णवं तेजो मम वक्त्राद्विनिःसृतम्।
कृष्णवर्त्मा युगान्ताभो येनाऽयं मथितो गिरिः ॥३०॥
ऋषयश्चार्तिमापन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
भवन्तो व्यथिताश्चासन् देवकल्पास्तपोधनाः ॥३१ ॥
व्रतचर्यापरीतस्य तपस्विव्रतसेवया।
मम वह्निः समुद्भूतो न वै व्यथितुमर्हथ ॥ ३२ ॥
व्रतं चर्तुमिहायातस्त्वहं गिरिमिमं शुभम्।
पुत्रं चात्मसमं वीर्ये तपसा लब्धुमागतः ॥ ३३ ॥
ततो ममात्मा यो देहे सोऽग्निर्भूत्वा विनिःसृतः।
गतश्च वरदं द्रष्टुं सर्वलोकपितामहम् ॥ ३४ ॥
तेन चात्मानुशिष्टो मे पुत्रत्वे मुनिसत्तमाः।

स्थावरजङ्गम जीव हैं, आप ही उनके पिता, माता, प्रभु और प्रभव हो। हे कल्याणरूप मधुसूदन! इससे जिस हेतु तुम्हारे मुखसे अग्नि निकलनेसे हम लोगोंको विस्मययुक्त सन्देह हुआ है, तुम ही उस सन्देहके विषयको कह सकते हो। हे हरि! हे अरिकर्षण! अनन्तर हम लोग त्रासरहित होके जो देखा तथा सुना है, वह सब कहेंगे। (२६—२९)

वासुदेव बोले, मेरे शरीरसे जो यह वैष्णव तेज निकला था, वह प्रलय-कालकी अग्निसदृश आभायुक्त था, जिसके सहारे यह महापर्वत मथित हुआ और क्रोधविजयी, जितेन्द्रिय देवकल्प तपस्वी ज्ञानयुक्त आप लोग भी पीडित तथा व्यथित हुए थे। तपस्विव्रतसेवन तथा व्रताचरणयुक्त होनेसे मेरे शरीरसे अग्नि प्रकट हुई थी; इसलिये आप लोग व्यथित न होवें। मैं व्रताचरण करनेके लिये इस पवित्र पर्वतपर आके वीर्यबल से अपने सदृश पुत्र पानेके लिये तपस्या कर रहा हूं। अनन्तर मेरी देहमें जो आत्मा है, वही अग्निरूपसे निकलकर सर्वलोकपितामह वरद देवका दर्शन करनेके लिये गया था। (३०—३४)

तेजसोऽर्धेन पुत्रस्ते भवितेति वृषध्वजः ॥ ३५ ॥
सोऽयं वह्निरुपागम्य पादमूले ममान्तिकम्।
शिष्यवत्परिचर्यार्थं शान्तः प्रकृतिमागतः ॥ ३६ ॥
एतदेव रहस्यं वः पद्मनाभस्य धीमतः।
मया प्रोक्तं समासेन न भीः कार्या तपोधनाः॥ ३७ ॥
सर्वत्र गतिरव्यग्रा भवतां दीर्घदर्शनात्।
तपस्विव्रतसंदीप्ता ज्ञानविज्ञानशोभिताः ॥ ३८ ॥
यच्छ्रुतं यच्च वो दृष्टं दिवि वा यदि वा भुवि।
आश्चर्यं परमं किंचित्तद्भवन्तो ब्रुवन्तु मे ॥ ३९ ॥
तस्यामृतनिकाशस्य वाङ्मधोरस्ति मे स्पृहा।
भवद्भिः कथितस्येह तपोवननिवासिभिः ॥ ४० ॥
यद्यप्यहमदृष्टं वो दिव्यमद्भुतदर्शनम्।
दिवि वा भुवि वा किंचित्पश्याम्यमरदर्शनाः ॥४१॥
प्रकृतिः सा मम परा न क्वचित्प्रतिहन्यते।
न चात्मगतमैश्वर्यमाश्चर्यं प्रतिभाति मे ॥ ४२ ॥
श्रद्धेयः कथितो ह्यर्थः सज्जनश्रवणं गतः।

हे मुनिसत्तमगण! वृषभध्वजने कहा "मेरा आत्मा अर्द्धतेजसे तुम्हारा पुत्र होगा," ऐसा कहके उन्होंने पुत्रके निमित्त अपने आत्माको मेरे समीप भेजा है। यह वही अग्नि परिचर्याके निमित्त शिष्यकी भांति मेरे चरणमूल-पर पहुंचके शान्त और प्रकृतिको प्राप्त हुई है। हे तपोधनगण! यह बुद्धिमान् पद्मनाभका रहस्यविषय मैंने आप लो-गोंके समीप वर्णन किया, इसलिये आप लोग भय न करिये। आप लोग दीर्घ दर्शी हैं, आप लोगोंको ज्ञानविज्ञानशो-भित तपस्विव्रतसन्दीप्त सर्वत्र अव्यग्र गति विद्यमान है। (३५—३८)

इसलिये आप लोगोंने द्युलोक वा भूलोकमें जो परम आश्चर्य सुना वा देखा हो, उसे मेरे समीप वर्णन करिये, आप लोग तपोवननिवासी महर्षि हैं, आप लोगोंके कहे हुए अमृतसदृश वचन-मधु आस्वादन करनेकी मुझे अभिलाष हुई है। हे अमरदर्शन तपस्विवृन्द! यदि मैं द्युलोक अथवा भूलोकमें आप लोगोंके अतिरिक्त कोई अद्भुतदर्शन दिव्य विषय देखूं, तो वह मेरी परम प्रकृति है, वह सर्वस्व अप्रतिहत मेरी आत्माका ऐश्वर्य आश्चर्यरूपसे मालूम

चिरं तिष्ठति मेदिन्यां शैले लेख्यमिवार्पितम् ॥ ४३ ॥
तदहं सज्जनमुखान्निःसृतं तत्समागमे ।
कथयिष्याम्यहमहो बुद्धिदीपकरं नृणाम् ॥ ४४ ॥
ततो मुनिगणाः सर्वे विस्मिताः कृष्णसंनिधौ ।
नेत्रैः पद्मदलप्रख्यैरपश्यंस्तं जनार्दनम् ॥ ४५ ॥
अर्चयन्तस्तथैवाऽन्ये पूजयन्तस्तथाऽपरे ।
वाग्भिर्ऋग्भूषितार्थाभिः स्तुवन्तो मधुसूदनम् ॥४६॥
ततो मुनिगणाः सर्वे नारदं देवदर्शनम् ।
तदा नियोजयामासुर्वचने वाक्यकोविदम् ॥ ४७ ॥
मुनय ऊचुः— यदाऽऽश्चर्यमचिन्त्यं च गिरौ हिमवति प्रभो ।
अनुभूतं मुनिगणैस्तीर्थयात्रापरैर्मुने ॥ ४८ ॥
तद्भवानृषिसंघस्य हितार्थं सर्वमादितः ।
यथादृष्टं हृषीकेशे सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥ ४९ ॥
एवमुक्तः स मुनिभिर्नारदो भगवान्मुनिः ।
कथयामास देवर्षिः पूर्ववृत्तामिमां कथाम् ॥ ५० ॥ [६२५५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥

नहीं होता। (३९—४२)

श्रद्धापूर्वक कहा हुआ विषय सज्जनोंके श्रवणगोचर होनेपर पर्वतमें अर्पित लेख्यकी भांति पृथ्वीमण्डलपर सदा स्थिति करता है, इसलिये मैं आप लोगोंके समागम समयमें सज्जनोंके मुखसे निकले हुए, मनुष्योंकी बुद्धि उद्दीपनकारी विषयोंका वर्णन करूंगा। अनन्तर मुनिगण कृष्णके निकट विस्मित होकर कमलदलसदृश नेत्रोंसे उन्हें देखने लगे। (४३—४५)

कोई मधुसूदनकी प्रशंसा करनेमें प्रवृत्त हुए, कोई पूजा करने लगे; कितने ही ऋङ्मन्त्रविभूषित वचनसे स्तुति करने लगे। अनन्तर मुनियोंने उस समय वाक्यकोविद नारद मुनिको कथा कहनेके लिये नियुक्त किया। मुनियोंने कहा, हे मुनि! तीर्थयात्रामें रत मुनियोंने हिमालयमें चिन्तनीय आश्चर्य अनुभव किया है, ऋषियोंके हितके निमित्त हृषीकेशके निकट वह सब जिस प्रकार देखा गया था, उसे आदिसे अन्ततक वर्णन करो। देवर्षि नारदमुनिने उन मुनियोंका वचन सुनके

भीष्म उवाच- ततो नारायणसुहृन्नारदो भगवानृषिः ।
शंकरस्योमया सार्धं संवादं प्रत्यभाषत ॥ १ ॥
नारद उवाच- तपश्चचार धर्मात्मा वृषभाङ्कः सुरेश्वरः ।
पुण्ये गिरौ हिमवति सिद्धचारणसेविते ॥ २ ॥
नानौषधियुते रम्ये नानापुष्पसमाकुले ।
अप्सरोगणसंकीर्णे भूतसंघनिषेविते ॥ ३ ॥
तत्र देवो मुदा युक्तो भूतसंघशतैर्वृतः ।
नानारूपैर्विरूपैश्च दिव्यैरद्भुतदर्शनैः ॥ ४ ॥
सिंहव्याघ्रगजप्रख्यैः सर्वजातिसमन्वितैः ।
क्रोष्टुकद्वीपिवदनैरृक्षर्षभमुखैस्तथा ॥ ५ ॥
उलूकवदनैर्भीमैर्वृकश्येनमुखैस्तथा ।
नानावर्णैर्मृगमुखैः सर्वजातिसमन्वितैः ॥ ६ ॥
किन्नरैर्यक्षगन्धर्वरक्षोभूतगणैस्तथा ।
दिव्यपुष्पसमाकीर्णं दिव्यज्वालासमाकुलम् ॥ ७ ॥
दिव्यचन्दनसंयुक्तं दिव्यधूपेन धूपितम् ।
तत्सदो वृषभाङ्कस्य दिव्यवादित्रनादितम् ॥ ८ ॥

पहले समयका वृत्तान्त कहना आरम्भ किया ।(४६-५०)

अनुशासनपर्वमें १३९ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १४० अध्याय ।

भीष्म बोले, अनन्तर नारायणके सुहृद भगवान् नारद ऋषि उमाके सङ्ग महादेवका जो वार्त्तालाप हुआ था, उसे कहने लगे । (१)

नारद मुनि बोले, सिद्ध चारणोंसे सेवित, ओषधियों, पुष्पों, अप्सराओं और भूतोंसे परिपूरित रमणीय पवित्र हिमालय पर्वतपर धर्मात्मा देवताओंके ईश्वर वृषभध्वजने तपस्या की थी । महादेव उस स्थानमें सैकडों भूतसमूहोंके बीच घिरके हर्षित थे, प्रेतगण अनेक रूप धारण करते थे, कोई विकटरूप, कोई अद्भुतदर्शन, कोई सिंहव्याघ्रसदृश, कोई सर्वगतियुक्त, कोई शृगालवदन, कोई चीतेके सदृश रूपवाले, कोई ऋक्षमुख, कोई उलूकानन, कोई भयङ्कर, कोई वृक और बाजपेयपक्षीकी भांति मुखयुक्त, अनेक प्रकारके मृगमुखवाले, सर्व जातियुक्त किन्नर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस और भूतों तथा दिव्य पुष्पोंसे परिपूरित, दिव्य ज्वाला और दिव्य चन्दनयुक्त, दिव्य धूपसे धूपित वह वृषभध्वजकी

मृदङ्गपणवोद्घुष्टं शङ्खभेरीनिनादितम् ।
नृत्यद्भिर्भूतसङ्घैश्च बर्हिणैश्च समन्ततः ॥ ९ ॥
प्रनृत्ताप्सरसं दिव्यं देवर्षिगणसेवितम् ।
दृष्टिकान्तमनिर्देश्यं दिव्यमद्भुतदर्शनम् ॥ १० ॥
स गिरिस्तपसा तस्य गिरिशस्य व्यरोचत ।
स्वाध्यायपरमैर्विप्रैर्ब्रह्मघोषो निनादितः ॥ ११ ॥
षट्पदैरुपगीतैश्च माधवाप्रतिमो गिरिः ।
तन्महोत्सवसङ्काशं भीमरूपधरं ततः ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा मुनिगणस्यासीत्परा प्रीतिर्जनार्दन ।
मुनयश्च महाभागाः सिद्धाश्चैवोर्ध्वरेतसः ॥ १३ ॥
मरुतो वसवः साध्या विश्वे देवाः सवासवाः ।
यक्षा नागाः पिशाचाश्च लोकपाला हुताशनाः ॥ १४ ॥
वाताः सर्वे महाभूतास्तत्रैवासन्समागताः ।
ऋतवः सर्वपुष्पैश्च व्यकिरन्त महाद्भुतैः ॥ १५ ॥
ओषध्यो ज्वलमानाश्च द्योतयन्ति स्म तद्वनम् ।
विहङ्गाश्च मुदा युक्ताः प्रानृत्यन्व्यनदंश्च ह ॥ १६ ॥
गिरिपृष्ठेषु रम्येषु व्याहरन्तो जनप्रियाः ।

सभा मृदङ्ग, ढोल, शंख तथा भेरी आदि दिव्य बाजोंके शब्दसे परिपूरित थी; नाचनेवाले भूतों और मयूरोंके सहित वहांपर अप्सरायें नृत्य कर रही थीं, देवर्षिगण वहांपर सदा निवास करते थे; वह सभा अत्यन्त दर्शनीय, अनिर्देश्य, दिव्य और अद्भुत थी। (२-१०)

वह पर्वत महादेवकी तपस्यासे सुशोभित हुआ था, स्वाध्यायपाठमें रत ब्राह्मणोंके वेदध्वनिसे निनादित था। हे माधव! वह पर्वत षट्पदगणके उपस्थित होनेसे अप्रतिम हुआ था। हे जनार्दन! महोत्सवसदृश भीमरूपधारी शङ्करको देखकर मुनियोंके मनमें परम प्रीति उत्पन्न हुई। महाभाग मुनिगण, ऊर्ध्वरेता सिद्धगण, मरुत्, वसु, साध्य, इन्द्रके सहित विश्वदेवगण, यक्ष, सर्प, पिशाचगण, सब लोकपाल, अग्नि, वायु और सब महद्भूत वहांपर उपस्थित थे। (११—१५)

सब समयके छहों ऋतुके फल वहां फूल रहे थे, ओषधियें प्रज्वलित होकर उस बनको प्रकाशित करती थीं, पक्षिसमूह हर्षित होके नाचते और गाते थे,

तत्र देवो गिरितटे दिव्यधातुविभूषिते ॥ १७ ॥
पर्यङ्क इव विभ्राजन्नुपविष्टो महामनाः ।
व्याघ्रचर्माम्बरधरः सिंहचर्मोत्तरच्छदः ॥ १८ ॥
व्यालयज्ञोपवीती च लोहिताङ्गदभूषणः ।
हरिश्मश्रुर्जटी भीमो भयकर्ता सुरद्विषाम् ॥ १९ ॥
अभयः सर्वभूतानां भक्तानां वृषभध्वजः ।
दृष्ट्वा महर्षयः सर्वे शिरोभिरवनिं गताः ॥ २० ॥
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः शान्ता विगतकल्मषाः ।
तस्य भूतपतेः स्थानं भीमरूपधरं बभौ ॥ २१ ॥
अप्रधृष्यतरं चैव महोरगसमाकुलम् ।
क्षणेनैवाभवत्सर्वमद्भुतं मधुसूदन ॥ २२ ॥
तत्सदो वृषभाङ्कस्य भीमरूपधरं बभौ ।
तमभ्ययाच्छैलसुता भूतस्त्रीगणसंवृता ॥ २३ ॥
हरतुल्याम्बरधरा समानव्रतधारिणी ।
बिभ्रती कलशं रौक्मं सर्वतीर्थजलोद्भवम् ॥ २४ ॥
गिरिस्रवाभिः सर्वाभिः पृष्ठतोऽनुगता शुभा ।

रमणीय पर्वतके शिखरपर जनप्रिय पक्षीवृन्द विचर रहे थे। उस दिव्य-धातुविभूषित गिरिपर महामना महादेव पर्यङ्कपर बैठे हुएकी भांति विराजमान थे। उस समय वे व्याघ्रचर्मधारी तथा सिंहचर्म पहरे हुए, व्यालयज्ञोपवीतयुक्त लोहिताङ्गदसे भूषित थे। हरिश्मश्रुजटी भीम, देवद्वेषियोंको भयभीत करनेवाले, सब जीवोंके अभयदाता, भक्तोंको भयसे परित्राण करनेवाले वृषभध्वज उस स्थानमें विराजमान थे। (१५-२०)

महर्षिगणने उन्हें देखकर सिर झुकाकर पृथ्वीपर गिरके साष्टाङ्ग प्रणाम किया, प्रणाम करते ही वे लोग क्षमा-शील होकर सब पापोंसे मुक्त हुए; वह भूतपतिका आश्रम उस समय भीमरूप धारण करके शोभित हुआ, वह उस समय अप्रधृष्य और महोरगोंसे परिपूर्ण होगया। हे मधुसूदन ! क्षण भरके बीच उस स्थानमें आश्चर्य दीख पडा; वह वृषभध्वजकी सभा भयङ्कर रूप धारण करके शोभित होने लगी। हरके सदृश अम्बरधारिणी समानव्रतचारिणी शैल-नन्दिनीने भूत भामिनियोंके बीच घिरकर उनके समीप आगमन किया। वह उस समय सब तीर्थोंके जलसे युक्त

पुष्पवृष्ट्याभिवर्षन्ती गन्धैर्बहुविधैस्तथा ।
सेवन्ती हिमवत्पार्श्वं हरपार्श्वमुपागमत् ॥ २५ ॥
ततः स्मयन्ती पाणिभ्यां नर्मार्थं चारुहासिनी ।
हरनेत्रे शुभे देवी सहसा सा समावृणोत् ॥ २६ ॥
संवृताभ्यां तु नेत्राभ्यां तमोभूतमचेतनम् ।
निर्होमं निर्वषट्कारं जगद्वै सहसाऽभवत् ॥ २७ ॥
जनश्च विमनाः सर्वोऽभवत्त्राससमन्वितः ।
निमीलिते भूतपतौ नष्टसूर्य इवाभवत् ॥ २८ ॥
ततो वितिमिरो लोकः क्षणेन समपद्यत ।
ज्वाला च महती दीप्ता ललाटात्तस्य निःसृता ॥२९ ॥
तृतीयं चास्य सम्भूतं नेत्रमादित्यसंनिभम् ।
युगान्तसदृशं दीप्तं येनासौ मथितो गिरिः ॥ ३० ॥
ततो गिरिसुता दृष्ट्वा दीप्ताग्निसदृशेक्षणम् ।
हरं प्रणम्य शिरसा ददर्शायतलोचना ॥ ३१ ॥
दह्यमाने वने तस्मिन्ससालसरलद्रुमे ।
सचन्दनवरे रम्ये दिव्यौषधिविदीपिते ॥ ३२ ॥

सुवर्णकलश धारण करके गिरिनिर्झरिणियोंके द्वारा पश्चाद्भागमें अनुगत होकर शोभित होने लगी; उन्होंने अनेक प्रकारकी सुगन्ध और फूलोंकी वर्षा करती हुई हिमवत्पार्श्वसेवापूर्वक हरके पार्श्वमें आगमन किया। (२०-२५)

अनन्तर उस चारुदर्शना देवीने हंसकर कौतुकके निमित्त अपने हाथोंसे सहसा महादेवके दोनों उत्तम नेत्र मूंद लिये। महादेवके नेत्र बन्द होनेपर सहसा जगत् तमोमय और अचेतन हुआ और निर्होम तथा वषट्काररहित होगया; सब प्राणी मलिन मन और भयभीत हुए, महादेवके नेत्र बन्द होनेपर मानो सूर्य छिप गया। अनन्तर क्षणभरके बीच सब लोक अन्धकाररहित हुए, महादेवके मस्तकसे महत् प्रदीप्त ज्वाला निकली और प्रलयकालके प्रज्वलित सूर्यके समान उनका तीसरा नेत्र प्रकट हुआ, जिसके सहारे वह पर्वत मथित होने लगा। (२६—३०)

अनन्तर विशालनयनी शैलाधिराजपुत्रीने प्रदीप्त अग्निसदृश नेत्रवाले त्रिलोचनको सिर झुकाके प्रणाम किया। साल, सरल वृक्ष, रमणीय, चन्दनवन और दिव्य औषधियोंसे प्रकाशमान उस

मृगयूथैर्द्रुतैर्भीतैर्हरपार्श्वमुपागतैः ।
शरणं चाप्यविन्दद्भिस्तत्सदः सङ्कुलं बभौ ॥ ३३ ॥
ततो नभस्पृशज्ज्वालो विद्युल्लोलाग्निकल्बणः ।
द्वादशादित्यसदृशो युगान्ताग्निरिवापरः ॥ ३४ ॥
क्षणेन तेन निर्दग्धो हिमवानभवन्नगः ।
सधातुशिखराभोगो दीप्तदग्धलतौषधिः ॥ ३५ ॥
तं दृष्ट्वा मथितं शैलं शैलराजसुता ततः ।
भगवन्तं प्रपन्ना वै साञ्जलिप्रग्रहास्थिता ॥ ३६ ॥
उमां शर्वस्तदा दृष्ट्वा स्त्रीभावगतमार्दवाम् ।
पितुर्दैन्यमनिच्छन्तीं प्रीत्यापश्यत्तदा गिरिम् ॥ ३७ ॥
क्षणेन हिमवान्सर्वः प्रकृतिस्थः सुदर्शनः ।
प्रहृष्टविहगश्चैव सुपुष्पितवनद्रुमः ॥ ३८ ॥
प्रकृतिस्थं गिरिं दृष्ट्वा प्रीता देवं महेश्वरम् ।
उवाच सर्वलोकानां पतिं शिवमनिन्दिता ॥ ३९ ॥

उमोवाच— भगवन्सर्वभूतेश शूलपाणे महाव्रत ।
संशयो मे महान् जातस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥४०॥

वनके जलनेपर मृगगण भयभीत होके दौडे और किसी स्थानमें ठहरनेका आश्रय न पाकर महादेवके निकट उपस्थित हुए, वह सभा सन्नाटायुक्त होके शोभित होने लगी। अनन्तर गगनस्पर्शी ज्वालामालायुक्त तडिल्लता सदृश उज्वल द्वितीय प्रलयाग्निकी भांति द्वादशादित्यसङ्काश उत्कट प्रलयकालीन अग्निके द्वारा क्षण भरके बीच हिमालय निःशेष होकर जल गया। धातु, शिखर, झरने, वन और सब ओषधियें जल गईं। (३१—३५)

अनन्तर शैलपुत्री उस पर्वतको भस्म हुआ देखकर हाथ जोडके भगवानकी शरणमें गईं। महादेव उस समय उमाको स्त्रीस्वभावसुलभ मार्दवशालिनी और पिताकी विपद् देखनेकी अनभिलाषिणी देखकर प्रीतिपूर्वक हिमालयकी ओर देखा। क्षणभरके बीच हिमालय प्रकृतिस्थ और दर्शनीय हुआ, पक्षिसमूह प्रमुदित और वनके वृक्ष उत्तम पुष्पोंसे युक्त हुए। अनिन्दिता उमाने उस समय हिमवानको प्रकृतिस्थ देखकर प्रसन्न होके सर्वलोकप्रभु निजपति महादेवसे कहा। (३६-३९)

उमा बोली, हे सर्वभूतेश महाव्रती

किमर्थं ते ललाटे वै तृतीयं नेत्रमुत्थितम्।
किमर्थं च गिरिर्दग्धः सपक्षिगणकाननः ॥ ४१ ॥
किमर्थं च पुनर्देव प्रकृतिस्थस्त्वया कृतः।
तथैव द्रुमसंछन्नः कृतोऽयं ते पिता मम ॥ ४२ ॥
महेश्वर उवाच– नेत्रे मे संवृते देवि त्वया बाल्यादनिन्दिते।
नष्टालोकस्तदा लोकः क्षणेन समपद्यत ॥ ४३ ॥
नष्टादित्ये तथा लोके तमोभूते नगात्मजे।
तृतीयं लोचनं दीप्तं सृष्टं मे रक्षता प्रजाः ॥ ४४ ॥
तस्य चाक्ष्णो महत्तेजो येनायं मथितो गिरिः।
त्वत्प्रियार्थं च मे देवि प्रकृतिस्थः पुनः कृतः ॥ ४५ ॥
उमोवाच— भगवन्केन ते वक्त्रं चन्द्रवत्प्रियदर्शनम्।
पूर्वं तथैव श्रीकान्तमुत्तरं पश्चिमं तथा ॥ ४६ ॥
दक्षिणं च मुखं रौद्रं केनोर्ध्वं कपिला जटाः।
केन कण्ठश्च ते नीलो बर्हिबर्हनिभः कृतः ॥ ४७ ॥
हस्ते देव पिनाकं ते सततं केन तिष्ठति।

शूलधारी भगवन्! मुझे अत्यन्तही सन्देह हुआ है, इसलिये आप उस विषयको वर्णन करिये। हे देव! किसलिये आपके माथेमें तीसरा नेत्र प्रकट हुआ? किस निमित्त पक्षियों और वनके सहित पर्वत भस्म हुआ, किस हेतु आपने मेरे पिताको प्रकृतिस्थ और पहलेकी भांति वृक्षोंसे परिपूरित किया। (४०–४२)

महेश्वर बोले, हे अनिन्दिते देवि! तुमने जो बालस्वभावसे मेरे नेत्रोंको मूंद लिया, उससे क्षणभरके बीच सब लोक प्रकाशरहित हुए। हे नगनन्दिनि! जब सब लोक आदित्यरहित होनेसे तमोमय हुए, तब मैंने प्रजासमूहकी रक्षा करनेके लिये अपना तीसरा प्रदीप्त नेत्र प्रकट किया, उस ही नेत्रके महत् तेजसे यह पर्वत मथित हुआ। हे देवि! तुम्हारी प्रीतिके निमित्त मैंने फिर शैलराजको प्रकृतिस्थ किया (४३–४५)

उमा बोली, हे भगवन्! किस निमित्त आपका चन्द्रमासदृश शोभायुक्त प्रियदर्शन आनन पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और ऊर्ध्वमुख हुआ और किस कारणसे रौद्ररूप धारण किया? किस हेतु कपिलवर्णकी जटाजूट हुई? किसलिये आपने अपने कण्ठको बर्हिबर्हसदृश नीलवर्ण किया? हे देव! किसलिये आप हाथमें सदा पिनाक धनुष्य

जटिलो ब्रह्मचारी च किमर्थमसि नित्यदा ॥ ४८ ॥
एतन्मे संशयं सर्वं वक्तुमर्हसि वै प्रभो।
सधर्मचारिणी चाहं भक्ता चेति वृषध्वज ॥ ४९ ॥
भीष्म उवाच- एवमुक्तः स भगवान्शैलपुत्र्या पिनाकधृत्।
तस्या धृत्या च बुद्ध्या च प्रीतिमानभवत्प्रभुः ॥ ५० ॥
ततस्तामब्रवीद्देवः सुभगे श्रूयतामिति।
हेतुभिर्यैर्ममैतानि रूपाणि रुचिरानने ॥ ५१ ॥ [६३०६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उमामहेश्वरसंवादो नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४० ॥

श्रीभगवानुवाच- तिलोत्तमा नाम पुरा ब्रह्मणा योषिदुत्तमा।
तिलं तिलं समुद्धृत्य रत्नानां निर्मिता शुभा ॥ १ ॥
साऽभ्यगच्छत मां देवि रूपेणाप्रतिमा भुवि।
प्रदक्षिणं लोभयती मां शुभे रुचिरानना ॥ २ ॥
यतो यतः सा सुदती मामुपाधावदन्तिके।
ततस्ततो मुखं चारु मम देवि विनिर्गतम् ॥ ३ ॥
तां दिदृक्षुरहं योगाच्चतुर्मूर्तित्वमागतः।

धारण किया करते हैं। तुम सदा जटिल और ब्रह्मचारी किसलिये रहते हो? हे प्रभु! हे वृषभध्वज! मैं आपकी सहधर्मचारिणी तथा आपके विषयमें भक्तिमती हूं, इसलिये आपको मेरे सन्देहके विषयोंको विधिपूर्वक वर्णन करना उचित है। (४६-४९)

भीष्म बोले, भगवान् पिनाकपाणि शैलपुत्रीका ऐसा वचन सुनके उसके धैर्य और बुद्धिसे प्रसन्न हुए, अनन्तर उससे बोले, हे सुमुखि सुभगे! जिन कारणोंसे मेरे ये सब रूप हुए हैं, उसे सुनो। (५०—५१)

अनुशासनपर्वमें १४० अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १४१ अध्याय।

श्रीभगवान् बोले, पहले समयमें ब्रह्माकी तिलोत्तमा नामी एक उत्तम कन्या थी, सब रत्नोंका सार भाग निकालकर वह शुभाङ्गी निर्मित हुई थी। हे देवि! भूलोकमें अप्रतिम सुन्दरताई युक्त वह सुमुखि मेरी प्रदक्षिण करके प्रलोभित करती हुई सम्मुख आई। वह सुन्दरी जिस जिस दिशामें मेरी ओर आई, उस ही ओर मेरे मनोहर मुख बाहिर हुए। उसे देखनेके लिये अभिलाषी होकर मैंने चार मूर्त्तियां

चतुर्मुखश्च संवृत्तो दर्शयन्योगमुत्तमम् ॥ ४ ॥
पूर्वेण वदनेनाहमिन्द्रत्वमनुशास्मि ह ।
उत्तरेण त्वया सार्धं रमाम्यहमनिन्दिते ॥ ५ ॥
पश्चिमं मे मुखं सौम्यं सर्वप्राणिसुखावहम् ।
दक्षिणं भीमसङ्काशं रौद्रं संहरति प्रजाः ॥ ६ ॥
जटिलो ब्रह्मचारी च लोकानां हितकाम्यया ।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं पिनाकं मे करे स्थितम् ॥ ७ ॥
इन्द्रेण च पुरा वज्रं क्षिप्तं श्रीकाङ्क्षिणा मम ।
दग्ध्वा कण्ठं तु तद्यातं तेन श्रीकण्ठता मम ॥ ८ ॥
उमोवाच— वाहनेष्वत्र सर्वेषु श्रीमत्स्वन्येषु सत्तम ।
कथं च वृषभो देव वाहनत्वमुपागतः ॥ ९ ॥
महेश्वर उवाच- सुरभीमसृजद्ब्रह्मा देवधेनुं पयोमुचम् ।
सा सृष्टा बहुधा जाता क्षरमाणा पयोऽमृतम् ॥१०॥
तस्या वत्समुखोत्सृष्टः फेनो मद्गात्रमागतः ।
ततो दग्धा मया गावो नानावर्णत्वमागताः ॥ ११ ॥
ततोऽहं लोकगुरुणा शमं नीतोऽर्थवेदिना ।

धारण की और उत्कृष्ट योगके द्वारा चतुर्मुख हुआ। (१—४)

मैं पूर्व वदनसे इन्द्रत्वका अनुशासन करता हूं। हे अनिन्दिते! उत्तर मुखसे तुम्हारे सङ्ग क्रीडा करता हूं, मेरा पश्चिम मुख अत्यन्त प्रियदर्शन है, यह सब प्राणियोंको सुखी करता है और दक्षिण मुख अत्यन्त भयङ्कर तथा रौद्र होकर प्रजाका संहार किया करता है। मैं सब लोकोंकी हितकामनासे जटिल और ब्रह्मचारी हुआ हूं। देवकार्यसिद्धिके निमित्त मैंने हाथमें पिनाक धारण किया है। पहले समय इन्द्रने श्रीकामना करते हुए मेरे ऊपर वज्र चलाया था, उस वज्रने मेरा कण्ठ जला दिया, उसीसे मैं श्रीकण्ठ हुआ हूं। (५—८)

उमा बोली, हे सत्तम! इस स्थानमें दूसरे श्रीमान् वाहनोंके रहते भी वृषभ आपका वाहन क्योंकर हुआ? (९)

महादेव बोले, ब्रह्माने दूध देनेवाली देवधेनु सुरभीको उत्पन्न किया, सुरभी उत्पन्न होकर दूधरूपी अमृत प्रदान करती हुई अनेक हुई, उसके बछडेके मुखसे फेन मेरे शरीरपर गिरा था। अनन्तर गौवें मेरे द्वारा जलके अनेक वर्णकी होगईं; अन्तमें अर्थवेत्ता लोकगुरु

वृषं चैनं ध्वजार्थं मे ददौ वाहनमेव च ॥ १२ ॥

उमोवाच— निवासा बहुरूपास्ते दिवि सर्वगुणान्विताः।
तांश्च संत्यज्य भगवन् श्मशाने रमसे कथम् ॥ १३ ॥
केशास्थिकलिले भीमे कपालघटसङ्कुले।
गृध्रगोमायुबहुले चिताग्निशतसङ्कुले ॥ १४ ॥
अशुचौ मांसकलिले वसाशोणितकर्दमे।
विकीर्णान्त्रास्थिनिचये शिवानादविनादिते ॥ १५ ॥

महेश्वर उवाच— मेध्यान्वेषी महीं कृत्स्नां विचराम्यनिशं सदा।
न च मेध्यतरं किंचित् श्मशानादिह लक्ष्यते ॥ १६ ॥
तेन मे सर्ववासानां श्मशाने रमते मनः।
न्यग्रोधशाखासञ्छन्ने निर्भुग्नस्रग्विभूषिते ॥ १७ ॥
तत्र चैव रमन्तीमे भूतसङ्घाः शुचिस्मिते।
न च भूतगणैर्देवि विनाऽहं वस्तुमुत्सहे ॥ १८ ॥
एष वासो हि मे मेध्यः स्वर्गीयश्च मतः शुभे।
पुण्यः परमकश्चैव मेध्यकामैरुपास्यते ॥ १९ ॥

ब्रह्माने मुझे शान्त किया और उन्होंने मुझे ध्वजाके निमित्त यह वृषवाहन प्रदान किया। (१०—१२)

उमा बोली, हे भगवन्! स्वर्गके बीच सब भाँतिकी सुन्दरतासे युक्त अनेक प्रकारके निवासस्थान हैं, उन सबको परित्याग करके आप केश और हड्डीसे परिपूरित भयङ्कर कपाल और घटसंकुल बहुतेरे गिद्ध सियारोंसे सेवित, सैकडों चितानलयुक्त, अपवित्र मांस, चर्बी, रुधिर, अन्त्रावली और हड्डियोंसे भरे, सियारोंके शब्दसे निनादित श्मशानमें किसलिये क्रीडा करते हैं? (१३-१५)

महादेव बोले, मैं पवित्र स्थान खोजते हुए इस पृथ्वीमण्डलपर भ्रमण करता हूं, परन्तु श्मशानसे बढके उत्तम और कुछ भी नहीं दीखता; इस ही निमित्त समस्त निवासस्थानोंके बीच वटशाखासे परिपूरित विच्छिन्न स्रग्विभूषित श्मशानमें मेरा मन रत होता है। हे शुचिस्मिते! ये सब भूत उस श्मशानमें ही क्रीडा करते हैं। हे देवि! भूतगणके विना मैं निवास करनेका उत्साह नहीं करता। हे शुभे! मेरा यह श्मशानवास ही पवित्र और स्वर्गीय है, पवित्रताकी अभिलाष करनेवाले इस परम पवित्र स्थानकी उपासना किया करते हैं। (१६—१९)

उमोवाच— भगवन्सर्वभूतेश सर्वधर्मविदां वर ।
पिनाकपाणे वरद संशयो मे महानयम् ॥ २० ॥
अयं मुनिगणः सर्वस्तपस्तेप इति प्रभो ।
तपोवेषकरो लोके भ्रमते विविधाकृतिः ॥ २१ ॥
अस्य चैवर्षिसङ्घस्य मम च प्रियकाम्यया ।
एवं ममेह सन्देहं वक्तुमर्हस्यरिन्दम ॥ २२ ॥
धर्मः किंलक्षणः प्रोक्तः कथं वा चरितुं नरैः ।
शक्यो धर्ममविन्दद्भिर्धर्मज्ञ वद मे प्रभो ॥ २३ ॥
नारद उवाच- ततो मुनिगणः सर्वस्तां देवीं प्रत्यपूजयत् ।
वाग्भिर्ऋग्भूषिताथाभिः स्तवैश्चार्थविशारदैः ॥ २४ ॥
महेश्वर उवाच- अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतानुकम्पनम् ।
शमो दानं यथाशक्ति गार्हस्थ्यो धर्म उत्तमः ॥२५॥
परदारेष्वसंसर्गो न्यासस्त्रीपरिरक्षणम् ।
अदत्तादानविरमो मधुमांसस्य वर्जनम् ॥ २६ ॥
एष पञ्चविधो धर्मो बहुशाखः सुखोदयः ।
देहिभिर्धर्मपरमैश्चर्तव्यो धर्मसंभवः ॥ २७ ॥

उमा बोली, हे सर्वधर्मभृतांवर सर्वभूतेश पिनाकपाणि भगवन् ! मुझे इन मुनियोंके तपस्या विषयमें महान् सन्देह है, नखलोमजटाधारी तपस्वी-वेषवाले अनेक भांतिके लोग जगत्‌के बीच भ्रमण करते हैं। हे अरिन्दम ! इन ऋषियोंकी तथा मेरी प्रिय कामनासे आपको मेरा यह महत् सन्देह दूर करना उचित है। धर्मका क्या लक्षण है और जो मनुष्य धर्मज्ञ नहीं हैं, वे किस प्रकार धर्माचरण करनेमें समर्थ होंगे ? हे धर्मज्ञ ! आप इसे ही मेरे समीप वर्णन करिये। (२०—२३)

नारद मुनि बोले, अनन्तर उन मुनियोंने ऋग्विभूषित वाक्यों और अर्थविशारद स्तोत्रोंसे उमादेवीकी पूजा की। (२४)

महादेव बोले, अहिंसा, सत्यवचन, सब जीवोंके विषयमें दया, शम और शक्तिके अनुसार दानही गृहस्थोंका श्रेष्ठ धर्म है। पराई स्त्रियोंमें आसक्त न होना न्यास और स्त्रीकी रक्षा करनी, अदत्ता-दानसे विरत रहना और मधुमांसको परित्याग करना, ये पांच प्रकारके धर्म अनेक शाखायुक्त तथा सुखदायक हैं, धर्मपरायण देहधारियोंको शरीरसाध्य

उमोवाच— भगवन्संशयः पृष्टस्तन्मे शंसितुमर्हसि ।
चातुर्वर्ण्यस्य यो धर्मः स्वे स्वे वर्णे गुणावहः ॥ २८ ॥
ब्राह्मणे कीदृशो धर्मः क्षत्रिये कीदृशोऽभवत् ।
वैश्ये किंलक्षणो धर्मः शूद्रे किंलक्षणो भवेत् ॥ २९ ॥
महेश्वर उवाच- न्यायतस्ते महाभागे सर्वशः समुदीरितः ।
भूमिदेवा महाभागाः सदा लोके द्विजातयः ॥ ३० ॥
उपवासः सदा धर्मो ब्राह्मणस्य न संशयः ।
स हि धर्मार्थसंपन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ३१ ॥
तस्य धर्मक्रिया देवि ब्रह्मचर्या च न्यायतः ।
व्रतोपनयनं चैव द्विजो येनोपपद्यते ॥ ३२ ॥
गुरुदैवतपूजार्थं स्वाध्यायाभ्यसनात्मकः ।
देहिभिर्धर्मपरमैश्चर्तव्यो धर्मसम्भवः ॥ ३३ ॥
उमोवाच— भगवन्संशयो मेऽस्ति तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।
चातुर्वर्ण्यस्य धर्मं वै नैपुण्येन प्रकीर्तय ॥ ३४ ॥
महेश्वर उवाच- रहस्यश्रवणं धर्मो वेदव्रतनिषेवणम् ।

धर्माचरण करना योग्य है । (२५-२७)

उमा बोली, हे भगवन् ! मैं आपसे सन्देहका विषय पूछती हूं, इसलिये आपको मेरे समीप वह विषय कहना उचित है । चारों वर्णोंके बीच निज निज धर्महीं सुखदायक है, ब्राह्मणका धर्म कैसा है और क्षत्रिय किस प्रकार धर्माचरण करेगा, वैश्यके धर्मलक्षण क्या हैं और शूद्रोंका कैसा धर्म है ? (२८—२९)

श्रीभगवान् बोले, हे महाभागे ! तुमने न्यायपूर्वक यह संशयका विषय पूछा है, महाभाग द्विजातिगण जगत्के बीच सदा भूमिदेव कहके विख्यात हैं, ब्राह्मणोंके लिये हर समयमें निःसन्देह उपवास ही धर्म है, धर्मार्थयुक्त ब्राह्मण ब्रह्मत्व लाभके योग्य हैं । हे देवि ! न्यायपूर्वक ब्रह्मचर्या ही उनकी धर्मक्रिया, व्रत और उपनयन ही उनका धर्म है, जिससे कि ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है । गुरु और देवताओंकी पूजाके निमित्त धर्मपरायण पुरुषोंको धर्म और स्वाध्यायपाठ करना चाहिये । (३०-३३)

उमा बोली, हे भगवन् ! मुझे कुछ सन्देह है, आपही उसे दूर करनेके योग्य हैं, इसलिये चारों वर्णोंके धर्म आप निपुण भावसे वर्णन करिये। (३४)

महेश्वर बोले, रहस्य सुनना, वेद-

अग्निकार्यं तथा धर्मो गुरुकार्यप्रसाधनम् ॥ ३५ ॥
भैक्षचर्या परो धर्मो नित्ययज्ञोपवीतिता।
नित्यं स्वाध्यायिता धर्मो ब्रह्मचर्याश्रमस्तथा ॥ ३६ ॥
गुरुणा चाभ्यनुज्ञातः समावर्तेत वै द्विजः।
विन्देतानन्तरं भार्यामनुरूपां यथाविधि ॥ ३७ ॥
शूद्रान्नवर्जनं धर्मस्तथा सत्पथसेवनम्।
धर्मो नित्योपवासित्वं ब्रह्मचर्यं तथैव च ॥ ३८ ॥
आहिताग्निरधीयानो जुह्वानः संयतेन्द्रियः।
विघसाशी यताहारो गृहस्थः सत्यवाक् शुचिः ॥३९॥
अतिथिव्रतता धर्मो धर्मस्त्रेताग्निधारणम्।
इष्टीश्च पशुबन्धांश्च विधिपूर्वं समाचरेत ॥ ४० ॥
यज्ञश्च परमो धर्मस्तथाऽहिंसा च देहिषु।
अपूर्वभोजनं धर्मो विघसाशित्वमेव च ॥ ४१ ॥
भुक्ते परिजने पश्चाद्भोजनं धर्म उच्यते।
ब्राह्मणस्य गृहस्थस्य श्रोत्रियस्य विशेषतः ॥ ४२ ॥
दम्पत्योः समशीलत्वं धर्मः स्याद् गृहमेधिनः।

व्रतका सेवन, अग्निकर्म और गुरुकार्य का निभाना ही धर्म है, सदा यज्ञोपवीत-धारण और भैक्ष्यचर्या परम धर्म है, सदा स्वाध्यायपाठ और ब्रह्मचर्य व्रत करना ब्राह्मणोंका धर्म है, ब्राह्मण गुरुकी अनुमतिसे समावर्त्तन संस्कार करके विधिपूर्वक अनुरूप भार्या परिग्रह करे, ब्राह्मणके लिये शूद्रान्नत्याग, सन्मार्ग-सेवन, उपवास और ब्रह्मचर्य धर्म हैं। (३५—३८)

गृहस्थ मनुष्य आहिताग्नि, अध्ययन-शील, संयतेन्द्रिय, सदा होम करनेवाला, विघसाशी, यताहारी, सत्यवादी और पवित्र होवे। अतिथिसेवा करना गृहस्थ का धर्म है। दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य और आहवनीय अग्निको धारण करना ब्राह्म-णोंका धर्म है। सब यज्ञों और यज्ञोंमें पशुबन्धन कार्यको ब्राह्मण विधिपूर्वक करे। जीवोंकी अहिंसा और यज्ञ करना परम धर्म है, अपूर्व भोजन और विघसा-शित्व धर्म है; परिजनोंके भोजन करनेके अनन्तर पश्चात् भोजन करना धर्म कहके वर्णित हुआ है; गृहस्थों वा विशेष करके श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको अवश्यही यह धर्माचरण करना चाहिये। (३९-४२)

गृहमेधियोंके लिये समानशीलत्व

गृह्याणां चैव देवानां नित्यपुष्पबलिक्रिया ॥ ४३ ॥
नित्योपलेपनं धर्मस्तथा नित्योपवासिता ।
सुसंमृष्टोपलिप्ते च साज्यधूमो भवेद् गृहे ॥ ४४ ॥
एष द्विजजने धर्मो गार्हस्थो लोकधारणः ।
द्विजानां च सतां नित्यं सदैवैष प्रवर्तते ॥ ४५ ॥
यस्तु क्षत्रगतो देवि मया धर्म उदीरितः ।
तमहं ते प्रवक्ष्यामि तन्मे शृणु समाहिता ॥ ४६ ॥
क्षत्रियस्य स्मृतो धर्मः प्रजापालनमादितः ।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥ ४७ ॥
प्रजाः पालयते यो हि धर्मेण मनुजाधिपः ।
तस्य धर्मार्जिता लोकाः प्रजापालनसंचिताः ॥ ४८ ॥
तस्य राज्ञः परो धर्मो दमः स्वाध्याय एव च ।
अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥ ४९ ॥
यज्ञोपवीतधरणं यज्ञो धर्मक्रियास्तथा ।
भृत्यानां भरणं धर्मः कृते कर्मण्यमोघता ॥ ५० ॥
सम्यग्दण्डे स्थितिर्धर्मो धर्मो वेदक्रतुक्रियाः ।
व्यवहारस्थितिर्धर्मः सत्यवाक्यरतिस्तथा ॥ ५१ ॥

धर्म हुआ करता है। गृहदेवताओंकी सदा पुष्प आदिसे पूजा करनी योग्य है। सदा उपलेपन और उपवास धर्म कहा गया है। उत्तम रीतिसे लिपे पुते गृहमें घृतधूम रहेगा। द्विजगणके लोकधारण इस गार्हस्थ धर्ममें साधु ब्राह्मण सदा प्रवृत्त होते हैं। हे देवि! तुमने क्षत्रियधर्मके विषयमें जो प्रश्न किया है, मैं तुमसे उसका विवरण कहता हूं, सावधान होके सुनो। प्रथम क्षत्रियोंके लिये प्रजापालन धर्म स्मृत हुआ है। निर्दिष्ट फलभोक्ता राजा धर्मयुक्त होता है, जो राजा धर्मपूर्वक प्रजापालन करता है, उसे प्रजापालनरूपी सञ्चित धर्मसे पुण्यलोक प्राप्त होते हैं। (४३—४८)

इन्द्रियदमन, स्वशाखोक्त वेदपाठ, अग्निहोत्र, दान और अध्ययन क्षत्रियका परम धर्म है। यज्ञोपवीतधारण, यज्ञ करना, सेवकोंको पालना और कृत कर्मोंकी सफलता ही धर्म है; दण्डविषयमें पूरी रीतिसे मर्यादाकी रक्षा करनी, वेदोक्त यज्ञ कर्मोंका आचरण, व्यवहारस्थिति और सत्य वचनमें रति क्षत्रियका

आर्तहस्तप्रदो राजा प्रेत्य चेह महीयते ।
गोब्राह्मणार्थे विक्रान्तः सङ्ग्रामे निधनं गतः ॥ ५२ ॥
अश्वमेधजिताँल्लोकानाप्नोति त्रिदिवालये ॥ ५३ ॥
वैश्यस्य सततं धर्मः पाशुपाल्यं कृषिस्तथा ।
अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥ ५४ ॥
वाणिज्यं सत्पथस्थानमातिथ्यं प्रशमो दमः ।
विप्राणां स्वागतं त्यागो वैश्यधर्मः सनातनः ॥ ५५ ॥
तिलान्गन्धान् रसांश्चैव विक्रीणीयान्न चैव हि ।
वणिक्पथमुपासीनो वैश्यः सत्पथमाश्रितः ॥ ५६ ॥
सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य यथाशक्ति यथार्हतः ।
शूद्रधर्मः परो नित्यं शुश्रूषा च द्विजातिषु ॥ ५७ ॥
स शूद्रः संशिततपाः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।
शुश्रूषुरतिथिं प्राप्तं तपः सञ्चिनुते महत् ॥ ५८ ॥
नित्यं स हि शुभाचारी देवताद्विजपूजकः ।
शूद्रो धर्मफलैरिष्टैः संप्रयुज्येत बुद्धिमान् ॥ ५९ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं चातुर्वर्ण्यस्य शोभने ।

धर्म है। प्रीतिपूर्वक हाथसे दान करनेवाले क्षत्रिय इसलोक और परलोकमें पूजित होते हैं, अश्वमेध यज्ञ करनेसे लोगोंको जो लोक मिलते हैं, ब्राह्मणके निमित्त युद्ध करने तथा संग्राममें मरनेवाले, क्षत्रिय उन्हीं लोकोंमें जाते हैं। (४९--५३)

सदा पशुओंको पालना और कृषिकर्म करना वैश्योंका धर्म है। अग्निहोत्र, दान, अध्ययन, वाणिज्य, सत्पथमें स्थिति, अतिथिसेवा, प्रशम, दम, ब्राह्मणोंका स्वागतप्रश्न और धनदान करना वैश्योंका सनातन धर्म है। सन्मार्गमें स्थित वैश्य वाणिज्यकार्यमें नियुक्त होकर सुगन्ध, तिल और चर्बी न बेचे; सब प्रकारसे अतिथिसत्कार करके शक्तिके अनुसार यथायोग्य धर्मार्थकामकी सेवा करे। (५४—५७)

द्विजातियोंकी सदा सेवा करनी ही शूद्रोंका परम धर्म है, जो पुरुष संशितव्रती, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होकर उपस्थित अतिथिकी सेवा करते हुए महत् तपस्या सञ्चय करता है, वही शूद्र है, देवताओं और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाला शुभाचारी बुद्धिमान् शूद्र अभिलषित फल पाता है।

एकैकस्येह सुभगे किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ६० ॥

उमोवाच— उक्तस्त्वया पृथग्धर्मश्चातुर्वर्ण्यहितः शुभः।
सर्वव्यापी तु यो धर्मो भगवंस्तद्ब्रवीहि मे ॥ ६१ ॥

महेश्वर उवाच—ब्राह्मणा लोकसारेण सृष्टा धात्रा गुणार्थिना।
लोकांस्तारयितुं कृत्स्नान्मर्त्येषु क्षितिदेवताः ॥ ६२ ॥
तेषामपि प्रवक्ष्यामि धर्मकर्मफलोदयम्।
ब्राह्मणेषु हि यो धर्मः स धर्मः परमो मतः ॥ ६३ ॥
इमे ते लोकधर्मार्थं त्रयः सृष्टाः स्वयम्भुवा।
पृथिव्यां सर्जने नित्यं सृष्टांस्तानपि मे शृणु ॥ ६४ ॥
वेदोक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः।
शिष्टाचीर्णो परः प्रोक्तस्त्रयो धर्माः सनातनाः ॥६५॥
त्रैविद्यो ब्राह्मणो विद्वान्न चाध्ययनजीवकः।
त्रिकर्मा त्रिपरिक्रान्तो मैत्र एष स्मृतो द्विजः॥ ६६ ॥
षडिमानि तु कर्माणि प्रोवाच भुवनेश्वरः।
वृत्त्यर्थं ब्राह्मणानां वै शृणु धर्मान्सनातनान् ॥ ६७ ॥

हे सुन्दरि! हे सुभगे! मैंने तुम्हारे समीप चारों वर्णोंके धर्म कहे और अब क्या सुननेकी इच्छा करती हो? (५७-६०)

उमा बोली, हे भगवन्! आपने चारों वर्णोंके हितकर तथा शुभकर पृथक् पृथक् धर्म कहे, अब जो धर्म सर्वव्यापी हो, उसे ही मेरे समीप वर्णन करिये। (६१)

महेश्वर बोले, गुणाभिलाषी विधाताने सब लोगोंका उद्धार करनेके निमित्त मनुष्योंके बीच भूदेव ब्राह्मणोंको सर्वलोकोंके सारतत्त्वोंसे बनाया है; उनका धर्मकर्मफलोदय कहता हूं। ब्राह्मणोंके धर्म ही परम धर्म हैं, लोगोंके धर्मके हेतु सृष्टिके समय ब्रह्माने नीचे कहे हुए तीन धर्म प्रकट किये थे, उसे सुनो। वेदोक्त धर्म, स्मृति शास्त्रोंमें वर्णित धर्म और शिष्टाचार ये तीनों धर्म ही सनातन कहे गये हैं। तीनों विद्यामें विद्वान् ब्राह्मण ऋग्मन्त्र अध्ययन करके जीवन बिताते हुए दान अध्ययन और यजन, इन तीनों कर्मोंसे युक्त होवे, त्रिपरिक्रान्त अर्थात् काम, क्रोध और लोभ इन तीनोंको परित्याग करनेवाले और सर्वभूतोंमें समदर्शी पुरुषको द्विज कहा जाता है। लोकेश्वर प्रजापतिने ब्राह्मणोंकी वृत्तिके निमित्त निम्नलिखित छः धर्मोंको विस्तारपूर्वक

यजनं याजनं चैव तथा दानप्रतिग्रहौ ।
अध्यापनं चाध्ययनं षट्कर्मा धर्मभाग्द्विजः ॥ ६८ ॥
नित्यः स्वाध्यायिता धर्मो धर्मो यज्ञः सनातनः ।
दानं प्रशस्यते चास्य यथाशक्ति यथाविधि ॥ ६९ ॥
शमस्तु परमो धर्मः प्रवृत्तः सत्सु नित्यशः ।
गृहस्थानां विशुद्धानां धर्मस्य निचयो महान् ॥ ७० ॥
पञ्चयज्ञविशुद्धात्मा सत्यवागनसूयकः ।
दाता ब्राह्मणसत्कर्ता सुसंमृष्टनिवेशनः ॥ ७१ ॥
अमानी च सदाऽजिह्मः स्निग्धवाणीप्रदस्तथा ।
अतिथ्यभ्यागतरतिः शेषान्नकृतभोजनः ॥ ७२ ॥
पाद्यमर्घ्यं यथान्यायमासनं शयनं तथा ।
दीपं प्रतिश्रयं चैव यो ददाति स धार्मिकः ॥ ७३ ॥
प्रातरुत्थाय चाचम्य भोजनेनोपमन्त्र्य च ।
सत्कृत्यानुव्रजेद्यस्तु तस्य धर्मः सनातनः ॥ ७४ ॥
सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य यथाशक्ति निशानिशम् ।

वर्णन किया है। (६५—६७)

यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह, अध्ययन और अध्यापन, इन षट् कर्मोंको करनेवाले ब्राह्मण धर्मभागी होते हैं। सदा स्वाध्यायपाठ और यज्ञोंको करना ब्राह्मणोंका सनातन धर्म है, ब्राह्मण शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक उत्तम दान करें; साधुओंमें नित्य प्रवृत्त शान्ति ही परम धर्म है। शुद्धाचरणवाले गृहस्थोंका उत्तम शम ही महान् धर्म है, जो पंच यज्ञ करनेवाला, शुद्धचित्त, सत्यवादी, असूयारहित, दाता, ब्राह्मणोंका सम्मानकर्ता, उत्तम स्वच्छ गृहमें निवास करनेवाला, अभिमानहीन, सदा सरल और कोमल वचन कहनेवाला, अतिथि तथा अभ्यागतोंके विषयमें अनुरक्त रहता तथा शेषमें बचे हुए अन्नको भोजन करता है और जो पुरुष ब्राह्मणोंको पाद्य, अर्घ, आसन, शय्या, दीपक और गृह प्रदान करता है, वही धार्मिक है। (६८-७३)

जो लोग प्रातःकालमें उठनेपर आचमन करके भोजनके निमित्त ब्राह्मणोंको निमन्त्रण करते और उनका संमानपूर्वक अनुगमन करते हैं, उन्हें सनातन धर्म सिद्ध होता है। सब भांतिसे अतिथिसत्कार और शक्तिके अनुसार धर्म, काम और अर्थको रातदिन सेवन

शूद्रधर्मः समाख्यातस्त्रिवर्णपरिचारणम् ॥ ७५ ॥
प्रवृत्तिलक्षणो धर्मो गृहस्थेषु विधीयते ।
तमहं वर्तयिष्यामि सर्वभूतहितं शुभम् ॥ ७६ ॥
दातव्यमसकृच्छक्त्या यष्टव्यमसकृत्तथा ।
पुष्टिकर्मविधानं च कर्तव्यं भूतिमिच्छता ॥ ७७ ॥
धर्मेणार्थः समाहार्यो धर्मलब्धं त्रिधा धनम् ।
कर्तव्यं धर्मपरमं मानवेन प्रयत्नतः ॥ ७८ ॥
एकेनांशेन धर्मार्थौ कर्तव्यौ भूतिमिच्छता ।
एकेनांशेन कामार्थ एकमंशं विवर्धयेत् ॥ ७९ ॥
निवृत्तिलक्षणस्त्वन्यो धर्मो मोक्षाय तिष्ठति ।
तस्य वृत्तिं प्रवक्ष्यामि शृणु मे देवि तत्त्वतः ॥ ८० ॥
सर्वभूतदया धर्मो न चैकग्रामवासिता ।
आशापाशविमोक्षश्च शस्यते मोक्षकाङ्क्षिणाम् ॥ ८१ ॥
न कुट्यां नोदके सङ्गो न वाससि न चासने ।
न त्रिदण्डे न शयने नाग्नौ न शरणालये ॥ ८२ ॥
अध्यात्मगतिचित्तो यस्तन्मनास्तत्परायणः ।

करना शूद्रोंका विख्यात धर्म है । गृहस्थोंके विषयमें प्रवृत्तिलक्षणयुक्त धर्म विहित है, इसलिये सब प्राणियोंके हितके लिये उस प्रवृत्तिलक्षणयुक्त धर्मका वर्णन करता हूं । (७४—७६)

शक्तिके अनुसार बार बार यज्ञ तथा दान करना चाहिये और ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको पुष्टिकार्यका विधान करना उचित है । धर्मसे धन पैदा करे, धर्मसे प्राप्त हुआ धन तीन प्रकारका है; मनुष्य यत्नपूर्वक धर्मार्थके हेतु धन वितरण करे । ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य एक अंश धनके सहारे धर्मार्थ आचरण करे, एक भागसे कामभोग करे और एक हिस्सेसे धर्मकी वृद्धि करनी चाहिये । (७७-७९)

हे देवि ! एक निवृत्तिलक्षण धर्मही मोक्षका हेतु हुआ करता है, उसका वृत्तान्त मैं यथार्थ रीतिसे कहता हूं, सुनो, मोक्षकी आकांक्षावाले पुरुषोंके लिये सब जीवोंमें दया, सदा एक गांवमें वास न करना और आशापाशसे रहित होना ही श्रेष्ठ धर्म है । मोक्षार्थी मनुष्य गृह, जल, वस्त्र, आसन, त्रिदण्ड, शय्या, अग्नि और रक्षकके स्थानमें आसक्त न होवे । जिसका चित्त अध्यात्म-

युक्तो योगं प्रति सदा प्रतिसंख्यानमेव च ॥ ८३ ॥
वृक्षमूलपरो नित्यं शून्यागारनिवेशनः ।
नदीपुलिनशायी च नदीतीररतिश्च यः ॥ ८४ ॥
विमुक्तः सर्वसङ्गेषु स्नेहबन्धेषु च द्विजः ।
आत्मन्येवात्मनो भावं समासज्जेत वै द्विजः ॥ ८५ ॥
स्थाणुभूतो निराहारो मोक्षदृष्टेन कर्मणा ।
परिव्रजति यो युक्तस्तस्य धर्मः सनातनः ॥ ८६ ॥
न चैकत्र समासक्तो न चैकग्रामगोचरः ।
मुक्तो ह्यटति निर्मुक्तो न चैकपुलिनेशयः ॥ ८७ ॥
एष मोक्षविदां धर्मो वेदोक्तः सत्पथः सताम् ।
यो मार्गमनुयातीमं पदं तस्य च विद्यते ॥ ८८ ॥
चतुर्विधा भिक्षवस्ते कुटीचकबहूदकौ ।
हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात्स उत्तमः ॥ ८९ ॥
अतः परतरं नास्ति नावरं न तिरोऽग्रतः ।

पथमें विचरता है, वह उसहीमें मन लगावे, उसहीमें तत्पर होकर याग और समाधिमें सदा अनुरक्त रहे। (८०-८३)

वृक्षके मूलमें निवास करनेवाले, सूने स्थान, नदी-पुलिनशायी तथा नदीके तटपर रहनेवाले जो ब्राह्मण सर्व आसक्ति तथा स्नेहबंधनसे रहित हैं, वे आत्मामें ही निज भावसे समासक्त होवें; मोक्ष-दृष्ट कर्मके सहारे स्थाणुस्वरूपसे निराहारी होके रहें। जो लोग योगी होके परिव्रज्या करते हैं, उन्हें सनातन धर्म होता है। एक स्थानमें आसक्त न होवे एक गांवमें सदा वास न करे और एक ही पुलिनमें शयन करना योग्य नहीं है, मुक्त पुरुष निर्मुक्त होकर भ्रमण करे; यही मोक्षवित् साधुओंका वेदोक्त सत्पथ-स्वरूप धर्म है; जो लोग इस पथके अनुगामी होते हैं, उनके लिये कोई व्यवसाय नहीं रहता। (८४-८८)

कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस भेदसे चार प्रकारके संन्यासी हैं, जो पहलेके पीछे कहे गये हैं, वे उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। कुटीचक और बहूदक, ये दोनों ही दण्ड धारण करते हैं, उनके बीच पहले कहे हुए भिक्षु गृहमें निवास करते हैं, दूसरे तीर्थोंमें पर्यटन किया करते हैं, तीसरे पुरुष संन्यासाश्रम धर्ममें रत रहते हैं; और चौथे पुरुष निस्त्रैगुण्यपथमें विचरते हैं। परमहंसाश्रमसे बढके सुखदुःखहीन, प्रियदर्शन, अजर,

अदुःखमसुखं सौम्यमजरामरमव्ययम् ॥ ९० ॥

उमोवाच— गार्हस्थ्यो मोक्षधर्मश्च सज्जनाचरितस्त्वया ।
भाषितो जीवलोकस्य मार्गः श्रेयस्करो महान् ॥९१॥
ऋषिधर्मं तु धर्मज्ञ श्रोतुमिच्छाम्यतः परम् ।
स्पृहा भवति मे नित्यं तपोवननिवासिषु ॥ ९२ ॥
आज्यधूमोद्भवो गन्धो रुणद्धीव तपोवनम् ।
तं दृष्ट्वा मे मनः प्रीतं महेश्वर सदा भवेत् ॥ ९३ ॥
एतन्मे संशयं देव मुनिधर्मकृतं विभो ।
सर्वधर्मार्थतत्त्वज्ञ देवदेव वदस्व मे ।
निखिलेन मया पृष्टं महादेव यथातथम् ॥ ९४ ॥

श्रीभगवानुवाच—हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि मुनिधर्ममनुत्तमम् ।
यं कृत्वा मुनयो यान्ति सिद्धिं स्वतपसा शुभे ॥९५॥
फेनपानामृषीणां यो धर्मो धर्मविदां सताम् ।
तन्मे शृणु महाभागे धर्मज्ञे धर्ममादितः ॥ ९६ ॥
उञ्छन्ति सततं ये ते ब्राह्मणं फेनोत्करं शुभम् ।

अमर और अव्यय आश्रम दूसरा नहीं है, यही सब भयोंसे मुक्त करनेवाला आश्रम है ॥ (८९—९०)

उमा बोली, गार्हस्थ्य और सज्जनोंसे आचरित मोक्षधर्म, जो जीवलोकका महान् कल्याणकारी पथ है उसे आपने वर्णन किया। हे धर्मज्ञ! इसके अनन्तर मैं ऋषिधर्म सुननेकी इच्छा करती हूं, तपोवननिवासी ऋषियोंके धर्मको सुननेके निमित्त मुझे सदा अभिलाष हुआ करती है। हे महेश्वर! घृतके धूएंसे परिपूरित तपोवनको देखनेसे मेरा मन सदा प्रसन्न होता है। हे प्रभु! हे सब धर्मार्थतत्त्वज्ञ देवेश! मुनिधर्मविषयमें मुझे सन्देह हुआ है। हे महादेव! इस लिये मैंने जो विषय पूछा, आप यथार्थ रीतिसे उसे वर्णन करिये। (९१-९४)

श्रीभगवान् बोले, हे शुभे! संन्यासी मुनिगण जैसा आचरण करके निज तपस्याके सहारे सिद्धि लाभ करते हैं, मैं तुम्हारे समीप वह उत्तम मुनिधर्म कहता हूं। हे धर्म जाननेवाली महाभागे! धर्मवेत्ता फेनप साधु ऋषियोंका जो धर्म है, उसे ही तुम मेरे समीप पहले सुनो। जो लोग ब्रह्म-सजातीय सम्बन्धमें श्रेष्ठ फेनवृत्त अग्राह्य समूह क्रमसे आदान करते हैं, वेही उस अविनाशी ब्रह्माके द्वारा यज्ञस्थलपीत

अमृतं ब्रह्मणा पीतमध्वरे प्रसृतं दिवि ॥ ९७ ॥
एष तेषां विशुद्धानां फेनपानां तपोधने ।
धर्मचर्याकृतो मार्गो वालखिल्यगणैः शृणु ॥ ९८ ॥
वालखिल्यास्तपःसिद्धा मुनयः सूर्यमण्डले ।
उञ्छे तिष्ठन्ति धर्मज्ञाः शाकुनीं वृत्तिमास्थिताः ॥९९॥
मृगनिर्मोकवसनाश्चीरवल्कलवाससः ।
निर्द्वन्द्वाः सत्पथं प्राप्ता वालखिल्यास्तपोधनाः ॥१००॥
अङ्गुष्ठपर्वमात्रा ये भूत्वा स्वे स्वे व्यवस्थिताः ।
तपश्चरणमीहन्ते तेषां धर्मफलं महत् ॥ १०१ ॥
ते सुरैः समतां यान्ति सुरकार्यार्थसिद्धये ।
द्योतयन्ति दिशः सर्वास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥१०२॥
ये त्वन्ये शुद्धमनसो दयाधर्मपरायणाः ।
सन्तश्चक्रचराः पुण्याः सोमलोकचराश्च ये ॥ १०३ ॥
पितृलोकसमीपस्थास्त उञ्छन्ति यथाविधि ।
संप्रक्षालाश्मकुट्टाश्च दन्तोलूखलिकाश्च ते ॥ १०४ ॥

अमृत तथा वृष्टि प्रभृति यज्ञाङ्गस्वरूप और स्वर्गमें दिव्य भोगके निमित्त उत्पन्न हुए हैं। हे तपस्विनि! यह उन्हीं पवित्र फेनपायी ऋषियोंके धर्म-चर्याका मार्ग कहा गया, अब वालखिल्यगणका धर्म सुनो। (९५—९८)

धर्मज्ञ तपःसिद्ध वालखिल्य मुनिगण सूर्यमण्डलमें शाकुनी वृत्ति अवलम्बन करके उञ्छवृत्तिसे निवास करते हैं, वे मृगचर्म, चीर अथवा वल्कलवस्त्र पहरते हैं; तपस्वी वालखिल्य मुनिगण निर्द्वन्द्व होकर सत्पथको अवलम्बन किया करते हैं। वे लोग अंगुष्ठपर्वसमान होकर निज निज धर्ममें निवास कर रहे हैं और तपश्चरणकी चेष्टा किया करते हैं, उनका धर्मफल अत्यन्त महत् है, सुर-कार्यसिद्धिके निमित्त उन्हें देवताओंकी समता प्राप्त होती है और वे लोग तपस्याके सहारे पापकर्मोको जलाकर दशों दिशाको प्रकाशित किया करते हैं। (९९—१०२)

दूसरे जो सब शुद्धचित्तवाले दया-धर्मपरायण ऋषिवृन्द निवासस्थानसे रहित होकर चक्रकी भांति घूमते हैं और पवित्र होकर चन्द्रलोकमें विचरण किया करते हैं, वे पितृलोकके निकट पहुंचकर चन्द्रकिरण पान करते हैं। जो लोग भली भांति पात्रोंको धोते, दूसरे

सोमपानां च देवानामूष्मपाणां तथैव च ।
उञ्छन्ति ये समीपस्थाः सदारा नियतेन्द्रियाः ॥१०५॥
तेषामग्निपरिस्पन्दः पितॄणां चार्चनं तथा ।
यज्ञानां चैव पञ्चानां यजनं धर्म उच्यते ॥ १०६ ॥
एष चक्रचरैर्देवि देवलोकचरैर्द्विजैः ।
ऋषिधर्मः सदा चीर्णो योऽन्यस्तमपि मे शृणु ॥१०७॥
सर्वेष्वेवार्षिधर्मेषु ज्ञेयोऽऽत्मा संयतेन्द्रियैः ।
कामक्रोधौ ततः पश्चाज्जेतव्याविति मे मतिः ॥१०८॥
अग्निहोत्रपरिस्पन्दो धर्मरात्रिसमासनम् ।
सोमयज्ञाभ्यनुज्ञानं पञ्चमी यज्ञदक्षिणा ॥ १०९ ॥
नित्यं यज्ञक्रिया धर्मः पितृदेवार्चने रतिः ।
सर्वातिथ्यं च कर्तव्यमन्नेनोञ्छार्जितेन वै ॥ ११० ॥
निवृत्तिरुपभोगेषु गोरसानां शमे रतिः ।
स्थण्डिले शयने योगः शाकपर्णनिषेवणम् ॥ १११ ॥
फलमूलाशनं वायुरापः शैवलभक्षणम् ।

दिनके लिये कुछ भी सञ्चय करके नहीं रखते तथा सम्प्रक्षाल, अश्मकुट्ट और दन्तोलूखलिक जो सब ऋषि हैं, वे सब कोई तथा सोमप और ऊष्मप मुनिगण देवताओंके निकटवर्ती होके सस्त्रीक और नियतेन्द्रिय होकर उञ्छवृत्ति अवलम्बन किया करते हैं । (१०३-१०५)

अग्निपरिचर्या, पितरोंकी पूजा और पञ्चयज्ञ करना उनका धर्म कहा गया है । हे देवि ! चक्रकी भांति भ्रमण करनेवाले देवलोकचारी द्विजोंके द्वारा यह ऋषिधर्म सदा आचरित हुआ करता है; इसके अतिरिक्त और जो सब धर्म हैं, वह भी मेरे समीप सुनो । सबको ऋषिधर्ममें संयतेन्द्रिय होकर आत्मज्ञान साधन करना योग्य है; अनन्तर काम-क्रोधको जीतना चाहिये । मेरे विचारमें अग्निहोत्र, सनातन धर्मका सदा अनुष्ठान, सोमयज्ञ, दान, पञ्चयज्ञ दक्षिणा, सदा यज्ञकार्य, पितरों और देवताओंकी पूजामें अनुराग और उञ्छ वृत्तिसे प्राप्त हुए अन्नके सहारे सब प्रकार अतिथियोंकी सेवा ही धर्म है । (१०६-११०)

सब प्रकारके गोरस उपभोगमें निवृत्ति, शम विषयमें रति, स्थण्डिलशयनमें योग, शाकपत्ते और फलमूलके भोजन, वायु, जल और सैवाल भक्षण

ऋषीणां नियमा ह्येते यैर्जयन्त्यजितां गतिम् ॥ ११२ ॥
विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
अतीतपात्रसञ्चारे काले विगतभिक्षुके ॥ ११३ ॥
अतिथिं काङ्क्षमाणो वै शेषान्नकृतभोजनः ।
सत्यधर्मरतः शान्तो मुनिधर्मेण युज्यते ॥ ११४ ॥
न स्तम्भी न च मानी स्यान्नाप्रसन्नो न विस्मितः ।
मित्रामित्रसमो मैत्रो यः स धर्मविदुत्तमः ॥ ११५ ॥ [६४२१]

इतिश्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

उमोवाच— देशेषु रमणीयेषु नदीनां निर्झरेषु च ।
स्रवन्तीनां निकुञ्जेषु पर्वतेषु वनेषु च ॥ १ ॥
देशेषु च पवित्रेषु फलवत्सु समाहिताः ।
मूलवत्सु च मेध्येषु वसन्ति नियतव्रताः ॥ २ ॥
तेषामपि विधिं पुण्यं श्रोतुमिच्छामि शङ्कर ।
वानप्रस्थेषु देवेश स्वशरीरोपजीविषु ॥ ३ ॥
महेश्वर उवाच- वानप्रस्थेषु यो धर्मस्तं मे शृणु समाहिता ।

ये ऋषियोंके नियम हैं, इन्हींके सहारे वे लोग अजित गतिको जय किया करते हैं। धूआं, अग्नि और मूषल ध्वनिसे रहित समय, सब लोगोंके भोजन करने और पात्र संचाररहित होने तथा भिक्षुगणके चले जानेपर भी जो लोग अतिथि-कामना करते और शेष अन्न भोजन किया करते हैं, वेही सत्यधर्ममें रत, शान्त पुरुष मुनिधर्मयुक्त होते हैं। जडता और अभिमानयुक्त न होवे, अप्रसन्न तथा विस्मित न होना चाहिये; मित्रशत्रुमें समदर्शी और सर्वभूतोंमें दयावान् पुरुष ही श्रेष्ठ धर्मके ज्ञाता हैं। (१११—११५)

अनुशासनपर्वमें १४१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १४२ अध्याय।

उमा बोली, रमणीय स्थानों, नदीतट, झरनों, पहाडों, वनोंमें फलयुक्त पवित्र स्थानों और मूलविशिष्ट मेध्यदेशमें उत्तम रीतिसे समाहित सदा व्रत करनेवाले मुनिगण निवास किया करते हैं। हे शङ्कर! मैं उन लोगोंका विविध पुण्य सुननेकी इच्छा करती हूं। हे देवेश! स्वशरीरोपजीवी वानप्रस्थधर्मको भी सुननेकी मुझे इच्छा है। (१—३)

महेश्वर बोले, हे देवि! सावधान

श्रुत्वा चैकमना देवि धर्मबुद्धिपरा भव ॥ ४ ॥
संसिद्धैर्नियमैः सद्भिर्वनवासमुपागतैः ।
वानप्रस्थैरिदं कर्म कर्तव्यं शृणु यादृशम् ॥ ५ ॥
त्रिकालमभिषेकं च पितृदेवार्चनं तथा ।
अग्निहोत्रपरिस्पन्द इष्टिहोमविधिस्तथा ॥ ६ ॥
नीवारग्रहणं चैव फलमूलनिषेवणम् ।
इङ्गुदैरण्डतैलानां स्नेहार्थे च निषेवणम् ॥ ७ ॥
योगचर्याकृतैः सिद्धैः कामक्रोधविवर्जितैः ।
वीरशय्यामुपासद्भिर्वीरस्थानोपसेविभिः ॥ ८ ॥
युक्तैर्योगवहैः सद्भिर्ग्रीष्मे पञ्चतपैस्तथा ।
मण्डूकयोगनियतैर्यथान्यायं निषेविभिः ॥ ९ ॥
वीरासनरतैर्नित्यं स्थण्डिले शयनं तथा ।
शीततोयाग्नियोगश्च चर्तव्यो धर्मबुद्धिभिः ॥ १० ॥
अब्भक्षैर्वायुभक्षैश्च शैवलोत्तरभोजनैः ।
अश्मकुट्टैस्तथा दान्तैः संप्रक्षालैस्तथापरैः ॥ ११ ॥
चीरवल्कलसंवीतैर्मृगचर्मनिवासिभिः ।

होके वानप्रस्थोंका धर्म सुनो और एकाग्रचित्तसे सुनके तुम्हें धर्मबुद्धि-परायण होना योग्य है। नियमोंके द्वारा पूरी रीतिसे सिद्ध हुए वनवासी साधु वानप्रस्थ पुरुषोंको जैसा कर्म करना चाहिये, उसे कहता हूं। सबेरे, मध्यान्ह और सन्ध्या, इन तीनों समयमें स्नान, पितरों और देवताओंकी पूजा, अग्नि-होत्र, इष्टि और होमका अनुष्ठान, नीवा-रग्रहण, फलमूलनिषेवण चिकनाईके लिये इंगुद और एरण्डका तेल मलना कर्त्तव्यरूपसे निर्दिष्ट हुआ है। योगचर्या करना, कामक्रोधको त्यागना सिद्ध वीरस्थान और महारण्यमें निवास करना चाहिये। (४—८)

वीरशय्या उपासक, योगरत, साधु योगीगण जो ग्रीष्म कालमें पञ्चतपा किया करते हैं और जो लोग हर्षयोगमें रत होके सब कार्योंको निभाते हैं, सदोपवेशन रूप वीरासनसे बैठते हैं और स्थण्डिलपर शयन किया करते हैं, वे धर्मबुद्धियुक्त मनुष्य शीतजल और अग्निसे योगयुक्त होके वर्त्तमान रहें। उपवासी, वायुभक्षी, शैवालभोजी, अश्मकुट्ट, दान्त, सम्प्रक्षाल तथा दूसरे चीरवल्कल और मृगचर्म पहरनेवाले

कार्या यात्रा यथाकालं यथाधर्मं यथाविधि ॥ १२ ॥
वननित्यैर्वनचरैर्वनस्थैर्वनगोचरैः ।
वनं गुरुमिवालाद्य वस्तव्यं वनजीविभिः ॥ १३ ॥
तेषां होमक्रिया धर्मः पञ्चयज्ञनिषेवणम् ।
भागं च पञ्चयज्ञस्य वेदोक्तस्यानुपालनम् ॥ १४ ॥
अष्टमीयज्ञपरता चातुर्मास्यनिषेवणम् ।
पौर्णमासाद्यो यज्ञा नित्ययज्ञस्तथैव च ॥ १५ ॥
विमुक्ता दारसंयोगैर्विमुक्ताः सर्वसङ्करैः ।
विमुक्ताः सर्वपापैश्च चरन्ति मुनयो वने ॥ १६ ॥
स्रुग्भाण्डपरमा नित्यं त्रेताग्निशरणाः सदा ।
सन्तः सत्पथनित्या ये ते यान्ति परमां गतिम् ॥१७॥
ब्रह्मलोकं महापुण्यं सोमलोकं च शाश्वतम् ।
गच्छन्ति मुनयः सिद्धाः सत्यधर्मव्यपाश्रयाः ॥ १८ ॥
एष धर्मो मया देवि वानप्रस्थाश्रितः शुभः ।
विस्तरेणाथ संपन्नो यथास्थूलमुदाहृतः ॥ १९ ॥

उमोवाच— भगवन्सर्वभूतेश सर्वभूतनमस्कृत ।
यो धर्मो मुनिसङ्घस्य सिद्धिवादेषु तं वद ॥ २० ॥

मुनिवृन्द यथासमयमें विधिपूर्वक यथायोग्य धर्मयात्रा करें। (९-१२)

वनके बीच सदा निवास करनेवाले वनचर वनस्थ वनगोचर वनवासी मुनि लोग वनको गुरुकी भांति पाके वहांपर वास करें। उन लोगोंके लिये होमकर्म और पञ्चयज्ञभागका अनुपालन ही धर्म है; अष्टमी यज्ञपरता, चातुर्मास्यनिषेवण, पौर्णमास प्रभृति सब यज्ञ तथा नित्य यज्ञ धर्मरूपसे विहित हैं। जो लोग दारपरिग्रहसे रहित हुए हैं और सब सङ्कटोंसे छूटे हैं, वे मुनिगण पापहीन होके वनमें विचरते हैं। जो लोग सदा स्रुग्भाण्ड सञ्चयमें रत रहते, जिनके गृहमें तीनों अग्नि विद्यमान रहती हैं, जो सब साधु लोग सदा सत्यधर्में निवास करते हैं, वेही परम गति पाते हैं। सत्यधर्मावलम्बी सिद्ध मुनिगण महापवित्र ब्रह्मलोक और शाश्वत सोमलोकमें गमन किया करते हैं। हे शुभे देवि! मैंने वानप्रस्थाश्रित धर्म जो स्थूलरूपसे सम्पन्न होता है, उसे विस्तारपूर्वक वर्णन किया। (१३-१९)

उमा बोली, हे सर्वलोकनमस्कृत

सिद्धिवादेषु संसिद्धास्तथा वनानिवासिनः ।
स्वैरिणो दारसंयुक्तास्तेषां धर्मः कथं स्मृतः ॥ २१ ॥
महेश्वर उवाच-स्वैरिणस्तपसा देवि सर्वे दारविहारिणः ।
तेषां मौण्ड्यं कषायश्च वासे रात्रिश्च कारणम् ॥२२ ॥
त्रिकालमभिषेकश्च होत्रं त्वृषिकृतं महत् ।
समाधिसत्पथस्थानं यथोद्दिष्टनिषेवणम् ॥ २३ ॥
ये च ते पूर्वकथिता धर्मास्ते वनवासिनाम् ।
यदि सेवन्ति धर्मांस्तानाप्नुवन्ति तपःफलम् ॥ २४ ॥
ये च दम्पतिधर्माणः स्वदारनियतेन्द्रियाः ।
चरन्ति विधिदृष्टं तदृतुकालाभिगामिनः ॥ २५॥
तेषामृषिकृतो धर्मो धर्मिणामुपपद्यते ।
न कामकारात्कामोऽन्यः संसेव्यो धर्मदर्शिभिः॥२६॥
सर्वभूतेषु यः सम्यग्ददात्यभयदक्षिणाम् ।
हिंसादोषविमुक्तात्मा स वै धर्मेण युज्यते ॥ २७ ॥

सर्वभूतेश भगवन् ! जो धर्म मुनियोंकी सिद्धिके सम्बन्धमें है उसे वर्णन करिये। जो लोग सिद्धवादमें सुसिद्ध वनवासी स्वेच्छाचारी और कदाचित् दारपरिग्रह-कारी हैं, उनका धर्म किस प्रकार स्मृत हुआ करता है ? (२०-२१)

महादेव बोले, जो लोग तपस्याके सहारे यथेष्ट आचरण किया करते हैं, उन्हें मुण्डन तथा गरुआ वस्त्र धारण करना उचित है; जो लोग दारपरिग्रह करके विहार करते हैं, उन्हें कहीं भी रात्रिवास करना योग्य नहीं है; स्वैरि-गणकी भांति इन लोगोंके लिये स्वेच्छा-विहार विहित नहीं होता । प्रातः, मध्यान्ह और सन्ध्याके समय स्नान, ऋषिकृत महत् अग्निहोत्र, समाधि-सत्पथमें निवास और यथायोग्य कार्योंको पूरा करना ही वनवासी मुनियोंका धर्म है । (२२—२३)

पहले जो सब वर्णित हुए हैं, वही वनवासी ऋषियोंके धर्म हैं; यदि मनुष्य इन धर्मोंकी सेवा करे, तो महत् फल पाता है । जो लोग निज स्त्रीमें रत और नियतेन्द्रिय होकर दम्पतिधर्मके अनुसार कार्य करते हैं, उन धार्मिकोंका ऋषियोंके द्वारा आचरित धर्म सिद्ध होता है । धर्मदर्शी मनुष्योंको स्वेच्छाचारी होकर कामसेवन करना योग्य नहीं है। जो मनुष्य हिंसारहित चित्तसे सब जीवोंको भली भांति अभयदक्षिणा दान

सर्वभूतानुकम्पीयः सर्वभूतार्जवव्रतः ।
सर्वभूतात्मभूतश्च स वै धर्मेण युज्यते ॥ २८ ॥
सर्ववेदेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम् ।
उभे एते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते ॥ २९ ॥
आर्जवं धर्ममित्याहुरधर्मो जिह्म उच्यते ।
आर्जवेनेह संयुक्तो नरो धर्मेण युज्यते ॥ ३० ॥
आर्जवे तु रतो नित्यं वसत्यमरसन्निधौ ।
तस्मादार्जवयुक्तः स्याद्य इच्छेद्धर्ममात्मनः ॥ ३१ ॥
क्षान्तो दान्तो जितक्रोधो धर्मभूतोऽविहिंसकः ।
धर्मे रतमना नित्यं नरो धर्मेण युज्यते ॥ ३२ ॥
व्यपेततन्द्रिर्धर्मात्मा शक्त्या सत्पथमाश्रितः ।
चारित्रपरमो बुद्धो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ३३ ॥
उमोवाच— आश्रमाभिरता देव तापसा ये तपोधनाः ।
दीप्तिमन्तः कया चैव चर्ययाऽथ भवन्ति ते ॥ ३४ ॥

करता है, वही धार्मिक है। (२४-२७)

जो लोग सब प्राणियोंके विषयमें दयावान् हैं, सब जीवोंके सम्बन्धमें सरलता प्रकाशित करना जिनका व्रत है और सर्वभूतोंको आत्मरूप जानते हैं; वेही धार्मिक हैं। सब वेदोंको पढके स्नान करना और सर्वभूतोंमें सरलता प्रदर्शित करनी ये दोनों ही समान हो सकते हैं, अथवा वेद स्नानसे सरलता श्रेष्ठ है। प्राचीन लोग सरलताको धर्म कहते और कुटिलताको अधर्म कहा करते हैं, मनुष्य इस लोकमें सरलतायुक्त होनेसे धार्मिक होता है। (२८-३०)

जो लोग सरलतामें रत रहते हैं, वे देवताओंके समीप निवास करते हैं, इसलिये जो लोग धार्मिक होनेकी इच्छा करें, वे सरल होवें। क्षान्त, दान्त, क्रोध जीतनेवाले, धर्ममय, अहिंसक और नित्य धर्ममें चित्त लगानेवाले मनुष्य धर्मयुक्त हुआ करते हैं। जो धर्मात्मा मनुष्य आलसरहित होके शक्तिके अनुसार सत्पथको अवलम्बन करता और निज चरित्रकी उत्तम रीतिसे रक्षा करता है, वह बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मस्वरूप लाभ करनेमें समर्थ होता है। (३१-३३)

उमा बोली, हे देव! जो सब तपोधन तपस्वीवृन्द आश्रमधर्ममें अनुरक्त हैं, वे कैसे आचरणसे दीप्तिमान् होते हैं, हे भगवन्! निर्धन, महाधनी,

राजानो राजपुत्राश्च निर्धना ये महाधनाः ।
कर्मणा केन भगवन्प्राप्नुवन्ति महाफलम् ॥ ३५ ॥
नित्यं स्थानमुपागम्य दिव्यचन्दनभूषिताः ।
केन वा कर्मणा देव भवन्ति वनगोचराः ॥ ३६ ॥
एतन्मे संशयं देव तपश्चर्याऽऽश्रितं शुभम् ।
शंस सर्वमशेषेण त्र्यक्ष त्रिपुरनाशन ॥ ३७ ॥

महेश्वर उवाच- उपवासव्रतैर्दान्ता ह्यहिंस्राः सत्यवादिनः ।
संसिद्धाः प्रेत्य गन्धर्वैः सह मोदन्त्यनामयाः ॥ ३८ ॥
मण्डूकयोगशयनो यथान्यायं यथाविधि ।
दीक्षां चरति धर्मात्मा स नागैः सह मोदते ॥ ३९ ॥
शष्पं मृगमुखोच्छिष्टं यो मृगैः सह भक्षति ।
दीक्षितो वै मुदा युक्तः स गच्छत्यमरावतीम् ॥ ४० ॥
शैवालं शीर्णपर्णं वा तद्व्रती यो निषेवते ।
शीतयोगवहो नित्यं स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ ४१ ॥
वायुभक्षोऽम्बुभक्षो वा फलमूलाशनोऽपि वा ।
यक्षेष्वैश्वर्यमाधाय मोदतेऽप्सरसां गणैः ॥ ४२ ॥

राजा और राजपुत्रगण किन कर्मोंके सहारे महाफल पाते हैं ? हे देव ! वे लोग नित्यस्थानमें गमन करते हुए दिव्य चन्दनसे भूषित होकर किन कर्मोंसे वनवासी होते हैं । हे देव ! हे त्रिपुरनाशन त्रिलोचन ! मेरे इस तपश्चर्याश्रित शुभ सन्देहके विषयोंको आप विस्तारपूर्वक वर्णन करिये। (३४-३७)

महादेव बोले, अहिंसारत, सत्यवादी, दमनशील मनुष्य उपवासव्रतसे अनामय और सम्यक्सिद्ध होके परलोकमें जाकर गन्धर्वोंके सहित आनन्द भोग किया करते हैं। जो धर्मात्मा मनुष्य यथा रीतिसे विधिपूर्वक मण्डूकयोगशय्यामें शयन करके दीक्षा आचरण करते हैं, वे नागगणके सहित प्रमुदित होते हैं। जो लोग दीक्षित और समाहित होके मृगगणोंके सहित मृगके द्वारा उत्सृष्ट शस्योंको सेवन करते हैं, वे अमरावती पुरीमें गमन किया करते हैं। जो लोग शैवाल अथवा सूखे पत्तोंको खाके तपस्या करते और सदा शीलवान् रहते हैं, उन्हें परम गति प्राप्त होती है । (३८—४१)

वायु, जल और फलमूलाशी योगी लोग यक्षलोकमें ऐश्वर्य लाभ करके

अग्नियोगवहो ग्रीष्मे विधिदृष्टेन कर्मणा ।
चीर्त्वा द्वादश वर्षाणि राजा भवति पार्थिवः ॥ ४३ ॥
आहारनियमं कृत्वा मुनिर्द्वादशवार्षिकम् ।
मरुं संसाध्य यत्नेन राजा भवति पार्थिवः ॥ ४४ ॥
स्थण्डिले शुद्धमाकाशं परिगृह्य समन्ततः ।
प्रविश्य च मुदा युक्तो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ॥४५॥
देहं चानशने त्यक्त्वा स स्वर्गे सुखमेधते ।
स्थण्डिलस्य फलान्याहुर्यानानि शयनानि च ॥ ४६ ॥
गृहाणि च महार्हाणि चन्द्रशुभ्राणि भामिनि ।
आत्मानमुपजीवन्यो नियतो नियताशनः ॥ ४७ ॥
देहं वाऽनशने त्यक्त्वा स स्वर्गं समुपाश्नुते ।
आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ॥ ४८ ॥
त्यक्त्वा महार्णवे देहं वारुणं लोकमश्नुते ।
आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ॥ ४९ ॥
अश्मना चरणौ भित्त्वा गुह्यकेषु स मोदते ।

अप्सराओंके सहित आनन्द करते हैं, ग्रीष्मकालमें विधिविहित कर्मोंके सहारे बारह वर्ष पञ्चतपा करनेसे मनुष्य राजा होता है; बारह वर्षतक मौनावलम्बन-पूर्वक आहारका नियम करके यत्नके सहित मरुसाधन अर्थात् जल पर्यन्त परित्याग करनेसे मनुष्य पृथ्वीपति राजा होता है । स्थण्डिलमें बिना आसनके बैठकर शुद्ध आकाशमें हर्ष-पूर्वक जो लोग द्वादश वार्षिकी दीक्षा ग्रहण करते और अनशन व्रत अवलम्बन करके शरीर त्यागते हैं, वे स्वर्गमें सुख समृद्धि भोग किया करते हैं । (४२—४६)

हे भामिनी ! ऋषिलोग यान, शय्या और महामूल्य चन्द्रमाकी भांति सफेद गृहोंको स्थण्डिल शयनका फल कहते हैं, जो लोग सदा आत्माको उपजीव्य करके नियताहारी होकर अथवा अन-शन व्रतके सहारे देह परित्याग करते हैं, वे स्वर्गभोग किया करते हैं, आत्म-उपजीवी द्वादवार्षिकी दीक्षा ग्रहण करके महाअर्णवमें शरीर परित्याग करनेवाले वरुणलोकमें सुख भोगते हैं। जो आत्मो-पजीवी पुरुष द्वादशवार्षिकी दीक्षा अवलम्बन करते और पाषाणके द्वारा दोनों चरण भेदते हैं, वे गुह्यक लोकमें प्रमुदित होते हैं, जो लोग निर्द्वन्द्व और

साधयित्वाऽऽत्मनाऽऽत्मानं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥५०॥
चीर्त्वा द्वादशवर्षाणि दीक्षामेतां मनोगताम् ।
स्वर्गलोकमवाप्नोति देवैश्च सह मोदते ॥ ५१ ॥
आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवार्षिकीम् ।
हुत्वाऽग्नौ देहमुत्सृज्य वह्निलोके महीयते ॥ ५२ ॥
यस्तु देवि यथान्यायं दीक्षितो नियतो द्विजः ।
आत्मन्यात्मानमाधाय निर्ममो धर्मलालसः ॥ ५३ ॥
चीर्त्वा द्वादशवर्षाणि दीक्षामेतां मनोगताम् ।
अरणीसहितं स्कन्धे बद्ध्वा गच्छत्यनावृतः ॥ ५४ ॥
वीराध्वानगतो नित्यं वीरासनरतस्तथा ।
वीरस्थायी च सततं स वीरगतिमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥
स शक्रलोकगो नित्यं सर्वकामपुरस्कृतः ।
दिव्यपुष्पसमाकीर्णो दिव्यचन्दनभूषितः ॥ ५६ ॥
सुखं वसति धर्मात्मा दिवि देवगणैः सह ।
वीरलोकगतो नित्यं वीरयोगसहः सदा ॥ ५७ ॥

निष्परिग्रह होकर आत्माके सहारे आत्मसाधन करके द्वादशवार्षिकी इस मनोहर दीक्षाको अवलम्बन करके स्वर्गलोक पाते हैं, वे देवताओंके सङ्ग आनन्द भोग करते हैं और जो आत्मोपजीवी पुरुष द्वादशवार्षिकी दीक्षा ग्रहण करके अग्निमें देह परित्याग करते हैं, वे अग्निलोकमें निवास किया करते हैं। (४९—५२)

हे देवी! जो द्विज यथारीतिसे दीक्षित और संयत होकर आत्मामें आत्मसाधन करते हुए ममतारहित होके धर्मकी अभिलाष करता है। और बारह वर्षतक इस मनोगत दीक्षाका अनुष्ठान करके तरुस्कन्धमें अरणीके सहित अग्नि परित्याग कर अनावृत होकर गमन करता है, वह वीरपथसे गमन करते हुए सदा वीरासन गतिसे युक्त होके वीरलोकमें निवास करता और उसे वीरगति प्राप्त होती है; वह इन्द्रलोकमें जाकर सदा सर्वकामके सहारे पुरस्कृत होता और दिव्य पुष्पोंसे युक्त तथा दिव्य चन्दनसे विभूषित होता है, वह धर्मात्मा देवलोकमें देवताओंके सहित सुखसे निवास करता है, वीरलोकमें गये हुए वीर पुरुष वीरयोगको धारण करनेवाले हुआ करते हैं। (५३—५७)

सत्त्वस्थः सर्वमुत्सृज्य दीक्षितो नियतः शुचिः ।
वीराध्वानं प्रपद्येद्यस्तस्य लोकाः सनातनाः ॥ ५८ ॥
कामगेन विमानेन स वै चरति च्छन्दतः ।
शक्रलोकगतः श्रीमान्मोदते च निरामयः ॥ ५९ ॥ [६४८०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उमामहेश्वरसंवादे द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४२ ॥

उमोवाच— भगवन्भगनेत्रघ्न पूष्णो दन्तनिपातन ।
दक्षक्रतुहर त्र्यक्ष संशयो मे महानयम् ॥ १ ॥
चातुर्वर्ण्यं भगवता पूर्वं सृष्टं स्वयम्भुवा ।
केन कर्मविपाकेन वैश्यो गच्छति शूद्रताम् ॥ २ ॥
वैश्यो वा क्षत्रियः केन द्विजो वा क्षत्रियो भवेत् ।
प्रतिलोमः कथं देव शक्यो धर्मो निवर्तितुम् ॥ ३ ॥
केन वा कर्मणा विप्रः शूद्रयोनौ प्रजायते ।
क्षत्रियः शूद्रतामेति केन वा कर्मणा विभो ॥ ४ ॥
एतन्मे संशयं देव वद भूतपतेऽनघ ।
त्रयो वर्णाः प्रकृत्येह कथं ब्राह्मण्यमाप्नुयुः ॥ ५ ॥

महेश्वर उवाच— ब्राह्मण्यं देवि दुष्प्रापं निसर्गाद्ब्राह्मणः शुभे ।

जो लोग सत्त्वगुणी होकर सब वस्तुओंको त्यागके सदा पवित्र रहके दीक्षित होते और वीरपथसे गमन करते हैं, उन्हें सनातन लोक मिलता है, वे कामगामी विमानपर विचरते तथा वे श्रीमान् मनुष्य निरामय होके इन्द्रलोकमें जाकर प्रमुदित होते हैं । (५८—५९)

अनुशासनपर्वमें १४२ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १४३ अध्याय ।

उमा बोलीं, हे भगनेत्रनाशी पूषादन्तविनाशन दक्षयज्ञविध्वंसी त्रिलोचन भगवन् ! मुझे यह महान् सन्देह है, कि ब्रह्माने पहले चारों वर्णोंकी सृष्टि की है । उनके बीच वैश्य किस कर्मविपाकसे शूद्रत्व पाता है, क्षत्रिय वैश्य हुआ करते और ब्राह्मण, क्षत्रिय होते हैं । हे देव ! प्रतिलोमगत धर्म किस प्रकार निभ सकते हैं ? हे विभु ! ब्राह्मण किस कर्मके सहारे शूद्रयोनिमें जन्मता है और क्षत्रिय कैसे कर्मके द्वारा शूद्रत्व लाभ करता है ? हे भूतपति अनघ देव ! आप मेरे इस सन्देहको दूर करिये । इस लोकमें ब्राह्मण आदि तीनों वर्ण स्वाभाविक हैं, तब किस प्रकार ब्राह्मणत्व प्राप्त

क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा निसर्गादिति मे मतिः ॥ ६ ॥
कर्मणा दुष्कृतेनेह स्थानाद्भ्रश्यति वै द्विजः ।
ज्येष्ठं वर्णमनुप्राप्य तस्माद्रक्षेत वै द्विजः ॥ ७ ॥
स्थितो ब्राह्मणधर्मेण ब्राह्मण्यमुपजीवति ।
क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयं स गच्छति ॥ ८ ॥
यस्तु विप्रत्वमुत्सृज्य क्षात्रं धर्मं निषेवते ।
ब्राह्मण्यात्स परिभ्रष्टः क्षत्रयोनौ प्रजायते ॥ ९ ॥
वैश्यकर्म च यो विप्रो लोभमोहव्यपाश्रयः ।
ब्राह्मण्यं दुर्लभं प्राप्य करोत्यल्पमतिः सदा ॥ १० ॥
स द्विजो वैश्यतामेति वैश्यो वा शूद्रतामियात् ।
स्वधर्मात्प्रच्युतो विप्रस्ततः शूद्रत्वमाप्नुते ॥ ११ ॥
तत्रासौ निरयं प्राप्तो वर्णभ्रष्टो बहिष्कृतः ।
ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः शूद्रः समुपजायते ॥ १२ ॥
क्षत्रियो वा महाभागे वैश्यो वा धर्मचारिणि ।
स्वानि कर्माण्यपाहाय शूद्रकर्म निषेवते ॥ १३ ॥
स्वस्थानात्स परिभ्रष्टो वर्णसङ्करतां गतः ।

करते हैं । (१—५)

महादेव बोले, हे देवि ! ब्राह्मणके स्वभावके अतिरिक्त ब्राह्मण्यप्राप्ति अत्यन्त दुष्प्राप्य है । मेरे विचारमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र स्वभावके अनुसार हुआ करते हैं । ब्राह्मण श्रेष्ठवर्ण लाभ करके भी दुष्कृत कर्मोंसे स्थानभ्रष्ट होता है, इसलिये ब्राह्मणको सदा रक्षा करनी उचित है, क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्राह्मणधर्ममें स्थित रहके यदि ब्राह्मण्य-उपजीवी होवें, तो उन्हें ब्रह्मत्व प्राप्त होता है । जो लोग ब्राह्मणत्व परित्यागके क्षत्रियधर्मकी सेवा करते हैं, वे ब्राह्मणत्वसे परिभ्रष्ट होकर क्षत्रिययोनिमें उत्पन्न हुआ करते हैं, जो अल्पबुद्धि ब्राह्मण दुर्लभ ब्राह्मणत्व पाके लोभ मोहके वशमें होके सदा वैश्योंका कर्म करता है, उसे वैश्यत्व प्राप्त होता है और वैश्य भी शूद्रकर्म करके शूद्र हुआ करता है । (६—११)

ब्राह्मण निज धर्मसे भ्रष्ट होनेपर शूद्रत्व लाभ करता है, शूद्र होके वर्णभ्रष्ट होनेपर सर्वबहिष्कृत तथा नरकगामी होता है । ब्राह्मण लोग ब्रह्मलोकसे परिभ्रष्ट होकर शूद्रयोनिमें जन्म लेते हैं । हे महाभागे धर्मचारिणि ! क्षत्रिय

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रत्वं याति तादृशः ॥१४॥
यस्तु शुद्धः स्वधर्मेण ज्ञानविज्ञानवान् शुचिः ।
धर्मज्ञो धर्मनिरतः स धर्मफलमश्नुते ॥ १५ ॥
इदं चैवापरं देवि ब्रह्मणा समुदाहृतम् ।
अध्यात्मं नैष्ठिकं सद्भिर्धर्मकामैर्निषेव्यते ॥ १६ ॥
उग्रान्नं गर्हितं देवि गणान्नं श्राद्धसूतकम् ।
दुष्टान्नं नैव भोक्तव्यं शूद्रान्नं नैव कर्हिचित् ॥ १७ ॥
शूद्रान्नं गर्हितं देवि सदा देवैर्महात्मभिः ।
पितामहमुखोत्सृष्टं प्रमाणमिति मे मतिः ॥ १८ ॥
शूद्रान्नेनावशेषेण जठरे यो म्रियेद् द्विजः ।
आहिताग्निस्तथा यज्वा स शूद्रगतिभाग्भवेत् ॥ १९॥
तेन शूद्रान्नशेषेण ब्रह्मस्थानादपाकृतः ।
ब्राह्मणः शूद्रतामेति नास्ति तत्र विचारणा ॥ २० ॥
यस्यान्नेनावशेषेण जठरे यो म्रियेद् द्विजः ।

अथवा वैश्य यदि अपने कर्मको त्यागके शूद्रका कर्म करते हैं, तो वे निज स्थानसे च्युत होकर वर्णसङ्कर होते हैं। वैसे ब्राह्मणों, अथवा वैश्योंको शूद्रत्व प्राप्त होता है। जो लोग निज धर्मसे बोधयुक्त हुए हैं, जो लोग ज्ञान विज्ञानयुक्त, पवित्र, धर्मज्ञ और सदा धर्ममें रत हैं, वेही धर्मफल भोग करते हैं। (११-१५)

हे देवि! मैंने जो कहा उसे तथा अन्यान्य विषयोंको ब्रह्माने स्वयं वर्णन किया है। धर्मकी इच्छा करनेवाले साधु पुरुष इस नैष्ठिक अध्यात्म विषयका अनुष्ठान किया करते हैं। हे देवि! उग्र जातिका अन्न अत्यन्त निन्दनीय है। गणान्न, श्राद्धीय अन्न, सूतकान्न तथा दुष्टोंका अन्न भोजन करना उचित नहीं है और शूद्रोंका अन्न कदापि भोजन न करे। हे देवि! महानुभाव देवगण शूद्रान्नको सदा निन्दित जानते हैं इसमें पितामहके मुखके कहे हुए प्रमाण हैं, मुझे ऐसी विवेचना होती है, कि ब्राह्मण आहिताग्नि और याज्ञिक होके जठरमें अवशिष्ट शूद्रान्न रहनेसे पञ्चत्व लाभ करता और उसे शूद्रगति प्राप्त होती है। (१६-१९)

अवशिष्ट शूद्रान्न जठरमें रहनेसे ब्राह्मण ब्रह्मस्थानसे च्युत होकर शूद्रत्व पाता है, उस विषयमें कुछ भी विचार नहीं है, जिसका अवशिष्ट अन्न जठरमें विद्यमान रहनेसे ब्राह्मण प्राण परित्याग

तां तां योनिं व्रजेद्विप्रो यस्यान्नमुपजीवति ॥ २१ ॥
ब्राह्मणत्वं शुभं प्राप्य दुर्लभं योऽवमन्यते ।
अभोज्यान्नानि चाश्नाति स द्विजत्वात्पतेत वै ॥ २२ ॥
सुरापो ब्रह्महा क्षुद्रश्चोरो भग्नव्रतोऽशुचिः ।
स्वाध्यायवर्जितः पापो लुब्धो नैकृतिकः शठः ॥ २३ ॥
अव्रती वृषलीभर्ता कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
निहीनसेवी विप्रो हि पतति ब्रह्मयोनितः ॥ २४ ॥
गुरुतल्पी गुरुद्रोही गुरुकुत्सारतिश्च यः ।
ब्रह्मविच्चापि पतति ब्राह्मणो ब्रह्मयोनितः ॥ २५ ॥
एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा ।
शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत् ॥ २६ ॥
शूद्रकर्माणि सर्वाणि यथान्यायं यथाविधि ।
शुश्रूषां परिचर्यां च ज्येष्ठे वर्णे प्रयत्नतः ॥ २७ ॥
कुर्यादविमनाः शूद्रः सततं सत्पथे स्थितः ।
देवद्विजातिसत्कर्ता सर्वातिथ्यकृतव्रतः ॥ २८ ॥
ऋतुकालाभिगामी च नियतो नियताशनः ।

करता है, वह जिसके अन्नको उपजीव्य करता था, उसकी योनिको प्राप्त होता है। जो लोग दुर्लभ पवित्र ब्राह्मणत्व पाके उसकी अवज्ञा करते तथा अभोज्य अन्न भोजन करते हैं, वे पतित होते हैं। सुरा पीनेवाले, ब्रह्मघाती, शूद्र, चोर, भग्नव्रती, अपवित्र, स्वाध्यायरहित, पापाचारी, लोभी, शठतायुक्त, शठ, अव्रती, वृषलीपति, कुण्डाशी अर्थात् जो पुरुष पाकपात्रमें भोजन करता है, सोम बेचनेवाले और नीचोंकी सेवा करनेवाले ब्राह्मण ब्रह्मयोनिसे पतित होते हैं। गुरुतल्पगामी, गुरुके विषयमें द्वेष करनेवाला और गुरुकी निन्दा करनेमें अनुरक्त ब्राह्मण ब्रह्मवित् तथा ब्रह्मवित्तम होनेपर भी पतित होता है। (२०—२५)

हे देवि! इन्हीं पवित्र कार्यों और पवित्र आचरणोंसे शूद्रभी ब्राह्मण हुआ करता और वैश्यभी क्षत्रियत्व पाता है। शूद्र सदा सत्पथमें निवास करते हुए खिन्नचित्त न होकर न्याय तथा विधिपूर्वक यत्नके सहित ज्येष्ठ वर्णकी सेवा तथा टहल करे; यही शूद्रोंका निर्दिष्ट कर्म है। देवताओं और ब्राह्मणोंका सम्मान करनेवाला, सबका आतिथ्य

चोक्षश्चोक्षजनान्वेषी शेषान्नकृतभोजनः ॥ २९ ॥
वृथामांसं न भुञ्जीत शूद्रो वैश्यत्वमृच्छति ।
ऋतवागनहंवादी निर्द्वन्द्वः शमकोविदः ॥ ३० ॥
यजते नित्ययज्ञैश्च स्वाध्यायपरमः शुचिः ।
दान्तो ब्राह्मणसत्कर्ता सर्ववर्णबुभूषकः ॥ ३१ ॥
गृहस्थव्रतमातिष्ठन् द्विकालकृतभोजनः ।
शेषाशी विजिताहारो निष्कामो निरहंवदः ॥ ३२ ॥
अग्निहोत्रमुपासंश्च जुह्वानश्च यथाविधि ।
सर्वातिथ्यमुपातिष्ठन् शेषान्नकृतभोजनः ॥ ३३ ॥
त्रेताग्निमन्त्रविहितो वैश्यो भवति वै द्विजः ।
स वैश्यः क्षत्रियकुले शुचौ महति जायते ॥ ३४ ॥
स वैश्यः क्षत्रियो जातो जन्मप्रभृति संस्कृतः ।
उपनीतो व्रतपरो द्विजो भवति सत्कृतः ॥ ३५ ॥
ददाति यजते यज्ञैः समृद्धैराप्तदक्षिणैः ।
अधीत्य स्वर्गमन्विच्छंस्त्रेताग्निशरणः सदा ॥ ३६ ॥

करनेमें व्रतयुक्त, ऋतुकालमें भार्यागामी, सदा नियमित भोजी, स्वयं मनोहर और मनोहर लोगोंका अन्वेषी, तथा शेषान्नभोजी शूद्रको वैश्यत्व प्राप्त होता है। (२६—२९)

सत्यवादी, वृथामांस न खानेवाला अहङ्काररहित निर्द्वन्द्व, शमयुक्त, स्वाध्यायरत और पवित्र होकर जो वैश्य यज्ञके द्वारा देवार्चना करता है, जो दान्त, द्विजोंका सम्मान करके सब वर्णोंको भूषित किया करता है और जो गृहस्थ-व्रत अवलम्बन करके दोबार भोजन करता है, जो शेषान्नभोजी, नियताहारी, निष्काम और अहङ्काररहित है, जो अग्निहोत्रकी उपासना करते हुए विधिपूर्वक आहुति प्रदान करता है, सबका आतिथ्य किया करता, बचा हुआ अन्न भोजन करता और दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य तथा आहवनीय अग्निकी परिचर्यामें सावधान रहता है, वह पवित्र वैश्य महत् क्षत्रिय-कुलमें उत्पन्न होता है। जन्मविधि-संस्कृत वह वैश्य क्षत्रिय और उपनीत व्रतयुक्त तथा सत्कृत होकर द्विज हुआ करता है। (३०—३५)

जो लोग दान करते और समृद्ध आप्तदक्षिण यज्ञके सहारे याग किया करते हैं और अध्ययन करते हुए सदा तीनों अग्नियोंके शरणापन्न होते हैं,

आर्तहस्तप्रदो नित्यं प्रजा धर्मेण पालयन्।
सत्यः सत्यानि कुरुते नित्यं यः सुखदर्शनः ॥ ३७ ॥
धर्मदण्डो न निर्दण्डो धर्मकार्यानुशासकः।
यन्त्रितः कार्यकरणैः षड्भागकृतलक्षणः ॥ ३८ ॥
ग्राम्यधर्मं न सेवेत स्वच्छन्देनार्थकोविदः।
ऋतुकाले तु धर्मात्मा पत्नीमुपशयेत्सदा ॥ ३९ ॥
सदोपवासी नियतः स्वाध्यायनिरतः शुचिः।
बर्हिष्कान्तरिते नित्यं शयानोऽग्निगृहे सदा ॥ ४० ॥
सर्वातिथ्यं त्रिवर्गस्य कुर्वाणः सुमनाः सदा।
शूद्राणां चान्नकामानां नित्यं सिद्धमिति ब्रुवन् ॥ ४१ ॥
अर्थाद्वा यदि वा कामान्न किंचिदुपलक्षयेत्।
पितृदेवातिथिकृते साधनं कुरुते च यः ॥ ४२ ॥
स्ववेश्मनि यथान्यायमुपास्ते भैक्ष्यमेव च।
त्रिकालमग्निहोत्रं च जुह्वानो वै यथाविधि ॥ ४३ ॥
गोब्राह्मणहितार्थाय रणे चाभिमुखो हतः।
त्रेताग्निमन्त्रपूतात्मा समाविश्य द्विजो भवेत् ॥४४॥

आर्त्त पुरुषोंको धीरज देते, धर्मके अनुसार प्रजापालन किया करते हैं, जो सुखदर्शन तथा सत्यवादी होके सत्य कार्योंको सदा निभाते हैं, धर्मदण्डके द्वारा धर्मकार्योंका अनुशासन करते हैं, कार्य और कारणके द्वारा निमन्त्रित होके राजग्राह्य छठवां भाग ग्रहण करते हैं, वह अर्थशास्त्र जाननेवाले धर्मात्मा राजा स्वच्छन्दतापूर्वक ग्राम्य धर्मकी सेवा न करें और ऋतुकालमें सदा भार्याके समीप शयन करे। (३७-३९)

सदोपवासी, सदा स्वाध्यायमें रत, पवित्र कर्मसे युक्त, अग्निगृहमें सदा शयन करनेवाला, प्रसन्नचित्तसे धर्मार्थकामके अनुसार सबका आतिथ्यकर्त्ता, अन्न चाहनेवाले शूद्रोंको सदा अन्न देनेवाला मनुष्य अर्थ अथवा कामवशसे किञ्चिन्मात्र अहङ्कार प्रकाश न करे। जो लोग पितरों, देवताओं और अतिथियोंके सत्कारके लिये उपाय विधान करते, निज गृहमें यथा रीतिसे भिक्षादान करते हैं, तीनों कालोंमें विधिपूर्वक अग्निहोत्रमें आहुति प्रदान किया करते हैं, गो-ब्राह्मणके निमित्त संग्राममें मरते हैं, वे क्षत्रिय त्रेताग्नि मन्त्रपूत, वस्त्र पहरके द्विज हुआ करते हैं। (४०-४४)

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः संस्कृतो वेदपारगः ।
विप्रो भवति धर्मात्मा क्षत्रियः स्वेन कर्मणा ॥ ४५ ॥
एतैः कर्मफलैर्देवि न्यूनजातिकुलोद्भवः ।
शूद्रोऽप्यागमसम्पन्नो द्विजो भवति संस्कृतः ॥ ४६ ॥
ब्राह्मणो वाप्यसद्वृत्तः सर्वसङ्करभोजनः ।
ब्राह्मण्यं स समुत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः ॥ ४७ ॥
कर्मभिः शुचिभिर्देवि शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः ।
शूद्रोऽपि द्विजवत्सेव्य इति ब्रह्माऽब्रवीत्स्वयम् ॥४८॥
स्वभावः कर्म च शुभं यत्र शूद्रेऽपि तिष्ठति ।
विशिष्टः स द्विजातेर्वै विज्ञेय इति मे मतिः ॥ ४९ ॥
न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं न च सन्ततिः ।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् ॥ ५० ॥
सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते ।
वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति ॥ ५१ ॥
ब्राह्मः स्वभावः सुश्रोणि समः सर्वत्र मे मतिः ।
निर्गुणं निर्मलं ब्रह्म यत्र तिष्ठति स द्विजः ॥ ५२ ॥
एते योनिफला देवि स्थानभागनिदर्शकाः ।

ज्ञानविज्ञान तथा संस्कारयुक्त वेदपारग धर्मात्मा क्षत्रिय निज कर्मोंके सहारे ब्राह्मण होते हैं। हे देवि ! इन कर्मफलोंके द्वारा न्यून जातिकुलमें उत्पन्न हुआ, शास्त्रसम्पन्न शूद्र भी संस्कारयुक्त द्विज होता है। और ब्राह्मण भी असद्वृत्त तथा सब सङ्कर जातिवालोंका अन्न भोजन करनेसे ब्राह्मणत्व परित्यागके शूद्र हुआ करता है। हे देवि ! शुद्धचित्तवाला जितेन्द्रिय शूद्रभी पवित्र कर्मोंके सहारे ब्राह्मणकी भांति सम्मानित होता है, ब्रह्माकी आज्ञा तथा मेरे मतसे पवित्र स्वभाव और पवित्र कर्म करनेवाले शूद्रको द्विजातियोंसे श्रेष्ठ जानना चाहिये। (४५-४९)

ब्राह्मणत्वके विषयमें योनि कारण नहीं है, संस्कार, शास्त्रज्ञान और सन्ततिभी कारण नहीं है केवल पवित्र चरित्रही कारण है, जगत्में चरित्रसेही लोग ब्राह्मण जाने जाते हैं; उत्तम चरित्रयुक्त शूद्रकोभी ब्राह्मणत्व मिल सकता है। हे कल्याणि ! हे सुश्रोणि ! ब्राह्मणका स्वभाव सर्वत्रही सम है ऐसा मुझे दीखता है। निर्गुण, निर्मल

स्वयं च वरदेनोक्ता ब्रह्मणा सृजता प्रजाः ॥ ५३ ॥
ब्राह्मणोऽपि महत्क्षेत्रं लोके चरति पादवत् ।
यत्तत्र बीजं वपति सा कृषिः प्रेत्य भाविनि ॥ ५४ ॥
विघसाशिना सदा भाव्यं सत्पथालम्बिना तथा ।
ब्राह्मं हि मार्गमाक्रम्य वर्तितव्यं बुभूषता ॥ ५५ ॥
संहिताध्यायिना भाव्यं गृहे वै गृहमेधिना ।
नित्यं स्वाध्यायिना भाव्यं न चाध्ययनजीविना ॥५६॥
एवंभूतो हि यो विप्रः सत्पथं सत्पथे स्थितः ।
आहिताग्निरधीयानो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५७ ॥
ब्राह्मण्यं देवि संप्राप्य रक्षितव्यं यतात्मना ।
योनिप्रतिग्रहादानैः कर्मभिश्च शुचिस्मिते ॥ ५८ ॥
एतत्ते गुह्यमाख्यातं यथा शूद्रो भवेद् द्विजः ।
ब्राह्मणो वा च्युतो धर्माद्यथा शूद्रत्वमाप्नुते ॥ ५९ ॥ [६५३९]

इति श्रीम० शत० अनुशा० उमामहेश्वरसंवादे त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥

ब्रह्म जिसमें निवास करे वही ब्रह्मस्वरूप ब्राह्मण है। हे देवि! प्रजाकी सृष्टि करनेवाले वरदाता ब्रह्माने स्वयं इस स्थानमें मार्गनिर्देशक योनिफलोंका वर्णन किया है, जगत्में सबकी गति-स्वरूप ब्राह्मण लोग क्षेत्रस्वरूपसे विचरण किया करते हैं उस क्षेत्रमें जो लोग बीज बोते हैं, परलोकमें उनका वह कृषिकार्य सफल होता है। श्रेष्ठ ब्राह्मण सदा विघसाशी तथा सत्पथावलम्बी होवे और जो लोग ऐश्वर्यकी कामना करते हैं, उन्हें ब्रह्मपथ अवलम्बन करके समय बिताना चाहिये। (५०-५५)

गृहमेधी मनुष्योंको गृहमें संहिता अध्ययन करना योग्य है, सदा स्वाध्यायरत होना चाहिये; किन्तु अध्ययन-मात्रकोही उपजीव्य न करे। इसी प्रकार जो विप्र सत्पथमें स्थित रहता और आहिताग्नि होकर अध्ययन करता है, वह ब्रह्मस्वरूप लाभ करनेमें समर्थ हुआ करता है। हे शुचिस्मिते! यतचित्त ब्राह्मण ब्राह्मणत्व लाभ करके योनि-परिग्रह, आदान और कर्मसे उसकी रक्षा करे, शूद्र जिस प्रकार ब्राह्मण होता और ब्राह्मण धर्मच्युत होकर जिस भांति शूद्रत्व लाभ करता है; मैंने उस गोपनीय विषयको तुम्हारे समीप वर्णन किया। (५६-५९)

अनुशासनपर्वमें १४३ अध्याय समाप्त।

उमोवाच— भगवन्सर्वभूतेश देवासुरनमस्कृत ।
धर्माधर्मौ नृणां देव ब्रूहि मे संशयं विभो ॥ १ ॥
कर्मणा मनसा वाचा त्रिविधं हि नरः सदा ।
बध्यते बन्धनैः पाशैर्मुच्यतेऽप्यथ वा पुनः ॥ २ ॥
केन शीलेन वृत्तेन कर्मणा कीदृशेन वा ।
समाचारैर्गुणैः कैर्वा स्वर्गं यान्तीह मानवाः ॥ ३ ॥
महेश्वर उवाच देवि धर्मार्थतत्त्वज्ञे धर्मनित्ये दमे रते ।
सर्वप्राणिहितः प्रश्नः श्रूयतां बुद्धिवर्धनः ॥ ४ ॥
सत्यधर्मरताः सन्तः सर्वलिङ्गविवर्जिताः ।
धर्मलब्धार्थभोक्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ५ ॥
नाधर्मेण न धर्मेण बध्यन्ते छिन्नसंशयाः ।
प्रलयोत्पत्तितत्त्वज्ञाः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ॥ ६ ॥
वीतरागा विमुच्यन्ते पुरुषाः कर्मबन्धनैः ।
कर्मणा मनसा वाचा ये न हिंसन्ति किंचन ॥ ७ ॥
ये न सज्जन्ति कस्मिंश्चित्ते न बध्यन्ति कर्मभिः ।

अनुशासनपर्वमें १४४ अध्याय ।

उमा बोली, हे सुरासुरनमस्कृत सर्वभूतेश देव भगवन् ! हे विभु ! मनुष्यों का धर्म और अधर्म वर्णन करिये, इस विषयमें मुझे सन्देह है । मनुष्य वचन, मन और कर्महेतु त्रिविध बन्धनपाशसे बद्ध होता है, अथवा उससे मुक्त हुआ करता है । हे देव ! मनुष्य लोग इसलोकमें किस भांतिके चरित्र, कैसे कर्म और किन गुणोंके सहारे स्वर्गमें गमन करते हैं । (१—३)

महादेव बोले, हे धर्मार्थतत्वको जाननेवाली, धर्म और दममें रत देवि ! तुमने जो प्रश्न किया, वह सब प्राणियोंके लिये हितकर और बुद्धिवर्द्धन है, इसलिये उसका उत्तर सुनो । सत्यधर्ममें रत सर्वलिङ्गविवर्जित जो सब साधुजन धर्मलब्ध अर्थ भोग करते हैं, वे सब मनुष्य ही स्वर्गमें गमन किया करते हैं; जिन लोगोंका सन्देह छूटा है, वे धर्म अथवा अधर्मसे बद्ध नहीं होते । प्रलय और उत्पत्तिके तत्वोंको जाननेवाले सर्वज्ञ सर्वदर्शी रागरहित पुरुष कर्मबन्धनसे मुक्त होते हैं; जो लोग वचन, मन और कर्मसे किसीकोभी हिंसा नहीं करते हैं, तथा मनहीमन किसी विषयमें भी आसक्त नहीं होते, वे कर्मसे बद्ध नहीं होते । (४—७)

R.N.B. 1819

महाभारत।

इस समय तक छपकर तैयार पर्व

पर्वका नाम	अंक	कुल अंक	पृष्ठसंख्या	मूल्य	डा. व्यय
१ आदिपर्व	[१ से ११]	११	११२५	६) छः	रु१)
२ सभापर्व	[१२ " १५]	४	३५६	२) दो	।-)
३ वनपर्व	[१६ " ३०]	१५	१५३८	८) आठ	१।)
४ विराटपर्व	[३१ " ३३]	३	३०६	१॥) डेढ	।-)
५ उद्योगपर्व	[३४ " ४२]	९	९५३	५) पांच	१)
६ भीष्मपर्व	[४३ " ५०]	८	८००	४) चार	॥)
७ द्रोणपर्व	[५१ " ६४]	१४	१३६४	७॥) साडेसात	१।=)
८ कर्णपर्व	[६५ " ७०]	६	६३७	३॥) साढेतीन ,,	॥।)
९ शल्यपर्व	[७१ " ७४]	४	४३५	२॥) अढाइ "	।=)
१० सौप्तिकपर्व	[७५]	१	१०४	॥।) बारह आ.	।)
११ स्त्रीपर्व	[७६]	१	१०८	॥।) "	।)
१२. शान्तिपर्व					
१ राजधर्मपर्व	[७७—८३]	७	६९४	३॥) साढे तीन	॥)
२ आपद्धर्मपर्व	[८४—८५]	२	२३२	१।) सवा	।-)
३ मोक्षधर्मपर्व	[८६—९६]	११	११००	६) छः	१)
१३ अनुशासनपर्व	[९७ " १०६]	१०	१०००	५॥	१)

कुल मूल्य ५७॥।) कुल डा. व्य. १०।≡)

सूचना— ये पर्व छप कर तैयार हैं। अतिशीघ्र मंगवाइये। मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेज देंगे तो आधा डाकव्यय माफ करेंगे; अन्यथा प्रत्येक रु० के मूल्यके ग्रंथको तीन आने डाकव्यय मूल्यके अलावा देना होगा। मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा)

मुद्रक और प्रकाशक- श्री० दा० सातवळेकर, भारतमुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा.)

REGISTERED NO. B. 1819

अङ्क १०६ ॥ ॐ ॥ [अनुशासनपर्व १०]

महाभारत ।

भाषा-भाष्य-समेत

संपादक- श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)

महाभारत

प्रतिमास १०० पृष्ठोंका एक अंक प्रसिद्ध होता है।

१२ अंकोंका अर्थात् १२०० पृष्ठोंका मूल्य म० आ० से ६) रु० और वी. पी. से ७) रु० है।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)

१२अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी.पी. से ७) विदेशके लिये ८)

प्राणातिपाताद्विरताः शीलवन्तो दयान्विताः ॥ ८ ॥
तुल्यद्वेष्यप्रिया दान्ता मुच्यन्ते कर्मबन्धनैः ।
सर्वभूतदयावन्तो विश्वास्याः सर्वजन्तुषु ॥ ९ ॥
त्यक्तहिंसासमाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः ।
परस्वे निर्ममा नित्यं परदारविवर्जकाः ॥ १० ॥
धर्मलब्धान्नभोक्तारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ।
मातृवत्स्वसृवच्चैव नित्यं दुहितृवच्च ये ॥ ११ ॥
परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ।
स्तैन्यान्निवृत्ताः सततं संतुष्टाः स्वधनेन च ॥ १२ ॥
स्वभाग्यान्युपजीवन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ।
स्वदारनिरता ये च ऋतुकालाभिगामिनः ॥ १३ ॥
अग्राम्यसुखभोगाश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ।
परदारेषु ये नित्यं चारित्रावृतलोचनाः ॥ १४ ॥
यतेन्द्रियाः शीलपरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ।
एष देवकृतो मार्गः सेवितव्यः सदा नरैः ॥ १५ ॥
अकषायकृतश्चैव मार्गः सेव्यः सदा बुधैः ।

इन्द्रियविषयोंसे जो लोग विरत हुए हैं और जो लोग शीलवन्त तथा दयावान् हैं, वे शत्रुमित्रको समान जाननेवाले दमनशील पुरुष कर्मबन्धनोंसे छूट जाते हैं। जो लोग सर्वभूतोंमें दयावान् सब प्राणियोंमें विश्वासी और हिंसावृत्तिसे रहित हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें गमन किया करते हैं। जो लोग सदा परधनमें ममतारहित, परस्त्रीसे विरत रहते और धर्मसे प्राप्त हुआ अन्न भोजन करते हैं, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य परस्त्रीके विषयमें मातृवत्, स्वसृवत् और दुहितृवत् व्यवहार करते हैं, वे भी स्वर्गगामी होते हैं; जो लोग सदा चोरीकार्यसे विरत रहते हैं, निजधनसे सन्तुष्ट और स्ववीर्यभाग्य उपजीव्य करके जीवन बिताते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। (८—१३)

जो लोग निज स्त्रीमें रत तथा ऋतुकालमें गमन करनेवाले हैं और जो लोग ग्राम्यसुख नहीं भोगते, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग सदा पराई स्त्रीके विषयमें चरित्रके सहारे नेत्रको छिपा रखते हैं, जो लोग संयतेन्द्रिय और शीलपरायण हैं वे सब मनुष्य स्वर्गमें गमन किया करते हैं, पण्डितों-

दानधर्मतपोयुक्तः शीलशौचदयात्मकः ॥ १६ ॥
वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा सेवितव्यः सदा नरैः।
स्वर्गवासमभीप्सद्भिर्न सेव्यस्त्वत उत्तरः ॥ १७ ॥

उमोवाच- वाचा तु बध्यते येन मुच्यतेऽप्यथवा पुनः।
तानि कर्माणि मे देव वद भूतपतेऽनघ ॥ १८ ॥

महेश्वर उवाच— आत्महेतोः परार्थे वा नर्महास्याश्रयात्तथा।
ये मृषा न वदन्तीह ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ १९ ॥
वृत्त्यर्थं धर्महेतोर्वा कामकारात्तथैव च।
अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २० ॥
श्लक्ष्णां वाणीं निराबाधां मधुरां पापवर्जिताम्।
स्वागतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २१ ॥
परुषं ये न भाषन्ते कटुकं निष्ठुरं तथा।
अपैशुन्यरताः सन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २२ ॥
पिशुनां न प्रभाषन्ते मित्रभेदकरीं गिरम्।
ऋतं मैत्रं तु भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २३ ॥

को इस देवपथमें विचरना चाहिये, यह अकषायकृत मार्ग विद्वान् मण्डलीको सदा सेवनीय है। दान, धर्म, तप, शील, शौच और दयायुक्त पथ वृत्तिके निमित्त तथा धर्महेतुसे बुद्धिमान्को सदा सेवनीय है, जो लोग स्वर्गवासकी अभिलाष करते हैं, उन्हें उक्तपथके अतिरिक्त धर्मसेवा करनी योग्य नहीं है। (१३—१७)

उमा बोली, हे अनघ भूतनाथ! जिन वाक्योंके सहारे मनुष्य बद्ध होता है और जिन कर्मोंके द्वारा मुक्त होता है, आप मेरे समीप उसे वर्णन करिये। (१८)

महादेव बोले, अपने लिये अथवा दूसरोंके निमित्त वा परिहासके छलसे भी जो लोग इस लोकमें मिथ्या नहीं कहते, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। वृत्तिके निमित्त अथवा धर्मके लिये वा स्वेच्छापूर्वक जो लोग मिथ्या वचन नहीं कहते, वे सब पुरुष स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग मृदु, निराबाध, मधुर और निष्पाप भाषण स्वागतपूर्वक करते हैं, वेही स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग निठुर और कडवे वचन नहीं कहते, जो पिशुनतारहित तथा साधु हैं, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग मित्रभेदकर, चुगलीयुक्त वचन

ये वर्जयन्ति परुषं परद्रोहं च मानवाः ।
सर्वभूतसमा दान्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २४ ॥
शठप्रलापाद्विरता विरुद्धपरिवर्जकाः ।
सौम्यप्रलापिनो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ २५ ॥
न कोपाद्व्याहरन्ते ये वाचं हृदयदारणीम् ।
सान्त्वं वदन्ति क्रुद्धाऽपि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥२६॥
एष वाणीकृतो देवि धर्मः सेव्यः सदा नरैः ।
शुभः सत्यगुणो नित्यं वर्जनीयो मृषा बुधैः ॥ २७ ॥
उमोवाच— मनसा बध्यते येन कर्मणा पुरुषः सदा ।
तन्मे ब्रूहि महाभाग देवदेव पिनाकधृत् ॥ २८ ॥
महेश्वर उवाच- मानसेनेह धर्मेण संयुक्ताः पुरुषाः सदा ।
स्वर्गं गच्छन्ति कल्याणि तन्मे कीर्तयतः शृणु ॥२९॥
दुष्प्रणीतेन मनसा दुष्प्रणीततराकृतिः ।
मनो बध्यति येनेह शृणु वाक्यं शुभानने ॥ ३० ॥
अरण्ये विजने न्यस्तं परस्वं दृश्यते यदा ।

नहीं कहते, सत्य तथा हितकर बात कहा करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग कठोरवचन और परद्रोह परित्याग करते तथा जो सब जीवोंमें समदर्शी और दान्त हैं, वे स्वर्ग-गामी होते हैं। (१९—२४)

जो लोग असत्प्रलापसे विरत रहते, विरुद्ध कार्योंको नहीं करते और प्रिय वचन कहा करते हैं, वे मनुष्य स्वर्ग-गामी होते हैं। जो लोग क्रोधपूर्वक हृदयविदारक वचन नहीं कहते, क्रुद्ध होके भी शान्त वाणी बोलते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। हे देवि! मनुष्योंका इस ही प्रकार वाक्यजनित धर्म सदा सेवन करना योग्य है; यह शुभकर और सत्यफलप्रद है; इसलिये विद्वान् मनुष्योंको मिथ्या वचन कदापि न कहना चाहिये। (२५-२७)

उमा बोली, हे महाभाग देवोंके देव पिनाकधारी! पुरुष मनहीमन जिन कर्मोंको करके बद्ध होता है, आप मेरे निकट उसे वर्णन करिये। (२८)

महादेव बोले, हे कल्याणि! इस लोकमें मनुष्य सदा मानसधर्मोंसे संयुक्त होकर स्वर्गमें गमन करता है, उसे मैं कहता हूं, सुनो। हे शुभानने! दुष्ट-चित्तसे अन्तरात्मा भी दूषित होता है, इस लोकमें जिन कर्मोंसे मन बद्ध होता

मनसाऽपि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३१ ॥
ग्रामे गृहे वा ये द्रव्यं पारक्यं विजने स्थितम् ।
नाभिनन्दन्ति वै नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३२॥
तथैव परदारान्ये कामवृत्तान् रहोगतान् ।
मनसाऽपि न हिंसन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥३३ ॥
शत्रुं मित्रं च ये नित्यं तुल्येन मनसा नराः ।
भजन्ति मैत्राः सङ्गम्य ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३४ ॥
श्रुतवन्तो दयावन्तः शुचयः सत्यसङ्गराः ।
स्वैरर्थैः परिसन्तुष्टास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३५ ॥
अवैरा ये त्वनायासा मैत्रीचित्तरताः सदा ।
सर्वभूतदयावन्तस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३६ ॥
श्रद्धावन्तो दयावन्तश्चोक्षाश्चोक्षजनप्रियाः ।
धर्माधर्मविदो नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३७ ॥
शुभानामशुभानां च कर्मणां फलसंचये ।
विपाकज्ञाश्च ये देवि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३८ ॥
न्यायोपेता गुणोपेता देवद्विजपराः सदा ।

है, उसे सुनो; जनरहित वनके बीच यदि पराया धन दीख पड़े, उस समय जो मनुष्य उसे हरनेके लिये मनसे भी कामना नहीं करते वे स्वर्गगामी होते हैं। ग्राम, गृह वा निर्जन वनमें जो धन रहता है, जो लोग उसे अभिनन्दन नहीं करते, वे स्वर्गमें जाते हैं। जो लोग निर्जनमें स्थित कामवृत्त पराई स्त्रीकी मनसे कामना नहीं करते, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य शत्रु वा मित्रको देखकर समान भावसे और मैत्रीसे वार्त्ता करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग श्रुतवन्त, दयावान्, पवित्र और सत्यप्रतिज्ञ हैं और निज धनसे सन्तुष्ट रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। (२९—३५)

जिनका कोई वैरी नहीं है, जो लोग किसी कार्यको करके आसक्तियुक्त नहीं होते, जिनके चित्तमें सदा मित्रभाव रहता है, तथा जो सब जीवोंमें दयावान् हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग श्रद्धावान्, दयावान्, मनोज्ञ और मनोज्ञजनप्रिय तथा हर एक धर्मोंको जाननेवाले हैं, वे सब मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। हे देवि ! जो मनुष्य शुभाशुभ कर्मोंके फलसंचय

समुत्थानमनुप्राप्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥ ३९ ॥
शुभैः कर्मफलैर्देवि मयैते परिकीर्तिताः ।
स्वर्गमार्गपरा भूयः किं त्वं श्रोतुमिहेच्छसि ॥ ४० ॥

उमोवाच— महान्मे संशयः कश्चिन्मर्त्यान्प्रति महेश्वर ।
तस्मात्त्वं नैपुणेनाद्य मम व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४१ ॥
केनायुर्लभते दीर्घं कर्मणा पुरुषः प्रभो ।
तपसा वाऽपि देवेश केनायुर्लभते महत् ॥ ४२ ॥
क्षीणायुः केन भवति कर्मणा भुवि मानवः ।
विपाकं कर्मणां देव वक्तुमर्हस्यनिन्दित ॥ ४३ ॥
अपरे च महाभाग्या मन्दभाग्यास्तथाऽपरे ।
अकुलीनास्तथा चान्ये कुलीनाश्च तथाऽपरे ॥ ४४ ॥
दुर्दर्शाः केचिदाभान्ति नराः काष्ठमया इव ।
प्रियदर्शास्तथा चान्ये दर्शनादेव मानवाः ॥ ४५ ॥
दुष्प्रज्ञाः केचिदाभान्ति केचिदाभान्ति पण्डिताः ।
महाप्राज्ञास्तथैवाऽन्ये ज्ञानविज्ञानभाविनः ॥ ४६ ॥
अल्पाबाधास्तथा केचिन्महाबाधास्तथाऽपरे ।

विषयमें विपाकज्ञ हैं, वे लोग स्वर्गगामी होते हैं। जो लोग सदा न्यायपूर्वक, गुणयुक्त, देव-द्विजपरायण और सदा सावधान रहते हैं, वे सब मनुष्य स्वर्गमें गमन करते हैं। हे देवि! शुभकर्मोंसे जो अनन्त फल मिलता है, उसे मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। स्वर्गमार्ग-परायण होकर अब फिर तुम कौनसा विषय सुननेकी इच्छा करती हो? ३९-४०

उमा बोली, हे महेश्वर! मनुष्योंके विषयमें मुझे एक महत् सन्देह है, इसलिये आप मेरे समीप निपुण भावसे उस सन्दिग्ध विषयकी व्याख्या करिये।

हे प्रभु! पुरुषको किन कर्मोंसे दीर्घायु प्राप्त होती है? हे देवेश! किस तपस्यासे महत् परमायु मिलती है? भूमण्डलमें मनुष्य किन कर्मोंसे क्षीणायु हुआ करता है? हे अनिन्दित देव! आपको कर्मोंका विपाक वर्णन करना उचित है। कोई कोई महाभाग्यशाली और कोई मन्दभागी हुआ करते हैं, कोई कुलीन और कोई अकुलीन होते हैं। कोई कोई मनुष्य दुर्दशापन्न होकर मानो काष्ठमय रूपसे मालूम होते हैं, कोई प्रियदर्शन और देखते ही दुर्बुद्धिरूपसे मालूम होते हैं। कोई पण्डित, कोई महाबुद्धिमान्, कोई

दृश्यन्ते पुरुषा देव तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ४७ ॥
महेश्वर उवाच- हन्त तेऽहं प्रवक्ष्यामि देवि कर्मफलोदयम्।
मर्त्यलोके नरः सर्वो येन स्वफलमश्नुते ॥ ४८ ॥
प्राणातिपाते यो रौद्रो दण्डहस्तोद्यतः सदा।
नित्यमुद्यतशस्त्रश्च हन्ति भूतगणान्नरः ॥ ४९ ॥
निर्दयः सर्वभूतानां नित्यमुद्वेगकारकः।
अपि कीटपिपीलानामशरण्यः सुनिर्घृणः ॥ ५० ॥
एवंभूतो नरो देवि निरयं प्रतिपद्यते।
विपरीतस्तु धर्मात्मा रूपवानभिजायते ॥ ५१ ॥
पापेन कर्मणा देवि वध्यो हिंसारतिर्नरः।
अप्रियः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते ॥ ५२ ॥
निरयं याति हिंसाऽऽत्मा याति स्वर्गमहिंसकः।
यातनां निरये रौद्रां सकृच्छ्रां लभते नरः ॥ ५३ ॥
यः कश्चिन्निरयात्तस्मात्समुत्तरति कर्हिचित्।
मानुष्यं लभते चापि हीनायुस्तत्र जायते ॥ ५४ ॥
पापेन कर्मणा देवि बद्धो हिंसारतिर्नरः।

कोई ज्ञानविज्ञानसम्पन्न और कोई अल्प बाधायुक्त हैं, कितने ही महापीडाग्रस्त दिखाई देते हैं। हे देव! पुरुषोंमें ऐसी विशेषता किसलिये होती है, उसे आपको यथार्थ वर्णन करना उचित है। (४१—४७)

महादेव बोले, हे देवि! अच्छा मैं तुमसे कर्मफलोदय कहता हूं, मर्त्यलोकमें सब मनुष्य जिसके सहारे निज कर्मफल भोगते हैं, उसे सुनो। हे देवि! जो पुरुष प्राणवध करनेमें सदा दण्डहस्त होकर भयङ्कर भावसे उद्यत रहता और शस्त्रसे सदा प्राणियोंको मारता है और जो मनुष्य निर्दयी तथा सर्व भूतोंके विषयमें उद्वेगजनक है; कीट, चींटी प्रभृतिके भी अशरण्य तथा अत्यन्त निर्घृण है, वह मनुष्य नरकमें डूबता है और इसके विपरीत पुरुष धर्मात्मा तथा रूपवान् होकर जन्मता है। (४८-५१)

मनुष्य पापकर्मसे हिंसामें आसक्त, वध्य, सब प्राणियोंको अप्रिय और अल्पायु होता है। हिंसक मनुष्य नरकमें जाता और अहिंसक पुरुष स्वर्गमें गमन करता है। नरकमें पडके मनुष्य घोर कष्टयुक्त यातना भोग करता है; जो कोई पुरुष कदाचित् उस नरकसे

अप्रियः सर्वभूतानां हीनायुरुपजायते ॥ ५५ ॥
यस्तु शुक्लाभिजातीयः प्राणिघातविवर्जकः।
निक्षिप्तशस्त्रो निर्दण्डो न हिंसति कदाचन ॥ ५६ ॥
न घातयति नो हन्ति घ्नन्तं नैवानुमोदते।
सर्वभूतेषु सस्नेहो यथाऽऽत्मनि तथाऽपरे ॥ ५७ ॥
ईदृशः पुरुषोत्कर्षो देवि देवत्वमश्नुते।
उपपन्नान्सुखान्भोगानुपाश्नाति मुदा युतः ॥ ५८ ॥
अथ चेन्मानुषे लोके कदाचिदुपपद्यते।
तत्र दीर्घायुरुत्पन्नः स नरः सुखमेधते ॥ ५९ ॥
एष दीर्घायुषां मार्गः सुवृत्तानां सुकर्मिणाम्।
प्राणिहिंसाविमोक्षेण ब्रह्मणा समुदीरितः ॥ ६० ॥ [६५९९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उमामहेश्वरसंवादे चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४४ ॥

उमोवाच— किंशीलः किंसमाचारः पुरुषः कैश्च कर्मभिः।
स्वर्गं समभिपद्येत संप्रदानेन केन वा ॥ १ ॥

बाहिर होता है, वह मनुष्यजन्म पाके हीनायु हुआ करता है। हे देवि! हिंसामें रत मनुष्य पाप कर्मसे बद्ध होते और वे लोग सर्व भूतोंके अप्रिय तथा अल्पायु होके जन्मते हैं। (५२-५५)

और जो लोग पवित्र वंशमें जन्म ग्रहण करते हैं, वे प्राणिहिंसावर्जित, शस्त्ररहित और दण्डहीन होकर कदापि हिंसा नहीं करते; न वे आघात करते हैं और मारनेवालेका अनुमोदन करनेमें विरत रहते हैं, वे सब जीवोंके विषयमें स्नेहवान् हुआ करते हैं, वे अपने समान दूसरेको भी जानते हैं। हे देवि! ऐसे श्रेष्ठ पुरुष देवत्व संभोग करते हैं, वे हर्षित होकर उपपन्न सुखभोगोंको उपभोग किया करते हैं। अनन्तर यदि कदाचित् वे मनुष्यलोकमें जन्म लेते हैं, तो दीर्घायु होकर सुख भोग किया करते हैं। दीर्घायु, सच्चरित्र, सुकर्मशील मनुष्योंका प्राणिहिंसाविमोक्षवशसे यह पथ ब्रह्माके द्वारा वर्णित हुआ है। (५६—६०)

अनुशासनपर्वमें १४४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १४५ अध्याय।

उमा बोली, पुरुष कैसे स्वभाव, किस प्रकारके आचार और व्यवहारसे युक्त होकर किन कर्मों तथा कैसे दानके सहारे स्वर्गलोक पाता है? (१)

महेश्वर उवाच- दाता ब्राह्मणसत्कर्ता दीनार्तकृपणादिषु ।
भक्ष्यभोज्यान्नपानानां वाससां च प्रदायकः ॥ २ ॥
प्रतिश्रयान्सभाः कूपान्प्रपाः पुष्करिणीस्तथा ।
नैत्यकानि च सर्वाणि किमिच्छकमतीव च ॥ ३ ॥
आसनं शयनं यानं गृहं रत्नं धनं तथा ।
सस्यजातानि सर्वाणि गाः क्षेत्राण्यथ योषितः ॥ ४ ॥
सुप्रतीतमना नित्यं यः प्रयच्छति मानवः ।
एवंभूतो नरो देवि देवलोकेऽभिजायते ॥ ५ ॥
तत्रोष्य सुचिरं कालं भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् ।
सहाप्सरोभिर्मुदितो रमते नन्दनादिषु ॥ ६ ॥
तस्मात्स्वर्गाच्च्युतो लोकान्मानुषेषु प्रजायते ।
महाभोगकुले देवि धनधान्यसमन्वितः ॥ ७ ॥
तत्र कामगुणैः सर्वैः समुपेतो मुदा युतः ।
महाभोगो महाकोशो धनी भवति मानवः ॥ ८ ॥
एते देवि महाभागाः प्राणिनो दानशीलिनः ।
ब्रह्मणा वै पुरा प्रोक्ताः सर्वस्य प्रियदर्शनाः ॥ ९ ॥
अपरे मानवा देवि प्रदानकृपणा द्विजैः ।

महादेव बोले, हे देवि ! जो लोग दाता हैं और ब्राह्मणोंका सम्मान करते हैं; दीन,पीडित और कृपण आदिको भक्ष्य, भोज्य, अन्न, पान, वस्त्र, तथा भूषण प्रदान करते हैं; निवासस्थान, सभा, कूप, तालाब, तलाई आदि तैयार कराते और नित्य प्रयोजनीय वस्तुओं तथा जो मनुष्य जिस वस्तुके लिये प्रार्थना करता उसे देते; आसन, शय्या, सवारी, धन, रत्न, गृह सब प्रकारके सस्य,गऊ, क्षेत्र, स्त्रीप्रभृतिका जो मनुष्य प्रसन्नचित्त होकर सदा प्रदान करता है, वह देवलोकमें विराजता है । वह वहांपर बहुत समयतक उत्तम भोगोंको भोग करते हुए अप्सराओंके सङ्ग प्रमुदित होकर नन्दन प्रभृति वनोंमें क्रीडा करता है; स्वर्गलोकसे च्युत होनेपर वह पुरुष मनुष्यलोकमें धनधान्ययुक्त होकर महाकुलमें जन्मता है । हे देवि ! वहां समस्त कामगुणयुक्त और हर्षित होकर वह महाभोग मनुष्य महाकोषसम्पन्न तथा धनवान् होता है । ब्रह्माने पहले ही कहा है, कि ये दानशील महाभाग प्राणिगण सबको ही प्रिय-

याचिता न प्रयच्छन्ति विद्यमानेऽप्यबुद्धयः ॥ १० ॥
दीनान्धकृपणान्दृष्ट्वा भिक्षुकानतिथीनपि ।
याच्यमाना निवर्तन्ते जिह्वालोभसमन्विताः ॥ ११ ॥
न धनानि न वासांसि न भोगान्न च काञ्चनम् ।
न गावो नान्नविकृतिं प्रयच्छन्ति कदाचन ॥ १२ ॥
अप्रवृत्ताश्च ये लुब्धा नास्तिका दानवर्जिताः ।
एवंभूता नरा देवि निरयं यान्त्यबुद्धयः ॥ १३ ॥
ते वै मनुष्यतां यान्ति यदा कालस्य पर्ययात् ।
धनरिक्ते कुले जन्म लभन्ते स्वल्पबुद्धयः ॥ १४ ॥
क्षुत्पिपासापरीताश्च सर्वलोकबहिष्कृताः ।
निराशाः सर्वभोगेभ्यो जीवन्त्यधर्मजीविकाम् ॥१५॥
अल्पभोगकुले जाता अल्पभोगरता नराः ।
अनेन कर्मणा देवि भवन्त्यधनिनो नराः ॥ १६ ॥
अपरे स्तम्भिनो नित्यं मानिनः पापतो रताः ।
आसनार्हस्य ये पीठं न प्रयच्छन्त्यचेतसः ॥ १७ ॥
मार्गार्हस्य च ये मार्गं न यच्छन्त्यल्पबुद्धयः ।

दर्शन हैं । (२-९)

हे देवि ! दूसरे निर्बुद्धि मनुष्य दान विषयमें कृपण होकर द्विजोंको माँगनेपर धन विद्यमान रहते भी दान नहीं करते, वे जिह्वालोभयुक्त होकर दीन, अन्ध, कृपण, भिक्षुक और अतिथियोंको माँगनेपर भी देनेसे विमुख हुआ करते हैं । वे लोग धन, वस्त्र, भोग्यवस्तु, सुवर्ण, गऊ तथा अन्नविकार कदाचित् किञ्चिन्मात्र प्रदान नहीं करते, वे लोग दान विषयमें निवृत्त लोभी, नास्तिक तथा दानरहित होते हैं । हे देवि ! ऐसे अल्पबुद्धिवाले मनुष्य नरकमें गमन करते हैं । कालक्रमसे जब उन्हें फिर मनुष्यत्व प्राप्त होता है, तब वे अल्पबुद्धि मनुष्य धनहीन कुलमें जन्मते हैं । (१०—१४)

वे लोग भूख-प्याससे युक्त, सब लोगोंसे पृथक् और सब भोगोंसे रहित होकर अधर्मजीविकाके सहारे जीवित रहते हैं । हे देवि ! इन्हीं कर्मोंसे मनुष्य अल्पभोगयुक्त कुलमें जन्मते और अल्पभोगमें रत तथा निर्द्धन हुआ करते हैं । हे देवि ! जो मनुष्य धनगर्वसे अभिमानी, स्तम्भित और पापरत होते हैं, जो लोग अचेत होकर आसन देने योग्य

पाद्यार्हस्य च ये पाद्यं न ददत्यल्पबुद्धयः ॥ १८ ॥
अर्घार्हांश्च च सत्कारैरर्चयन्ति यथाविधि।
अर्घ्यमाचमनीयं वा न यच्छन्त्यल्पबुद्धयः ॥ १९ ॥
गुरुं चाभिगतं प्रेम्णा गुरुवन्न बुभूषते।
अभिमानप्रवृत्तेन लोभेन समवस्थिताः ॥ २० ॥
संमान्यांश्चावमन्यन्ते वृद्धान्परिभवन्ति च।
एवंविधा नरा देवि सर्वे निरयगामिनः ॥ २१ ॥
ते वै यदि नरास्तस्मान्निरयादुत्तरन्ति वै।
वर्षपूगैस्ततो जन्म लभन्ते कुत्सिते कुले ॥ २२ ॥
श्वपाकपुल्कसादीनां कुत्सितानामचेतसाम्।
कुलेषु तेषु जायन्ते गुरुवृद्धापचायिनः ॥ २३ ॥
न स्तम्भी न च मानी यो देवताद्विजपूजकः।
लोकपूज्यो नमस्कर्ता प्रश्रितो मधुरं वचः ॥ २४ ॥
सर्ववर्णप्रियकरः सर्वभूतहितः सदा।
अद्वेषी सुमुखः श्लक्ष्णः स्निग्धवाणीप्रदः सदा॥ २५ ॥

माननीय पुरुषोंको आसन प्रदान नहीं करते, जो अल्पबुद्धि मनुष्य पथप्रदानके योग्य पुरुषोंको मार्ग नहीं देते, जो तुच्छबुद्धि पुरुष पाद्य देने योग्य मनुष्यको पाद्यप्रदान नहीं करते, अर्घयोग्य पुरुषका सत्कार करके विधिपूर्वक पूजा नहीं करते अथवा जो मूर्ख मनुष्य पूजनीय पुरुषको अर्घ वा आचमनके लिये जल नहीं देते, गुरुको आया हुआ देखकर प्रीतिपूर्वक उसके सङ्ग गुरुयोग्य व्यवहार नहीं करते, अभिमान और लोभसे परिपूरित हुआ करते, माननीय लोगोंकी अवज्ञा करते और वृद्धोंका परिभव किया करते हैं, वे सारे मनुष्य नरकगामी होते हैं। (१५-२१)

वे मनुष्य अनेक वर्षोंके अनन्तर कदाचित् महानरकसे बाहिर होकर अत्यन्त निन्दित नीचकुलमें जन्मते हैं। जो लोग गुरु और वृद्ध लोगोंकी अवज्ञा करते हैं, वे चाण्डाल पुल्कस प्रभृति निर्बुद्धि लोगोंके निन्दित कुलमें उत्पन्न हुआ करते हैं। जो लोग अभिमानी तथा अहंकारी नहीं हैं और देव ब्राह्मणोंकी पूजा करते और मधुर भाषण करते हैं, वे लोगोंके बीच पूज्य होते हैं। जो लोग गुरुजनोंको नमस्कार करते और विनययुक्त होके मधुरवचन कहते हैं, वे सब वर्णोंको प्रिय तथा

स्वागतेनैव सर्वेषां भूतानामविहिंसकः ।
यथार्हसत्क्रियापूर्वमर्चयन्नवतिष्ठति ॥ २६ ॥
मार्गार्हाय ददन्मार्गं गुरुं गुरुवदर्चयन् ।
अतिथिप्रग्रहरतस्तथाऽभ्यागतपूजकः ॥ २७ ॥
एवंभूतो नरो देवि स्वर्गतिं प्रतिपद्यते ।
ततो मानुषतां प्राप्य विशिष्टकुलजो भवेत् ॥ २८ ॥
तत्रासौ विपुलैर्भोगैः सर्वरत्नसमायुतः ।
यथार्हदाता चार्हेषु धर्मचर्यापरो भवेत् ॥ २९ ॥
संमतः सर्वभूतानां सर्वलोकनमस्कृतः ।
स्वकर्मफलमाप्नोति स्वयमेव नरः सदा ॥ ३० ॥
उदात्तकुलजातीय उदात्ताभिजनः सदा ।
एष धर्मो मया प्रोक्तो विधात्रा स्वयमीरितः ॥ ३१ ॥
यस्तु रौद्रसमाचारः सर्वसत्त्वभयङ्करः ।
हस्ताभ्यां यदि वा पद्भ्यां रज्ज्वा दण्डेन वा पुनः ॥ ३२ ॥
लोष्टैः स्तम्भैरायुधैर्वा जन्तून्बाधति शोभने ।

सर्वभूतोंके हितकर हुआ करते हैं। हे देवि! द्वेष न करनेवाले सुमुखशाली, अत्यन्त मृदुभाषी और जो लोग स्वागतप्रश्नसे सदा कोमल वचन कहते हैं, सब जीवोंकी हिंसा न करते हुए अतिथियोंकी यथायोग्य सत्कारसे पूजा करते हैं, पथप्रदान करने योग्य पुरुषको पथ देते हैं, बडे लोगोंकी गुरुकी भांति पूजा किया करते हैं; जो लोग अतिथि-सेवामें अनुरक्त रहते और अभ्यागतोंकी पूजा करते हैं, उनको स्वर्गगति प्राप्त होती है। (२२—२८)

अनन्तर मनुष्यत्व पाके श्रेष्ठ कुलमें जन्म लेते हैं, वहांपर वेही पुरुष सब रत्नोंसे युक्त विपुल भोगके द्वारा पूज्य पुरुषोंको यथायोग्य दान करते और धर्मचर्यापरायण होते हैं। मनुष्य सदाही सब प्राणियोंको मान्य और सब लोगोंके पूज्य होकर स्वकर्मका फल पाता है। ऐसे मनुष्य श्रेष्ठ कुलमें जन्मते और सदा उत्तम महत् कुल और जातिको प्रकाशित किया करते हैं। मैंने जो यह धर्म विषय कहा है, इसे स्वयं विधाताने वर्णन किया था। हे सुन्दरि! जिस पुरुषका व्यवहार अत्यन्त भयङ्कर है, जिसको देखतेही सब प्राणी भयभीत होते हैं, जो पुरुष हाथ, पांव, रसरी वा दण्ड, लोष्ट, स्तम्भ अथवा दूसरे किसी उपायसे

हिंसार्थं निकृतिप्रज्ञः प्रोद्वेजयति चैव ह ॥ ३३ ॥
उपक्रामति जन्तूंश्च उद्वेगजननः सदा।
एवंशीलसमाचारो निरयं प्रतिपद्यते ॥ ३४ ॥
स वै मनुष्यतां गच्छेद्यदि कालस्य पर्ययात्।
बह्वाबाधपरिक्लिष्टे जायते सोऽधमे कुले ॥ ३५ ॥
लोकद्वेष्योऽधमः पुंसां स्वयं कर्मफलैः कृतैः।
एष देवि मनुष्येषु बोद्धव्यो ज्ञातिबन्धुषु ॥ ३६ ॥
अपरः सर्वभूतानि दयावाननुपश्यति।
मैत्रदृष्टिः पितृसमो निर्वैरो नियतेन्द्रियः ॥ ३७ ॥
नोद्वेजयति भूतानि न विघातयते तथा।
हस्तपादैः सुनियतैर्विश्वास्यः सर्वजन्तुषु ॥ ३८ ॥
न रज्ज्वा न च दण्डेन न लोष्टैर्नायुधेन च।
उद्वेजयति भूतानि श्लक्ष्णकर्मा दयापरः ॥ ३९ ॥
एवंशीलसमाचारः स्वर्गे समुपजायते।
तत्रासौ भवने दिव्ये मुदा वसति देववत् ॥ ४० ॥

प्राणियोंको मारनेके लिये दौडता है, जिसकी बुद्धिवृत्ति हिंसाके निमित्त निकृष्ट पथमें भ्रमण करती है, जो सब जीवोंको व्याकुल करता है, सदा प्राणियोंको उद्वेगजनक होकर उन्हें आक्रमण करता है, ऐसे व्यवहारोंसे युक्त पुरुष नरकमें गमन किया करता है। (२८-३४)

कालक्रमसे वह पुरुष मानुषत्व पाके अनेक प्रकारकी बाधा और क्लेशोंसे युक्त और अधम वंशमें उत्पन्न होता है। जगत्में द्वेषी मनुष्य सब पुरुषोंसे अधम है। हे देवि! यह जान रखो कि, अपने किये हुए कर्मोंसेही मनुष्य स्वजनों तथा बान्धव प्रभृतिके बीच अधम हुआ करते हैं। दयावान्, शत्रुतारहित, नियतेन्द्रिय, मैत्रदृष्टि मनुष्य पिताकी भांति सब भूतोंको समदृष्टिसे देखता है, वह जीवोंको व्याकुल तथा दुःखित नहीं करता; और भूतोंका घात नहीं करता, उत्तम नियमित हाथ पांवके सहारे सब प्राणियोंका विश्वासपात्र होता है। (३५-३८)

मृदुकर्म करनेवाला दयावान् मनुष्य रसरी, दण्ड, लोष्ट वा शस्त्रोंसे जीवोंको उद्वेगयुक्त नहीं करता, ऐसे स्वभाव और व्यवहारसे युक्त पुरुष स्वर्गलोकमें जाकर सुरपुरके दिव्य स्थानोंमें देवता-

स चेत्कर्मक्षयान्मर्त्यो मनुष्येषूपजायते ।
अल्पाबाधो निरातङ्कः स जातः सुखमेधते ॥ ४१ ॥
सुखभागी निराबाधो निरुद्वेगः सदा नरः ।
एष देवि सतां मार्गो बाधा यत्र न विद्यते ॥ ४२ ॥

उमोवाच— इमे मनुष्या दृश्यन्ते ऊहापोहविशारदाः ।
ज्ञानविज्ञानसंपन्नाः प्रज्ञावन्तोऽर्थकोविदाः ॥ ४३ ॥
दुष्प्रज्ञाश्चापरे देव ज्ञानविज्ञानवर्जिताः ।
केन कर्मविशेषेण प्रज्ञावान् पुरुषो भवेत् ॥ ४४ ॥
अल्पप्रज्ञो विरूपाक्ष कथं भवति मानवः ।
एतन्मे संशयं छिन्धि सर्वधर्मविदां वर ॥ ४५ ॥
जात्यन्धाश्चापरे देव रोगार्ताश्चापरे तथा ।
नराः क्लीबाश्च दृश्यन्ते कारणं ब्रूहि तत्र वै ॥ ४६ ॥

महेश्वर उवाच- ब्राह्मणान्वेदविदुषः सिद्धान्धर्मविदस्तथा ।
परिपृच्छन्त्यहरहः कुशलाः कुशलं तथा ॥ ४७ ॥
वर्जयन्तोऽशुभं कर्म सेवमानाः शुभं तथा ।
लभन्ते स्वर्गतिं नित्यमिह लोके तथा सुखम् ॥ ४८ ॥

ओंकी भांति निवास किया करता है। वह मनुष्य कर्मक्षय होनेपर मनुष्य-लोकमें जन्म लेकर अल्प बाधायुक्त और निरातङ्क होकर सुखसमृद्धि भोग किया करता है, वह सुखभागी, निराबाध और सदा निरुद्वेगयुक्त होता है। हे देवि! यही साधु पुरुषोंका पथ है, इसमें कुछ भी बाधा नहीं है। (४९-४२)

उमा बोली, ये सब पूर्वपक्ष तथा सिद्धान्त विशारद, ज्ञानविज्ञानयुक्त अर्थज्ञ मनुष्य जन्मते हुए दीख पडते हैं। हे देव! दूसरे लोग दुर्बुद्धि और ज्ञान-विज्ञानसे रहित होके उत्पन्न होते हैं। हे विरूपाक्ष! किन विशेष कर्मोंसे पुरुष प्रज्ञावान् होता और किस प्रकार अल्पबुद्धि हुआ करता है? हे सर्वधर्मज्ञ-श्रेष्ठ! आप मेरा यह सन्देह दूर करिये। हे देव! मनुष्योंके बीच कोई कोई अन्धे ही उत्पन्न होते हैं, कितने ही रोगी और कितने ही क्लीब दीखते हैं; इस विषयका कारण वर्णन करिये। (४३—४६)

महादेव बोले, निपुण लोग वेद जाननेवाले धर्मज्ञ बुद्धिमान ब्राह्मणोंको प्रतिदिन कुशल पूछते और सदा शुभ सेवा करते हुए अशुभ कर्मोंको

स चेन्मानुषतां याति मेधावी तत्र जायते।
श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य कल्याणमुपजायते ॥ ४९ ॥
परदारेषु ये चापि चक्षुर्दुष्टं प्रयुञ्जते।
तेन दुष्टस्वभावेन जात्यन्धास्ते भवन्ति ह ॥ ५० ॥
मनसा तु प्रदुष्टेन नग्नां पश्यन्ति ये स्त्रियम्।
रोगार्तास्ते भवन्तीह नरा दुष्कृतकर्मिणः ॥ ५१ ॥
ये तु मूढा दुराचारा वियोनौ मैथुने रताः।
पुरुषेषु सुदुष्प्रज्ञाः क्लीबत्वमुपयान्ति ते ॥ ५२ ॥
पशूंश्च ये घातयन्ति ये चैव गुरुतल्पगाः।
प्रकीर्णमैथुना ये च क्लीबा जायन्ति ते नराः ॥ ५३ ॥
उमोवाच— सावद्यं किं तु वै कर्म निरवद्यं तथैव च।
श्रेयः कुर्वन्नवाप्नोति मानवो देवसत्तम ॥ ५४ ॥
महेश्वर उवाच—श्रेयांसं मार्गमन्विच्छन्सदा यः पृच्छति द्विजान्।
धर्मान्वेषी गुणाकाङ्क्षी स स्वर्गं समुपाश्नुते ॥ ५५ ॥
यदि मानुषतां देवि कदाचित्स निगच्छति।
मेधावी धारणायुक्तः प्रायस्तत्राभिजायते ॥ ५६ ॥

परित्याग किया करते हैं; इसीसे वे लोग इस लोकमें सुख भोगकर स्वर्ग-गति प्राप्त करते हैं। यदि वे फिर मनुष्यजन्म पाते तो बुद्धिमान् होते और उनका श्रुत प्रज्ञानुयायी और कल्याण होता है। जो महामूढ मनुष्य पराई स्त्रीकी ओर दृष्टि करते हैं, वे उस ही दुष्ट स्वभावसे जन्मान्ध होते हैं, जो लोग दुष्टचित्तसे नङ्गी स्त्रीको देखते हैं, वे पापी मनुष्य इस लोकमें रोगार्त हुआ करते हैं। जो सब दुर्बुद्धि, दुराचारी, मूढ मनुष्य विरुद्धयोनियों और पुरुषोंसे मैथुन करनेमें रत होते हैं, वे नपुंसक हुआ करते हैं। जो लोग पशुहत्या करते, जो गुरुपत्नीगमन करते और जो लोग सङ्कीर्ण मैथुन करते हैं, वे सब मनुष्य नपुंसक हुआ करते हैं। (४७-५३)

उमा बोली, हे देवसत्तम! कैसे कर्म बुरे और कौनसे उत्तम हैं? किन कर्मोंके करनेसे मनुष्योंका कल्याण होता है? (५४)

महादेव बोले, जो लोग कल्याण-युक्त पथकी खोज करते हुए उस विषयमें ब्राह्मणोंसे प्रश्न करते हैं, वे धर्मान्वेषी, गुणके अभिलाषी स्वर्ग भोग करते हैं। हे देवि! वैसे मनुष्य यदि कदाचित्

एष देवि समां धर्मो मन्तव्यो भूतिकारकः ।
नृणां हितार्थाय मया तव वै समुदाहृतः ॥ ५७ ॥

उमोवाच- अपरे स्वल्पविज्ञाना धर्मविद्वेषिणो नराः ।
ब्राह्मणान्वेदविदुषो नेच्छन्ति परिसर्पितुम् ॥ ५८ ॥
व्रतवन्तो नराः केचिच्छ्रद्धाधर्मपरायणाः ।
अव्रता भ्रष्टनियमास्तथाऽन्ये राक्षसोपमाः ॥ ५९ ॥
यज्वानश्च तथैवान्ये निर्होमाश्च तथाऽपरे ।
केन कर्मविपाकेन भवन्तीह वदस्व मे ॥ ६० ॥

महेश्वर उवाच-आगमा लोकधर्माणां मर्यादाः सर्वनिर्मिताः ।
प्रामाण्येनानुवर्तन्ते दृश्यन्ते च दृढव्रताः ॥ ६१ ॥
अधर्मं धर्ममित्याहुर्ये च मोहवशं गताः ।
अव्रता नष्टमर्यादास्ते प्रोक्ता ब्रह्मराक्षसाः ॥ ६२ ॥
ते चेत्कालकृतोद्योगात्संभवन्तीह मानुषाः ।
निर्होमा निर्वषट्कारास्ते भवन्ति नराधमाः ॥ ६३ ॥
एष देवि मया सर्वः संशयच्छेदनाय ते ।

मनुष्यत्व लाभ करें, तो वे मेधावी, धारणायुक्त और बुद्धिमान् होके उत्पन्न होते हैं । हे देवि ! इसे ही साधुओंका ऐश्वर्ययुक्त धर्म जानो; मनुष्योंके हितके निमित्त मैंने तुम्हारे समीप इस धर्मको वर्णन किया है । (५५—५७)

उमा बोली, कितने ही धर्मद्वेषी, अल्पविज्ञानयुक्त मनुष्य वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंके समीप जानेकी इच्छा नहीं करते; कोई कोई मनुष्य व्रतयुक्त और कोई श्रद्धाधर्मपरायण हैं । कोई कोई अव्रती, कोई भ्रष्ट नियमवाले और कोई राक्षसके सदृश हैं । कोई विधिपूर्वक यज्ञ करते, कितने ही होमरहित हैं; इसलिये कैसे कर्मविपाकके सहारे इस लोकमें मनुष्यगण ऐसे नैमित्तिक धर्मोंसे आक्रान्त हुआ करते हैं ? आप मेरे समीप इस विषयको वर्णन करिये । (५८—६०)

महादेव बोले, आगम शास्त्रोंमें लोगोंके कर्म और समस्त मर्यादा पहलेसे ही वर्णित हैं; दृढव्रती मनुष्य प्रमाणका अनुसरण करते हुए दीखते हैं; जो लोग मोहके वशीभूत होते हैं, वे अधर्मको ही धर्म कहते हैं, वेही अव्रती, मर्यादाभ्रष्ट और ब्रह्मराक्षस कहाते हैं, वे अधम मनुष्य समयके अनुसार इस लोकमें उत्पन्न होके होम तथा वषट्कार-

कुशलाकुशलो नृणां व्याख्यातो धर्मसागरः ॥ ६४ ॥ [६६६३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उमामहेश्वरसंवादे पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥

नारद उवाच-एवमुक्त्वा महादेवः श्रोतुकामः स्वयंप्रभुः।
अनुकूलां प्रियां भार्यां पार्श्वस्थां समभाषत ॥ १ ॥

महेश्वर उवाच-परावरज्ञे धर्मज्ञे तपोवननिवासिनि।
साध्वि सुभ्रु सुकेशान्ते हिमवत्पर्वतात्मजे ॥ २ ॥
दक्षे शमदमोपेते निर्ममे धर्मचारिणि।
पृच्छामि त्वां वरारोहे पृष्टा वद ममेप्सितम् ॥ ३ ॥
सावित्री ब्रह्मणः साध्वी कौशिकस्य शची सती।
मार्कण्डेयस्य धूमोर्णा ऋद्धिर्वैश्रवणस्य च ॥ ४ ॥
वरुणस्य तथा गौरी सूर्यस्य च सुवर्चला।
रोहिणी शशिनः साध्वी स्वाहा चैव विभावसोः ॥५॥
अदितिः कश्यपस्याथ सर्वास्ताः पतिदेवताः।
पृष्टाश्चोपासिताश्चैव तास्त्वया देवि नित्यशः ॥ ६ ॥
तेन त्वां परिपृच्छामि धर्मज्ञे धर्मवादिनि।

रहित हुआ करते हैं। हे देवि! मैंने तुम्हारा सन्देह दूर करनेके लिये मनुष्योंके हिताहितयुक्त समस्त धर्मसागर वर्णन किया। (६१—६४)

अनुशासनपर्वमें १४५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १४६ अध्याय।

नारदमुनि बोले, सर्वशक्तिमान् महादेवने इतनी कथा कहके स्त्रीधर्म सुननेकी इच्छासे पार्श्ववर्त्तिनी अनुकूल प्रियासे प्रश्न किया। (१)

महादेव बोले, हे परावरज्ञे, धर्म जाननेवाली, तपोवननिवासिनी, साध्वि, उत्तमकेशान्तवाली, हिमपर्वतात्मजा! हे दक्षे! शम-दमयुक्त, ममतारहित, धर्मचारिणी वरारोहे! मैं तुमसे प्रश्न करता हूं, तुम पूछनेपर मेरे अभिलषित विषयको वर्णन करो। ब्रह्माकी साध्वी भार्या सावित्री, इन्द्रकी पत्नी शची, मार्कण्डेयकी सती भार्या धूमोर्णा, कुबेरकी पत्नी ऋद्धि, वरुणकी भार्या गौरी, सूर्यकी स्त्री सुवर्चला, चन्द्रमाकी साध्वी पत्नी रोहिणी, अग्निकी भार्या स्वाहा और कश्यपकी पत्नी अदिति, ये सभी स्त्रियें पतिको देवता समझती थीं। हे देवि! इन पतिव्रताओंसे तुमने सदा प्रश्न किया और उनकी उपासना

स्त्रीधर्मं श्रोतुमिच्छामि त्वयोदाहृतमादितः ॥ ७ ॥
सधर्मचारिणी मे त्वं समशीला समव्रता।
समानसारवीर्या च तपस्तीव्रं कृतं च ते ॥ ८ ॥
त्वया ह्युक्तो विशेषेण गुणवान्स भविष्यति।
लोके चैव त्वया देवि प्रमाणत्वमुपैष्यति ॥ ९ ॥
स्त्रियश्चैव विशेषेण स्त्रीजनस्य गतिः परा।
गौर्यां गच्छति सुश्रोणि लोकेष्वेषा गतिः सदा॥१०॥
मम चार्धं शरीरस्य तव चार्धेन निर्मितम्।
सुरकार्यकरी च त्वं लोकसन्तानकारिणी ॥ ११ ॥
तव सर्वः सुविदितः स्त्रीधर्मः शाश्वतः शुभे।
तस्मादशेषतो ब्रूहि स्वधर्मं विस्तरेण मे ॥ १२ ॥
उमोवाच— भगवन्सर्वभूतेश भूतभव्यभवोत्तम।
त्वत्प्रभावादियं देव वाक्चैव प्रतिभाति मे ॥ १३ ॥
इमास्तु नद्यो देवेश सर्वतीर्थोदकैर्युताः।
उपस्पर्शनहेतोस्त्वामुपयान्ति समीपतः ॥ १४ ॥
एताभिः सह संमन्त्र्य प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।

की है। हे धर्मवादिनी! धर्मज्ञे! इस ही निमित्त मैं तुमसे यह विषय पूछता हूं, तुम पहल स्त्रीधर्म वर्णन करो, इसेही मैं सुननेकी इच्छा करता हूं। (२—७)

तुम मेरी सहधर्मिणी, समशीला और समव्रतधारिणी हो;तुम्हारा प्रभाव तथा बल मेरे समान है और तुमने तीव्र तपस्या की है। हे देवि! इसलिये तुम जो स्त्रीधर्म कहोगी वह विशेष रीतिसे श्रेष्ठ होगा और जगत्के बीच प्रमाणस्वरूप हुआ करेगा। स्त्रीही स्त्रियोंके लिये परमगति हैं, यह गति परंपराक्रमसे सदा भूलोकमें गमन किया करती है। हे सुश्रोणि! मेरा शरीर तुम्हारे अर्द्धशरीरसे बना है, तुम लोकविस्तारकारिणी होकर सुरकार्य सिद्ध किया करती हो। हे शुभे! सब शाश्वत स्त्रीधर्म तुम्हें भलीभांति विदित है; इसलिये उत्तम रीतिसे विस्तारपूर्वक तुम निजधर्मका वर्णन करो। (८-१२)

उमा बोली, हे सर्वभूतेश भूतभव्यभवोत्तम भगवन्! तुम्हारी कृपासे ही मेरा यह वचन प्रकाशित होगा। हे देवेश! ये सब तीर्थ तथा नदियें जलयुक्त होके भी तुम्हें स्पर्श करनेके लिये

प्रभवन्योऽनहंवादी स वै पुरुष उच्यते ॥ १५ ॥
स्त्री च भूतेश सततं स्त्रियमेवानुधावति ।
मया संमानिताश्चैव भविष्यन्ति सरिद्वराः ॥ १६ ॥
एषा सरस्वती पुण्या नदीनामुत्तमा नदी ।
प्रथमा सर्वसरितां नदी सागरगामिनी ॥ १७ ॥
विपाशा च वितस्ता च चन्द्रभागा इरावती ।
शतद्रूर्देविका सिन्धुः कौशिकी गौतमी तथा ॥ १८ ॥
तथा देवनदी चेयं सर्वतीर्थाभिसंभृता ।
गगनाद्गां गता देवी गङ्गा सर्वसरिद्वरा ॥ १९ ॥
इत्युक्त्वा देवदेवस्य पत्नी धर्मभृतां वरा ।
स्मितपूर्वमथाभाष्य सर्वास्ताः सरितस्तथा ॥ २० ॥
अपृच्छद्देवमहिषी स्त्रीधर्मं धर्मवत्सला ।
स्त्रीधर्मकुशलास्ता वै गङ्गाद्याः सरितां वराः ॥ २१ ॥
उमोवाच- अयं भगवता प्रोक्तः प्रश्नः स्त्रीधर्मसंश्रितः ।
तं तु संमन्त्र्य युष्माभिर्वक्तुमिच्छामि शंकरम् ॥ २२ ॥
न चैकसाध्यं पश्यामि विज्ञानं भुवि कस्यचित् ।
दिवि वा सागरगमास्तेन वो मानयाम्यहम् ॥ २३ ॥

तुम्हारे समीप गमन करती हैं; इसलिये मैं इनके सङ्ग विचार करके विस्तार-पूर्वक सब विषयोंको कहूंगी। हे भगवन्! जो व्यक्ति अनहंवादी है, वही पुरुष कहाता है। (१३—१५)

हे भूतेश! स्त्रियें सदा स्त्रियोंकाही अनुधावन किया करती हैं। ये नदियें सबके बीच श्रेष्ठ हैं, पुण्यनदी सरस्वती सब नदियोंकी अग्रगण्या समुद्रगामिनी, विपाशा, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, शतद्रू, देविका, सिन्धु, कौशिकी, गौतमी और सब तीर्थोंसे घिरी हुई सब नदियोंमें श्रेष्ठ देवनदी गङ्गादेवी जो आकाशसे पृथ्वी पर आई हैं, ये सब मुझसे सम्मानित होवें। धर्मवत्सला, देवमहिषी, धर्मचारिणी महादेवकी पत्नी उमाने इतनी कथा कहके हंसकर उन स्त्रीधर्म जाननेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा प्रभृतिसे स्त्रीधर्म विषय पूछा। (१६-२१)

उमा बोली, ये भगवान्ने स्त्रीधर्म सम्बन्धीय प्रश्न किये हैं, मैं तुम लोगोंके सङ्ग परामर्श करके शंकरके समीप वह विषय कहनेकी अभिलाषा करती हूं। हे सागरगामिनीगण! भूमण्डल अथवा

एवं सर्वाः सरिच्छ्रेष्ठाः पृष्टाः पुण्यतमाः शिवाः।
ततो देवनदी गङ्गा नियुक्ता प्रतिपूज्य च ॥ २४ ॥
बह्वीभिर्बुद्धिभिः स्फीता स्त्रीधर्मज्ञा शुचिस्मिता।
शैलराजसुतां देवीं पुण्या पापभयापहा ॥ २५ ॥
बुद्ध्या विनयसंपन्ना सर्वधर्मविशारदा।
सस्मितं बहुबुद्ध्याढ्या गङ्गा वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥

गङ्गोवाच— धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि देवि धर्मपरायणे।
या त्वं सर्वजगन्मान्या नदीं मानयसेऽनघे ॥ २७ ॥
प्रभवन्पृच्छते यो हि संमानयति वा पुनः।
नूनं जनमदुष्टात्मा पण्डिताख्यां स गच्छति ॥ २८ ॥
ज्ञानविज्ञानसंपन्नानूहापोहविशारदान्।
प्रवक्तॄन्पृच्छते योऽन्यान्स वै नापदमृच्छति ॥ २९ ॥
अन्यथा बहुबुद्ध्याढ्यो वाक्यं वदति संसदि।
अन्यथैव ह्यहंवादी दुर्बलं वदते वचः ॥ ३० ॥
दिव्यज्ञाने दिवि श्रेष्ठे दिव्यपुण्यैः सहोत्थिते।
त्वमेवार्हसि नो देवि स्त्रीधर्माननुभाषितुम् ॥ ३१ ॥

स्वर्गलोकमें कोई विज्ञान एक व्यक्ति-साध्य नहीं दीखता, इस ही निमित्त मैं तुम्हारी सम्मानना करती हूं। (२१-२३)

इसही प्रकार जब उमाने कल्याण-दायिनी सब पवित्र नदियोंसे प्रश्न किया, तब देवनदी गङ्गा प्रत्युत्तर देनेमें नियुक्त हुई। अनेक भांतिकी बुद्धिसे युक्त, स्त्रीधर्मको जाननेवाली शुचिस्मिता, पुण्यपापभयापहा, बुद्धिके सहित विनयसम्पन्न, सर्वधर्मविशारदा, बहुबुद्धिशालिनी गङ्गा शैलराजपुत्रीकी पूजा करके मुसकुराकर बोलीं। हे धर्म-परायणे देवि! हम सब कोई धन्या और अनुग्रहकी पात्री हुई हैं; क्यों कि तुम समस्त जगत्की माननीय होकर भी नदीस्वरूपिणी हमारी सम्मानना करती हो। (२४-२७)

जो लोग जिज्ञासु जनोंका सम्मान करते हैं, मेरे मतसे वे धर्मज्ञ पण्डित कहे जाने योग्य हैं, जो ज्ञानविज्ञान-युक्त,ऊहापोहविशारद प्रवक्ताओं तथा अन्यान्य पुरुषोंसे पूंछके कार्य करते हैं, वे कदापि आपद्ग्रस्त नहीं होते, अत्यन्त बुद्धिमान् मनुष्य यदि सभाके बीच वचन कहे तो वह अहंवादी होनेसे दुर्बल वाक्य कहा करता है। हे दिव्य-

ततः स्वाऽऽशंसिता देवी गङ्गया बहुभिर्गुणैः ।
प्राह सर्वमशेषेण स्त्रीधर्मं सुरसुंदरी ॥ ३२ ॥

उमोवाच— स्त्रीधर्मो मां प्रति यथा प्रतिभाति यथाविधि ।
तमहं कीर्त्तयिष्यामि तथैव प्रश्रिता भव ॥ ३३ ॥
स्त्रीधर्मः पूर्व एवायं विवाहे बन्धुभिः कृतः ।
सहधर्मचरी भर्तुर्भवत्यग्निसमीपतः ॥ ३४ ॥
सुस्वभावा सुवचना सुवृत्ता सुखदर्शना ।
अनन्यचित्ता सुमुखी भर्तुः सा धर्मचारिणी ॥ ३५ ॥
सा भवेद्धर्मपरमा सा भवेद्धर्मभागिनी ।
देववत्सततं साध्वी या भर्तारं प्रपश्यति ॥ ३६ ॥
शुश्रूषां परिचारं च देववद्या करोति च ।
नान्यभावा ह्यविमनाः सुव्रता सुखदर्शना ॥ ३७ ॥
पुत्रवक्त्रमिवाभीक्ष्णं भर्तुर्वदनमीक्षते ।
या साध्वी नियताहारा सा भवेद्धर्मचारिणी ॥ ३८ ॥
श्रुत्वा दम्पतिधर्मं वै सहधर्मं कृतं शुभम् ।
या भवेद्धर्मपरमा नारी भर्तृसमव्रता ॥ ३९ ॥
देववत्सततं साध्वी भर्तारमनुपश्यति ।

ज्ञानयुक्त, द्युलोकमें मुख्य दिव्य पुण्य-सम्पन्न देवि ! तुमही हमारे निकट स्त्रीधर्म वर्णन करने योग्य हो। अनन्तर सुरसुन्दरी पार्वती गङ्गाके द्वारा अनेक प्रकारसे प्रशंसित होकर पूरी रीतिसे स्त्रीधर्म विषयोंको कहनेके लिये उद्यत हुई। (२८-३२)

उमा बोली, विधिपूर्वक स्त्रीधर्म मुझे जिस प्रकार मालूम है, उसे कहती हूं, सावधान होके सुनो। पहले विवाहके समय बान्धवोंके द्वारा यह स्त्रीधर्म विहित हुआ है, कि स्त्रियें अग्निके समीप पतिकी सहधर्मचारिणी होती हैं। उत्तम स्वभाव तथा श्रेष्ठ वचनवाली, सुशीला, सुखदर्शना, सुंदरमुखवाली है वही धर्म-चारिणी है। जो साध्वी स्त्री पतिको देव के सदृश जानती है, वही धर्मपरायण और धर्मभागिनी होती। अनन्यचित्त, सदा सुप्रसन्न, सुखदर्शना, और देवके समान पतिकी सेवा करनेवाली सीम-न्तिनी सदा पुत्रके मुखसदृश पतिका मुख देखनेवाली और नियताचारी साध्वी स्त्री धर्मचारिणी होती हैं। सह-धर्मकृत शुभदम्पतिधर्म सुनके जो

दम्पत्योरेष वै धर्मः सहधर्मकृतः शुभः ॥ ४० ॥
शुश्रूषां परिचारं च देवतुल्यं प्रकुर्वती ।
वश्या भावेन सुमनाः सुव्रता सुखदर्शना ।
अनन्यचित्ता सुमुखी भर्तुः सा धर्मचारिणी ॥ ४१ ॥
परुषाण्यपि चोक्ता या दृष्टा दुष्टेन चक्षुषा ।
सुप्रसन्नमुखी भर्तुर्या नारी सा पतिव्रता ॥ ४२ ॥
न चन्द्रसूर्यौ न तरुं पुंनाम्नो या निरीक्षते ।
भर्तृवर्जं वरारोहा सा भवेद्धर्मचारिणी ॥ ४३ ॥
दरिद्रं व्याधितं दीनमध्वना परिकर्शितम् ।
पतिं पुत्रमिवोपास्ते सा नारी धर्मभागिनी ॥ ४४ ॥
या नारी प्रयता दक्षा या नारी पुत्रिणी भवेत् ।
पतिप्रिया पतिप्राणा सा नारी धर्मभागिनी ॥ ४५ ॥
शुश्रूषां परिचर्यां च करोत्यविमनाः सदा ।
सुप्रतीता विनीता च सा नारी धर्मभागिनी ॥ ४६ ॥
न कामेषु न भोगेषु नैश्वर्ये न सुखे तथा ।

नारी धर्मपरायण होती है और पतिके सदृश व्रताचरण करती है, वह पतिव्रता पतिको सदा देवतुल्य देखा करती है। जो देवतासदृश पतिकी सेवा टहल करती है, पतिके वशमें होकर सब भाँति अन्तःकरणसे प्रसन्नचित्त, उत्तम-व्रतवाली और सुखदर्शना होती है; तथा जो नारी अनन्यचित्तवाली तथा प्रसन्नमुखी है, वही धर्मचारिणी हुआ करती है। (३३-४१)

पतिके निष्ठुर वचन कहने और क्रुद्ध नेत्रसे देखनेपर भी जो नारी स्वामीके संमुख प्रसन्नमुख होके स्थित रहती है, वही पतिव्रता है। जो स्त्री पतिके सिवा चन्द्र, सूर्य तथा पुरुष नामधारी वृक्षोंकी ओर भी नहीं देखती, वह पतिव्रता वरारोहा स्त्री धर्मचारिणी होती है। जो स्त्री दरिद्र, रोगी, पथसे थके हुए पतिकी पुत्रकी भाँति सेवा करती है, वह धर्मचा-रिणी होती है। जो नारी सावधान और गृहकार्योंमें दक्ष हो, जो पुत्रवती हो, पतिव्रता तथा पतिप्राणा हो, वही धर्म-चारिणी है। (४२-४५)

जो नारी प्रसन्न, विनयवती और अनन्यमना होकर सदा पतिकी सेवा टहल करती है, वह धर्मभागिनी है। जो प्रतिदिन अन्न देकर कुटुम्बका प्रतिपालन करती है, जो पतिके अनु-

स्पृहा यस्या यथा पत्यौ सा नारी धर्मभागिनी ॥४७॥
कल्योत्थानरतानित्यं गृहशुश्रूषणे रता ।
सुसंमृष्टक्षया चैव गोशकृत्कृतलेपना ॥ ४८ ॥
अग्निकार्यपरा नित्यं सदा पुष्पबलिप्रदा ।
देवतातिथिभृत्यानां निर्वाप्य पतिना सह ॥ ४९ ॥
शेषान्नमुपभुञ्जाना यथान्यायं यथाविधि ।
तुष्टपुष्टजना नित्यं नारी धर्मेण युज्यते ॥ ५० ॥
श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ जोषयन्ती गुणान्विता ।
मातापितृपरा नित्यं या नारी सा तपोधना ॥ ५१ ॥
ब्राह्मणान्दुर्बलानाथान्दीनान्धकृपणांस्तथा ।
बिभर्त्यन्नेन या नारी सा पतिव्रतभागिनी ॥ ५२ ॥
व्रतं चरति या नित्यं दुश्चरं लघुसत्त्वया ।
पतिचित्ता पतिहिता सा पतिव्रतभागिनी ॥ ५३ ॥
पुण्यमेतत्तपश्चैतत्स्वर्गश्चैष सनातनः ।
या नारी भर्तृपरमा भवेद्भर्तृव्रता सती ॥ ५४ ॥

रागके अनुसार कामभोग, ऐश्वर्य और सुखकी अभिलाषा करती है, वह नारी धर्मभागिनी होती है। भोरके समय उठनेका जिसे अनुराग है, गृहके कार्यको करनेमें जिसका मन लगता है, जो गृहको उत्तम रीतिसे धोती और गोमयसे लीपती है, जो सदा अग्निकार्योंमें तत्पर रहती, सदा पुष्प बलि प्रदान करती, पतिके सहित देवताओं, अतिथियों और सेवकोंको यथा रीतिसे दान करके विधिपूर्वक शेषान्न भोजन करती है, जिसके परिजन सदा सन्तुष्ट तथा प्रसन्न रहते हैं, वह नारी धर्मभागिनी होती है। (४६-५०)

जो गुणवती सती सास ससुरकी चरणवन्दना करती और मातापिताके विषयमें भक्ति किया करती है, वही तपस्विनी है। जो नारी ब्राह्मण, निर्बल, अनाथ, दीन, अन्धे और कृपापात्रोंको अन्न देकर प्रतिपालन करती है, वह पतिव्रतभागिनी होती है, जो अल्पप्राण होके भी सदा दुश्चर व्रतोंको करती है, तथा जो पतिमें चित्त लगाती वा पतिकी हितकारिणी है, वही पतिव्रतभागिनी होती है। जो नारी पतिको परम श्रेष्ठ जानती है, जो सती पतिव्रता होती है, उसके लिये पतिकी सेवा ही पुण्य है, पतिसेवा ही तपस्या और वही सनातन

पतिर्हि देवो नारीणां पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः ।
पत्या समा गतिर्नास्ति दैवतं वा यथा पतिः ॥ ५५ ॥
पतिप्रसादः स्वर्गो वा तुल्यो नार्या न वा भवेत् ।
अहं स्वर्गं नहीच्छेयं त्वय्यप्रीते महेश्वरे ॥ ५६ ॥
यद्यकार्यमधर्मं वा यदि वा प्राणनाशकम् ।
पतिर्ब्रूयाद्दरिद्रो वा व्याधितो वा कथंचन ॥ ५७ ॥
आपन्नो रिपुसंस्थो वा ब्रह्मशापार्दितोऽपि वा ।
आपद्धर्माननुप्रेक्ष्य तत्कार्यमविशङ्कया ॥ ५८ ॥
एष देव मया प्रोक्तः स्त्रीधर्मो वचनात्तव ।
या त्वेवंभाविनी नारी सा पतिव्रतभागिनी ॥ ५९ ॥
भीष्म उवाच– इत्युक्तः स तु देवेशः प्रतिपूज्य गिरेः सुताम् ।
लोकान्विसर्जयामास सर्वैरनुचरैर्वृतान् ॥ ६० ॥
ततो ययुर्भूतगणाः सरितश्च यथागतम् ।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव प्रणम्य शिरसा भवम् ॥ ६१ ॥ [६७२४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे उमामहेश्वरसंवादे स्त्रीधर्मकथने षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४६॥

स्वर्ग है। (५१-५४)

स्त्रियोंके लिये पति ही देवता है, पति ही बन्धु, पति ही गति है, पतिके समान गति नहीं है; जैसा पति है, देवता भी वैसे नहीं हैं, स्त्रियोंके विषयमें पतिकी प्रसन्नता और स्वर्गवास समान नहीं होसकता। हे देव महेश्वर! तुम्हारे अप्रसन्न रहते मैं स्वर्गवासकी अभिलाषा नहीं करती। पति यदि दरिद्र, किसी प्रकारकी व्याधिसे ग्रस्त, दुःखी, शत्रुके वशीभूत अथवा ब्रह्मशापयुक्त होके भी किसी अकार्य, अधर्म अथवा प्राणनाश करनेकी भी आज्ञा करे, उसे भी आपद्धर्म अवलोकन करके निःशङ्क भावसे करना योग्य है। हे देव! यह मैंने तुम्हारे कथाक्रमसे स्त्रीधर्म कहा है, जो नारी इन आचरणोंसे युक्त हो, वह पतिव्रता है। (५५-५९)

भीष्म बोले, देवेश्वर महादेवने ऐसी कथा सुनके पार्वतीका समादर करते हुए अनुचरोंके सहित सब लोगोंको विदा किया। अनन्तर भूतगणों, नदियों, गन्धर्वों और अप्सराओंने सिर झुकाके महादेवको प्रणाम करके अपने अपने स्थानोंको गमन किया। (६०-६१)

अनुशासनपर्वमें १४६ अध्याय समाप्त।

ऋषय ऊचुः— पिनाकिन्भगनेत्रघ्न सर्वलोकनमस्कृत ।
माहात्म्यं वासुदेवस्य श्रोतुमिच्छामि शङ्कर ॥ १ ॥
ईश्वर उवाच— पितामहादपि वरः शाश्वतः पुरुषो हरिः ।
कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रे सूर्य इवोदितः ॥ २ ॥
दशबाहुर्महातेजा देवतारिनिषूदनः ।
श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदैवतपूजितः ॥ ३ ॥
ब्रह्मा तस्योदरभवस्तस्याहं च शिरोभवः ।
शिरोरुहेभ्यो ज्योतींषि रोमभ्यश्च सुराऽसुराः ॥ ४ ॥
ऋषयो देहसंभूतास्तस्य लोकाश्च शाश्वताः ।
पितामहगृहं साक्षात्सर्वदेवगृहं च सः ॥ ५ ॥
सोऽस्याः पृथिव्याः कृत्स्नायाः स्रष्टा त्रिभुवनेश्वरः ।
संहर्ता चैव भूतानां स्थावरस्य चरस्य च ॥ ६ ॥
स हि देववरः साक्षाद्देवनाथः परंतपः ।
सर्वज्ञः सर्वसंश्लिष्टः सर्वगः सर्वतोमुखः ॥ ७ ॥
परमात्मा हृषीकेशः सर्वव्यापी महेश्वरः ।
न तस्मात्परमं भूतं त्रिषु लोकेषु किंचन ॥ ८ ॥

अनुशासनपर्वमें १४७ अध्याय।

ऋषिवृन्द बोले, हे पिनाकधारी भगनेत्रहारी सर्वलोकनमस्कृत शङ्कर! हम लोग आपके समीप वासुदेवका माहात्म्य सुननेकी इच्छा करते हैं॥(१)

महेश्वर बोले, शाश्वत पुरुष हरि पितामह ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ और कृष्णवर्ण होनेपर भी अभ्रशून्य अम्बरमें उदित सूर्यकी भांति सुवर्णसदृश प्रभाशाली हैं, वह महातेजस्वी दशबाहुयुक्त और देवताओंके अरिनिषूदन हैं, श्रीवत्स चिह्नधारी हृषीकेश सब देवताओंके पूज्य हैं। ब्रह्मा उनके उदरसे उत्पन्न हुए और मैं उनके शिरसे प्रकट हुआ हूं; उनके केशोंसे अग्नि और रोमावलीसे समस्त सुरासुर उत्पन्न हुए, ऋषिगण और समस्त शाश्वत लोकोंकी उनके देहसे उत्पत्ति हुई है। वह त्रिभुवनेश्वर स्वयं साक्षात् पितामहके गृह, सर्वदेवगृह तथा इस समस्त पृथिवीकी सृष्टि-कर्त्ता हैं और वही स्थावर-जङ्गम समस्त भूतोंके संहर्त्ता हैं। (२—६)

वही देवश्रेष्ठ स्वयं देवनाथ तथा परन्तप हैं; वह सर्वज्ञ, सर्वसंश्लिष्ट, सर्वग और सर्वतोमुख हैं। वह परमात्मा हृषीकेश सर्वव्यापी महेश्वर हैं, त्रिभुवन

सनातनो वै मधुहा गोविन्द इति विश्रुतः।
स सर्वान्पार्थिवान्संख्ये घातयिष्यति मानदः ॥९॥
सुरकार्यार्थमुत्पन्नो मानुषं वपुरास्थितः।
न हि देवगणाः शक्तास्त्रिविक्रमविनाकृताः ॥ १० ॥
भुवने देवकार्याणि कर्तुं नायकवर्जिताः।
नायकः सर्वभूतानां सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ११ ॥
एतस्य देवनाथस्य देवकार्यपरस्य च।
ब्रह्मभूतस्य सततं ब्रह्मर्षिशरणस्य च ॥ १२ ॥
ब्रह्मा वसति गर्भस्थः शरीरे सुखसंस्थितः।
शर्वः सुखं संश्रितश्च शरीरे सुखसंस्थितः ॥ १३ ॥
सर्वाः सुखं संश्रिताश्च शरीरे तस्य देवताः।
स देवः पुण्डरीकाक्षः श्रीगर्भः श्रीसहोषितः ॥ १४ ॥
शार्ङ्गचक्रायुधः खड्गी सर्वनागरिपुध्वजः।
उत्तमेन स शीलेन दमेन च शमेन च ॥ १५ ॥
पराक्रमेण वीर्येण वपुषा दर्शनेन च।
आरोहेण प्रमाणेन धैर्येणार्जवसंपदा ॥ १६ ॥
आनृशंस्येन रूपेण बलेन च समन्वितः।

में उससे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, वह सनातन भगवान् मधुसूदन नामसे प्रसिद्ध है। वह मानद मनुष्यशरीर धारण करके देवकार्यके निमित्त युद्धमें सब राजाओंको मारेगा। देवगण त्रिविक्रमके विना किसी कार्यको करनेमें समर्थ नहीं हैं, देववृन्द नायकहीन होके सुरकार्योंको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होते, वह सब भूतोंका नायक है और वही सब भूतोंका नमस्कृत है। (७—११)

उस ही देवकार्यरत देवनाथ ब्रह्मर्षि-शरण ब्रह्मस्वरूपी शरीरमें सुखसंस्थित और गर्भस्थ होकर ब्रह्मा निवास किया करते हैं, शर्व सुखसंस्थित होते उसके शरीरमें सुखसे संश्रित हुए हैं। देवता लोग सुखपूर्वक उसके शरीरमें निवास करते हैं। वह देव श्रीगर्भ पुण्डरीकाक्ष लक्ष्मीके सहित निवास किया करता है; शार्ङ्ग धनुष और चक्र उसके आयुध हैं और वह खड्गी तथा गरुडध्वज है। वह उत्तम शील, पवित्रता, दम, शम, पराक्रम, वीर्य, वपु, दर्शन, आरोह, प्रमाण, धैर्य, आर्जव, सम्पत्ति, अनृशं-

अस्त्रैः संमुदितः सर्वैर्दिव्यैरद्भुतदर्शनैः ॥ १७ ॥
योगमायः सहस्राक्षो निरपायो महामनाः ।
वीरो मित्रजनश्लाघी ज्ञातिबन्धुजनप्रियः ॥ १८ ॥
क्षमावांश्चानहंवादी ब्रह्मण्यो ब्रह्मनायकः ।
भयहर्ता भयार्तानां मित्राणां नन्दिवर्धनः ॥ १९ ॥
शरण्यः सर्वभूतानां दीनानां पालने रतः ।
श्रुतवानर्थसंपन्नः सर्वभूतनमस्कृतः ॥ २० ॥
समाश्रितानां वरदः शत्रूणामपि धर्मवित् ।
नीतिज्ञो नीतिसंपन्नो ब्रह्मवादी जितेन्द्रियः ॥ २१ ॥
भवार्थमिह देवानां बुद्ध्या परमया युतः ।
प्राजापत्ये शुभे मार्गे मानवे धर्मसंस्कृते ॥ २२ ॥
समुत्पत्स्यति गोविन्दो मनोर्वंशे महात्मनः ।
अङ्गो नाम मनोः पुत्रो अन्तर्धामा ततः परः ॥ २३ ॥
अन्तर्धाम्नो हविर्धामा प्रजापतिरनिन्दितः ।
प्राचीनबर्हिर्भविता हविर्धाम्नः सुतो महान् ॥ २४ ॥
तस्य प्रचेतःप्रमुखा भविष्यन्ति दशात्मजाः ।

सता, रूप और बलसे युक्त है। अद्भुत-दर्शन, दिव्यास्त्रधारी, योगमायायुक्त, सहस्राक्ष, निरवद्य और महामना है। (१२-१८)

वह वीर, मित्रकी श्लाघा करनेवाला, स्वजनों तथा बन्धुजनोंको प्रिय, क्षमावान्, अनहंवादी, ब्रह्मण्य और ब्रह्मनायक है। वह भयार्त्तोंका भयहर्त्ता तथा मित्रोंके आनन्दको बढानेवाला है; वह सब जीवोंका शरण्य तथा सबको पालन करनेमें अनुरक्त है। वह श्रुतवान्, अर्थसम्पन्न और सब भूतोंका नमस्कृत है, वह समाश्रितोंका बहुत ही उपकारक और शत्रुओंके भी धर्मको जाननेवाला है। वह नीतिज्ञ, नीतिसम्पन्न, ब्रह्मवादी, और जितेन्द्रिय है; इस लोकमें देवताओंकी उत्पत्तिके निमित्त परम बुद्धियुक्त, धर्मसंहित, प्रजापतिसम्बन्धीय, शुभ, मनुष्यपथ तथा महानुभाव मनुके वंशमें उस ही गोविन्दकी उत्पत्ति होगी। (१८-२३)

मनुका पुत्र अंग, उसका पुत्र अन्तर्द्धामा और उसका पुत्र हविर्धामा अनिन्दित प्रजापति रूपसे वर्णित होगा, हविर्धामाका महान् पुत्र प्राचीनबर्हि नामसे विख्यात होगा, उससे प्रचेता-

प्राचेतसस्तथा दक्षो भवितेह प्रजापतिः ॥ २५ ॥
दाक्षायण्यास्तथाऽऽदित्यो मनुरादित्यतस्तथा ।
मनोश्च वंशज इला सुद्युम्नश्च भविष्यति ॥ २६ ॥
बुधात्पुरूरवाश्चापि तस्मादायुर्भविष्यति ।
नहुषो भविता तस्माद्ययातिस्तस्य चात्मजः ॥ २७ ॥
यदुस्तस्मान्महासत्त्वः क्रोष्टा तस्माद्भविष्यति ।
क्रोष्टुश्चैव महापुत्रो वृजिनीवान्भविष्यति ॥ २८ ॥
वृजिनीवतश्च भविता उषङ्गुरपराजितः ।
उषङ्गोर्भविता पुत्रः शूरश्चित्ररथस्तथा ॥ २९ ॥
तस्य त्ववरजः पुत्रः शूरो नाम भविष्यति ।
तेषां विख्यातवीर्याणां चरित्रगुणशालिनाम् ॥ ३० ॥
यज्वनां सुविशुद्धानां वंशे ब्राह्मणसंमते ।
स शूरः क्षत्रियश्रेष्ठो महावीर्यो महायशाः ।
स्ववंशविस्तरकरं जनयिष्यति मानदः ॥ ३१ ॥
वसुदेव इति ख्यातं पुत्रमानकदुन्दुभिम् ।
तस्य पुत्रश्चतुर्बाहुर्वासुदेवो भविष्यति ॥ ३२ ॥
दाता ब्राह्मणसत्कर्ता ब्रह्मभूतो द्विजप्रियः ।

प्रभृति दस पुत्र होंगे, प्रचेतासे इस लोकमें दक्ष प्रजापतिकी उत्पत्ति होगी, दक्षकी कन्या अदितिसे आदित्यकी उत्पत्ति होगी, आदित्यसे मनुका जन्म होगा, मनुके वंशमें इला और सुद्युम्न जन्मेंगे, बुधके द्वारा इलाके गर्भसे पुरूरवाका जन्म होगा, उससे आयुकी उत्पत्ति होगी, आयुसे नहुषका जन्म होगा; नहुषका पुत्र ययाति, ययातिसे महाबलवान् यदु नाम पुत्र होगा, उससे क्रोष्टा जन्मेगा, क्रोष्टाके महाबली पुत्रका वृजिनीवान् नाम होगा, वृजिनीवान्से अपराजित उषंगु नाम पुत्र जन्मेगा, उषंगुका पुत्र चित्ररथ और चित्ररथका कनिष्ठ पुत्र शूर नामसे विख्यात होगा। (२३-३०)

विख्यातवीर्य, चरित्रगुणसम्पन्न, विधिपूर्वक यज्ञ करनेवाले, अत्यन्त पवित्र, ब्राह्मणसम्मत, यदुवंशमें क्षत्रिय-श्रेष्ठ, महावीर्य, महायशस्वी, मानदाता, शूर, निज वंशकी वृद्धि करनेवाले वसुदेव नामसे विख्यात आनकदुन्दुभी नामक पुत्र उत्पन्न करेगा। चतुर्बाहु वासुदेव उसके पुत्र होंगे, वह दाता, ब्राह्मणोंका

राज्ञो मागधसंरुद्धान्मोक्षयिष्यति यादवः ॥ ३३ ॥
जरासन्धं तु राजानं निर्जित्य गिरिगह्वरे ।
सर्वपार्थिवरत्नाढ्यो भविष्यति स वीर्यवान् ॥ ३४ ॥
पृथिव्यामप्रतिहतो वीर्येण च भविष्यति ।
विक्रमेण च संपन्नः सर्वपार्थिवपार्थिवः ॥ ३५ ॥
शूरसेनेषु भूत्वा स द्वारकायां वसन्प्रभुः ।
पालयिष्यति गां देवीं विजित्य नयवित्सदा ॥ ३६ ॥
तं भवन्तः समासाद्य वाङ्माल्यैरर्हणैर्वरैः ।
अर्चयन्तु यथान्यायं ब्रह्माणमिव शाश्वतम् ॥ ३७ ॥
यो हि मां द्रष्टुमिच्छेत ब्रह्माणं च पितामहम् ।
द्रष्टव्यस्तेन भगवान्वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ३८ ॥
दृष्टे तस्मिन्नहं दृष्टो न मेऽत्रास्ति विचारणा ।
पितामहो वा देवेश इति वित्त तपोधनाः ॥ ३९ ॥
स यस्य पुण्डरीकाक्षः प्रीतियुक्तो भविष्यति ।
तस्य देवगणः प्रीतो ब्रह्मपूर्वो भविष्यति ॥ ४० ॥
यश्च तं मानवे लोके संश्रयिष्यति केशवम् ।

सत्कारकर्ता ब्रह्मस्वरूप और ब्राह्मणप्रिय होकर मगधराज जरासन्धके द्वारा कैद हुए राजाओंको छुड़ावेंगे। (३०-३३)

वह वीर्यवान् वासुदेव गिरिगह्वरके बीच राजा जरासन्धको पराजित करके सब राजाओंकी रत्नराशिके सहारे समृद्धिमान् होंगे और वह निज पराक्रमसे पृथ्वीके बीच अप्रतिहत तथा विक्रमयुक्त होकर सब राजाओंके ऊपर आधिपत्य करेंगे। नीतिज्ञ भगवान् शूरसेन देशमें पूर्णरीतिसे वृद्धियुक्त होकर द्वारकामें निवास करके जयलब्ध वसुन्धरा देवीका सदा पालन करेंगे। आप लोग जिस प्रकार उत्तम अर्हणद्रव्य और वचनरूपी मालासे शाश्वत ब्रह्मकी पूजा करते हैं, वैसे ही उनके निकट जाकर विधिपूर्वक पूजा करिये। (३४-३७)

जो लोग मेरे अथवा पितामह ब्रह्माके दर्शनकी अभिलाष करते हैं, उन्हें प्रतापवान्, भगवान् वासुदेवका दर्शन करना उचित है; उनका दर्शन होनेसे ही मेरा और देवेश पितामहका दर्शन हुआ करता है, इस विषयमें मैं कुछ भी विचार नहीं करता। हे तपस्विवृन्द! तुम लोग यह जान रखो, कि वह पुण्डरीकाक्ष जिसपर प्रसन्न होंगे,

तस्य कीर्तिर्जयश्चैव स्वर्गश्चैव भविष्यति ॥ ४१ ॥
धर्माणां देशिकः साक्षात्स भविष्यति धर्मभाक् ।
धर्मवद्भिः स देवेशो नमस्कार्यः सदोद्यतैः ॥ ४२ ॥
धर्म एव परो हि स्यात्तस्मिन्नभ्यर्चिते विभौ ।
स हि देवो महातेजाः प्रजाहितचिकीर्षया ॥ ४३ ॥
धर्मार्थं पुरुषव्याघ्र ऋषिकोटीः ससर्ज ह ।
ताः सृष्टास्तेन विभुना पर्वते गन्धमादने ॥ ४४ ॥
सनत्कुमारप्रमुखास्तिष्ठन्ति तपसाऽन्विताः ।
तस्मात्स वाग्मी धर्मज्ञो नमस्यो द्विजपुङ्गवाः ॥ ४५ ॥
दिवि श्रेष्ठो हि भगवान्हरिर्नारायणः प्रभुः ।
वन्दितो हि स वन्देत मानितो मानयीत च ॥
अर्हितश्चार्हयेन्नित्यं पूजितः प्रतिपूजयेत् ॥ ४६ ॥
दृष्टः पश्येदहरहः संश्रितः प्रतिसंश्रयेत् ।
अर्चितश्चार्चयेन्नित्यं स देवो द्विजसत्तमाः ॥ ४७ ॥
एतत्तस्यानवद्यस्य विष्णोर्वै परमं व्रतम् ।

ब्रह्मादि देवगण भी उसके विषयमें प्रसन्न रहेंगे। मनुष्यलोकमें जो मनुष्य उस केशवका आसरा करेगा, उसका जय तथा कीर्त्ति होगी और उसको स्वर्ग मिलेगा। (३८—४१)

वह धर्मभागी मनुष्य साक्षात् सब धर्मोंका उपदेशक होगा। धर्म जाननेवाले पुरुष सदा उद्योगी होकर उस देवेश्वरको नमस्कार करें, उस सर्वशक्तिमान् वासुदेवके पूजित होनेसे परमधर्म होता है। उस महातेजस्वी देवेशने प्रजाकी हितकामनासे धर्मके निमित्त कोटि ऋषियोंकी सृष्टि की है। वे सनत्कुमारप्रभृति ऋषिगण उसके द्वारा उत्पन्न होके गन्धमादन पर्वतपर तपोयुक्त होकर निवास करते हैं। हे द्विजश्रेष्ठगण! इस ही निमित्त वह वाग्मी धर्मज्ञ वासुदेव सबके ही नमस्य हैं। (४२—४५)

स्वर्गलोकके बीच सर्वशक्तिमान् भगवान् नारायण ही श्रेष्ठ हैं, वह वन्दित होनेपर वन्दना, पूजित होनेसे पूजा, सम्मानित होनेसे सम्मान और सदा अर्चित होनेपर प्रतिपूजा किया करते हैं। वह दृष्ट होनेसे दिनरात देखते और संश्रित होनेसे आश्रय किया करते हैं। हे द्विजसत्तमगण! वह देव अत्यन्त पूजित होनेपर सदा पूजा करता और

आदिदेवस्य महतः सज्जनाचरितं सदा ॥ ४८ ॥
भुवनेऽभ्यर्चितो नित्यं देवैरपि सनातनः ।
अभयेनानुरूपेण युज्यन्ते तमनुव्रताः ॥ ४९ ॥
कर्मणा मनसा वाचा स नमस्यो द्विजैः सदा ।
यत्नवद्भिरुपस्थाय द्रष्टव्यो देवकीसुतः ॥ ५० ॥
एष वोऽभिहितो मार्गो मया वै मुनिसत्तमाः ।
तं दृष्ट्वा सर्वशो देवं दृष्टाः स्युः सुरसत्तमाः ॥ ५१ ॥
महावराहं तं देवं सर्वलोकपितामहम् ।
अहं चैव नमस्यामि नित्यमेव जगत्पतिम् ॥ ५२ ॥
तत्र च त्रितयं दृष्टं भविष्यति न संशयः ।
समस्ता हि वयं देवास्तस्य देहे वसामहे ॥ ५३ ॥
तस्य चैवाग्रजो भ्राता सिताद्रिनिचयप्रभः ।
हली बल इति ख्यातो भविष्यति धराधरः ॥ ५४ ॥
त्रिशिरास्तस्य दिव्यश्च शातकुम्भमयो द्रुमः ।
ध्वजस्तृणेन्द्रो देवस्य भविष्यति रथाश्रितः ॥ ५५ ॥
शिरो नागैर्महाभोगैः परिकीर्णं महात्मभिः ।

उस अनिन्दनीय विष्णुका यही परमव्रत है, महानुभाव आदिदेवके चरितोंका सज्जन लोग सदा आचरण किया करते हैं, वही सनातन देवलोकके बीच सदा देवताओंके द्वारा पूजित होता है। जो लोग उसपर अनुरक्त रहते, वे अनुरूप अभययुक्त हुआ करते हैं; इसलिये द्विजगण सदा उसे वचन, मन और कर्मसे नमस्कार करें। यत्नवान् मनुष्य उपासनाके सहारे देवकीनन्दनका दर्शन करें। (४६—५०)

हे मुनिसत्तमगण! यह मेरे द्वारा आप लोगोंका पथ वर्णित हुआ। उसका सब भांतिसे दर्शन करनेपर सब देवताओंका दर्शन होता है। उस महावराहरूपी, सर्वलोकपितामह, जगत्पति देवेश्वरको मैं भी सदा नमस्कार किया करता हूं। उसमें तुम लोगोंको निःसन्देह त्रिवर्ग दीखेगा, हम सब देवताओंके सहित उन्हींके शरीरमें निवास करते हैं, उनके जेठे भाई श्वेतशैलसदृश प्रभायुक्त, हली, धराधारी बलदेव नामसे विख्यात होंगे। उस देवकी रथपर स्वर्णमय, तृणराज, त्रिशिरा तालवृक्ष चिन्हयुक्त रथकी ध्वजा होगी, उन सर्वलोकेश्वर महाबाहुका सिर महाभोग-

भविष्यति महाबाहोः सर्वलोकेश्वरस्य च ॥ ५६ ॥
चिन्तितानि समेष्यन्ति शस्त्राण्यस्त्राणि चैव ह ।
अनन्तश्च स एवोक्तो भगवान्हरिरव्ययः ॥ ५७ ॥
समादिष्टश्च विबुधैर्दर्शय त्वमिति प्रभो ।
सुपर्णो यस्य वीर्येण कश्यपस्यात्मजो बली ।
अन्तं नैवाशकद् द्रष्टुं देवस्य परमात्मनः ॥ ५८ ॥
स च शेषो विचरते परया वै मुदा युतः ।
अन्तर्वसति भोगेन परिरभ्य वसुन्धराम् ॥ ५९ ॥
य एव विष्णुः सोऽनन्तो भगवान्वसुधाधरः ।
यो रामः स हृषीकेशो योऽच्युतः स धराधरः ॥६०॥
तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ दिव्यपराक्रमौ ।
द्रष्टव्यौ माननीयौ च चक्रलाङ्गलधारिणौ ॥ ६१ ॥
एष वोऽनुग्रहः प्रोक्तो मया पुण्यस्तपोधनाः ।
यद्भवन्तो यदुश्रेष्ठं पूजयेयुः प्रयत्नतः ॥ ६२ ॥ [६७८६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पुरुषमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

नारद उवाच— अथ व्योम्नि महाञ्छब्दः सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ।

युक्त महानुभाव नागगणसे परिवेष्टित रहेगा । सब अस्त्र शस्त्र ध्यान करते ही उनके निकट उपस्थित होंगे, वह भगवान् अव्यय हरि ही अनन्त नामसे वर्णित होते हैं, जिनके प्रतापसे कश्यपके पुत्र बलवान् सुपर्ण (गरुड) देवताओंकी आज्ञासे उन्हें प्रदर्शन करते हुए उस देव परमात्माका अन्त देखनेमें समर्थ न हुए । (५१-५८)

वह भोगके द्वारा वसुन्धराको आलिङ्गन करके उसके अन्दर निवास करता है, वह शेष परम हर्षयुक्त होके विचरता है, वही विष्णु, वही अनन्त और वही भगवान् धरणीधर हैं । जो राम वही हृषीकेश, जो अच्युत वही बलदेव हैं । वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ, दिव्य तथा दिव्य-पराक्रमशाली हैं, वे चक्रधारी और हल-धारी दोनों देव दर्शनीय तथा माननीय हैं । हे तपोधनगण ! आप लोग यदुश्रेष्ठ राम और कृष्णकी यत्नपूर्वक पूजा करिये, इस ही निमित्त आप लोगोंके लिये अनुग्रहस्वरूप यह पवित्र विषय वर्णन किया है । (५९—६२)

अनुशासनपर्वमें १४७ अध्याय समाप्त ।

मेघैश्च गगनं नीलं संरुद्धमभवद् घनैः ॥ १ ॥
प्रावृषीव च पर्जन्यो ववृषे निर्मलं पयः।
तमश्चैवाभवद् घोरं दिशश्च न चकाशिरे ॥ २ ॥
ततो देवगिरौ तस्मिन् रम्ये पुण्ये सनातने।
न शर्वं भूतसंघं वा ददृशुर्मुनयस्तदा ॥ ३ ॥
व्यभ्रं च गगनं सद्यः क्षणेन समपद्यत।
तीर्थयात्रां ततो विप्रा जग्मुश्चान्ये यथागतम् ॥ ४ ॥
तदद्भुतमचिन्त्यं च दृष्ट्वा ते विस्मिताऽभवन्।
शङ्करस्योमया सार्धं संवादं त्वत्कथाश्रयम् ॥ ५ ॥
स भवान्पुरुषव्याघ्र ब्रह्मभूतः सनातनः।
यदर्थमनुशिष्टाः स्मो गिरिपृष्ठे महात्मना ॥ ६ ॥
द्वितीयं त्वद्भुतमिदं त्वत्तेजःकृतमद्य वै।
दृष्ट्वा च विस्मिताः कृष्ण सा च नः स्मृतिरागता॥७॥
एतत्ते देवदेवस्य माहात्म्यं कथितं प्रभो।
कपर्दिनो गिरीशस्य महाबाहो जनार्दन ॥ ८ ॥

अनुशासनपर्वमें १४८ अध्याय।

नारद मुनि बोले, अनन्तर आकाशमें बिजलीके सहित,बादलयुक्त महान् शब्द प्रकट हुआ और नीलवर्णवाली निबिड घनघटासे आकाशमण्डल परिपूरित होगया। प्रावृट्कालकी भांति पर्जन्यदेव जलकी वर्षा करने लगे, घोर अन्धकार प्रकट हुआ, सब दिशा प्रकाशसे रहित होगई। अनन्तर उस रमणीय, पवित्र, सनातन सुरशैलपर मुनिगण महेश्वर वा भूतगणका दर्शन करनेमें समर्थ न हुए। क्षणभरके बीच आकाशमण्डल निर्मल हुआ, तब ब्राह्मणोंने तीर्थयात्राके निमित्त गमन किया, सब कोई अपने अपने अभिलषित स्थान पर चले गये। (१—४)

उमाके सहित महादेवके संवादके सम्बन्धमें यह अद्भुत और अचिन्तनीय विषय देखकर वे सब मुनिवृन्द विस्मित होकर बोले। हे पुरुषश्रेष्ठ! आप सनातन ब्रह्मस्वरूप हैं, पर्वतके ऊपर जिस भांति महादेवके द्वारा हम लोग उपदिष्ट हुए थे, उस ही भांति यह दूसरा अद्भुत व्यापार आपके तेजसे प्रकट हुआ। हे कृष्ण! इस अद्भुत कर्मको देखकर हम लोग विस्मित हुए और पहला विषय हमें स्मरण हुआ है। हे विभु महाबाहो जनार्दन! यह देवोंके

इत्युक्तः स तदा कृष्णस्तपोवननिवासिभिः।
मानयामास तान्सर्वानृषीन्देवकिनन्दनः ॥ ९ ॥
अथर्षयः संप्रहृष्टाः पुनस्ते कृष्णमब्रुवन्।
पुनः पुनर्दर्शयास्मान्सदैव मधुसूदन ॥ १० ॥
न हि नः सा रतिः स्वर्गे या च त्वद्दर्शने विभो।
तद्दृतं च महाबाहो यदाह भगवान्भवः ॥ ११ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं रहस्यमरिकर्शन।
त्वमेव ह्यर्थतत्त्वज्ञः पृष्टोऽस्मान्पृच्छसे यदा ॥ १२ ॥
तदस्माभिरिदं गुह्यं त्वत्प्रियार्थमुदाहृतम्।
न च तेऽविदितं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ १३ ॥
जन्म चैव प्रसूतिश्च यच्चान्यत्कारणं विभो।
वयं तु बहुचापल्यादशक्ता गुह्यधारणे ॥ १४ ॥
ततः स्थिते त्वयि विभो लघुत्वात्प्रलपामहे।
न हि किंचित्तदाश्चर्यं यन्न वेत्ति भवानिह ॥ १५ ॥
दिवि वा भुवि वा देव सर्वं हि विदितं तव।

देव कपर्दी गिरीशका माहात्म्य कहा गया। तपोवननिवासी मुनियोंके द्वारा देवकीनन्दन कृष्णने उस समय इतनी कथा सुनके उन सब मुनियोंका सम्मान किया। (५—९)

अनन्तर वे मुनिगण हर्षित होकर कृष्णसे बोले, हे मधुसूदन! आप सदा हम लोगोंको दर्शन दीजिये। हे विभो! आपका दर्शन करनेके लिये हमें जैसा अनुराग है, वैसी स्वर्गमें निवास करनेकी रुचि नहीं होती। हे अरिकर्षण महाबाहो! भगवान् भवने आपको जो यथार्थ कहा, यह वही सब रहस्य वर्णित हुआ। आप अर्थतत्त्वज्ञ हैं, पूछने पर हम लोगोंसे ही जिज्ञासा करते हैं, इसलिये आपकी प्रीतिके लिये यह गोपनीय विषय उदाहृत हुआ, तीनों लोकोंके बीच आपको कुछ भी अविदित नहीं है। (१०–१३)

हे विभो! उत्पत्ति तथा प्रसूति अथवा दूसरे जो कुछ कारण हैं, वे सब आपसे छिपे नहीं हैं, हम लोग बहुतसी चपलतासे गोपनीय विषयोंको धारण करनेमें असमर्थ हैं। हे प्रभु! इसलिये आपके रहते हम लोग जो विषय कहें, वह लघुताहेतुसे प्रलापमात्र है। आप जिसे न जानें, वैसा अद्भुत विषय इस लोकमें कुछ भी नहीं है। हे देव!

साधयाम वयं कृष्ण बुद्धिं पुष्टिमवाप्नुहि ॥ १६ ॥
पुत्रस्ते सदृशस्तात विशिष्टो वा भविष्यति ।
महाप्रभावसंयुक्तो दीप्तिकीर्तिकरः प्रभुः ॥ १७ ॥
भीष्म उवाच— ततः प्रणम्य देवेशं यादवं पुरुषोत्तमम् ।
प्रदक्षिणमुपावृत्त्य प्रजग्मुस्ते महर्षयः ॥ १८ ॥
सोऽयं नारायणः श्रीमान्दीप्त्या परमया युतः ।
व्रतं यथावत्तचीर्त्वा द्वारकां पुनरागमत् ॥ १९ ॥
पूर्णे च दशमे मासि पुत्रोऽस्य परमाद्भुतः ।
रुक्मिण्यां संमतो जज्ञे शूरो वंशधर प्रभो ॥ २० ॥
स कामः सर्वभूतानां सर्वभावगतो नृप ।
असुराणां सुराणां च चरत्यन्तर्गतः सदा ॥ २१ ॥
सोऽयं पुरुषशार्दूलो मेघवर्णश्चतुर्भुजः ।
संश्रितः पाण्डवान्प्रेम्णा भवन्तश्चैनमाश्रिताः ॥ २२॥
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिश्चैव स्वर्गमार्गस्तथैव च ।
यत्रैष संस्थितस्तत्र देवो विष्णुस्त्रिविक्रमः ॥ २३ ॥
सेन्द्रा देवास्त्रयस्त्रिंशदेष नात्र विचारणा ।

द्युलोक वा भूलोकमें जो कुछ आश्चर्य हैं, वे सब आपको मालूम हैं। हे कृष्ण! अब हम लोग जाते हैं, आप बुद्धि और पुष्टि लाभ करिये। हे तात! आपके सदृश अथवा तुमसे भी उत्कृष्ट, महाप्रभाव, दीप्तिमान्, कीर्तियुक्त और सर्वशक्तिमान् तुम्हारे एक पुत्र होगा। (१४—१७)

भीष्म बोले, अनन्तर उन महर्षियोंने पुरुषश्रेष्ठ, यदुवंशधर देवेशको प्रणाम और प्रदक्षिण करके प्रस्थान किया। ये वही श्रीमान् नारायण परम दीप्तिमान् होकर व्रत पूरा करके द्वारकामें आये, दसवां महीना पूरा होने पर रुक्मिणीके गर्भसे परमाश्चर्य शूरवीर सर्वसम्मत वंशधर पुत्र उत्पन्न हुआ। हे महाराज! वही काम सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित है, वह सुरासुरोंके अन्तर्गत होकर सदा विचरता है। ये वही घन-श्याम, चतुर्भुज पुरुषश्रेष्ठने प्रेमवशसे पाण्डवोंको अवलम्बन किये हैं, आप लोग भी इनका आसरा कर रहे हैं। (१८–२२)

कीर्ति, लक्ष्मी, धृति और यह स्वर्ग-मार्ग जिस स्थानमें संश्रित होता है, भगवान् त्रिविक्रम वासुदेव वहां सन्नि-

आदिदेवो महादेवः सर्वभूतप्रतिश्रयः ॥ २४ ॥
अनादिनिधनोऽव्यक्तो महात्मा मधुसूदनः ।
अयं जातो महातेजाः सुराणामर्थसिद्धये ॥ २५ ॥
सुदुस्तरार्थतत्त्वस्य वक्ता कर्ता च माधवः ।
तव पार्थ जयः कृत्स्नस्तव कीर्तिस्तथाऽतुला ॥ २६ ॥
तवेयं पृथिवी देवी कृत्स्ना नारायणाऽऽश्रयात् ।
अयं नाथस्तवाचिन्त्यो यस्य नारायणो गतिः ॥ २७॥
स भवांस्त्वमुपाध्वर्यू रणाग्नौ हुतवान्नृपान् ।
कृष्णस्रुवेण महता युगान्ताग्निसमेन वै ॥ २८ ॥
दुर्योधनश्च शोच्योऽसौ सपुत्रभ्रातृबान्धवः ।
कृतवान्योऽबुधः क्रोधाद्धरिगाण्डीवविग्रहम् ॥ २९ ॥
दैतेया दानवेन्द्राश्च महाकाया महाबलाः ।
चक्राग्नौ क्षयमापन्ना दावाग्नौ शलभा इव ॥ ३० ॥
प्रतियोद्धुं न शक्यो हि मानुषैरेष संयुगे ।
विहीनैः पुरुषव्याघ्र सत्त्वशक्तिबलादिभिः ॥ ३१ ॥
जयो योगी युगान्ताभः सव्यसाची रणाग्रगः ।

हित रहते हैं और इन्द्रके सहित तैंतीस देवता वहां निवास करते हैं, इस विषयकी चर्चा करनेका प्रयोजन नहीं है। महात्मा मधुसूदन आदिदेव महादेव सर्वभूतोंके अवलम्ब हैं। वेही अनादि, अनन्त और अव्यक्त हैं। ये महातेजस्वी देवताओंकी प्रयोजन सिद्धिके निमित्त उत्पन्न हुए हैं। माधव अत्यन्त दुस्तर अर्थतत्त्वोंके वक्ता और कर्ता हैं। हे तात! नारायणके अवलम्बसे ही तुम्हारी जय और अतुल कीर्ति हुई तथा सब पृथ्वी तुम्हारे हस्तगत होरही है। ये अचिन्तनीय नारायण तुम्हारे नाथ और गति हैं, इस ही निमित्त तुमने अध्वर्युके निकट रहके राजाओंको युद्धरूपी अग्निमें प्रलयानल सदृश कृष्णरूपी स्रुवसे आहुति प्रदान की है। (२३—२८)

जिस दुर्बुद्धिने क्रोधवशसे हरिको गाण्डीवमूर्ति धारण कराई थी, उस दुर्योधनकी ही पुत्र, भ्राता और बान्धवोंके सहित शोचनीय दशा हुई है। महाकाय, महाबली दैत्य और दानवेन्द्रगण दावानलमें शलभसमूहकी भांति जिसके चक्राग्निके बीच नष्ट होगये; पराक्रम, शक्ति और बलहीन मनुष्योंके बीच उसके सङ्ग प्रतियुद्ध करनेवाला कोई भी नहीं

तेजसा हतवान्सर्वं सुयोधनबलं नृप ॥ ३२ ॥
यत्तु गोवृषभाङ्केन मुनिभ्यः समुदाहृतम् ।
पुराणं हिमवत्पृष्ठे तन्मे निगदतः शृणु ॥ ३३ ॥
यावत्तस्य भवेत्पुष्टिस्तेजो दीप्तिः पराक्रमः ।
प्रभावः सन्नतिर्जन्म कृष्णे तत्त्रिगुणं विभो ॥ ३४ ॥
कः शक्नोत्यन्यथा कर्तुं तद्यदि स्यात्तथा शृणु ।
यत्र कृष्णो हि भगवांस्तत्र पुष्टिरनुत्तमा ॥ ३५ ॥
वयं त्विहाल्पमतयः परतन्त्राः सुविक्लवाः ।
ज्ञानपूर्वं प्रपन्नाः स्मो मृत्योः पन्थानमव्ययम् ॥ ३६ ॥
भवांश्चाप्यार्जवपरः पूर्वं कृत्वा प्रतिश्रयम् ।
राजवृत्तं न लभते प्रतिज्ञापालने रतः ॥ ३७ ॥
अप्येवात्मवधं लोके राजंस्त्वं बहु मन्यसे ।
न हि प्रतिज्ञा या दत्ता तां प्रहातुमरिन्दम ॥ ३८ ॥
कालेनाऽयं जनः सर्वो निहतो रणमूर्धनि ।
वयं च कालेन हताः कालो हि परमेश्वरः ॥ ३९ ॥

है। हे महाराज! जयरूपी, प्रलयकालकी अग्निरूप, योगी, सव्यसाची धनञ्जयने युद्धमें अग्रगामी होकर निज तेजके प्रभावसे दुर्योधनकी सारी सेनाका नाश किया है। (२९-३२)

हिमालय पर्वतपर वृषभध्वजने मुनियोंसे जो पुराण कहा था, उसे मैं कहता हूं, सुनो। तेज, वीर्य और पराक्रमसे यदुवंशकी तुष्टि होती है; प्रभाव, सन्नति और जन्म, ये तीनों गुण कृष्णमें विद्यमान हैं, यदि ऐसा हो, तो कौन इसे अन्यथा करनेमें समर्थ होगा, इसलिये उस विषयको सुनो। जिस स्थानमें भगवान् कृष्ण निवास करते हैं, वहांपर उत्तम पुष्टि विद्यमान रहती है। हम अल्पबुद्धि, पराधीन और अत्यन्त विह्वल हैं, इसलिये ज्ञानपूर्वक मृत्युके अक्षयपथमें शरणागत हुए हैं। (३३—३६)

तुम अत्यन्त ही सरलचित्त हो, पहले प्रतिज्ञा करके अन्तमें उस प्रतिज्ञाको पूरी करनेमें रत होकर राज्य लेनेसे विमुख हुए थे। हे अरिन्दम महाराज! इस लोकके बीच तुम अपने वधका बहुमान किया करते हो; तथापि जो प्रतिज्ञा करते हो, उसे अन्यथा नहीं कर सकते। ये सब लोग कालके सहारे रणभूमिमें मारे गये हैं, हम भी कालसे

न हि कालेन कालज्ञः स्पृष्टः शोचितुमर्हसि।
कालो लोहितरक्ताक्षः कृष्णो दण्डी सनातनः॥ ४०॥
तस्मात्कुन्तीसुत ज्ञातीन्नेह शोचितुमर्हसि।
व्यपेतमन्युर्नित्यं त्वं भव कौरवनन्दन ॥ ४१॥
माधवस्यास्य माहात्म्यं श्रुतं यत्कथितं मया।
तदेव तावत्पर्याप्तं सज्जनस्य निदर्शनम् ॥ ४२॥
व्यासस्य वचनं श्रुत्वा नारदस्य च धीमतः।
स्वयं चैव महाराज कृष्णस्यार्हत्तमस्य वै ॥ ४३॥
प्रभावश्चर्षिपूगस्य कथितः सुमहान्मया।
महेश्वरस्य संवादं शैलपुत्र्याश्च भारत ॥ ४४॥
धारयिष्यति यश्चैनं महापुरुषसम्भवम्।
शृणुयात्कथयेद्वा यः स श्रेयो लभते परम् ॥ ४५॥
भवितारश्च तस्याथ सर्वे कामा यथेप्सिताः।
प्रेत्य स्वर्गं च लभते नरो नास्त्यत्र संशयः ॥ ४६॥
न्याय्यं श्रेयोऽभिकामेन प्रतिपत्तुं जनार्दनः।

ही हत हुए हैं, इसलिये काल ही परमेश्वर है। तुम कालज्ञ हो, इसलिये कालसे स्पृष्ट होकर तुम्हें शोक करना उचित नहीं है। काल रक्तसदृश लाल-नेत्र, कृष्णवर्ण और सनातन दण्डधारी है और सबको हरता है, इसही लिये उसका हरि नाम है। हे कौरव-वंशवर्धन कुन्तीनन्दन! इसलिये अब तुम स्वजनोंके लिये शोक मत करो; सदा शोकरहित रहो। (३७-४१)

यह माधवका माहात्म्य जो मैंने कहा, उसे तुमने सुना, सज्जनोंके निद-र्शनमें वह पर्याप्त है। हे महाराज! व्यासदेवका वचन तथा बुद्धिमान् नारद मुनिके उपदेशके अनुसार और पूजनीय कृष्णकी कथा सुनके मैंने ऋषिसमूहका उत्तम महान् प्रभाव वर्णन किया है। हे भारत! शैलसुताके सहित महादेवका संवाद भी कहा गया। हे राजन्! जो मनुष्य इस महापुरुष-संभव विषयको कहता, सुनता अथवा धारण करता है, उसका परम कल्याण होता है। उसकी यथाभिलषित सब कामना पूरी होती और वह मनुष्य परलोकमें जाकर निःसन्देह स्वर्गसुख भोगता है। (४२-४६)

कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनु-ष्योंको चाहिये, कि जनार्दनको जानें,

एष एवाक्षयो विप्रैः स्तुतो राजन् जनार्दनः ॥ ४७ ॥
महेश्वरमुखोत्सृष्टा ये च धर्मगुणाः स्मृताः ।
ते त्वया मनसा धार्याः कुरुराज दिवानिशम् ॥ ४८ ॥
एवं ते वर्तमानस्य सम्यग्दण्डधरस्य च ।
प्रजापालनदक्षस्य स्वर्गलोको भविष्यति ॥ ४९ ॥
धर्मेणाऽपि सदा राजन्प्रजा रक्षितुमर्हसि ।
यस्तस्य विपुलो दण्डः सम्यग्धर्मः स कीर्त्यते ॥५० ॥
य एष कथितो राजन्मया सज्जनसन्निधौ ।
शङ्करस्योमया सार्धं संवादो धर्मसंहितः ॥ ५१ ॥
श्रुत्वा वा श्रोतुकामो वाप्यर्चयेद् वृषभध्वजम् ।
विशुद्धेनेह भावेन य इच्छेद् भूतिमात्मनः ॥ ५२ ॥
एष तस्याऽनवद्यस्य नारदस्य महात्मनः ।
सन्देशो देवपूजार्थं तं तथा कुरु पाण्डव ॥ ५३ ॥
एतदत्यद्भुतं वृत्तं पुण्ये हिमवति प्रभो ।
वासुदेवस्य कौन्तेय स्थाणोश्चैव स्वभावजम् ॥ ५४ ॥
दश वर्षसहस्राणि बदर्यामेष शाश्वतः ।

हे महाराज ! ब्राह्मण लोग इस अक्षय जनार्दनकी स्तुति किया करते हैं । हे कुरुराज ! जो सब धर्म महेश्वरके मुखसे बाहिर हुए थे, तुम अहोरात्र मन ही मन उन धर्मोंको धारण करना । इस ही प्रकार तुम पूरी रीतिसे दण्डधारी होके वर्तमान रहने और दक्षता प्रकाशित करनेपर स्वर्गलोकमें गमन करोगे । (४७—४९)

हे महाराज ! तुम धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करनेमें समर्थ हो, प्रजाकी रक्षाके लिये जो विपुल दण्ड विधृत होता है, वही सम्यक् धर्मरूपसे वर्णित हुआ करता है । हे महाराज ! मैंने सज्जनोंके निकट जो यह उमाके सहित महादेवका धर्मसंयुक्त संवाद वर्णन किया है, उसे सुनकर तथा सुननेके अभिलाषी होके जो लोग अपनी उन्नतिकी इच्छा करते हैं, वे पवित्र चित्तसे वृषभध्वजकी पूजा करें । हे पाण्डव ! यह उस अनिन्दित महानुभाव नारदमुनिका देवपूजा सन्देश वाक्य है, इसलिये तुम उसे प्रतिपालन करो । (५०—५३)

हे महाराज कुन्तीनन्दन ! पवित्र हिमालयमें वासुदेव और महादेवकी यह अप्राकृतिक घटना अत्यन्त अद्भुत हुई

तपश्चचार विपुलं सह गाण्डीवधन्वना ॥ ५५ ॥
त्रियुगौ पुण्डरीकाक्षौ वासुदेवधनंजयौ ।
विदितौ नारदादेतौ मम व्यासाच्च पार्थिव ॥ ५६ ॥
बाल एव महाबाहुश्चकार कदनं महत् ।
कंसस्य पुण्डरीकाक्षो ज्ञातित्राणार्थकारणात् ॥ ५७ ॥
कर्मणामस्य कौन्तेय नान्तं सङ्ख्यातुमुत्सहे ।
शाश्वतस्य पुराणस्य पुरुषस्य युधिष्ठिर ॥ ५८ ॥
ध्रुवं श्रेयः परं तात भविष्यति तवोत्तमम् ।
यस्य ते पुरुषव्याघ्रः सखा चाऽयं जनार्दनः ॥ ५९ ॥
दुर्योधनं तु शोचामि प्रेत्य लोकेऽपि दुर्मतिम् ।
यत्कृते पृथिवी सर्वा विनष्टा सहयद्विपा ॥ ६० ॥
दुर्योधनापराधेन कर्णस्य शकुनेस्तथा ।
दुःशासनचतुर्थानां कुरवो निधनं गताः ॥ ६१ ॥
वैशम्पायन उवाच- एवं संभाषमाणे तु गाङ्गेये पुरुषर्षभे ।
तूर्ष्णी बभूव कौरव्यो मध्ये तेषां महात्मनाम् ॥६२ ॥
तच्छ्रुत्वा विस्मयं जग्मुर्धृतराष्ट्रादयो नृपाः ।

थी; इस शाश्वत वासुदेवने अर्जुनके सह बदरिकाश्रममें दश सहस्र वर्षतक विपुल तपस्या की थी । हे महाराज ! ये पुण्डरीकाक्ष वासुदेव और धनञ्जय त्रेतायुगसे नारद तथा व्यासदेवके द्वारा मुझे विदित हैं । इस महाबाहु, महातेजस्वी पुण्डरीकाक्षने बाल्य अवस्थामें ही स्वजनोंके परित्राणके निमित्त कंसका महत् वधकार्य साधन किया था । (५४-५७)

हे कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ! मैं इस शाश्वत पुराण पुरुषके कर्मोंकी संख्या करनेका उत्साह नहीं करता । हे तात ! ये पुरुषपुङ्गव जनार्दन जब तुम्हारे सखा हैं, तब अवश्य ही तुम्हारा परम मङ्गल होगा । और दुर्बुद्धि दुर्योधन स्वर्गमें गया है, तोभी मैं उसके निमित्त शोक करता हूं, जिसके कारण यह समस्त महीमण्डल घोडों और हाथियोंके सहित विनष्ट हुआ है, दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन, इन चारोंके अपराधसे सारा कुरुकुल निर्मूल हुआ है । (५८—६१)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, पुरुषश्रेष्ठ गंगानन्दन भीष्मके ऐसा कहनेपर युधिष्ठिर उन सब महात्माओंके बीच

संपूज्य मनसा कृष्णं सर्वे प्राञ्जलयोऽभवन् ॥ ६३ ॥
ऋषयश्चापि ते सर्वे नारदप्रमुखास्तदा ।
प्रतिगृह्याभ्यनन्दन्त तद्वाक्यं प्रतिपूज्य च ॥ ६४ ॥
इत्येतदखिलं सर्वैः पाण्डवो भ्रातृभिः सह ।
श्रुतवान्सुमहाश्चर्यं पुण्यं भीष्मानुशासनम् ॥ ६५ ॥
युधिष्ठिरस्तु गाङ्गेयं विश्रान्तं भूरिदक्षिणम् ।
पुनरेव महाबुद्धिः पर्यपृच्छन्महीपतिः ॥ ६६ ॥ [६८५२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे महापुरुषप्रस्तावे अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४८॥

वैशम्पायन उवाच– श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः ।
युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत ॥ १ ॥
युधिष्ठिर उवाच– किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम् ।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥ २ ॥
को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः ।
किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ३ ॥
भीष्म उवाच– जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम् ।

चुप होरहे। धृतराष्ट्र प्रभृति सब राजा इस कथाको सुनके विस्मित हुए और उन्होंने मनही मन हाथ जोडके कृष्णकी पूजा की। नारद प्रभृति ऋषियोंने भीष्म का वचन प्रतिग्रह करके उनका सम्मान तथा अभिनन्दन किया। पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने भाइयोंके सहित यह उत्तम महाश्चर्य पवित्र भीष्मानुशासन इस ही प्रकार सुना था। बहुतसी दक्षिणा देनेवाले भीष्मदेवके विश्राम करनेके अनन्तर पृथ्वीपति महाबुद्धिमान् युधिष्ठिरने उनसे फिर प्रश्न किया। (६२—६६)

अनुशासनपर्वमें १४८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १४९ अध्याय।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, युधिष्ठिरने अशेष रीतिसे सब कर्मों और पवित्र विषयोंको सुननेके अनन्तर शन्तनुनन्दनसे फिर प्रश्न किया। (१)

युधिष्ठिर बोले, मनुष्यवृन्द किस देव वा किस परम आश्रयकी स्तुति तथा पूजा करते हुए इस लोकमें शुभ लाभ करते हैं? सब धर्मोंके बीच कौनसा धर्म परम श्रेष्ठ रूपसे आपको सम्मत है? किसका जप करनेसे जीव संसाररूपी बन्धनसे छूटता है? (२–३)

भीष्म बोले, पुरुष सदा जागृत होके

स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥ ४ ॥
तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम् ।
ध्यायंस्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च ॥ ५ ॥
अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् ।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥ ६ ॥
ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम् ।
लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥ ७ ॥
एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः ।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ॥ ८ ॥
परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः ।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥ ९ ॥
पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम् ।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता ॥ १० ॥
यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे ।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥ ११ ॥
तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते ।
विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम् ॥ १२ ॥

देवोंके प्रभु अनन्त पुरुषोत्तमको सहस्र नामसे स्तुति करते हुए उस अव्यय पुरुषकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। यजमान मनुष्य उस अनादिनिधन, सर्वलोक-महेश्वर विष्णुका ध्यान और स्तुति करते हुए उन्हें नमस्कार करे। उस लोका-ध्यक्ष नारायणकी सदा स्तुति करते हुए पुरुष सब दुःखोंको अतिक्रम करता है। ब्रह्मण्य, सर्वधर्मज्ञ, सर्वलोककीर्तिवर्धन, लोकनाथ, महद्भूत और सर्वभूतोंकी उत्पत्तिके कारण नारायणकी स्तुति करे; यह धर्म ही सब धर्मोंसे श्रेष्ठ और यही मुझे अभिमत है; जिस धर्मके विषयमें मनुष्य सदा भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए भगवानका पूजन करते हैं। (४—८)

जो परम महत् तेज, जो परम महत् तप, जो परम महत् ब्रह्म तथा जो परम परायण है, सब पवित्र पदार्थोंके बीच पवित्र, जो सब मङ्गलोंका मङ्गल, जो देवताओंका देवता और भूतोंका अव्यय पिता है। हे पृथ्वीनाथ! जिससे आदि युगमें सब प्राणी उत्पन्न होके युगक्षयमें जिसमें फिर लीन लीन होते हैं, उस

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः।
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥ १३ ॥
ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः।
भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥ १४ ॥
पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः।
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥ १५ ॥
योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः।
नारसिंहवपुः श्रीमान्केशवः पुरुषोत्तमः ॥ १६ ॥
सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः।
संभवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥ १७ ॥

लोकप्रधान, जगन्नाथ विष्णुका पापभया-पह सहस्रनाम सुनो। महानुभाव नारा-यणके जो गौण नाम विख्यात हैं तथा ऋषियोंके द्वारा वर्णित हुए हैं, वे सब नाम चतुर्वर्ग फलप्राप्तिके हेतु हैं; उन्हीं नामोंका वर्णन करता हूं। (९—१३)

वह विश्वकी सृष्टि करके उसमें अनुप्रविष्ट है, इन्हींसे विश्व १, सर्व-व्यापी होनेसे विष्णु २, वषट्कार मन्त्र-स्वरूप ३, भूत, भविष्य और वर्तमान-कालके प्रभु ४, भूतकर्ता होनेसे भूत-कृत् ५, भूतोंका पालन करता है, इसही निमित्त भूतभृत् ६, भावस्वरूप ७, भूतोंका अन्तर्यामी होनेसे भूतात्मा ८, भूतोंका उत्पादक होनेसे भूतभावन ९, निर्गुण होनेसे पूतात्मा १०, परमात्मा ११, मुक्त पुरुषोंकी परमगति १२, अव्यय १३, अखिलकर्मफलदाता है, इसलिये पुरुषसाक्षी १४, द्रष्टा है, इस-लिये क्षेत्रज्ञ १५, अक्षर १६, मनके सहित ज्ञानेन्द्रियोंको संयत करके क्षेत्रज्ञ और परमात्माके एकत्वभावना योगसे प्राप्य है, इसही हेतु योग १७, योग-वित् जनोंका नेता १८, प्रकृति और पुरुषका नियन्ता है, इसही निमित्त प्र-धान पुरुषेश्वर १९, नारसिंहवपु २०, श्री-मान् २१, लम्बे केशोंसे युक्त है, इसही नि-मित्त केशव २२, और क्षरअक्षर दोनोंसे उत्तम है, इसीलिये पुरुषोत्तम २३ है। (१४-१६)

कारणरूपसे अनुगत है, इसीलिये सर्व २४, सबकी हिंसा करता है, इसही हेतु शर्व २५, सब कोई उसमें शयन करते हैं, इसही निमित्त शिव २६, स्थिर है इसहीसे स्थाणु २७, भूतादिकोंकी अव्ययनिधि २८, धर्मस्थापन करनेके लिये प्रतियुगमें उत्पन्न होता है, इसलिये संभव २९, सब भोक्ता पुरुषों-

स्वयंभूः शंभुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः ।
अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः ॥ १८ ॥
अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः ।
विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः ॥ १९ ॥
अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः ।
प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मङ्गलं परम् ॥ २० ॥

को फल देनेवाला है, इसी हेतु भावन ३०, प्रपञ्चजगत्के अधिष्ठान रूपसे भर्ता ३१, जगदुत्पत्तिके कारण होनेसे प्रभव ३२, सर्वशक्तिमान् होनेसे प्रभु ३३, सबका नियन्ता होनेसे ईश्वर ३४, स्वयम्भू ३५, भक्तोंके सुखका विधान करता है, इसही लिये शंभु ३६, अदितके पुत्र होनेसे आदित्य ३७, कमलके समान नेत्र हैं, इसीसे पुष्कराक्ष ३८, मेरे भक्त विनष्ट न हों इत्यादि वेद उसका वचन है, इस ही निमित्त महास्वन ३९, उसका जन्म और विनाश नहीं है, इसीलिये अनादिनिधन ४०, अनन्तरूपसे जगत्को धारण करनेसे धाता ४१, कर्म और कर्मफलोंका विधान करनेसे विधाता ४२ और विरञ्चिसेभी श्रेष्ठ है, इसलिये धातुरुत्तम ४३ है। (१७-१८)

प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान अर्थापत्ति और अनुपलब्धि प्रभृति शास्त्रीय प्रमाणोंसे, उसे जाना नहीं जाता इसही निमित्त अप्रमेय ४४, इन्द्रियोंका ईश्वर होनेसे हृषीकेश ४५, जगत्कारण पद्म उसके नाभीमें विद्यमान है, इसही लिये पद्मनाभ ४६, अमरणधर्मविशिष्ट देवताओंका ईश्वर होनेसे अमरप्रभु ४७, जगत्की रचना करता है, इसलिये विश्वकर्मा ४८, मननशील होनेसे मनु ४९, प्रलयके समय जगत्का नाश करता है, इसीसे त्वष्टा ५०, अत्यन्त स्थूल होनेसे स्थविष्ठ ५१, स्थिरत्वप्रयुक्त स्थविर ५२ और निश्चय है, इसलिये ध्रुव ५३ है। (१९)

मनके सहित वचनसे अथवा बलपूर्वक उसे ग्रहण नहीं किया जाता, इसही निमित्त अग्राह्य ५४, शश्वत् अर्थात् सब समयमें स्थायी रहनेसे शाश्वत ५५, देखते ही स्त्रियोंका मन हरता अथवा कृष्णवर्ण है, इसीलिये कृष्ण ५६, लोहितनेत्र होनेसे लोहिताक्ष ५७, प्रलयकालमें विश्वसंसारका नाश करता है, इस ही निमित्त प्रतर्दन ५८, ज्ञान, ऐश्वर्य आदि गुणोंसे युक्त है, इस ही निमित्त प्रभूत ५९, ऊर्ध्व, अध और मध्यभेदसे तीनों धाम है, इस ही हेतु त्रिककुब्धाम ६०, पवित्र ६१

ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः।
हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः ॥ २१ ॥
ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः।
अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान् ॥ २२ ॥
सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः।
अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ॥ २३ ॥
अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः।
वृषाकपि (१००) रमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः ॥ २४ ॥

और परम मङ्गल ६२ है। (२०)

सर्व भूतोंका नियन्ता होनेसे ईशान ६३, प्राणप्रदाता होनेसे प्राणद ६४, सब प्राणियोंका जीवन स्वरूप होनेसे प्राण ६५, अत्यन्त वृद्ध है, इस ही निमित्त जेष्ठ ६६, अत्यन्त प्रशस्त होनेसे श्रेष्ठ ६७, प्रजापति ६८, विरञ्चिस्वरूपसे अथवा हिरण्मयान्तर्वर्ती होनेसे हिरण्यगर्भ ६९, पृथिवीका कारण है अर्थात् पृथिवी उसके गर्भमें है, इसलिये भूगर्भ ७०, माधव ७१, मधुसूदन ७२, अणिमा आदि आठ प्रकार के ऐश्वर्योंसे युक्त है, इसलिये ईश्वर ७३, विक्रमी ७४, धन्वी ७५, मेधावी ७६, वि अर्थात् गरुडपक्षिके द्वारा गमन करता है, इसलिये विक्रम ७७, जगत्को आक्रमण कर रहा है, इसही निमित्त क्रम ७८, उससे दूसरा कोई उत्तम नहीं है; इसीसे अनुत्तम ७९, शत्रुओंसे दुराक्रमणीय होनेसे दुराधर्ष ८०, प्राणियोंके पुण्य पाप-जनित सब कर्मोंको जाननेसे कृतज्ञ ८१, पुरुष प्रयत्नस्वरूप है, इस ही हेतु कृति ८२, और निज महिमामें प्रतिष्ठित है, इसलिये आत्मवान् ८३ है। (२१-२२)

सुरेश ८४, दुःख नाश करनेसे शरण ८५, सुखस्वरूप होनेसे शर्म ८६, विश्वही उसका वीर्यस्वरूप कार्य है, इसलिये विश्वरेता ८७, प्रजाकी उत्पत्तिका कारण है, इसलिये प्रजाभव ८८, दिनकी भांति प्रकाशरूप है, इसही निमित्त अहन् ८९, अखण्ड कालरूप होनेसे संवत्सर ९०, बन्धनहीन है, इस ही हेतु व्याल ९१, ज्ञानस्वरूप होनेसे प्रत्यय ९२, अपने भक्तोंको देखता है, इसलिये सर्वदर्शन ९३, जन्मरहित होनेसे अज ९४, ईश्वरोंका भी ईश्वर है, इसलिये सर्वेश्वर ९५, नित्य निष्पन्नरूप होनेसे सिद्ध ९६, ज्ञप्तिरूप होनेसे सिद्धि ९७, सर्वभूतोंका कारण है, इस ही निमित्त सर्वादि ९८, निज रूपसे च्युत नहीं होता, इस ही

वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मासंमितः समः ।
अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः ॥ २५ ॥
रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः ।
अमृतः शाश्वतः स्थाणुर्वरारोहो महातपाः ॥ २६ ॥
सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः ।
वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित्कविः ॥ २७ ॥

लिये अच्युत ९९, समस्त कामनाओंकी वर्षा करता है, इस ही लिये वृष अर्थात् धर्म और वराह अवतार रूपसे कपि है, इस ही लिये वृषाकपि १००, उसका स्वरूप बुद्धिसे जाना नहीं जाता, इस ही हेतु अप्रमेयात्मा १ और सब सम्बन्धोंसे पृथक् असङ्ग पुरुष है, इसलिये सर्वयोगविनिःसृत २ है। (२३-२४)

सब भूतोंमें वास करता है, इसलिये वसु ३, सङ्ग आदि क्लेशोंसे उसका मन दूषित नहीं होता, इस ही निमित्त वसुमना ४, सत्यरूप होनेसे सत्य ५, एकात्मा होनेसे समात्मा ६, अपरिच्छिन्न है, इसलिये असम्मित ७, सब समयमें विकाररहित होनेसे सम ८, सत्यसङ्कल्प होनेसे अमोघ ९, हृदयाख्य पुण्डरीकमें व्याप्त है, इसलिये पुण्डरीकाक्ष १०, उसके सब कर्म धर्ममय हैं, इस हेतु वृषकर्मा ११, धर्म और अर्थ ग्रहण करनेसे ही वृषाकृति १२, शिवके सहित अभिन्न है तथा संहारके समय प्रजासमूहको रुलाता है, इस ही निमित्त रुद्र १३, सहस्रशीर्षा पुरुष है, इस ही हेतु बहुशिरा १४, सब लोकोंको धारण कर रहा है, इस ही निमित्त बभ्रु १५, विश्वयोनि १६, उसके सब नाम पवित्र हैं, इसलिये शुचिश्रवा १७, उसकी मृत्यु नहीं होती, इसलिये अमृत १८, सब समय और सब स्थानोंमें रहनेसे शाश्वत १९, स्थाणु २०, उसमें आरोहण करना ही श्रेष्ठ है, क्यों कि उसे पानेसे पुनरावृत्ति नहीं होती, इस ही निमित्त वरारोह २१ और सब विषयोंका उसे ज्ञान है, इसलिये महातपा २२ है। (२५-२६)

सर्वग २३, हरएक विषयोंको जाननेवाला तथा प्रकाशमान होनेसे सर्वविद्भानु २४, जरासन्ध प्रभृतिकी सेना उसके द्वारा सब दिशाओंमें भगाई गई थी, इस ही निमित्त विष्वक्सेन २५, दस्युओंको पीडित करनेसे जनार्दन २६, ज्ञानदीपस्वरूप होनेसे वेद २७, अर्थ और पाठक्रमसे वह वेदोंको जानता है, इसलिये वेदवित् २८, वह सब सर्वावयवसम्पन्न है

लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः।
चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥ २८ ॥
भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदादिजः।
अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः ॥ २९ ॥
उपेन्द्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः।
अतीन्द्रः संग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः ॥ ३० ॥
वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः।

इसलिये अव्यङ्ग २९, वेदाङ्गस्वरूप ३०, वेद लाभ करनेसे वेदावित् ३१, और अतिक्रान्तदर्शी होनेसे कवि ३२ है। (२७)

लोकोंको प्रत्यक्ष करता है, इसलिये लोकाध्यक्ष ३३, इन्द्र आदि देवताओंका अधिपति है, इसलिये सुराध्यक्ष ३४, धर्माध्यक्ष ३५, कार्यकारणरूपसे कृताकृत ३६, सृष्टिके प्रारम्भमें पृथक् पृथक् चतुर्विध ब्रह्मा दक्षादिरूपसे चतुरात्मा ३७, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूपसे चतुर्व्यूह ३८, नृसिंहरूपसे चतुर्दंष्ट्र ३९, चतुर्भुज ४०, अत्यन्त दीप्तिमान् होनेसे भ्राजिष्णु ४१, भोज्यरूपसे भोजन ४२, भोजनकर्ता होनेसे भोक्ता ४३, सहनशील होनेसे सहिष्णु ४४, हिरण्यगर्भ रूपसे जगत्‌के आदिकालमें जन्म लेनेसे जगदादिज ४५, निष्पाप होनेसे अनघ ४६, ज्ञान वैराग्य प्रभृति ऐश्वर्योंके द्वारा जययुक्त होनेसे विजय ४७, सबसे उत्कृष्ट है, इसलिये जेता ४८ और विश्वयोनिमें बार बार अवतार लेके वास करता है, इसलिये पुनर्वसु ४९ है। (२८–२९)

उपेन्द्र ५०, वामन ५१, वामन रूपसे तीनों लोकोंको आक्रमण किया, इसलिये इसलिये प्रांशु ५२, अमोघ ५३, अत्यन्त पवित्र होनेसे शुचि ५४, गोवर्धनादि धारण करनेसे ऊर्जित ५५, कल्पवृक्षहरण आदि कार्योंमें इन्द्रको अतिक्रम करनेसे अतीन्द्र ५६, भक्तोंका संहार करता है, इसलिये संग्रह ५७, कार्यरूपसे उत्पन्न होता है, इस ही हेतु सर्ग ५८, एक रूपसे जन्मादिरहित है, इसलिये धृतात्मा ५९, प्रजा समूहको निज निज अधिकारमें नियमित करनेसे नियम ६०, और अन्तर्यामी प्रयुक्त यम ६१ है। (३०)

अज्ञान प्रयुक्त वेदनाई है, इसलिये वेद्य ६२, सब विद्या अध्ययन करता है, इस ही निमित्त वैद्य ६३, सर्व क्रियामें कर्तृत्वके रहते भी यथार्थमें अक-

अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः ॥ ३१ ॥
महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः ।
अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक् ॥ ३२ ॥
महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतां गतिः ।
अनिरुद्धः सुरानन्दो गोविन्दो गोविदां पतिः ॥ ३३ ॥
मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः ।
हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः ॥ ३४ ॥
अमृत्युः सर्वदृक् सिंहः सन्धाता सन्धिमान् (२००) स्थिरः ।

नृत्व युक्त होनेसे सदायोगी ६४, दैत्यदलनाशक होनेसे वीरहा ६५, भगवद्विद्याका ईश्वर है, इसलिये माधव ६६, वसन्तकी भांति प्रीतिपद होनेसे मधु ६७, इन्द्रियोंके अगोचर होनेसे अतीन्द्रिय ६८, अत्यन्त कृपावान् होनेसे महामाय ६९, महोत्साह ७० और बाल्यकालमें पूतना आदिका वध करनेके समय अत्यन्त बल प्रकाशित किया था इसलिये महाबल ७१ है। (३१)

महाबुद्धि ७२, महावीर्य ७३, महाशक्ति ७४, महाद्युति ७५, यह है, वह है, इत्यादि रूपसे उसका निरूपण नहीं होता, इसलिये अनिर्देश्यवपु ७६, श्रीमान् ७७, अमेयात्मा ७८ पृथ्वी, गोवर्धन तथा मन्दर पर्वतको धारण किया था, इसलिये महाद्रिधृक् ७९, महाधनुर्धारी होनेसे महेष्वास ८०, महीभर्ता ८१, श्रीनिवास ८२, साधुओंका अवलम्ब होनेसे सतांगति ८३, कोई शत्रु उसे रोकनेमें समर्थ नहीं है, इसलिये अनिरुद्ध ८४, देवताओंको आनन्दित करता है, इसलिये सुरानन्द ८५, पहले समयमें पृथ्वीका उद्धार किया था, इसलिये गोविन्द, ८६ और वेदवादियोंको विशेषरूपसे पालन करता है, इस ही निमित्त गोविदांपति ८७ है। (३२—३३)

दुष्ट लोग उसके द्वारा विनष्ट होते हैं, इसलिये मरीचि ८८, वह दुष्टोंको शासन करता है, इस ही निमित्त दमन ८९, शुद्धत्वप्रयुक्त हंसकी भांति अथवा संसारबन्धनको काटता है, इसीसे हंसपक्षिकी भांति सुपर्ण ९०, शेषरूप होनेसे भुजगोत्तम ९१, सुवर्णकी भांति प्रकाशमान ब्रह्माण्ड उसके नाभिस्थानमें वर्तमान है, इसलिये हिरण्यनाभ ९२, नरनारायण रूपसे सुतपा ९३, पद्मनाभ ९४ और प्रजापति ९५ है। (३४)

अमृत्यु ९६, सर्वदर्शी होनेसे सर्वदृक् ९७, वक्रदन्त आदि दुष्ट दस्युगणको मारनेसे सिंह ९८, सन्धिकर्ता

अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा ॥ ३५॥
गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः ।
निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः ॥ ३६ ॥
अग्रणीर्ग्रामणीः श्रीमान्न्यायो नेता समीरणः ।
सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ ३७ ॥
आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः संप्रमर्दनः ।
अहः संवर्तको वह्निरनिलो धरणीधरः ॥ ३८ ॥

होनेसे सन्धाता ९९, सन्धिमान् २००, भक्तोंके अन्तःकरणमें स्थिरताके सहित स्थित रहनेसे स्थिर १, शिशुपालके वधके लिये चक्र चलाया था, इस ही हेतु अज २, दुःखसे उसे सहन किया जाता है, इसलिये दुर्मर्षण ३, दुष्टोंको दण्ड देता है, इसही निमित्त शास्ता ४, शास्त्रप्रसिद्ध विराट देहधारी है, इस हेतु विश्रुतात्मा ५ और सुरारिहा ६ है। (३५)

भक्तियोग उपदेश करनेसे गुरु ७, उपदेष्टा पुरुषोंके बीच श्रेष्ठ है, इसलिये गुरुतम ८, सबको धारण करनेसे धाम ९, त्रिकाल बाधारहित होनेसे सत्य १०, अप्रतिहत सामर्थ्ययुक्त है, इसही निमित्त सत्यपराक्रम ११, विशेष रीतिसे दर्शन करनेसे निमिष १२, निमेषहीन होनेसे अनिमिष १३, वैजयन्ती माला धारण करनेसे स्रग्वी १४, वाक्यके अधिपति होनेसे वाचस्पति १५ और महाबुद्धि हेतुसे उदारधी १६ है। (३६)

सबसे पहले पूजनीय है, इसलिये अग्रणी १७, मथुरा ग्रामसे सब लोगोंको द्वारकामें लेजानेसे ग्रामणी १८, श्रीमान् १९, श्रुति, स्मृति और पुराणोंके तात्पर्यको विशेष रीतिसे जानता है, इसलिये न्याय २०, धर्मफल प्रापक है, इसलिये नेता २१, सम्यक् रीतिसे उसका ईरण अर्थात् भाषण होता है, इस ही निमित्त समीरण २२, विराटरूप होनेसे सहस्रमूर्धा २३, विश्वात्मा २४, सहस्राक्ष २५, सहस्रपात् २६, धर्मरक्षाके निमित्त बार बार उत्पन्न होता है, इसलिये आवर्तन २७ उसका चित्त परम वैराग्ययुक्त है, इसही निमित्त निवृत्तात्मा २८, योगमाया से परिपूरित रहनेसे संवृत २९, दुष्टोंका मर्दन करता है, इसलिये सम्प्रमर्दन ३०, सूर्यरूपसे दिनका प्रवर्तक है, इस ही हेतु अह ३१, संवर्तक अग्निरूपसे देवताओंका हवि होता है, इसी हेतु वह्नि ३२, कंसको जीतकर उग्रसेनको पृथ्वी दान करनेसे उसके इला अर्थात् भूमि न थी, इस ही निमित्त अनिल ३३, और अनन्त अथवा वराहरूपसे भूभार

सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग्विश्वभुग्विभुः ।
सत्कर्त्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः ॥ ३९ ॥
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः ।
सिद्धार्थः सिद्धसङ्कल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ॥४०॥
वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः ।
वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ॥ ४१ ॥
सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः ।
नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः ॥ ४२ ॥

धारण करता है, इस ही हेतु धरणीधर २३४ है । (३७-३८)

उसकी प्रसन्नतासे सब प्रकारके आलस दूर होते हैं, इसलिये सुप्रसाद २३५, भक्तोंके अपराध करनेपर भी उसका चित्त अप्रसन्न नहीं होता, इसलिये प्रसन्नात्मा २३६, विश्वधृक् २३७, विश्वभुक् २३८, विविध रूप धारण करनेसे विभु २३९, धर्मरक्षाके हेतु गोब्राह्मणोंका सत्कार करता है, इस ही निमित्त सत्कर्त्ता २४०, पूजित पुरुषोंसे भी पूजनीय होनेसे सत्कृत २४१, न्यायकार्यसे दूसरोंका कार्य सिद्ध करता है, इसलिये साधु २४२, संहारसमयमें प्राणियोंको हरण करनेसे जह्नु २४३, प्रलयकालमें नारा अर्थात् जल ही उसका अयन अर्थात् आश्रय था, इस ही हेतु नारायण २४४, सनातन परमात्मा होनेसे नर २४५, अनिर्वचनीय होनेसे असंख्येय २४६, अप्रमेयात्मा २४७, सबसे उत्कृष्ट होनेसे विशिष्ट २४८, वेदोक्त कर्म करता है, इसलिये शिष्टकृत् २४९, शुचि २५०, सिद्धार्थ २५१, सिद्धसङ्कल्प २५२, सिद्धिद २५३ और त्रैवर्णिक फल साधन करनेसे सिद्धिसाधन २५४ है । (३९-४०)

धर्मयुक्त द्वादश अह अर्थात् दिवस विशिष्ट होनेसे वृषाही २५५, अभिलषित विषय दान करता है, इसलिये वृषभ २५६, चरण संक्रमणसे जगत्को वेष्टन कर रहा है, इस हेतु विष्णु २५७, धर्म ही उसका सोपान होनेसे वृषपर्वा २५८, धर्म उसके उदरमें विद्यमान है, इसलिये वृषोदर २५९, भक्तोंके किये हुए अल्प विषयोंकी भी वृद्धि करता है, इसलिये वर्धन २६०, वर्द्धमान २६१, पवित्र होनेसे विविक्त २६२, वेदोंके तात्पर्यका विषय होनेसे श्रुतिसागर २६३, सुभुज २६४, दुर्द्धर २६५, वाग्मी २६६, महेन्द्र २६७, वसुद २६८, वसु २६९, नैकरूप २७०, बृहद्रूप २७१, शिपिविष्ट २७२ प्रकाशन

ओजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः ।
ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः ॥ ४३ ॥
अमृतांशूद्भवो भानुः शशबिन्दुः सुरेश्वरः ।
औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः ॥ ४४ ॥
भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः ।
कामहा कामकृत्कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः ॥ ४५ ॥
युगादिकृद्युगावर्तो (३००) नैकमायो महाशनः ।
अदृश्योऽव्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनन्तजित् ॥ ४६ ॥
इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टः शिखण्डी नहुषो वृषः ।
क्रोधहा क्रोधकृत्कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः ॥ ४७ ॥

२७३, ओज,बल,तेज,प्रताप,द्युति तथा देवकान्ति धारण करता है, इसही निमित्त ओजस्तेजोद्युतिधर २७४, प्रकाशात्मा २७५, प्रतापन २७६,परिपूर्ण होनेसे ऋद्ध २७७, स्पष्ट २७८, अक्षर २७९, मन्त्रके द्वारा बोधित होनेसे मन्त्र २८० और चंद्रांशु भास्करद्युति २८१ है। (४१-४३)

समुद्र मथके चन्द्रमाको उत्पन्न करनेसे अमृतांशूद्भव ८२, दीप्तिमान् होनेसे भानु ८३, शशसदृश अनेक प्रकार लक्षणोंसे युक्त होनेसे शशबिन्दु ८४, सुरेश्वर ८५, संसाररोग निवर्त्तक होनेसे औषध ८६, जगत्में सेतुरूपी होनेसे जगत्सेतु ८७, सत्यधर्मपराक्रम ८८, भूतभव्य ८९, भवन्नाथ २९०, पवन ९१, पावन ९२, अनल ९३, भक्तोंको अपना रूप प्रदान करके उनके कामका विनाश करता है, इसलिये कामहा ९४, प्रद्युम्नका उत्पादक होनेसे कामकृत् कान्त ९५, मुमुक्षुजनोंका काम्य काम ९६, कामप्रद ९७, दिव्यरूपसे प्रकट होनेसे प्रभु ९८, युगादिकृत् ९९, चारों युगोंका आवर्तन करता है, इसलिये युगावर्त ३००, नैकमाय १ महाशन २, अदृश्य ३, अव्यक्तस्वरूप ४, सहस्रजित् ५ और अनन्तजित् ३०६ है। (४४-४६)

परमानन्दस्वरूप युक्त अथवा सबसे पूजित होनेसे इष्ट ७, सर्वान्तर्यामी सर्वाङ्ग रूपसे विशिष्ट ८, शिष्टोंका इष्ट होनेसे शिष्टेष्ट ९, मयूरपूंछसे युक्त होनेसे शिखण्डी ३१०, मायासे भूतोंको बद्ध करता है, इसलिये नहुष ११, अभिलषित विषयोंकी वर्षा करता है, इसलिये वृष १२, भक्तोंके क्रोधको विनष्ट करनेसे क्रोधहा १३, दुष्टोंके विषयमें क्रोध करता है, इस ही निमित्त

अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः ।
अपां निधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः ॥ ४८ ॥
स्कन्दः स्कन्दधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः ।
वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरन्दरः ॥ ४९ ॥
अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः ।
अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ॥ ५० ॥
पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत् ।
महर्द्धिर्ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः ॥ ५१ ॥
अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः ।
सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान्समितिञ्जयः ॥ ५२ ॥

क्रोधकृत् १४, कार्यमात्रके कर्तृत्व युक्त युक्त होनेसे कर्त्ता १५, विश्वबाहु १६, महीधर १७, अच्युत १८, प्रथित १९, प्राण २०, प्राणद २१, वासवानुज २२, अपांनिधि २३, अधिष्ठान २४, अप्रमत्त २५ और निज महिमामें स्थित रहनेसे प्रतिष्ठित २२६ है। (४७-४८)

वायुरूपसे शोषण करनेसे स्कन्द २७, वायुको धारण करनेसे स्कन्दधर २८, जगत्का भार उठाता है, इसलिये धुर्य २९, अभिलषित पदार्थोंके दान करनेसे वरद २३०, वायुकी भांति वेगवान् विनतानन्दन गरुड उसका वाहन है, इस ही निमित्त वायुवाहन ३१, वसुदेवके पुत्र होनेसे वासुदेव ३२, चन्द्र और सूर्यरूपसे बृहद्भानु ३३, आदिदेव ३४, शत्रुपुर विदारण करनेसे पुरन्दर ३५, अशोक ३६, तारण ३७, शत्रुओंका भी उद्धार करता है, इसलिये तार ३८, पराक्रमयुक्त होनेसे शूर ३९, शूरके सन्तान होनेसे शौरि ४०, जनेश्वर ४१, अनुकूल ४२, वह सैकडों बार प्रकट होता है, इसलिये शतावर्त्त ४३, हाथमें पद्म धारण करनेसे पद्मी ४४ और पद्मनिभेक्षण २४५ है। (४९-५०)

पद्मनाभ ४६, अरविन्दाक्ष ४७, पद्मगर्भ, अन्नरूपसे शरीर पोषण करता है, इस ही निमित्त शरीरभृत् ४८, उसकी महती सम्पत्ति है, इसलिये महार्द्धि ४९, प्रपञ्च रूपसे वृद्धरूपी है, इसलिये ऋद्ध ५०, पुरातन आत्मा होनेसे वृद्धात्मा ५१, महाक्ष ५२, गरुडध्वज ५३, उसकी उपमा नहीं है, इसलिये अतुल ५४ शरीरके बीच प्रत्यगात्मरूपसे प्रकाशमान है, इसही निमित्त शरभ ५५, उससे सब कोई डरते हैं, इसीसे भीम ५६, समयज्ञ ५७, हवनीय रूपसे हवि ५८, समस्त पाप हरनेसे हरि ५९, सब

विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः ।
महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः ॥ ५३ ॥
उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः ।
करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ॥ ५४ ॥
व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः ।
परर्द्धिः परमस्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः ॥ ५५ ॥
रामो विरामो विरजो मार्गो नेयो नयोऽनयः (४००) ।

शास्त्रोंका तात्पर्यविषय होनेसे सर्वलक्षणलक्षण्य ६०, लक्ष्मीवान् ६१,और समरविजयी होनेसे समितिञ्जय ३६२ है। (५१—५२)

उसका विनाश नहीं है, इसलिये विक्षर ६३, मत्स्यरूप धारण करनेसे रोहित ६४, भक्तोंका अन्वेषणीय है, इसलिये मार्ग ६५, निमित्तउपादान, दोनों कारणरूप होनेसे हेतु ६६, रज्जुसे बद्ध होनेसे उदरमें उस चिन्हको धारण करता है, इसलिये दामोदर ६७, सब कुछ सहता है, इस हेतु सह ६८, गिरिरूपसे महीधर ६९, परम भाग्यवान् होनेसे महाभाग ७०, वेगवान् ७१, सर्वसंहर्त्ता होनेसे अमिताशन ७२, उससे संसार उत्पन्न हुआ है, इसलिये उद्भव ७३, शत्रुओंको क्षुब्ध करनेसे क्षोभण ७४, क्रीडा करता है, इसलिये देव ७५, जगत्‌रूपी विभूति उसके उदरमें विद्यमान है, इसलिये श्रीगर्भ ७६, परमेश्वर ७७, साधकतम होनेसे करण ७८, कारण ७९, कर्त्ता ८०, विकर्त्ता ८१, दुर्विज्ञेय होनेसे गहन ८२,और स्वरूप संवरण करता है, इस ही निमित्त गुह ३८३ है। (५३–५४)

संवित्‌रूपसे व्यवसाय ८४, जगत् उसहीमें स्थित है, इसलिये व्यवस्थान ८५, उसमें ही सबकी समाप्ति होती है, इसलिये संस्थान ८६, भक्तोंको वैकुण्ठ प्रभृति स्थान दान करता है, इस ही निमित्त स्थानद ८७,अनेक कर्मके कर्तृत्वयुक्त होनेपर भी स्वरूपसे निश्चल है, इसलिये ध्रुव ८८, परम ऐश्वर्यशाली होनेसे परर्द्धि ८९, स्वप्रकाश ज्ञानरूपसे परम स्पष्ट ९०, परमानन्दरूप होनेसे तुष्ट ९१, पूर्णत्वयुक्त होनेसे पुष्ट ९२ और शुभेक्षण ३९३ है। (५५)

उसमें योगिजन रमण करते हैं, इसलिये राम ९४, उसमें जगत्‌का ठहराव होता है, इसही निमित्त विराम ९५, रजोगुणरहित होनेसे विरज ९६, पथप्रदर्शक है, इसलिये मार्ग ९७, भक्तजन उसे निज हृदयमें लेजासकते हैं, इसलिये नेय ९८, भक्तोंका अल्प उपहार

वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः ॥ ५६ ॥
वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः ।
हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः ॥ ५७ ॥
ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः ।
उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः ॥ ५८ ॥
विस्तारः स्थावरः स्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम् ।
अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः ॥ ५९ ॥

भी ग्रहण करता है, इसलिये नय ९९, अभक्तोंका दिया हुआ अधिक उपहार भी नहीं लेता, इस ही निमित्त अनय ४००, युद्ध, दान, सत्य और दया विषयमें वीर १, शक्तिमान् पुरुषोंके बीच श्रेष्ठ है, इसलिये शक्तिमतां श्रेष्ठ २, धर्म वर्णन करता है, इसलिये धर्म ३ और धर्मज्ञोंके बीच श्रेष्ठ है, इसलिये धर्मविदुत्तम ४०४ है। (५६)

जिनका कुण्ठा अर्थात् प्रतिघात विगत हुआ है, वैसे भक्तोंका बोध्य है, इसलिये वैकुण्ठपुरुष ५, वेदरूप शब्दही उसका प्राण है, इसही हेतु प्राण ६, ब्रह्माको वेददान करनेसे प्राणद ७, प्रकृष्टरूपसे स्तवनीय है, इसलिये प्रणव ८, व्यापक होनेसे पृथु ९, समस्त गर्भनिबन्धनसे हिरण्यगर्भ १०, शत्रुघ्न ११, व्यापक होनेसे व्याप्त १२, सर्वत्र गमन करता है, इसलिये वायु १३, इन्द्रियजनित ज्ञान उसे प्रकाशित नहीं कर सकता, इसलिये अधोक्षज १४ वह ऋतुओंके बीच वसन्त है, इसलिये ऋतु १५, सुदर्शन १६, काल १७, सबसे श्रेष्ठ स्थानमें निवास करता है, इसही निमित्त परमेष्ठी १८, मुमुक्षुजन अन्य देवताओंको परित्याग करके उसे ग्रहण करते हैं, इसलिये परिग्रह १९, सदाशिवरूपसे उग्र २०, जो जैसा कर्म है, उसमें उस ही भांति पूरी रीतिसे वास करता है, इसलिये संवत्सर २१, सत्कर्मोंमें आलसरहित होनेसे दक्ष २२, जगतको विश्राम स्थान है, इसलिये विश्राम २३, और सब विषयोंमें सरल होनेसे विश्वदक्षिण ४२४ है।(५७-५८)

उसमें जगत् विस्तीर्ण होरहा है, इस ही निमित्त विस्तार २५, सर्वत्र स्थितिशील होनेसे स्थावर २६, स्थिर होनेसे स्थाणु २७, प्रमाता सत्यवादी है, इसलिये प्रमाण २८, अव्ययबीज २९, प्रार्थनीय होनेसे अर्थ ३०, उससे बढके और कोई नहीं है, इस ही निमित्त अनर्थ ३१, आनन्दमय होनेसे महाकोश ३२, महाभोग ३३ और महाधन ४३४ है। (५९)

अनिर्विण्णः स्थविष्ठो भूर्धर्मयूपो महामखः।
नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः ॥ ६० ॥
यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतां गतिः।
सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ॥ ६१ ॥
सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत्।
मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः ॥ ६२ ॥
स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत्।
वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ॥ ६३ ॥
धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम्।

भक्तोंके कार्यमें निर्वेदयुक्त नहीं होता, इसलिये अनिर्विण्ण ३५, अत्यन्त स्थूल होनेसे स्थविष्ठ ३६, सत्तारूपसे धर्म-यूप सदृश है, इसलिये धर्मयूप ३७, सबकाही महान् सखा है, इसलिये महासख ३८, सुधाकर सदृश आनन्द-जनक है, इसही हेतु नक्षत्रनेमि ३९, उसके जन्मसमयमें श्रेष्ठ नक्षत्र रहनेसे नक्षत्री ४०, अल्प पूजा करनेसे ही अपराध क्षमा करता है, इसलिये क्षम ४१, भक्तोंके दुःखी होनेपर वह भक्त-की भांति कृश होता है, इसही हेतु क्षाम ४२, उसकी सब चेष्टा पूर्ण रीतिसे सिद्ध होती है, इसलिये समीहन ४३, राजसूय यज्ञमें पूज्य होनेसे यज्ञ-इज्य ४४, उसकी महती पूजा हुआ करती है, इस हेतु महेज्य ४५, अनेक कार्य करता है, इसलिये क्रतु ४६, सत्रकी भांति आचरण करता अथवा सत्रयाग स्वरूप है, इसही निमित्त सत्र ४७, साधुओंकी गति है, इसी लिये सतांगति ४८, सर्वदर्शी ४९, विमुक्तात्मा ५०, सर्वज्ञ ५१ और वृत्तिभिन्न ज्ञानरूप होनेसे उत्तम ज्ञान ४५२ है। (६०-६१)

सुव्रत ५३, सुमुख ५४, सूक्ष्म ५५ सुघोष ५६, सुखद ५७, सुहृत् ५८, मनोहर ५९ जितक्रोध ६०, वीरबाहु ६१, विदारण ६२, भक्तोंको सुषा-त्मा समर्पण करनेसे स्वापन ६३, स्ववश, ६४, व्यापी ६५, अनेकोंकी आत्मा होनेसे नैकात्मा ६६, विविध कर्मोंको करता है, इसलिये नैककर्मकृत् ६७, गऊ और गोपियोंको वत्स दान करनेसे वत्सर ६८, भक्तोंके विषयमें स्नेहवान् होनेसे वत्सल ६९, चरानेके लिये उसके बछडे थे, इसलिये वत्सी ७०, रत्नगर्भ ७१ और धनेश्वर ४७२ है। (६२—६३)

धर्मकी रक्षा करता है, इसलिये धर्म-गुप् ७३, धर्मवेत्ता होनेसे धर्मकृत् ७४,

अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः ॥ ६४ ॥
गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः ।
आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद्गुरुः ॥ ६५ ॥
उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।
शरीरभूतभृद्भोक्ता कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः ॥ ६६ ॥
सोमपोऽमृतपः (५००) सोमः पुरुजित्पुरुसत्तमः ।
विनयो जयः सत्यसन्धो दाशार्हः सात्वतां पतिः ॥६७॥
जीवो विनयिता साक्षी मुकुन्दोऽमितविक्रमः ।
अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोन्तकः ॥ ६८ ॥

धर्मी ७५, सूक्ष्मरूपसे सत् ७६, स्थूलरूपसे असत् ७७, विनाशी होनेसे क्षर ७८, अविनाशी भावसे अक्षर ७९, ज्ञातृरूप नहीं है; किन्तु ज्ञानरूप है; इसलिये अविज्ञाता सहस्रांशु ८०, विधाता, उसके सब लक्षण पर्याप्त हैं, इसलिये कृतलक्षण ८१, सब उसका नामस्वरूप है, इसलिये गभस्तिनेमि ८२, सत्त्वस्थ ८३, अत्यन्त विक्रमशील होनेसे सिंह ८४, भूतोंके उत्सवका ईश्वर है, इसही निमित्त भूतमहेश्वर ८५, आदिदेव ८६, महादेव ८७, देवेश ८८ और देवभृद् गुरु ४८९ है। (६४–६५)

सबसे श्रेष्ठ होनेसे उत्तर ९०, गोपति, ९१ रक्षाकर्त्ता होनेसे गोप्ता ९२, ज्ञानगम्य ९३, पुरातन ९४, शरीररूप भूतगणको धारण करता है, इसलिये शरीरभूतभृत् ९५, भोक्ता ९६, सुग्रीवको परम ऐश्वर्यशाली किया था; इसलिये कपीन्द्र ९७, वह अनेक लोगोंके निकट सरल है इसलिये भूरिदक्षिण ९८, रघुनाथ रूपसे अनेक यज्ञ करके सोमपान किया था, इसही निमित्त सोमप ९९, अमर गणकी रक्षा करनेसे अमृतप ५००, चन्द्रमाकी भांति आनन्दजनक होनेसे सोम १, अनेक पुरुषोंको जीतनेसे पुरुजित् २, पुरुषोत्तम ३, विशेष नीतिसंपन्न होनेसे विनय, ४, क्रोधादिका जय करनेसे जय ५, सत्यसन्ध ६, दानपात्र अथवा दशार्हवंशमें उत्पन्न होनेसे दाशार्ह ७ और यादवोंका प्रभु है, इस ही निमित्त सात्वतांपति ५०८ है। (६६–६७)

जीव ९, विनयी लोगोंका विनयिता साक्षी है, इसलिये विनयिता-साक्षी है, १०, मुक्तिदाता होनेसे मुकुन्द ११, अमितविक्रम १२, देवताओंको निधिकी भांति उपादेय है, इसलिये अम्भोनिधि १३, श्रीमान् अनन्त बलभद्रमें उसका चित्त सन्निविष्ट है, इसही निमित्त अन-

अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः ।
आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः ॥ ६९ ॥
महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः ।
त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृङ्गः कृतान्तकृत् ॥ ७० ॥
महावराहो गोविन्दः सुषेणः कनकाङ्गदी ।
गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधरः ॥ ७१ ॥
वेधाः स्वाङ्गोऽजितः कृष्णो दृढः सङ्कर्षणोऽच्युतः ।
वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः ॥ ७२ ॥
भगवान्भगहा नन्दी वनमाली हलायुधः ।

न्तात्मा १४, महोदधिशय १५, अन्तक १६, अशुद्ध हृदयसे उत्पन्न नहीं होता, इसही लिये अज १७, महापूज्य होनेसे महार्ह १८, निज भक्तोंका चिन्तनीय होनेसे स्वाभाव्य १९, जितामित्र २०, प्रमोदन २१, आनन्द २२, नन्दन २३ स्वयं समृद्धि संपन्न होनेसे नन्द २४, सत्यधर्मा २५ और तीनों लोकोंके बीच गरुडके सहारे गमन करता है, इसलिये त्रिविक्रम ५२६ है। (६८-६९)

महर्षि २७, कपिलाचार्य २८, कृत-कर्मोंको जानता है, इसलिये कृतज्ञ २९ रामावतारमें मेदिनीपति ३०, त्रिपद, ३१, त्रिदशाध्यक्ष ३२, महत् प्रभुत्व-युक्त होनेसे महाशृङ्ग ३३, सिद्धान्त-कर्त्ता होनेसे कृतान्तकृत् ३४, लोकोत्तर वराह है, इसलिये महावराह ३५, गऊ चरानेसे गोविन्द ३६, सेनाके सहित भली भांति शत्रुयुद्धमें गमन करता है, इसही निमित्त सुषेण ३७, स्वर्णमय केयूरधारी होनेसे कनकाङ्गदी ३८, परम रहस्यरूपसे गुह्य ३९, गूढाभिप्राय निवन्धनसे गभीर ४०, दुष्प्रवेश होनेसे गहन ४१, इन्द्रियोंका अग्राह्य होनेसे गुप्त ४२ और चक्रगदाधर ५४३ है। (७०—७१)

भक्तोंका हितसाधन करता है, इस-लिये वेधा ४४, स्वभक्तजन उसके अङ्ग हैं, इसलिये स्वाङ्ग ४५, शत्रुगण उसे जीत नहीं सकते, इसही निमित्त अजित ४६, कृष्णवर्ण होनेसे कृष्ण ४७, समर्थ होनेसे दृढ ४८, पूर्णरीतिसे भक्तोंका दुःख कर्षण करता है इसलिये संकर्षण ४९, अच्युत ५५०, अपनेको वरण करनेसे वरुण ५१, वरुण लोकसे आगत होनेसे वारुण ५२, संसारवृक्षको छेदन करता अथवा भक्तजनोंका कल्पतरु है, इसही हेतु वृक्ष ५३, पुष्कराक्ष ५४, उन्नताचित्त होनेसे महामना ५५, समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य-

आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः ॥७३॥
सुधन्वा खण्डपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः ।
दिवस्पृक्सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः ॥ ७४ ॥
त्रिसामा सामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषक् ।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम्॥७५॥
शुभाङ्गः शान्तिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलेशयः ।
गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः ॥ ७६ ॥
अनिवर्ती निवृत्तात्मा संक्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः ।

विशिष्ट है, इसलिये भगवान् ५६, प्रलयकालमें ऐश्वर्य नष्ट करता है, इसलिये भगहा ५७, नित्यसुखी होनेसे आनन्दी ५८, वनमाली ५९, हलायुध ६०, अदितिका अपत्य होनेसे आदित्य ६१, ज्योतिसमूहमें कोटि सूर्य सदृश है, इसलिये ज्योतिरादित्य ६२, सहिष्णु ६३ और गतिसत्तम ५६४ है । (७२—७३)

सुधन्वा ६५, उसका परशु शत्रुओंको खण्ड खण्ड करता है, इसलिये खण्डपरशु ६६, विरोधियोंके विषयमें दारुण है, इसलिये दारुण ६७, धनदाता होनेसे द्रविणप्रद ६८, वामन अवतारमें द्युलोक आक्रमण करनेसे दिवस्पृक् ६९, सर्वदृक् ७०, वेदव्यास रूपसे उत्पन्न हुए इसलिये व्यास ७१, वाचस्पति ७२, अयोनिज ७३, वेदव्रतसमाख्यात नामक तीनों साम उसके प्रतिपादक हैं, इसलिये त्रिसामा ७४, वह ब्रह्मवित् रूपसे सामगान करता है, इसही निमित्त सामग ७५, परमानन्द रूप होनेसे निर्वाण ७६, अच्युतानन्द गोविन्द इत्यादि नामोंके उच्चारण करनेसे रोग नष्ट होता है, इसलिये भेषज ७७, संसारतारक विद्याका उपदेशक होनेसे भिषक् ७८, मोक्षके हेतु संन्यास किया करता है, इस ही निमित्त संन्यासकृत् ७९, संन्यासियोंको शान्तिका विषय उपदेश करता है, इसलिये शम ८०, सुखमें अनासक्त है, इसलिये शान्त ८१, प्रलयकालमें सब भूत उसमें निवास करते हैं, इसही निमित्त निष्ठा ८२ अविद्या निवृत्तिरूपसे शान्ति ८३ और पुनरावृत्तिरहित अवलम्ब होनेसे परायण ५८४ है । (७४—७५)

शुभाङ्ग ८५, शान्तिद ८६, स्रष्टा ८७, पृथ्वीतलमें आमोदयुक्त होनेसे कुमुद ८८, प्रलयकालमें जलमें शयन करता है, इस ही निमित्त कुवलेशय ८९ गौओंका हितकारी होनेसे गोहित ९०, पृथिव्यादिका पति होनेसे गोपति ९१, गोप्ता ९२, वर्महो उसका नेत्र है, इस-

श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः (६००) श्रीपतिः श्रीमतां वरः ॥७७॥
श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः।
श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः ॥ ७८ ॥
स्वक्षः स्वङ्गः शतानन्दो नन्दिर्ज्योतिर्गणेश्वरः।
विजितात्मा विधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥७९॥
उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतः स्थिरः।
भूशयो भूषणो भूतिर्विशोकः शोकनाशनः ॥ ८० ॥
अर्चिष्मानर्चितः कुम्भो विशुद्धात्मा विशोधनः।
अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥ ८१ ॥
कालनेमिनिहा वीरः शौरिः शूरजनेश्वरः।

लिये वृषभाक्ष ९३, धर्म ही उसे प्रिय है, इस ही हेतु वृषप्रिय ९४, कर्मोंसे निवृत्त नहीं होता, इस ही निमित्त अनिवर्ती ९५, विषयोंसे उसका चित्त निवृत्त हुआ है, इसलिये निवृत्तात्मा ९६, वेदोंके अर्थको गीतामें संक्षेप करनेसे संक्षेप्ता ९७, उसे स्मरण करनेसे पवित्रता होती है, इस हेतु क्षेमकृत् शिव ९८, श्रीवत्सवक्षा ९९, श्रीवास ६०० श्रीपति १ और श्रीमतांवर ६०२ है। (७६-७७)

श्रीद ३, श्रीश ४, श्रीनिवास ५, श्रीनिधि ६, कर्मके अनुसार श्रीप्रदान करनेसे श्रीविभावन ७, श्रीधर ८, श्रीकर ९, श्रेय १०, श्रीमान् ११, लोकत्रयाश्रय १२, उसके अक्ष अर्थात् इन्द्रियें उत्तम हैं, इस ही निमित्त स्वक्ष १३ सुन्दर अङ्गयुक्त होनेसे स्वङ्ग १४, अपरिमित आनन्द स्वरूप होनेसे शतानन्द १५, आनन्दित करनेसे नन्दी १६, ज्योतिर्गणेश्वर १७, विजितात्मा १८, कोई उसके अङ्ग विग्रह करनेमें समर्थ नहीं है, इसलिये विधेयात्मा १९, सत्कीर्ति २० और छिन्नसंशय २१ है। (७८-७९)

उदीर्ण २२, सर्वतश्चक्षु २३, उसका कोई ईश्वर नहीं है, इसलिये अनीश २४, सब समय सर्वस्थानोंमें व्याप्त रहनेसे शाश्वतस्थिर २५, सीतान्वेषणके समय समुद्रके तीर भूमिपर शयन करनेसे भूशय २६, सबको भूषित करनेसे भूषण २७, भूति २८, विशोक २९, शोकनाशन ३०, अर्चिष्मान् ३१, अर्चित कुम्भकी भांति उसमें सब प्रतिष्ठित है, इसलिये कुम्भ ३२, विशुद्धात्मा ३३, विशोधन ३४, अनिरुद्ध ३५, अप्रतिरथ ३६, प्रकृष्टधनशाली होनेसे प्रद्युम्न ३७, अमितविक्रम ३८, कालनेमि

त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः ॥८२॥
कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः ।
अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनंजयः ॥ ८३ ॥
ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः
ब्रह्मविद्ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥ ८४ ॥
महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः ।
महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः ॥ ८५ ॥
स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिः स्तोता रणप्रियः ।
पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥ ८६ ॥
मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः ।

नाम असुरको मारनेसे कालनेमिनिहा ३९, वि अर्थात् गरुडको चलानेसे वीर ४०, शूर अर्थात् वसुदेवके पुत्र होनेसे शौरि ४१, शूरजनेश्वर ४२, त्रिलोकात्मा ४३, त्रिलोकेश ४४, बडे केशोंसे युक्त है, इसलिये केशव ४५, केशी नाम दानवको मारनेसे केशिहा ४६ और पापोंको हरनेसे हरि ६४७है। (८०-८२)

कामनीय रूप होनेसे कामदेव ४८, भक्तोंकी वाञ्छा पूरण करनेसे कामपाल ४९, कामी ५०, कान्त ५१, वेदप्रणेता होनेसे कृतागम ५२, अनिर्देश्यवपु ५३, द्युलोक और भूलोकमें व्याप्त होनेसे विष्णु ५४, वीर ५५, अनन्त ५६, धनंजय ५७, तपस्या प्रभृतिके निमित्त हेतु है, इसलिये ब्रह्मण्य ५८, वेदकर्त्ता होनेसे ब्रह्मकृत् ५९, सृष्टिकर्त्ता होनेसे ब्रह्मा ६०, आत्मसंवेद्य ज्ञानस्वरूप है, इसलिये ब्रह्म ६१, तपकी वृद्धि करनेसे ब्रह्मविवर्द्धन ६२,तत्त्ववेत्ता होनेसे ब्रह्मवित् ६३, वेदप्रवर्त्तक होनेसे ब्राह्मण ६४, ब्रह्मतत्त्वयुक्त है, इसलिये ब्रह्मी ६५,जीवरूपसे मैं ही ब्रह्म हूं ऐसे ज्ञानविशिष्ट होनेसे ब्रह्मज्ञ ६६और ब्राह्मणगण उसे प्रिय हैं, इसलिये ब्राह्मणप्रिय ६६७ है। (८३—८४)

महाक्रम ६८, महाकर्मा ६९, महातेजा ७०, महोरग ७१, महाक्रतु ७२, महायज्वा ७३, महायज्ञ ७४, महाहवि ७५, स्तुतियोग्य होनेसे स्तव्य ७६, स्तवप्रिय ७७, गुणप्रतिपादक शब्दरूपसे स्तोत्र ७८, गुणकीर्त्तन क्रियारूपसे स्तुति ७९, स्तुतिकर्त्ता होनेसे स्तोता ८०, रणप्रिय ८१, पूर्ण ८२, पूरयिता ८३, पुण्य ८४,पुण्यकीर्ति ८५, अनामय ८६, मनोजव ८७, तीर्थकर ८८, सुवर्णरेता होनेसे वसुरेता ८९, धनदाता होनेसे वसुप्रद ९०, धनखण्डन

वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः ॥ ८७ ॥
सद्गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः (७००) ।
शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः ॥ ८८ ॥
भूतावासो वासुदेवः सर्वासुनिलयोऽनलः ।
दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः ॥ ८९ ॥
विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् ।
अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥ ९० ॥
एको नैकः सवः कः किं यत्तत्पदमनुत्तमम् ।
लोकबन्धुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः ॥ ९१ ॥

करता है, इसलिये वसुप्रद ९१, वसुदेवके पुत्र होनेसे वासुदेव ९२, मायासे स्वरूप आच्छादन करता है, इसलिये वसु ९३, सर्वत्र अविनाशी रूपसे उसका मन वसता है, इस ही निमित्त वसुमना ९४ और ब्रह्ममें कर्मफल अर्पित होनेसे हवि ६९५ है । (८५-८७)

सद्गति ९६, सत्कृति ९७, सर्वत्र प्रतीयमान अधिष्ठान रूपसे सत्ता ९८, उससे साधुओंको ऐश्वर्य मिलता है, इसलिये सद्भूति ९९, साधु भक्तोंके अभीष्ट होनेसे सत्परायण ७००, उसकी सारी सेना बलवान् है, इसलिये शूरसेन १, यदुश्रेष्ठ २, साधुओंका आश्रय होनेसे सन्निवास ३, यमुनाके उत्तम तटपर गोपालोंने उसे परिवेष्टन किया था, इसलिये सुयामुन ४, उसमें सर्वभूत निवास करते हैं, इसही निमित्त भूतावास ५, विशुद्ध सत्वमें अधिष्ठित होनेसे वासुदेव ६, सब प्राण प्रभृतिका आश्रय है, इस ही हेतु सर्वासुनिलय ७, उसके शक्ति सम्पदकी सीमा नहीं है, इसलिये अनल ८, दर्पहा ९, दर्पद, १०, दृप्त ११, दुर्द्धर १२, अपराजित १३, विश्वमूर्त्ति १४, महामूर्त्ति १५, दीप्तमूर्त्ति १६, अमूर्त्तिमान् १७, अनेकमूर्त्ति १८, अव्यक्त १९, शतमूर्त्ति २० और शतानन ७२१ है । (८८-९०)

स्वगत, सजातीय और विजातीय भेदरहित होनेसे एक २२, मायाके सहारे बहुरूप होनेसे नैक २३, उससे सोम उत्पन्न होता है, इसलिये यज्ञरूपसे सव २४, सुख अथवा ब्रह्म स्वरूपसे क २५, विचार्य होनेसे किं २६, भक्तोंके हितसाधनके हेतु उनके स्थानोंमें जाता है, इसलिये यत् २७, अनेक लीला फैलानेसे तत् २८, अनुत्तम आश्रय होनेसे अनुत्तमपद २९, लोकबन्धु ३०, लोकनाथ ३१, माधव ३२, भक्तवत्सल ३३, हिरण्यमय पुरुष-

सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।
वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः ॥ ९२ ॥
अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक् ।
सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः ॥ ९३ ॥
तेजोवृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृङ्गो गदाग्रजः ॥ ९४ ॥
चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः ।
चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ॥ ९५ ॥
समावर्तो निवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः ।
दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ॥ ९६ ॥

रूपसे सुवर्णवर्ण ३४, हेमाङ्ग ३५, वराङ्ग ३६, चन्दनाङ्गदी ३७, धर्मरक्षाके हेतु वीर असुरोंको मारनेसे वीरहा ३८, उसके समान कोई नहीं है, इसलिये विषम ३९, सब धर्मोंसे रहित होनेसे शून्य ४०, आशाहीन आप्तकाम होनेसे घृताशी ४१, निजरूपसे विचलित नहीं होता, इसलिये अचल ४२, प्राणी रूपसे चल ४३, अमानी ४४, मानद ४५, मान्य ४६, लोकस्वामी ४७, त्रिलोकधृक् ४८ सुमेधा ४९, गिरियज्ञमें इन्द्रमख निवारण करनेके लिये अन्नकूट भोक्ता रूपसे उत्पन्न होनेसे मेधज ५०, धन्य ५१, सत्यमेधा ५२, और शेषरूपसे धराधर ७५३ है। (९१-९३)

आदित्यरूपसे वर्षा करता है, इसलिये तेजोवृष ५४, द्युतिधर ५५, सर्वशस्त्र-भृतांवर ५६, भक्तोंके द्वारा उपहृत पूजा प्रकर्षरूपसे ग्रहण करता है, इसलिये प्रग्रह ५७, दण्डनीय लोगोंके विषयमें दण्डविधान करता है, इसलिये निग्रह ५८, भक्तोंपर अनुग्रह विषयमें विहस्त है, इस ही हेतु व्यग्र ५९, चतुःशृङ्ग मन्त्रवर्ण होनेसे नैकशृङ्ग ६०, गदनाम श्रीकृष्णका भ्राता है, उससे पहले जन्म लेनेसे गदाग्रज ६१, हिरण्यगर्भादि रूपसे चतुर्मूर्ति ६२, चतुर्बाहु ६३, चतुर्व्यूह ६४, चारों वेदोंका तात्पर्य विषय होनेसे चतुर्गति ६५, मन, बुद्धि, अहंकार और चित्तस्वरूप होनेसे चतुरात्मा ६६, चारों आश्रमके धर्मरूपसे चतुर्भाव ६७, चतुर्वेदवित् ६८ और जगत् रूपसे एकपात् ७६९ है। (९४-९५)

संसारचक्रको पूर्ण रीतिसे आवर्त्तन करता है, इसलिये समावर्त ७०, विषयोंसे उसका चित्त निवृत्त है, इसलिये निवृत्तात्मा ७१, दुर्जय ७२, दुरतिक्रम, ७३, दुर्लभ ७४, दुर्गम ७५ अत्यन्त

शुभाङ्गो लोकसारङ्गः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ।
इन्द्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः ॥ ९७ ॥
उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः ।
अर्को वाजसनः शृङ्गी जयन्तः सर्वविज्जयी ॥ ९८ ॥
सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः (८००) ।
महाह्रदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः ॥ ९९ ॥
कुमुदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पावनोऽनिलः ।
अमृताशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ॥ १०० ॥
सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः ।
न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थश्चाणूरान्ध्रनिषूदनः ॥ १०१ ॥

दुःखसे प्राप्त होता है, इसलिये दुर्ग ७६ दुरावास ७७, दुरारिहा ७८, शुभाङ्ग ७९, लोकसारङ्ग ८०, उसहीका यह सब उत्तम प्रपञ्च तन्यमान है, इसलिये सुतन्तु ८१, उक्त तन्तुकी वृद्धि करनेसे तन्तुवर्द्धन ८२, इन्द्र उसका कर्म है, इसलिये इन्द्रकर्मा ८३, महाकर्मा ८४, कृतकर्मा ८५ और चतुर्विध पुरुषार्थ प्रापणको उसका आगमन पर्याप्त है, इस लिये कृतागम ७८६ है। (९६-९७)

उससे जगत् उत्पन्न होता है, इसलिये उद्भव ८७, जगत्में अत्यन्त सौन्दर्यशाली होनेसे सुन्दर ८८, चिद्रूप शोभावान होनेसे सुन्द ८९, रत्न सदृश उसकी नाभि है, इसलिये रत्ननाभ ९० वेदरूपी नेत्रयुक्त है,इस लिये सुलोचन ९१, अर्चनीय होनेसे अर्क ९२, अन्नदान करता है, इसलिये वाजसन ९३, मत्स्यावतारमें उनको शृंग था, इसकी निमित्त शृङ्गी ९४, जयशील होनेसे जयन्त ९५, सर्ववित् ९६, जयी ९७, उसके अवयव सुवर्णयुक्त हैं, इसलिये सुवर्णबिन्दु ९८, अक्षोभ्य ९९, सर्ववागीश्वरेश्वर ८००, महाह्रद १, महारव होनेसे महागर्त २, महाभूत ३ और महानिधि ८०४ है। (९८—९९)

भूमण्डलमें आमोदित होता है, इसलिये कुमुद ५, कुन्दकी भांति स्वच्छफल दान करता है; इसही निमित्त कुन्दर ६, कुन्ददामकृत कौतुक रूपी होनेसे कुन्द ७, मेघकी भांति पापनाशन होनेसे पर्जन्य ८, पावन ९, पवन १०, अमृताश ११, अमृतवपु १२, सर्वज्ञ १३, सर्वतोमुख १४, नामगान नृत्यादिसे सहजहीमें प्राप्त होता है, इसलिये सुलभ १५, सुव्रत १६, सिद्ध १७, शत्रुजित् १८, शत्रुतापन १९, सब भूतोंको

सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः ।
अमूर्तिरनघोऽचिन्त्यो भयकृद्भयनाशनः ॥ १०२ ॥
अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान् ।
अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्धनः ॥१०३॥
भारभृत्कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः ।
आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः ॥१०४॥
धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः ।

नीचे रोक रखता है, इसलिये न्यग्रोध २०, अन्नादि रूपसे पोषण करता है, इसही निमित्त उदुम्बर २१, प्रपञ्चरूपसे विस्तीर्ण है, इसलिये अश्वत्थ २२ और चाणूरनामक आंध्रदेशीय कंसके मल्लका नाश किया था, इसही हेतु चाणूरान्ध्र-निषूदन ८२३ है। (१००-१०१)

सहस्रार्चि २४,काली, कराली,मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्ण,स्फुलिङ्गिनी और विश्वरुचिनामी सप्तजिह्वा विशिष्ट अग्निस्वरूप होनेसे सप्तजिह्व २५, सात समिधायुक्त होनेसे सप्तैधा २६, सूर्यरूपसे सप्तवाहन २७, घनमूर्त्तिरहित होनेसे अमूर्त्ति २८, निष्पाप है, इसलिये अनघ २९ अचिन्त्य ३०, अभक्तोंको भयभीत करता है, इसलिये भयकृत ३१ और भक्तोंका भय दूर करता है, इसलिये भयनाशन ८३२ है। (१०१-१०२)

सूक्ष्म होनेसे अणु ३३, वृद्धिशील होनेसे बृहत् ३४, कृश ३५, स्थूल ३६, कल्याणधाता होनेसे गुणभृत् ३७, परमार्थ होनेसे निर्गुण ३८, नाममात्रसे ही जगत्का उद्धार करता है, इसलिये महान् ३९, कोई उसे धारण नहीं कर सकता, इसलिये अधृत ४०, स्वमहिमामें प्रतिष्ठित है, इसलिये स्वधृत् ४१, उत्तम वेद उसके मुखसे निकलते हैं इस ही कारण स्वास्य ४२, उसका प्रथमवंश है, इसही निमित्त प्राग्वंश ४३, परीक्षितकी रक्षा करके पाण्डवोंकी वृद्धि करनेसे वंशवर्धन ४४, अनन्त रूपसे पृथ्वीका भार धारण करता है, इसलिये भारभृत् ४५, श्रुतिके तात्पर्य विषयी कृत होनेसे कथित ४६, चित्त-वृत्ति-निरोधयुक्त होनेसे योगी ४७, योगीश ४८, सर्वकामद ४९, संसार-रूपी वनमें विचरनेवाले जीवोंके विश्राम-स्थान होनेसे आश्रम ८५०, भक्त विरोधियोंको खेदित करनेसे श्रमण ५१, प्रलयकालमें प्रजासमूहका नाश करता है, इसलिये क्षाम ५२, उसके उत्तम छन्द संसारवृक्षके पत्ते हैं, इसलिये सुपर्ण ५३ और वायुको चलानेसे वायुवाहन ८५४ है। (१०३-१०४)

अपराजितः सर्वसहो नियन्ता नियमो यमः ॥ १०५ ॥
सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः ।
अभिप्रायः प्रियार्होऽर्हः प्रियकृत्प्रीतिवर्धनः ॥ १०६ ॥
विहायसगतिर्ज्योतिः सुरुचिर्हुतभुग्विभुः ।
रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः ॥ १०७ ॥
अनन्तो हुतभुग्भोक्ता सुखदो नैकदोऽग्रजः ।
अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः ॥ १०८ ॥
सनात्सनातनतमः कपिलः कपिरव्ययः ।

धनुर्द्धर ५५, धनुषके गुणदोषोंका जाननेवाला है, इसलिये धनुर्वेद ५६, दमनकारी होनेसे दण्ड ५७, मन्वादि-रूपसे प्रजा समूहको दमन किया था, इसही निमित्त दमयिता ५८, दण्डके फल दम्यनिष्ठ होनेसे दम ५९, अपरा-जित ६०, सर्वसह ६१, नियन्ता ६२, नियम ६३, यम ६४, सत्त्वगुणी होनेसे सत्त्ववान् ६५, प्राधान्य रूपसे स्थित है, इसही निमित्त सात्विक ६६, सत्य ६७, सत्यधर्मपरायण ६८, पुरु-षार्थकांक्षी पुरुषोंका अभिप्रेत होनेसे-अभिप्राय ६९, प्रियार्ह ७०, आसनादिसे पूज्य है, इस लिये अर्ह ७१, प्रियकृत् ७२, प्रीतिवर्द्धन ७३, वह आकाश में गमन करता है, इसही कारण विहाय-सगति ७४, द्युतिशील होनेसे ज्योति ७५, सुरुचि ७६, देवताओंके उद्देश्यसे दी हुई हवि भोजन करनेसे हुतभुक् ७७, विभु ७८, रस आदान करनेसे रवि ७९, विशेषरूपसे रुचिशील हैं, इसलिये विरोचन ८०, आकाशमें गमन करनेसे सूर्य ८१, जगत् की सृष्टिकर्त्ता होनेसे सविता ८२ और सूर्य उसका नेत्र है, इसलिये रविलोचन ८३ है। (१०५-१०७)

उसका अन्त नहीं है, इसही निमित्त अनन्त ८४, अग्निरूपसे हवनीय घृतादि भोजन करता है, इसही कारण हुतभुक् ८५, प्रकृतिका कार्यदर्शी होनेसे भोक्ता ८६, अभक्तोंका सुख खण्डन करता है, इसही हेतु सुखद ८७, अनेकवार बहुतेरे स्थानोंमें विविध भक्तोंको धन देता है, इसलिये नैकद ८८, हिरण्य-गर्भरूपसे अग्रज ८९, निर्वेदशून्य होनेसे अनिर्विण्ण ९०, साधुओंके विषयमें क्षमा प्रदर्शित करनेसे सदामर्षी ९१, सब लोकोंका अज्ञात कारण होनेसे लोकाधिष्ठान ९२, अत्यन्त शक्तिमान् होनेसे अद्भुत ९३, कालरूप होनेसे सनात् ९४, ब्रह्मादिकाभी कारण है, इसलिये सनातनतम ९५, कर्दम

स्वस्तिदः स्वस्तिकृत (९००) स्वस्ति स्वस्तिभुक् स्वस्तिदक्षिणः ॥१०९॥
अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः।
शब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः शर्वरीकरः ॥ ११० ॥
अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणां वरः।
विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ १११ ॥
उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः।
वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः ॥ ११२ ॥
अनन्तरूपोऽनन्तश्रीर्जितमन्युर्भयापहः।
चतुरस्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः ॥११३॥

प्रजापतिके द्वारा देवहूतीके गर्भसे कपिल रूपसे उत्पन्न हुए, इसलिये कपिल ९६, वराहश्रेष्ठ रूपसे कपि ९७, जगत् उसमें लीन होता है, इसलिये अव्यय ९८, स्वस्तिद ९९, अभक्त जनोंका स्वस्ति छेदन करता है, इस ही निमित्त स्वस्तिकृत् ९००, कल्याण-रूप होनेसे स्वस्ति १, भक्तजनोंका मङ्गल पालन करता है, इसलिये स्वस्तिभुक् २, कल्याण विषयमें अनुकूल रहता है, इसही निमित्त स्वस्ति ३ और दक्षिण ९०४ है। (१०८-१०९)

अरौद्र ५, कुण्डली ६, चक्री ७, विक्रमी ८, ऊर्जितशासन ९, वचनसे उसका वर्णन नहीं होसकता, इसलिये शब्दातिग १०, शब्दोंका अपने सङ्ग एक तात्पर्य करता है, इसही निमित्त सब्दसह ११, संसारतापनाशक होनेसे शिशिर १२, शर्वरीकर १३, अक्रूर १४, मनोहर होनेसे पेशल १५, शीघ्र-कारी होनेसे दक्ष १६, दक्षिण १७ क्षमिणां-वर १८, विद्वत्तम १९, वीतभय २०, पुण्यश्रवणकीर्त्तन २१, संसारसे उत्तीर्ण करता है, इसलिये उत्तारण २२, पापोंको नाश करनेसे दुष्कृतिहा २३, पुण्य करता है वा कहता है, इस-लिये पुण्य २४, दुःस्वप्ननाशन २५, संसारकी विविधगति हरनेसे वीरहा २६, रक्षा करता है, इसलिये रक्षण २७, विद्या विनय वृद्धिके निमित्त वर्त्तमान है, इसलिये सन्त २८, जीवित रखता है, इसलिये जीवन २९ और विश्वव्यापक होनेसे पर्यवस्थित ९३० है। (११०-११२)

अनन्तरूप ३१, अनन्तश्री ३२, जितमन्यु ३३, भयापह ३४, समवेत होनेसे चतुरस्र ३५, गम्भीरचित्त है, इसही निमित्त गभीरात्मा ३६, विविध-फल दान करता है, इसलिये विदिश ३७, विशेष रूपसे आदेश करता है, इसलिये व्यादिश ३८, वेदरूपसे आदेश-

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिराङ्गदः।
जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रमः ॥ ११४ ॥
आधारनिलयोऽधाता पुष्पहासः प्रजागरः।
ऊर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः ॥ ११५ ॥
प्रमाणं प्राणनिलयः प्राणभृत्प्राणजीवनः।
तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः ॥ ११६ ॥
भूर्भुवःस्वस्तरुस्तारः सविता प्रपितामहः।
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः ॥ ११७ ॥
यज्ञभृद्यज्ञकृद्यज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः।
यज्ञान्तकृद्यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च ॥ ११८ ॥

कर्त्ता है, इसही निमित्त दिश ३९, अनादि पृथ्वीकी भांति सबका अवलम्ब है, इसलिये भू ४०, पृथ्वीकी शोभा है, इसलिये सुशोलक्ष्मी ४१, सुवीर ४२, रुचिराङ्गद ४३, उसहीसे प्रद्युम्न प्रभृतिकी उत्पत्ति हुई है, इसलिये जनन ४४, जन्ममात्रसेही आदि है, इसलिये जनजन्मादि ४५, भयका हेतु होनेसे भीम ४६ और भीमपराक्रम ९४७ है। (११३-११४)

भौतिकाश्रय महाभूतोंका आधार है, इसलिये आधारनिलय ४८, उसका कोई भी धारक नहीं है, इसही हेतु अधाता ४९, पुष्पकी भांति उसकी हांसी आनन्दजनक है, इसलिये पुष्पहास ५०, प्रकृष्ट जागरणविशिष्ट होनेसे प्रजागर ५१, ऊर्ध्वग ५२, सत्पथाचार ५३, प्राणद ५४, प्रणव ५५, भक्तोंके सहित व्यवहार करता है, इसलिये पण ५६, यादवोंमें मर्यादारूप होनेसे प्रमाण ५७, जीवोंका अवलम्ब है, इसलिये प्राणनिलय ५८, प्राणभृत् ५९, प्राणजीवन ६०, अबाधित सत्यस्वरूप होनेसे तत्त्व ६१, तत्त्ववित् ६२ एकात्मा ६३, जन्म ६४, मृत्यु ६५, जरातिग ६६, भूलोक भुवर्लोक और स्वर्ग लोकमें कल्पवृक्षकी भांति अभीष्टप्रद है, इसलिये भूर्भुवःस्वस्तरु ६७, भक्तोंको तारनेसे तार ६८, सर्व साधारण रूपसे पिता है, इसलिये सविता ६९, पितामहका पिता है, इसलिये प्रपितामह ७०, पूज्य है, इसलिये यज्ञ ७१, यज्ञपति ७२, यजमान रूपसे यज्वा ७३, यज्ञाङ्ग ७४ और वह यज्ञसे प्राप्त होता है, इसलिये यज्ञवाहन ९७५ है। (११५-११७)

यज्ञभृत् ७६, यज्ञकृत् ७७, यज्ञी ७८, यज्ञभुक् ७९, युधिष्ठिरका यज्ञ अनेक

आत्मयोनिः स्वयं जातो वैखानः सामगायनः ।
देवकीनन्दनः स्रष्टा क्षितीशः पापनाशनः ॥ ११९ ॥
शङ्खभृन्नन्दकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ।
रथाङ्गपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः ।
सर्वप्रहरणायुध ओं नम इति (१०००) ॥ १२० ॥
इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः ।
नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम् ॥ १२१ ॥
य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ।
नाशुभं प्राप्नुयात्किंचित्सोऽमुत्रेह च मानवः ॥१२२॥
वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥१२३॥
धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात् ।
कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी प्राप्नुयात्प्रजाम् ॥१२४॥
भक्तिमान्यः सदोत्थाय शुचिस्तद्गतमानसः ।

उपायसे सिद्ध कराया; इसलिये यज्ञ-साधन ८०, यज्ञान्तकृत् ८१, यज्ञगुह्य ८२, उसहीसे सब प्राणी भक्षण करते हैं, इसलिये अन्न ८३, भोक्ता, होनेसे अन्नाद ८४, आत्माही उसकी योनि अर्थात् उपादान कारण है, इसलिये आत्मयोनि ८५, स्वयंजात ८६, स्वनसंवलित होनेसे वैखान ८७, सामगायन ८८, देवकीनन्दन ८९, स्रष्टा ९०, क्षितीश ९१, पापनाशन ९२, शङ्खभृत् ९३, नन्दकनाम खड्गधारी होनेसे नन्दकी ९४, चक्री ९५, शार्ङ्गधन्वा ९६, गदाधर ९७, रथाङ्गपाणि ९८, अक्षोभ्य ९९, सर्वप्रहरणायुध १००० ॐ नमः। (११८—१२०)

यह कीर्त्तनीय महात्मा केशवका दिव्य सहस्रनाम अशेष रूपसे वर्णित हुआ। जो मनुष्य सदा इसे सुनता, सुनाता वा कहता है; उसे इस लोक अथवा परलोकमें कुछभी अशुभ प्राप्त नहीं होता। ब्राह्मण इसे पाठ करनेसे वेदान्तपारदर्शी होता, क्षत्रियको विजय प्राप्त होती, वैश्य धनसम्पन्न होता और शूद्रको सुख मिलता है। धर्मार्थी मनुष्य धर्म लाभ करते, अर्थार्थी पुरुषोंको अर्थलाभ हुआ करता है। कामीजनोंको काम प्राप्त होता और प्रजार्थी लोगोंको प्रजा प्राप्त हुआ करती है। (१२१-१२४)

जो भक्तिमान् पुरुष सदा उठके प-

सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत्प्रकीर्तयेत् ॥ १२५ ॥
यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च ।
अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥१२६॥
न भयं क्वचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विन्दति ।
भवत्यरोगो द्युतिमान्बलरूपगुणान्वितः ॥ १२७ ॥
रोगार्तो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ॥ १२८ ॥
दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥ १२९ ॥
वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥ १३० ॥
न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥ १३१ ॥
इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।
युज्येतात्मसुखक्षान्तिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः ॥१३२ ॥
न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।

वित्र और तद्गतचित्त होकर वासुदेवका यह सहस्रनाम पाठ करते हैं, उन्हें विपुल यश, स्वजनोंके निकट प्रधानता, अचला लक्ष्मी और उत्तम कल्याण प्राप्त होता है, उन्हें किसी स्थानमें भय नहीं होता, वीर्य और तेज लाभ करते, अरोगी, द्युतिमान् और बलरूपसे युक्त होते हैं, रोगार्त्त पुरुष इसे सुननेसे रोगरहित होता और बद्ध मनुष्य कारागारसे छूट जाते हैं। भीत मनुष्य भयसे और विपद्ग्रस्त आपदोंसे मुक्त हुआ करते हैं; मनुष्य भक्तियुक्त होकर सदा पुरुषोत्तमका इन्हीं सहस्रनामोंके सहारे स्तव करनेसे शीघ्र ही क्लेशोंसे छूटता है और वासुदेवका आश्रय करने और वासुदेवपरायण होनेसे सब पापोंसे रहित तथा पवित्रचित्त होकर ब्रह्मपद पाता है। (१२५–१३०)

वासुदेवके भक्तोंको कदाचित् अशुभ नहीं होता और न उन्हें जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधिका भय होता है। जो लोग श्रद्धा और भक्तिपूर्वक इस स्तवका पाठ करते हैं, वे आत्मसुख, क्षमा, श्री, धृति, स्मृति और कीर्त्तियुक्त होते हैं। पुरुषोत्तममें भक्तियुक्त पुण्यवान् पुरुषोंको

भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥ १३३ ॥
द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः ।
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ॥ १३४ ॥
ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥ १३५ ॥
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः ।
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ॥ १३६ ॥
सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्प्यते ।
आचारः प्रथमो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥ १३७ ॥
ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः ।
जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥ १३८ ॥
योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पादि कर्म च ।
वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत्सर्वं जनार्दनात् ॥१३९॥
एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः ।
त्रीन् लोकान्व्याप्य भूतात्मा भुङ्क्ते विश्वभुगव्ययः ॥१४०॥
इमं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम् ।

क्रोध, मत्सर, लोभ और अशुभ बुद्धि नहीं होती। चन्द्र, सूर्य, स्वर्ग और नक्षत्रोंके सहित आकाशमण्डल, सब दिशा तथा समुद्र महानुभाव वासुदेवके वीर्यसे विधृत होरहा है। सुरासुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और उरगोंके सहित सचराचर जगत् श्रीकृष्णके वशवर्ती होकर विद्यमान है। इन्द्रियें, मन, बुद्धि, सत्त्व, तेज, बल, धृति, शरीर, जीव, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ सभी वासुदेवमय हैं। (१३१—१३६)

सब शास्त्रोंकी अपेक्षा आचार ही पहले परिकल्पित होता है, आचारसे धर्मकी उत्पत्ति हुआ करती है और अच्युत वासुदेव ही धर्मके प्रभु हैं। ऋषि, पितर, देवता, महाभूत, सब धातु और स्थावरजंगमात्मक यह जगत् नारायणसे उत्पन्न हुआ है। योग, ज्ञान, सांख्ययोग, सब विद्या, शिल्पकर्म, वेद, शास्त्र, समस्त विज्ञान, ये सब जनार्दनसे प्रकट हुए हैं। भूतात्मा अव्यय एकमात्र विष्णु ही महद्भूत और अनेक रूपसे पृथक् भूत हैं, वही विश्वभुक् त्रिभुवनमें व्यापक होके भोग कर रहा है। जो मनुष्य कल्याण तथा सुखलाभकी इच्छा करे, वह वेदव्यासके कहे हुए

पठेद्य इच्छेत्पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥ १४१ ॥
विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ।
भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभवम् ॥१४२ [६९९४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे विष्णुसहस्रनामकथने एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४९ ॥

युधिष्ठिर उवाच- पितामह महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
किं जप्यं जपतो नित्यं भवेद्धर्मफलं महत् ॥ १ ॥
प्रस्थाने वा प्रवेशे वा प्रवृत्ते वाऽपि कर्मणि ।
दैवे वा श्राद्धकाले वा किं जप्यं कर्मसाधनम् ॥ २ ॥
शान्तिकं पौष्टिकं रक्षा शत्रुघ्नं भयनाशनम् ।
जप्यं यद्ब्रह्मसमितं तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥ ३ ॥

भीष्म उवाच- व्यासप्रोक्तमिमं मन्त्रं शृणुष्वैकमना नृप ।
सावित्र्या विहितं दिव्यं सद्यः पापविमोचनम् ॥ ४ ॥
शृणु मन्त्रविधिं कृत्स्नं प्रोच्यमानं मयाऽनघ ।
यं श्रुत्वा पाण्डवश्रेष्ठ सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥
रात्रावहनि धर्मज्ञ जपन्पापैर्न लिप्यते ।

भगवान् विष्णुका यह स्तोत्र पाठ करे, जो लोग जगत्की उत्पत्ति और प्रलयके कारण,जन्मरहित,कमलनयन, विश्वेश्वर देवका भजन करते हैं, उनकी कदापि पराभव नहीं होती। (१३७-१४२)

अनुशासनपर्वमें १४९ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५० अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्वशास्त्रविशारद महाप्राज्ञ पितामह ! कैसे जप्य मन्त्रको सदा जपनेसे महत् धर्मफल होता है ? प्रस्थानकाल, प्रवेशके समय अथवा कार्य आरम्भ होनेपर दैव वा श्राद्ध-कालमें कौनसा मन्त्र कार्य सिद्ध करता है ? जिसे जपनेसे शान्ति, पुष्टि, रक्षा, शत्रुहानि तथा भय विनाश होता है, और जो वेदतुल्य हो, आप उसे वर्णन कर सकते हैं। (१—३)

भीष्म बोले, हे महाराज ! तुम एकाग्रचित्त होकर यह व्यासदेवका कहा हुआ मन्त्र सुनो, यह सावित्री-द्वारा विरचित हुआ है और इसे पाठ करनेसे तुरन्तही पापसे छूटता है। हे अनघ ! हे पाण्डव ! जिसके सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटता है, मैं उस मन्त्रकी सारी विधि कहता हूं, तुम सुनो। हे धर्मज्ञ नृपवर ! रात्रि और

तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना नृप ॥ ६ ॥
आयुष्मान् भवते चैव यं श्रुत्वा पार्थिवात्मज ।
पुरुषस्तु सुसिद्धार्थः प्रेत्य चेह च मोदते ॥ ७ ॥
सेवितं सततं राजन् पुरा राजर्षिसत्तमैः ।
क्षत्रधर्मपरैर्नित्यं सत्यव्रतपरायणैः ॥ ८ ॥
इदमाह्निकमव्यग्रं कुर्वद्भिर्नियतैः सदा ।
नृपैर्भरतशार्दूल प्राप्यते श्रीरनुत्तमा ॥ ९ ॥

नमो वसिष्ठाय महाव्रताय पराशरं वेदनिधिं नमस्ये ।
नमोऽस्त्वनन्ताय महोरगाय नमोऽस्तु सिद्धेभ्य इहाक्षयेभ्यः॥१०॥
नमोस्त्वृषिभ्यः परमं परेषां देवेषु देवं वरदं वराणाम् ।
सहस्रशीर्षाय नमः शिवाय सहस्रनामाय जनार्दनाय ॥ ११ ॥

अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः ।
ऋतश्च पितृरूपश्च त्र्यम्बकश्च महेश्वरः ॥ १२ ॥
वृषाकपिश्च शम्भुश्च हवनोऽथेश्वरस्तथा ।
एकादशैते प्रथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ १३ ॥
शतमेतत्समाम्नातं शतरुद्रे महात्मनाम् ।

दिनमें जिसके सहारे मनुष्य पापपुञ्जसे लिप्त नहीं होता, उसे मैं तुम्हारे समीप कहता हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे नृपनन्दन ! जिसे सुननेसे पुरुष आयुष्मान् होता और सुसिद्धार्थ होकर इस लोक तथा परलोकमें प्रमुदित हुआ करता है । (४—७)

हे महाराज ! पहले समयमें क्षत्रधर्मनिष्ठ, सत्यधर्मपरायण सत्तम राजर्षियोंके द्वारा यह मन्त्र सेवित हुआ था । हे भरतश्रेष्ठ ! जो सब राजा संयत होकर अव्यग्रभावसे सदा इस मन्त्रका जप करते हैं, उन्हें उत्तम श्री प्राप्त हुआ करती है । महाव्रत वसिष्ठदेवको नमस्कार है, वेदनिधि पराशरको प्रणाम करके महोरग अनन्तदेवको नमस्कार है तथा इस लोकमें अक्षय सिद्धों और ऋषियोंको नमस्कार है । श्रेष्ठोंके बीच श्रेष्ठ देवताओंके भी देव, वरणीयोंके वरद शिवस्वरूप सहस्रशीर्ष, सहस्रनाम जनार्दनको नमस्कार है । (८-११)

अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, ऋत, पितृरूप, त्र्यम्बक, सुरेश्वर, वृषाकपि, शम्भु, हवनईश्वर, इन नामोंसे त्रिलोकेश्वर ग्यारह रुद्र प्रसिद्ध हैं, शतरुद्रिके बीच उन्हीं महानु-

अंशो भगश्च मित्रश्च वरुणश्च जलेश्वरः ॥ १४ ॥
तथा धातार्यमा चैव जयन्तो भास्करस्तथा ।
त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ॥ १५ ॥
इत्येते द्वादशादित्याः काश्यपेया इति श्रुतिः ।
धरो ध्रुवश्च सोमश्च सावित्रोऽथानिलोऽनलः ॥ १६ ॥
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।
नासत्यश्चापि दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनावपि ॥ १७ ॥
मार्तण्डस्यात्मजावेतौ संज्ञानासाविनिर्गतौ ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि लोकानां कर्मसाक्षिणः ॥ १८ ॥
अपि यज्ञस्य वेत्तारो दत्तस्य सुकृतस्य च ।
अदृश्याः सर्वभूतेषु पश्यन्ति त्रिदशेश्वराः ॥ १९ ॥
शुभाशुभानि कर्माणि मृत्युः कालश्च सर्वशः ।
विश्वेदेवाः पितृगणा मूर्तिमन्तस्तपोधनाः ॥ २० ॥
मुनयश्चैव सिद्धाश्च तपोमोक्षपरायणाः ।
शुचिस्मिताः कीर्तयतां प्रयच्छन्ति शुभं नृणाम् ॥ २१ ॥
प्रजापतिकृतानेताल्लोकान्दिव्येन तेजसा ।
वसन्ति सर्वलोकेषु प्रयताः सर्वकर्मसु ॥ २२ ॥
प्राणानामीश्वरानेतान्कीर्तयन्प्रयतो नरः ।

मान रुद्रगणके एक सौ नाम वर्णित हैं। अंश, भग, मित्र, जलेश्वर वरुण, धाता, अर्यमा, वैजयन्त, भास्कर, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु, ये द्वादश आदित्य कश्यपकी सन्तान कहाते हैं। धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास ये अष्टवसु वर्णित हुए हैं। नासत्य और दस्र दोनों अश्विनीकुमार विख्यात हैं, ये मार्त्तण्ड अर्थात् सूर्यके आत्मज, संज्ञाके नासिकासे बाहिर हुए हैं। इसके अनन्तर सब लोकोंके कर्मसाक्षी, यज्ञ और सुकृतकार्यवेत्ता, सब भूतोंमें अदृश्य रहके भी जो त्रिदशेश्वरगण शुभाशुभ कर्मोंको अवलोकन करते हैं, वेही मृत्युकाल, विश्वदेवगण, पितृगण, मूर्तिमान् तपोधनगण, तपस्या और मोक्षपरायण, शुचिस्मित सिद्ध मुनिगण, जो कीर्तनकारी मनुष्योंको शुभ सम्प्रदान करते हैं, जो दिव्यतेज प्रभावसे प्रजापतिके बनाये हुए लोकोंमें निवास करते हैं, सर्वलोकों और समस्त कार्योंमें

धर्मार्थकामैर्विपुलैर्युज्यते सह नित्यशः ॥ २३ ॥
लोकांश्च लभते पुण्यान्विश्वेश्वरकृताञ्छुभान् ।
एते देवास्त्रयस्त्रिंशत्सर्वभूतगणेश्वराः ॥ २४ ॥
नन्दीश्वरो महाकायो ग्रामणीर्वृषभध्वजः ।
ईश्वराः सर्वलोकानां गणेश्वरविनायकाः ॥ २५ ॥
सौम्या रौद्रा गणाश्चैव योगभूतगणास्तथा ।
ज्योतींषि सरितो व्योम सुपर्णः पतगेश्वरः ॥ २६ ॥
पृथिव्यां तपसा सिद्धाः स्थावराश्च चराश्च ह ।
हिमवान् गिरयः सर्वे चत्वारश्च महार्णवाः ॥ २७ ॥
भवस्यानुचराश्चैव हरतुल्यपराक्रमाः ।
विष्णुर्देवोऽथ जिष्णुश्च स्कन्दश्चाम्बिकया सह ॥२८॥
कीर्तयन्प्रयतः सर्वान्सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मानवानृषिसत्तमान् ॥ २९ ॥
यवक्रीतश्च रैभ्यश्च अर्वावसुपरावसू ।
औशिजश्चैव कक्षीवान्बलश्चाङ्गिरसः सुतः ॥ ३० ॥
ऋषिर्मेधातिथेः पुत्रः कण्वो बर्हिषदस्तथा ।
ब्रह्मतेजोमयाः सर्वे कीर्तिता लोकभावनाः ॥ ३१ ॥

जो प्रयत हुआ करते हैं, प्राणोंके ईश्वर इन सबके नामकीर्त्तन करनेसे मनुष्य सदा विपुल धर्मार्थ कामसे युक्त होता है और उसे विश्वेश्वरकृत शुभ लोक प्राप्त होते हैं। ये तैंतीस देवगण सब भूतोंके ईश्वर हैं, महाकाय नन्दीश्वर ग्रामणी, वृषभध्वज, गणेश्वर और विनायक सब लोकोंके ईश्वर हैं। (१३-२५)

सौम्यगण, रौद्रगण, योगभूतगण, समस्त ज्योतिष्, नदियें, आकाश, पतगेश्वर, सुपर्ण, पृथ्वीके समस्त सिद्ध तपस्वी, स्थावर-जङ्गम और हिमालय पर्वतके सहित चारों समुद्र, हरसदृश पराक्रमी शिवके अनुचर वृन्द, देवश्रेष्ठ विष्णु; जिष्णु और अम्बिकाके सहित स्कन्द, इन देवताओंको सावधान होके स्मरण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटता है। इसके अनन्तर माननीय ऋषिसत्तमोंका नाम कहता हूं, यवक्रीत, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, औशिज, कक्षीवान्, अङ्गिराके पुत्र बल, मेधातिथि और बर्हिषदके पुत्र कण्वऋषि, ये सब कोई ब्रह्मतेजमय और लोकभावन कहके वर्णित होते हैं। (२६—३१)

लभन्ते हि शुभं सर्वे रुद्रानलवसुप्रभाः ।
भुवि कृत्वा शुभं कर्म मोदन्ते दिवि दैवतैः ॥ ३२ ॥
महेन्द्रगुरवः सप्त प्राचीं वै दिशमाश्रिताः ।
प्रयतः कीर्तयेदेतान् शक्रलोके महीयते ॥ ३३ ॥
उन्मुचुः प्रमुचुश्चैव स्वस्त्यात्रेयश्च वीर्यवान् ।
दृढव्यश्चोर्ध्वबाहुश्च तृणसोमाङ्गिरास्तथा ॥ ३४ ॥
मित्रावरुणयोः पुत्रस्तथाऽगस्त्यः प्रतापवान् ।
धर्मराजर्त्विजः सप्त दक्षिणां दिशमाश्रिताः ॥ ३५ ॥
दृढेयुश्च ऋतेयुश्च परिव्याधश्च कीर्तिमान् ।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चादित्यसन्निभाः ॥ ३६ ॥
अत्रेः पुत्रश्च धर्मात्मा ऋषिः सारस्वतस्तथा ।
वरुणस्यर्त्विजः सप्त पश्चिमां दिशमाश्रिताः ॥ ३७ ॥
अत्रिर्वसिष्ठो भगवान्कश्यपश्च महानृषिः ।
गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः ॥ ३८ ॥
ऋचीकतनयश्चोग्रो जमदग्निः प्रतापवान् ।
धनेश्वरस्य गुरवः सप्तैते उत्तराश्रिताः ॥ ३९ ॥
अपरे मुनयः सप्त दिक्षु सर्वास्वधिष्ठिताः ।

ये सब रुद्र, अग्नि और वसुतुल्य प्रभाशाली मुनिगण शुभलाभ करते, ये भूलोकमें शुभकर्म करके द्युलोकमें देवताओंके सहित दिव्य लीला किया करते हैं। महेन्द्रके गुरु सप्तर्षि पूर्व दिशाको अवलम्बन कर रहे हैं, जो लोग सावधान होके इनका नाम लेते हैं, वे इन्द्रलोकमें निवास किया करते हैं। उन्मुचु, प्रमुचु, वीर्यवान् स्वस्त्यात्रेय, दृढव्य, ऊर्ध्वबाहु, तृणसोम, अङ्गिरा और मित्रावरुणके पुत्र प्रतापवान् अगस्त्य, ये सातों धर्मराजके पुरोहित होकर दक्षिण दिशाको अवलम्बन किये हैं। दृढेयु, ऋतेयु, कीर्तिमान् परिव्याध, आदित्यतुल्य एकत, द्वित और त्रित, अत्रिके पुत्र धर्मात्मा सारस्वत ऋषि ये सातों वरुणके पुरोहित पश्चिम दिशाको अवलम्बन कर रहे हैं। (३२—३७)

अत्रि, भगवान् वसिष्ठ, महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज कुशिकवंशोद्भव विश्वामित्र, ऋचीकके पुत्र उग्र और प्रतापशाली जमदग्नि, ये सातों धनेश्वर कुबेरके गुरु उत्तर दिशामें वास करते

कीर्तिस्वस्तिकरा नृणां कीर्तिता लोकभावनाः ॥ ४० ॥
धर्मः कामश्च कालश्च वसुर्वासुकिरेव च ।
अनन्तः कपिलश्चैव सप्तैते धरणीधराः ॥ ४१ ॥
रामो व्यासस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा च लोमशः ।
इत्येते मुनयो दिव्या एकैकः सप्त सप्तधा ॥ ४२ ॥
शान्तिस्वस्तिकरा लोके दिशां पालाः प्रकीर्तिताः ।
यस्यां यस्यां दिशि ह्येते तन्मुखः शरणं व्रजेत् ॥४३॥
स्रष्टारः सर्वभूतानां कीर्तिता लोकपावनाः ।
संवर्तो मेरुसावर्णो मार्कण्डेयश्च धार्मिकः ॥ ४४ ॥
साङ्ख्ययोगौ नारदश्च दुर्वासाश्च महानृषिः ।
अत्यन्ततपसो दान्तास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ ४५ ॥
अपरे रुद्रसङ्काशाः कीर्तिता ब्रह्मलौकिकाः ।
अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो लभते धनम् ॥ ४६ ॥
तथा धर्मार्थकामेषु सिद्धिं च लभते नरः ।
पृथुं वैन्यं नृपवरं पृथ्वी यस्याभवत्सुता ॥ ४७ ॥
प्रजापतिं सार्वभौमं कीर्तयेद्वसुधाधिपम् ।
आदित्यवंशप्रभवं महेन्द्रसमविक्रमम् ॥ ४८ ॥

हैं। दूसरे सप्तमुनि सब दिशामेंही अधिष्ठित हैं, ये मनुष्योंके कीर्ति और कल्याणकर तथा लोकभावन कहके वर्णित हुए हैं। धर्म, काम, काल, वसु, वासुकि, अनन्त और कपिल, ये सातों धरणीधर हैं। भृगुराम, व्यासदेव, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा और लोमश, ये दिव्य मुनि हैं। (३८-४२)

इन मुनियोंके बीच प्रत्येक सात सात प्रकारके हैं, लोकमें येही शान्ति और स्वस्ति कर रहे हैं, ये जिस दिशा में रहें, उसही ओर मुंह करके उनका शरणागत होवे, ये सब भूतोंके स्रष्टा और लोकपावन रूपसे विख्यात हैं। संवर्त्त, मेरुसावर्ण, धार्मिक मार्कण्डेय, सांख्य, योग, नारद और महर्षि दुर्वासा, ये अत्यन्त तपनिरत तथा दान्त होनेसे प्रसिद्ध हैं। दूसरे ब्रह्मलोकनिवासी मुनिगण रुद्रसङ्काश कहके वर्णित होते हैं। इनका नाम लेनेसे अपुत्र पुरुषको पुत्र लाभ होता, दरिद्र पुरुष धन पाते और धर्मार्थ काम विषयमें सिद्धिलाभ किया करते हैं। पृथिवी जिसकी कन्या हुई थी, उस वैन्य, नृपनन्दन प्रजापति

पुरूरवसमैलं च त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
बुधस्य दयितं पुत्रं कीर्तयेद्वसुधाधिपम् ॥ ४९ ॥
त्रिलोकविश्रुतं वीरं भरतं च प्रकीर्तयेत् ।
गवामयेन यज्ञेन येनेष्टं वै कृते युगे ॥ ५० ॥
रन्तिदेवं महादेवं कीर्तयेत्परमद्युतिम् ।
विश्वजित्तपसोपेतं लक्षण्यं लोकपूजितम् ॥ ५१ ॥
तथा श्वेतं च राजर्षिं कीर्तयेत्परमद्युतिम् ।
सगरस्यात्मजा येन प्लावितास्तारितास्तथा ॥ ५२ ॥
हुताशनसमानेतान्महारूपान्महौजसः ।
उग्रकायान्महासत्त्वान्कीर्तयेत्कीर्तिवर्धनान् ॥ ५३ ॥
देवानृषिगणांश्चैव नृपांश्च जगतीश्वरान् ।
साङ्ख्यं योगं च परमं हव्यं कव्यं तथैव च ॥ ५४ ॥
कीर्तितं परमं ब्रह्म सर्वश्रुतिपरायणम् ।
मङ्गल्यं सर्वभूतानां पवित्रं बहु कीर्तितम् ॥ ५५ ॥
व्याधिप्रशमनं श्रेष्ठं पौष्टिकं सर्वकर्मणाम् ।
प्रयतः कीर्तयेचैतान्कल्यं सायं च भारत ॥ ५६ ॥

सार्वभौम पृथु राजाका नाम लेवे। सूर्यवंशीय महेन्द्रसदृश पराक्रमी त्रिलोक-विख्यात इलापुत्र पुरूरवा, जो बुधका प्रियपुत्र है, उस वसुधाधिपका नाम लेवे। (४२-४९)

त्रिलोकविख्यात वीरवर भरतका नाम और जिन्होंने सत्ययुगमें गोमेध यज्ञ किया था, उस परम तेजस्वी महाराज रन्तिदेवका नाम कीर्चन करना योग्य है, विश्वविजयी, तपस्यायुक्त, सुलक्षण, लोकहितकर, महातेजस्वी, राजर्षि श्वेतका नाम लेवे। जिसने सगर सन्तानोंको प्लावित तथा उद्धृत किया है, उस परम तेजस्वी राजर्षि भगीरथ का नाम लेवे। अग्निसदृश महारूप-वान्, महातेजस्वी, उग्रकाय, महाबल, कीर्त्तिवर्द्धन नृपनन्दनगणका नाम कीर्त्तन करना योग्य है। (५०-५३)

देवगण, ऋषिगण, जगत्के नियन्ता नृपतिगण परम सांख्ययोग और हव्य कव्य परमश्रुतिपरायण परब्रह्मरूपसे व-र्णित होते हैं। हे भारत! सर्व भूतोंके म-ङ्गलकारी अनेक विषयोंको वर्णन किया है, यह सब व्याधियोंका नाश और सर्व कार्योंमें पुष्टिसाधन करता है, इसलिये सबेरे सन्ध्याके समय संयत होके इन्हें

एते वै यान्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च ।
एते विनायकाः श्रेष्ठा दक्षाः क्षान्ता जितेन्द्रियाः ॥५७॥
नराणामशुभं सर्वं व्यपोहन्ति प्रकीर्तिताः ।
साक्षिभूता महात्मानः पापस्य सुकृतस्य च ॥ ५८ ॥
एतान्वै कल्यमुत्थाय कीर्तयन् शुभमश्नुते ।
नाग्निचौरभयं तस्य न मार्गप्रतिरोधनम् ॥ ५९ ॥
एतान्कीर्तयतां नित्यं दुःस्वप्नो नश्यते नृणाम् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्वस्तिमांश्च गृहान् व्रजेत् ॥६०॥
दीक्षाकालेषु सर्वेषु यः पठेन्नियतो द्विजः ।
न्यायवानात्मनिरतः क्षान्तो दान्तोऽनसूयकः ॥ ६१ ॥
रोगार्तो व्याधियुक्तो वा पठन्पापात्प्रमुच्यते ।
वास्तुमध्ये तु पठतः कुले स्वस्त्ययनं भवेत् ॥ ६२ ॥
क्षेत्रमध्ये तु पठतः सर्वं सस्यं प्ररोहति ।
गच्छतः क्षेममध्वानं ग्रामान्तरगतः पठन् ॥ ६३ ॥
आत्मनश्च सुतानां च दाराणां च धनस्य च ।

स्मरण करे। येही रक्षा करते, येही वर्षा करते, येही दीप्ति लाभ करते हैं, येही वहन तथा सृजन करते हैं, येही विनायक, श्रेष्ठ, दक्ष, दान्त और जितेन्द्रिय हैं; इसलिये ये लोग कीर्त्तित होनेसे मनुष्योंके समस्त अशुभ दूर किया करते हैं, ये सब महात्मा पाप और पुण्यके साक्षी स्वरूप हैं, जो लोग भोरके समय उठके इन सब महात्माओंका नाम लेते, वे कल्याणपरम्परा उपभोग किया करते हैं। जो मनुष्य सदा इनका नाम लेते हैं, उन्हें अग्नि और चोरका भय नहीं होता, उनके मार्गको कोई नहीं रोकता तथा उनके दुःस्वप्न नष्ट हुआ करते हैं। (५४-६०)

जो ब्राह्मण संयत होकर समस्त दीक्षाकालमें इसे पाठ करता है, वह सब पापोंसे छूटता और स्वस्तिमान् होके गृहमें गमन करनेमें समर्थ होता है। न्यायवान्, आत्मनिरत, क्षान्त, दान्त, अनसूयक, रोगार्त्त अथवा व्याधियुक्त मनुष्य इसे पाठ करनेसे पापरहित हुआ करते हैं। गृहमें इसे पाठ करनेसे कुलका मङ्गल होता है, जो लोग क्षेत्रमें पाठ करते हैं, उनके क्षेत्रमें सब अंकुर उत्पन्न होते हैं, गमनशील मनुष्यके मार्गमें मङ्गल हुआ करता है, अन्य ग्राममें गया हुआ मनुष्य इसे पाठ

बीजानामोषधीनां च रक्षामेतां प्रयोजयेत् ॥ ६४ ॥
एतान्सङ्ग्रामकाले तु पठतः क्षत्रियस्य तु ।
व्रजन्ति रिपवो नाशं क्षेमं च परिवर्तते ॥ ६५ ॥
एतान्दैवे च पित्र्ये च पठतः पुरुषस्य हि ।
भुञ्जते पितरः कव्यं हव्यं च त्रिदिवौकसः ॥ ६६ ॥
न व्याधिश्वापदभयं न द्विपान्न हि तस्करात् ।
कश्मलं लघुतां याति पाप्मना च प्रमुच्यते ॥ ६७ ॥
यानपात्रे च याने च प्रवासे राजवेश्मनि ।
परां सिद्धिमवाप्नोति सावित्रीं ह्युत्तमां पठन् ॥ ६८ ॥
न च राजभयं तेषां न पिशाचान्न राक्षसात् ।
नाग्न्यम्बुपवनव्यालाद्भयं तस्योपजायते ॥ ६९ ॥
चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमस्य विशेषतः ।
करोति सततं शान्तिं सावित्रीमुत्तमां पठन् ॥ ७० ॥
नाग्निर्दहति काष्ठानि सावित्री यत्र पठ्यते ।
न तत्र बालो म्रियते न च तिष्ठन्ति पन्नगाः ॥ ७१ ॥
न तेषां विद्यते दुःखं गच्छन्ति परमां गतिम् ।

करते हुए आत्मसुतके सहारे धन, बीज और औषधियोंकी रक्षा करे; संग्राममके समयमें इस मन्त्रको जपनेवाले क्षत्रियोंके सब शत्रु विनष्ट होते हैं और उसका कल्याण हुआ करता है। देव और पितृ कार्यमें जो पुरुष इन सब नामोंका पाठ करता है, उसके पितर और देवगण हव्य कव्य भोजन किया करते हैं। (६०-६६)

जो लोग इन नामोंका पाठ करते, उन्हें व्याधि नहीं होती, श्वापदोंका भय नहीं रहता, द्विप और तस्करोंसे भय नहीं होता, पाप घटता तथा वे पापोंसे मुक्त हुआ करते हैं। जो लोग सावित्री पाठ करते हैं उनको यान, पात्र, प्रवास और राजगृहमें अत्यन्त श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त होती है; उनको राजा, पिशाच, राक्षस, अग्नि, उदक, वायु और सर्प इनसे भय नहीं होता। जो लोग उत्तम सावित्री पाठ करते हैं, वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र इन चारों वर्णों विशेष करके सदा आश्रमोंकी शान्ति किया करते हैं। जिस स्थानमें सावित्री पाठ की जाती है, उस स्थानमें अग्नि काष्ठोंको जलाता नहीं, मनुष्य बाल्यावस्थामें

ये शृण्वन्ति महद्ब्रह्म सावित्रीगुणकीर्तनम् ॥ ७२ ॥
गवां मध्ये तु पठतो गावोऽस्य बहुवत्सलाः।
प्रस्थाने वा प्रवासे वा सर्वावस्थां गतः पठेत् ॥ ७३ ॥
जपतां जुह्वतां चैव नित्यं च प्रयतात्मनाम्।
ऋषीणां परमं जप्यं गुह्यमेतन्नराधिप ॥ ७४ ॥
याथातथ्येन सिद्धस्य इतिहासं पुरातनम्।
पराशरमतं दिव्यं शक्राय कथितं पुरा ॥ ७५ ॥
तदेतत्ते समाख्यातं तथ्यं ब्रह्म सनातनम्।
हृदयं सर्वभूतानां श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ७६ ॥
सोमादित्यान्वयाः सर्वे राघवाः कुरवस्तथा।
पठन्ति शुचयो नित्यं सावित्रीं प्राणिनां गतिम् ॥७७॥
अभ्यासे नित्यं देवानां सप्तर्षीणां ध्रुवस्य च।
मोक्षणं सर्वकृच्छ्राणां मोचयत्यशुभात्सदा ॥ ७८ ॥
वृद्धैः काश्यपगौतमप्रभृतिभिर्भृग्वङ्गिरोऽत्र्यादिभिः।
शुक्रागस्त्यबृहस्पतिप्रभृतिभिर्ब्रह्मर्षिभिः सेवितम्।

नहीं मरता और पक्षिगण वास नहीं करते। जो लोग सावित्रीगुणकीर्त्तन-रूप महत् वेद ग्रहण करते हैं, उन्हें दुःख नहीं होता और वे परमगति पाते हैं, गौवोंके बीच सावित्री पाठ करनेसे गौवें बहुवत्सला होती हैं। प्रस्थानकाल वा प्रवासके समय जिस किसी अवस्थामें स्थित होके सर्वदा ही सावित्री पाठ करे। (६७-७३)

हे नरनाथ! जपपरायण, होमनिष्ठ और सदा सावधानचित्त ऋषियोंका यह परम जप्य तथा गुप्त मन्त्र है। पहले समयमें यह पराशर-सम्मत पुरातन इतिहास यथार्थ रीतिसे देवराजके निकट वर्णित हुआ था, वही इतिहास पूरी रीतिसे तुम्हारे समीप कहा गया। यह सनातन ब्रह्मस्वरूप, सर्वभूतोंका हृदय तथा सनातनी श्रुति है, चन्द्रवंशीय, सूर्यवंशीय, रघुवंशीय तथा कुरुवंशीय, राजा लोग सदा पवित्र होकर यह परम पवित्र प्राणियोंकी गति सावित्री पाठ किया करते हैं। देवताओंके निकट, सप्तर्षिमण्डल और ध्रुव नक्षत्रके समीप इसे पाठ करनेसे सब पाप विनष्ट होते हैं और इसका पाठ अशुभसे सदा विमुक्त करता है। (७४-७८)

काश्यप और गौतम प्रभृति वृद्धगण और भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, शुक्र, अग-

भारद्वाजमतं ऋचीकतनयैः प्राप्तं वसिष्ठात्पुनः।
सावित्रीमधिगम्य शक्रवसुभिः कृत्स्ना जिता दानवाः ॥ ७९ ॥
यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति विप्राय वेदविदुषे च बहुश्रुताय।
दिव्यां च भारतकथां कथयेच नित्यं तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव ८०
धर्मो विवर्धति भृगोः परिकीर्तनेन वीर्यं विवर्धति वसिष्ठनमोनतेन।
सङ्ग्रामजिद्भवति चैव रघुं नमस्यन्स्यादश्विनौ च परिकीर्तयतो न रोगः ८१
एषा ते कथिता राजन्सावित्री ब्रह्मशाश्वती।
विवक्षुरसि यच्चान्यत्तत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ ८२ ॥ [७०७६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे सावित्रीव्रतोपाख्याने पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

युधिष्ठिर उवाच— के पूज्याः के नमस्कार्याः कथं वर्तेत केषु च।
किमाचारः कीदृशेषु पितामह न रिष्यते ॥ १ ॥
भीष्म उवाच– ब्राह्मणानां परिभवः सादयेदपि देवताः।
ब्राह्मणांस्तु नमस्कृत्य युधिष्ठिर न रिष्यते ॥ २ ॥

स्त्य, बृहस्पति प्रभृति ब्रह्मर्षिगण सेवित ऋचीक पुत्रोंके द्वारा अधिगत यह भरद्वाजसम्मत सावित्री वसिष्ठके निकट पाके देवराज और वसुओंने दानवोंका दल नष्ट किया था। जो लोग वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंको सोनेके सींगसे युक्त एक सौ गऊ दान करते और दिव्य भारत कथाको नित्य पाठ किया करते हैं, उनके सदृश इसे पाठ करनेसे फल होता है। भृगुका नाम लेनेसे विशेष रीतिसे धर्मकी वृद्धि होती है, वसिष्ठको प्रणाम करनेसे वीर्यकी वृद्धि हुआ करती है, रघुको नमस्कार करनेसे पुरुष विजयी होता है और दोनों अश्विनीकुमारोंके नाम लेनेसे कोई रोग नहीं होता। हे महाराज! यह तुम्हारे निकट शाश्वती ब्रह्मसावित्री वर्णित हुई। हे भारत! तुम सब भी विवक्षु हो, इसलिये और जो सुननेकी इच्छा हो उसे कहो। मैं कहता हूं। (७९-८२)

अनुशासनपर्वमें १५० अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५१ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पूज्य कौन है? किसे नमस्कार करना चाहिये? किनके सङ्ग कैसा व्यवहार करना होता है? कैसे पुरुषके साथ कैसा आचार करनेसे मनुष्य हिंसित नहीं होता? (१)

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ब्राह्मणोंको परिभव करनेसे देववृन्द भी अवसन्न

ते पूज्यास्ते नमस्कार्या वर्तेथास्तेषु पुत्रवत् ।
ते हि लोकानिमान्सर्वान्धारयन्ति मनीषिणः ॥ ३ ॥
ब्राह्मणाः सर्वलोकानां महान्तो धर्मसेतवः ।
धनत्यागाभिरामाश्च वाक्संयमरताश्च ये ॥ ४ ॥
रमणीयाश्च भूतानां निधानं च धृतव्रताः ।
प्रणेतारश्च लोकानां शास्त्राणां च यशस्विनः ॥ ५ ॥
तपो येषां धनं नित्यं वाक्चैव विपुलं बलम् ।
प्रभवश्चैव धर्माणां धर्मज्ञाः सूक्ष्मदर्शिनः ॥ ६ ॥
धर्मकामाः स्थिता धर्मे सुकृतैर्धर्मसेतवः ।
यान्समाश्रित्य जीवन्ति प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ॥ ७ ॥
पन्थानः सर्वनेतारो यज्ञवाहाः सनातनाः ।
पितृपैतामहीं गुर्वीमुद्वहन्ति धुरं सदा ॥ ८ ॥
धुरि ये नावसीदन्ति विषये सद्गवा इव ।
पितृदेवातिथिमुखा हव्यकव्याग्रभोजिनः ॥ ९ ॥
भोजनादेव लोकांस्त्रींस्त्रायन्ते महतो भयात् ।

होते हैं, ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेसे पुरुष हिंसित नहीं होता । ब्राह्मण ही पूज्य हैं, वेही नमस्कारके योग्य हैं, उनके समीप पुत्रकी भांति वर्त्तमान रहे, वे मनीषि ब्राह्मण लोकोंको धारण कर रहे हैं । जो लोग धन परित्याग करके अभिराम अथवा जो वाक्यसंयममें रत हैं, वेही सब लोगोंके लिये महान् धर्मसेतु स्वरूप हैं। जो धृतव्रती, रमणीय और सेवकोंके निधान हैं तथा जो लोक शास्त्रोंके प्रणेता हैं, वेही यशस्वी होते हैं । (२–५)

तपस्या ही जिनका नित्यधन और वाक्य ही विपुल बल है, वे सूक्ष्मदर्शी धर्मज्ञ ब्राह्मण धर्मप्रभव हैं, धर्मकामना करनेवाले मनुष्य सदा सत्यधर्ममें स्थित रहते हैं, वे ही धर्मसेतुस्वरूप हैं, जिन्हें सम्यक् रीतिसे अवलम्बन करके चार प्रकारकी प्रजा जीवन व्यतीत करती है । सनातन यज्ञवाह ब्राह्मण लोग सबके नेता और मार्गप्रदर्शक हैं, वेही पितृपितामह सम्बन्धीय गुरुतर भारोंको सदा वहन करते हैं । साधुओंकी भांति जो लोग विषम भार उठानेमें अवसन्न नहीं होते; ब्राह्मण, देवता और अतिथि-गण जिनके मुखस्वरूप हैं, जो हव्य-कव्यका अग्रभाग भोजन करते और भोजनमात्रसे ही तीनों लोकोंको महत्

दीपः सर्वस्य लोकस्य चक्षुश्चक्षुष्मतामपि ॥ १० ॥
सर्वशिक्षाः श्रुतिधना निपुणा मोक्षदर्शिनः ।
गतिज्ञाः सर्वभूतानामध्यात्मगतिचिन्तकाः ॥ ११ ॥
आदिमध्यावसानानां ज्ञातारश्छिन्नसंशयाः ।
परावरविशेषज्ञा गन्तारः परमां गतिम् ॥ १२ ॥
विमुक्ता धूतपाप्मानो निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ।
मानार्हा मानिता नित्यं ज्ञानविद्भिर्महात्मभिः ॥१३॥
चन्दने मलपङ्के च भोजनेऽभोजने समाः ।
समं येषां दुकूलं च तथा क्षौमाजिनानि च ॥ १४ ॥
तिष्ठेयुरप्यभुञ्जाना बहूनि दिवसान्यपि ।
शोषयेयुश्च गात्राणि स्वाध्यायैः संयतेन्द्रियाः॥ १५ ॥
अदैवं दैवतं कुर्युर्दैवतं चाप्यदैवतम् ।
लोकानन्यान्सृजेयुस्ते लोकपालांश्च कोपिताः ॥ १६ ॥
अपेयः सागरो येषामपि शापान्महात्मनाम् ।
येषां कोपाग्निरद्यापि दण्डके नोपशाम्यति ॥ १७ ॥

भयसे परित्राण किया करते हैं, वेही सब लोकोंके दीपस्वरूप, वेही नेत्रवान् मनुष्योंके नेत्रस्वरूप हैं, समस्त शिक्षा और श्रुति ही जिनका धन है, वेही निपुण, मोक्षदर्शी, सब लोकोंके गतिज्ञ और अध्यात्मगतिचिन्ताशील हैं। (९-११)

जो आदि, मध्य और अन्तके ज्ञाता हैं, जिनके सब सन्देह दूर हुए हैं, जो परावरविशेषज्ञ हैं, वेही परमगति पाते हैं, जो लोग विमुक्त, पापरहित, निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह, मानार्ह और मानवित् महात्माओंके द्वारा सदा मानित हैं, जो चन्दन और मलपङ्कको समान जानते हैं, भोज्य और अभोज्य वस्तुमें तुल्य बुद्धि किया करते हैं, दुकूल और पटवस्त्रमें जिन्हें सम ज्ञान है, बहुत दिनोंतक विना भोजन किये जो लोग निवास कर सकते हैं, जो संयतेन्द्रिय होकर स्वशाखोक्त वेदपाठके समय शरीर सुखाया करते हैं, वे अदेवको देव कर सकते और देवको अदेव करनेमें समर्थ हैं, तथा क्रुद्ध होनेपर दूसरे लोकों वा लोकपालोंको उत्पन्न कर सकते हैं। (१२—१६)

जिन महात्माओंके शापसे समुद्र भी अपेय हुआ है, जिनकी कोपाग्नि आजतक भी दण्डकमें उपशान्त नहीं हुई;

देवानामपि ये देवाः कारणं कारणस्य च ।
प्रमाणस्य प्रमाणं च कस्तानभिभवेद् बुधः ॥ १८ ॥
येषां वृद्धश्च बालश्च सर्वः संमानमर्हति ।
तपोविद्याविशेषात्तु मानयन्ति परस्परम् ॥ १९ ॥
अविद्वान्ब्राह्मणो देवः पात्रं वै पावनं महत् ।
विद्वान्भूयस्तरो देवः पूर्णसागरसंनिभः ॥ २० ॥
अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत् ।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ॥ २१ ॥
श्मशाने ह्यपि तेजस्वी पावको नैव दुष्यति ।
हविर्यज्ञे च विधिवद् गृह एवातिशोभते ॥ २२ ॥
एवं यद्यप्यनिष्टेषु वर्तते सर्वकर्मसु ।
सर्वथा ब्राह्मणो मान्यो दैवतं विद्धि तत्परम् ॥ २३ ॥ [७०९९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ब्राह्मणप्रशंसायां एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥

युधिष्ठिर उवाच– कां तु ब्राह्मणपूजायां व्युष्टिं दृष्ट्वा जनाधिप ।
कं वा कर्मोदयं मत्वा तानर्चसि महामते ॥ १ ॥

जो देवताओंके भी देवता, कारणोंके भी कारण और प्रमाणोंके भी प्रमाण-स्वरूप हैं; कोई ज्ञानवान् मनुष्य उन ब्राह्मणोंको अभिभव करनेमें समर्थ नहीं होता; जिनके बीच वृद्ध, बालक सभी संमानके योग्य हैं; तप, विद्या विशेषके सहारे वे लोग परस्परमें संमान प्रदर्शित किया करते हैं। अविद्वान् ब्राह्मण भी देवस्वरूप और महत् पवित्र पात्र है, विद्वान् ब्राह्मण उससे अधिक देवतुल्य और पूर्णसमुद्र सदृश है। (१७-२०)

जिस प्रकार संस्कृत और असंस्कृत अग्नि महत् देवता है, उसी प्रकार अविद्वान् अथवा विद्वान् ब्राह्मण भी महत् देवतास्वरूप है। तेजस्वी अग्नि श्मशानमें भी दूषित नहीं होती, विधिपूर्वक हविर्यज्ञ और गृहके बीच विशेष रूपसे शोभित होती है। ब्राह्मण यदि सदा अनिष्ट कार्योंमें भी वर्त्तमान रहे, तौ भी सब भांतिसे माननीय है, उसे परम श्रेष्ठ देवता जानो। (२१—२३)

अनुशासनपर्वमें १५१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५२ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे महाप्राज्ञ नरनाथ! किस प्रकारके फलको देखके तथा कैसे

भीष्म उवाच— अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
पवनस्य च संवादमर्जुनस्य च भारत । ॥ २ ॥
सहस्रभुजभृच्छ्रीमान्कार्तवीर्योऽभवत्प्रभुः ।
अस्य लोकस्य सर्वस्य माहिष्मत्यां महाबलः ॥ ३ ॥
स तु रत्नाकरवतीं सद्वीपां सागराम्बराम् ।
शशास पृथिवीं सर्वां हैहयः सत्यविक्रमः ॥ ४ ॥
स्ववित्तं तेन दत्तं तु दत्तात्रेयाय कारणे ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य विनयं श्रुतमेव च ॥ ५ ॥
आराधयामास च तं कृतवीर्यात्मजो मुनिम् ।
न्यमन्त्रयत सन्तुष्टो द्विजश्चैनं वरैस्त्रिभिः ॥ ६ ॥
स वरैश्छन्दितस्तेन नृपो वचनमब्रवीत् ।
सहस्रबाहुर्भूयां वै चमूमध्ये गृहेऽन्यथा ॥ ७ ॥
मम बाहुसहस्रं तु पश्यन्तां सैनिका रणे ।
विक्रमेण महीं कृत्स्नां जयेयं संशितव्रत ॥ ८ ॥
तां च धर्मेण संप्राप्य पालयेयमतन्द्रितः ।
चतुर्थं तु वरं याचे त्वामहं द्विजसत्तम ॥ ९ ॥

कर्मोदयको जानकर आप उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं ? (१)

भीष्म बोले, हे भारत ! प्राचीन लोग इस विषयमें पवन और अर्जुनके संवादयुक्त यह पुराना इतिहास कहा करते हैं। माहिष्मती नगरीमें सहस्र-भुजयुक्त महाबली श्रीमान् कार्त्तवीर्य अर्जुन नाम राजा समस्त जगत्‌का प्रभु हुआ था। उस हैहयवंशीय सत्य-पराक्रमी वीरने रत्नाकरवती ससागराम्बरा सद्वीपा समस्त पृथ्वी मण्डलको शासित किया था, उन्होंने किसी कारणसे दत्तात्रेय मुनिको निज वित्त प्रदान किया था, उस कृतवीर्यात्मज अर्जुनने क्षत्रधर्म, विनय और प्रश्रयान्वित होकर उस मुनिकी आराधना की थी। मुनिवरने प्रसन्न होकर उसे तीन वर मांगनेको कहा, राजा मुनिके समीप तीन वर पानेकी बात सुनके बोला, कि सेनाके बीच मेरी हजार भुजा होवें और गृहमें इस विषयमें अन्यथा हो। (२—७)

युद्धमें सैनिकपुरुष मेरी हजार भुजा अवलोकन करें, मैं संशितव्रती होकर पराक्रमसे समस्त पृथ्वीमण्डल जय करूंगा और धर्मपूर्वक उसे पाकर

तं ममानुग्रहकृते दातुमर्हस्यनिन्दित ।
अनुशासन्तु मां सन्तो मिथ्योद्वृत्तं त्वदाश्रयम् ॥१०॥
इत्युक्तः स द्विजः प्राह तथास्त्विति नराधिपम् ।
एवं समभवंस्तस्य वरास्ते दीप्ततेजसः ॥ ११ ॥
ततः स रथमास्थाय ज्वलनार्कसमद्युतिम् ।
अब्रवीद्वीर्यसम्मोहात्को वाऽस्ति सदृशो मम ॥ १२ ॥
धैर्यैर्वीर्यैर्यशःशौर्यैर्विक्रमेणौजसाऽपि वा ।
तद्वाक्यान्ते चान्तरिक्षे वागुवाचाशरीरिणी ॥ १३ ॥
न त्वं मूढ विजानीषे ब्राह्मणं क्षत्रियाद्वरम् ।
सहितो ब्राह्मणेनेह क्षत्रियः शास्ति वै प्रजाः ॥ १४ ॥
अर्जुन उवाच-कुर्यां भूतानि तुष्टोऽहं क्रुद्धो नाशं तथा नये ।
कर्मणा मनसा वाचा न मत्तोऽस्ति वरो द्विजः ॥ १५ ॥
पूर्वो ब्रह्मोत्तरो वादो द्वितीयः क्षत्रियोत्तरः ।
त्वयोक्तौ हेतुयुक्तौ तौ विशेषस्तत्र दृश्यते ॥ १६ ॥

आलसरहित होके पालन करूंगा। हे द्विजसत्तम! मैं इन्हीं तीनों वरोंको मांगता हूं, परन्तु आपके समीप मैं और एक चौथा वर पानेके लिये प्रार्थना करता हूं। हे अनिंदित! आप मुझपर कृपा करके उसे प्रदान कर सकते हैं, यदि मैं आपके आश्रयमें रहके मिथ्या उद्धत होऊं, तो साधुगण मुझे अनुशासित करें। ब्राह्मणने राजाका ऐसा वचन सुनके उसे तथास्तु कहके वर दिया। इस ही प्रकार उस दीप्त तेजस्वी राजाने ब्राह्मणसे वर पाया था। (८-११)

अनन्तर वह राजा सूर्य और अग्नि-सदृश तेजस्वी रथपर चढकर वीर्य-संमोहके वशमें होकर कहने लगा, "धैर्य, वीर्य, यश, शौर्य, पराक्रम और तेजमें मेरे समान कौन है?" उसका वचन समाप्त होनेपर आकाशमें अशरीरिणी आकाशवाणी हुई। 'रे मूढ! क्या तू नहीं जानता, कि ब्राह्मण क्षत्रियसे श्रेष्ठ हैं; क्षत्रिय ब्राह्मणोंके सङ्ग मिलकर इस लोकमें प्रजाशासन करते हैं।' (१२—१४)

अर्जुन बोले, मैं सन्तुष्ट होनेपर सब भूतोंकी सृष्टि कर सकता और क्रुद्ध होनेपर सबको विनष्ट करनेमें समर्थ हूं, इसलिये वचन, मन और कर्मसे मेरी अपेक्षा ब्राह्मण श्रेष्ठ नहीं हैं। ब्राह्मणों का प्राधान्यवाद पूर्वपक्ष और क्षत्रियों-का आधिक्यवाक्य सिद्धान्तपक्ष है,

ब्राह्मणाः संश्रिताः क्षत्रं न क्षत्रं ब्राह्मणाश्रितम् ।
श्रिता ब्रह्मोपधा विप्राः खादन्ति क्षत्रियान्भुवि ॥१७॥
क्षत्रियेष्वाश्रितो धर्मः प्रजानां परिपालनम् ।
क्षत्राद् वृत्तिर्ब्राह्मणानां तैः कथं ब्राह्मणो वरः ॥ १८ ॥
सर्वभूतप्रधानांस्तान्भैक्षवृत्तीनहं सदा ।
आत्मसम्भावितान्विप्रान्स्थापयाम्यात्मनो वशे ॥१९॥
कथितं त्वनयाऽसत्यं गायत्र्या कन्यया दिवि ।
विजेष्याम्यवशान्सर्वान्ब्राह्मणांश्चर्मवाससः ॥ २० ॥
न च मां च्यावयेद्राष्ट्रात्त्रिषु लोकेषु कश्चन ।
देवो वा मानुषो वापि तस्माज्ज्येष्ठो द्विजादहम् ॥२१ ॥
अद्य ब्रह्मोत्तरं लोकं करिष्ये क्षत्रियोत्तरम् ।
न हि मे संयुगे कश्चित्सोढुमुत्सहते बलम् ॥ २२ ॥
अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा वित्रस्ताभून्निशाचरी ।
अथैनमन्तरिक्षस्थस्ततो वायुरभाषत ॥ २३ ॥
त्यजैनं कलुषं भावं ब्राह्मणेभ्यो नमस्कुरु ।

तुमने हेतुयुक्त दोनों वाक्य कहा, किन्तु उस विषयमें विशेष दीखता है। ब्राह्मण लोग क्षत्रियोंका आसरा किया करते हैं, परन्तु क्षत्रिय ब्राह्मणोंका आसरा नहीं करते, ब्राह्मण वेदाध्ययन छलनिबन्धनसे क्षत्रियोंको उपजीव्य किया करते हैं। (१५—१७)

प्रजासमूहके धर्म क्षत्रियोंके आश्रित हैं, क्षत्रियोंसे ब्राह्मणों की जीविका हुआ करती है, तब उन क्षत्रियोंसे ब्राह्मण किस प्रकार श्रेष्ठ हो सकते हैं? मैं सब प्राणियोंकी अपेक्षा उन प्रधान, भिक्षावृत्तिशाली ब्राह्मणोंको अपने अधीनमें स्थापित करूंगा। सुरलोकमें इस आकाशवाणीने असत्य वचन कहा है, मैं अवश्य तथा अजिनवस्त्रधारी ब्राह्मणोंको जय करूंगा। तीनों लोकोंके बीच ऐसा कोई देवता वा मनुष्य नहीं है, जो मुझे राज्यसे च्युत कर सके इसलिये मैं ब्राह्मणोंसे अवश्यही श्रेष्ठ हूं। (१८–२१)

मैं ब्राह्मणप्रधान लोकको क्षत्रिय-प्रधान करूंगा, क्यों कि युद्धके बीच मेरे बलको सहनेमें किसीकाभी उत्साह नहीं है, आकाशवाणी अर्जुनका वचन सुनके भयभीत हुई। अनन्तर आकाशसे वायुने उससे कहा, यह दूषितभाव परित्याग करके ब्राह्मणोंको नमस्कार

एतेषां कुर्वतः पापं राष्ट्रक्षोभो भविष्यति ॥ २४ ॥
अथ वा त्वां महीपाल शमयिष्यन्ति वै द्विजाः ।
निरसिष्यन्ति ते राष्ट्राद्धतोत्साहा महाबलाः ॥ २५ ॥
तं राजा कस्त्वमित्याह ततस्तं प्राह मारुतः ।
वायुर्वै देवदूतोऽस्मि हितं त्वां प्रब्रवीम्यहम् ॥ २६ ॥
अर्जुन उवाच- अहो त्वयाऽयं विप्रेषु भक्तिरागः प्रदर्शितः ।
यादृशं पृथिवी भूतं तादृशं ब्रूहि मे द्विजम् ॥ २७ ॥
वायोर्वा सदृशं किंचिद् ब्रूहि त्वं ब्राह्मणोत्तमम् ।
अपां वै सदृशं वह्नेः सूर्यस्य नभसोऽपि वा ॥ २८ ॥ [७१२७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादे ब्राह्मणमाहात्म्ये द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

वायुरुवाच— शृणु मूढ गुणान्कांश्चिद्ब्राह्मणानां महात्मनाम् ।
ये त्वया कीर्तिता राजंस्तेभ्योऽथ ब्राह्मणो वरः ॥ १ ॥
त्यक्त्वा महीत्वं भूमिस्तु स्पर्धयाङ्गनृपस्य ह ।
नाशं जगाम तां विप्रो व्यस्तम्भयत कश्यपः ॥ २ ॥
अजेया ब्राह्मणा राजन्दिवि चेह च नित्यदा ।
अपिबत्तेजसा ह्यापः स्वयमेवाङ्गिराः पुरा ॥ ३ ॥

करो; ब्राह्मणोंके विषयमें पापाचरण करनेसे राज्य नष्ट होगा अथवा महाबल ब्राह्मण लोगही तुम्हें शान्त करेंगे, वे तुम्हें उत्साहरहित करके राज्यसे निराश करेंगे। राजाने उनसे पूछा, तुम कौन हो? वायुने कहा, मैं देवदूत पवन तुमसे हित वचन कहता हूं। (२२—२६)

अर्जुन बोले, क्याही आश्चर्य है। इस समय तुम ब्राह्मणोंके विषयमें भक्ति अनुराग प्रदर्शित करके ब्राह्मणोंको पृथ्वीके सदृश कहते हो, ब्राह्मणगण वायुके सदृश वा जलके समान, किंवा अग्नितुल्य, सूर्य अथवा आकाशके सदृश हैं। (२७—२८)

अनुशासनपर्वमें १५२ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५३ अध्याय।

वायु बोले, हे मूढ! महानुभाव ब्राह्मणोंके कई एक गुण सुनो। हे महाराज! तुमने जिनका नाम लिया, ब्राह्मण लोग उनसेभी श्रेष्ठ हैं। पृथ्वी अङ्गराजके सङ्ग स्पर्द्धा करके विनष्ट हुई थी, विप्रवर कश्यपने उस पृथ्वीका फिर उद्धार किया था। महाराज ब्राह्मण लोग इस लोक और सुरलोकमेंभी सदा

स ताः पिबन्क्षीरमिव नातृप्यत महामनाः ।
अपूरयन्महौघेन महीं सर्वां च पार्थिव ॥ ४ ॥
तस्मिन्नहं च क्रुद्धे वै जगत्त्यक्त्वा ततो गतः ।
व्यतिष्ठमग्निहोत्रे च चिरमङ्गिरसो भयात् ॥ ५ ॥
अथ शप्तश्च भगवान् गौतमेन पुरन्दरः ।
अहल्यां कामयानो वै धर्मार्थं च न हिंसितः ॥ ६ ॥
तथा समुद्रो नृपते पूर्णो मृष्टस्य वारिणः ।
ब्राह्मणैरभिशप्तश्च बभूव लवणोदकः ॥ ७ ॥
सुवर्णवर्णो निर्धूमः सङ्गतोर्ध्वशिखः कविः ।
क्रुद्धेनाङ्गिरसा शप्तो गुणैरेतैर्विवर्जितः ॥ ८ ॥
मरुतश्चूर्णितान्पश्य ये ह्यासन्त महोदधिम् ।
सुवर्णधारिणा नित्यमवशप्ता द्विजातिना ॥ ९ ॥
समो नत्वं द्विजातिभ्यः श्रेयो विद्धि नराधिप ।
गर्भस्थान्ब्राह्मणान्सम्यग्‌ नमस्यति किल प्रभुः ॥१०॥
दण्डकानां महद्राज्यं ब्राह्मणेन विनाशितम् ।
तालजङ्घं महाक्षत्रमौर्वेणैकेन नाशितम् ॥ ११ ॥

अजेय हैं। पहले समयमें अङ्गिराने निज तेज प्रभावसे समस्त जलपान किया था, वह महात्मा क्षीरकी भांति जलको पीकेभी तृप्त नहीं हुए। हे पार्थिव! उन्होंने महाप्रवाहसे समस्त पृथ्वीमण्डलको परिपूरित किया था, उनके क्रुद्ध होनेपर मैंने भी जगत् छोडके गमन किया और अङ्गिराके भयसे बहुत समयतक अग्निहोत्रमें निवास किया था, और भगवान् इन्द्र अहल्याकी कामना करके गौतमके द्वारा अभिशप्त होकर धर्मार्थमात्र हिंसित नहीं हुए। (१—६)

हे राजन्! समुद्र मीठे जलसे युक्त प्रकट हुआ था वह ब्राह्मणके शापसे लवणोदक हुआ है। सुवर्णवर्ण निर्धूम-युक्त उर्ध्वशिख कवि हुताशन क्रुद्ध अंगिराके द्वारा अभिशापित होकर पूर्वोक्त गुणोंसे रहित हुए थे। हे राजन्! देखिये सगरके पुत्रगण, जिन्होंने महोदधिकी उपासना की थी, वे सब उत्तम ब्राह्मणवर्णधारी द्विजाति कपिलके द्वारा अभिशापयुक्त हुए। हे नरनाथ! तुम ब्राह्मणोंके सदृश नहीं हो, तुम अपने कल्याणकी चिन्ता करो, भगवान् गर्भस्थ ब्राह्मणोंको भी सदा नमस्कार

त्वया च विपुलं राज्यं बलं धर्मं श्रुतं तथा ।
दत्तात्रेयप्रसादेन प्राप्तं परमदुर्लभम् ॥ १२ ॥
अग्निं त्वं यजसे नित्यं कस्माद्ब्राह्मणमर्जुन ।
स हि सर्वस्य लोकस्य हव्यवाट् किं न वेत्सि तम् ॥१३॥
अथवा ब्राह्मणश्रेष्ठमनुभूतानुपालकम् ।
कर्तारं जीवलोकस्य कस्माज्जानन्विमुह्यसे ॥ १४ ॥
तथा प्रजापतिर्ब्रह्मा अव्यक्तः प्रभुरव्ययः ।
येनेदं निखिलं विश्वं जनितं स्थावरं चरम् ॥ १५ ॥
अण्डजातं तु ब्रह्माणं केचिदिच्छन्त्यपण्डिताः ।
अण्डाद्भिन्नाद्बभुः शैला दिशोऽम्भः पृथिवी दिवम् ॥१६॥
द्रष्टव्यं नैतदेवं हि कथं जायेदजो हि सः ।
स्मृतमाकाशमण्डं तु तस्माज्जातः पितामहः ॥ १७ ॥
तिष्ठेत्कथमिति ब्रूहि न किंचिद्धि तदा भवेत् ।
अहंकार इति प्रोक्तः सर्वतेजोगतः प्रभुः ॥ १८ ॥

करते हैं । दण्डक राजाओंका महत् राज्य ब्राह्मणोंके द्वारा नष्ट हुआ; तालजङ्घ नाम महा क्षत्रिय एकले ऊर्वके द्वारा नष्ट हुआ । तुम्हें भी दत्तात्रेय मुनिकी कृपासे विपुल राज्य, बल, धर्म और परम दुर्लभ आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है । (७—१२)

हे अर्जुन ! तुम ब्राह्मणरूपी अग्निदेवकी किस निमित्त सदा पूजा करते हो ? वेही सब लोकोंके हव्य कव्यको वहन करते हैं, क्या तुम उन्हें नहीं जानते ? अथवा श्रेष्ठ ब्राह्मण प्रतिभूतोंके ही पालनकर्त्ता हैं, इसलिये ब्राह्मणोंको जीवलोकका कर्त्ता जानके भी तुम क्यों मुग्ध होते हो ? अव्यक्त और अव्यय प्रभु पितामह ब्रह्मा जिन्होंने इस स्थावर-जङ्गममय निखिल विश्वकी सृष्टि की है, कोई मूर्ख उस ब्रह्माको अण्डसे उत्पन्न हुआ कहनेकी इच्छा करते हैं, अण्ड विभिन्न होनेपर उससे पर्वत, दिङ्मण्डल, जल, पृथ्वी और आकाश प्रकाशित होता है, यह द्रष्टव्य नहीं है, क्यों कि ब्रह्मा अज होकर किस प्रकार उत्पन्न हुए ? आकाश अण्डरूपसे स्मृत हुआ है, पितामह उसही आकाशसे प्रकट हुए हैं, उस समय कुछ भी नहीं था, इसलिये ब्रह्माने वहां किस भांति निवास किया ? उसे वर्णन करो । हे राजन् ! सर्वतेजगत प्रभु अहङ्कार नामसे अभिहित होते हैं,

नास्त्यण्डमस्ति तु ब्रह्मा स राजा लोकभावनः।
इत्युक्तः स तदा तूष्णीमभूद्वायुस्ततोऽब्रवीत् ॥ १९ ॥ [७१४६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

वायुरुवाच— इमां भूमिं द्विजातिभ्यो दित्सुर्वै दक्षिणां पुरा।
अङ्गो नाम नृपो राजंस्ततश्चिन्तां मही ययौ ॥ १ ॥
धारिणीं सर्वभूतानामयं प्राप्य वरो नृपः।
कथमिच्छति मां दातुं द्विजेभ्यो ब्रह्मणः सुताम् ॥ २ ॥
साऽहं त्यक्त्वा गमिष्यामि भूमित्वं ब्रह्मणः पदम्।
अयं सराष्ट्रो नृपतिर्मा भूदिति ततोऽगमत् ॥ ३ ॥
ततस्तां कश्यपो दृष्ट्वा व्रजन्तीं पृथिवीं तदा।
प्रविवेश महीं सद्यो मुक्त्वाऽऽत्मानं समाहितः ॥ ४ ॥
ऋद्धा सा सर्वतो जज्ञे तृणौषधिसमन्विता।
धर्मोत्तरा नष्टभया भूमिरासीत्ततो नृप ॥ ५ ॥
एवं वर्षसहस्राणि दिव्यानि विपुलव्रतः।
त्रिंशतः कश्यपो राजन् भूमिरासीदतन्द्रितः ॥ ६ ॥

लोक-विधाता ब्रह्मा उसके अण्डसे ही प्रकट हुए हैं। वायु उस समय इतनी कथा कहके चुप होरहे, अनन्तर फिर कहने लगे। (१३-१९)

अनुशासनपर्वमें १५३ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५४ अध्याय।

वायु बोले, हे महाराज! पहले समयमें अङ्ग नामक राजाने ब्राह्मणोंको दक्षिणा स्वरूपमें इस भूमिको दान करनेकी इच्छा की; उस समय पृथ्वीने सोचा, कि मैं सर्वलोकधारिणी ब्रह्मसुता हूं; तब यह राजा मुझे पाके किस निमित्त ब्राह्मणोंको दान करनेके लिये अभिलाषी हुआ है? जो हो, मैं भूमित्व परित्याग करके ब्रह्मलोकमें चलूं, यह राजा राज्यहीन होवे; ऐसा विचार करके धरणी ब्रह्मलोकमें चली गई। अनन्तर कश्यपने पृथ्वीको जाती हुई देखके उसही समय योगबलसे अपना शरीर परित्याग करके निर्जीव महीदेहमें प्रवेश किया। (१-४)

तब पृथ्वी तृण ओषधियोंसे युक्त तथा सब भांतिसे समृद्धिसम्पन्न हुई। हे राजन्! अनन्तर पृथ्वीपर धर्मकी प्रधानता हुई और सब भय नष्ट हुआ। हे महाराज! इस ही प्रकार देवपरिमाण

अथागम्य महाराज नमस्कृत्य च कश्यपम्।
पृथिवी काश्यपी जज्ञे सुता तस्य महात्मनः ॥ ७ ॥
एष राजन्नीदृशो वै ब्राह्मणः कश्यपोऽभवत्।
अन्यं प्रब्रूहि वा त्वं च कश्यपात्क्षत्रियं वरम् ॥ ८ ॥
तूष्णीं बभूव नृपतिः पवनस्त्वब्रवीत्पुनः।
शृणु राजन्नुतथ्यस्य जातस्याङ्गिरसे कुले ॥ ९ ॥
भद्रा सोमस्य दुहिता रूपेण परमा मता।
तस्यास्तुल्यं पतिं सोम उतथ्यं समपश्यत ॥ १० ॥
सा च तीव्रं तपस्तेपे महाभागा यशस्विनी।
उतथ्यार्थं तु चार्वङ्गी परं नियममास्थिता ॥ ११ ॥
तत आहूय सोतथ्यं ददावत्रिर्यशस्विनीम्।
भार्यार्थं स च जग्राह विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ १२ ॥
तां त्वकामयत श्रीमान्वरुणः पूर्वमेव ह।
स चागम्य वनप्रस्थं यमुनायां जहार ताम् ॥ १३ ॥
जलेश्वरस्तु हृत्वा तामनयत्स्वं पुरं प्रति।
परमाद्भुतसंकाशं षट्सहस्रशतह्रदम् ॥ १४ ॥

से तीस हजार वर्षतक कश्यपके द्वारा अधिष्ठिता भूमि सदा अतन्द्रित हो रही। हे राजन्! अनन्तर पृथ्वीने ब्रह्मलोकसे आके कश्यपको नमस्कार किया और उस समय महानुभाव कश्यपकी कन्या होनेसे काश्यपी नामसे प्रसिद्ध हुई। हे महाराज! कश्यप ब्राह्मण ऐसे पराक्रमी थे; तुम ही बताओ कोई क्षत्रिय कश्यप से श्रेष्ठ है या नहीं? इतनी कथा सुनके राजा चुप हो रहा। (५—९)

पवन बोले, हे राजन्! आङ्गिरस कुलमें उत्पन्न उतथ्यका वृत्तान्त सुनो। सोमकी कन्या भद्रा परम रूपवती थी, सोमने उतथ्यको उसके योग्य पति जाना था। उस चार्वङ्गीने परम नियम अवलम्बन करके उतथ्यके निमित्त घोर तपस्या की। अनन्तर सोमके पिता अत्रिने उतथ्यको आह्वान करके वह यशस्विनी कन्या दान की, भूरिदक्षिण उतथ्यने भी उसे भार्या रूपसे विधि-पूर्वक ग्रहण किया। श्रीमान् वरुणने पहले उस कामिनीके लिये कामना की थी, इसलिये वह वनस्थलमें आगमन करके यमुनाके तटपर उसे हरके निज पुरीमें लेआये, वरुणपुरीसे बढके और कोई लोक उत्तम न थे, उसमें परम

न हि रम्यतरं किंचित्तस्मादन्यत्पुरोत्तमम् ।
प्रासादैरप्सरोभिश्च दिव्यैः कामैश्च शोभितम् ॥१५॥
तत्र देवस्तया सार्धं रेमे राजन् जलेश्वरः ।
अथाख्यातमुतथ्याय ततः पत्न्यवमर्दनम् ॥ १६ ॥
तच्छ्रुत्वा नारदात्सर्वमुतथ्यो नारदं तदा ।
प्रोवाच गच्छ ब्रूहि त्वं वरुणं परुषं वचः ॥ १७ ॥
मद्वाक्यान्मुञ्च मे भार्यां कस्मात्तां हृतवानसि ।
लोकपालोऽसि लोकानां न लोकस्य विलोपकः ॥१८॥
सोमेन दत्ता भार्या मे त्वया चापहृताऽद्य वै ।
इत्युक्तो वचनात्तस्य नारदेन जलेश्वरः ॥ १९ ॥
मुञ्च भार्यामुतथ्यस्य कस्मात्त्वं हृतवानसि ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य सोऽथ तं वरुणोऽब्रवीत् ॥२०॥
ममैषा सुप्रिया भार्या नैनामुत्स्रष्टुमुत्सहे ।
इत्युक्तो वरुणेनाथ नारदः प्राप्य तं मुनिम् ।
उतथ्यमब्रवीद्वाक्यं नातिहृष्टमना इव ॥ २१ ॥
गले गृहीत्वा क्षिप्तोऽस्मि वरुणेन महामुने ।
न प्रयच्छति ते भार्यां यत्ते कार्यं कुरुष्व तत् ॥ २२ ॥

अद्भुत पट्सहस्रशतहृद थे, वह प्रासाद अप्सराओं और दिव्यकामसे शोभित था। (९—१५)

हे राजन् ! जलेश्वर उस पुरीके बीच उतथ्यभार्याके सङ्ग क्रीडा करने लगे। अनन्तर नारदने उतथ्यसे उसकी भार्या हरनेका वृत्तान्त कहा, उतथ्य नारदके मुखसे ऐसा समाचार सुनके उस समय उनसे बोले, आप वरुणके निकट जाके उससे परुष वाक्य कहिये, कि मेरे वचनके अनुसार मेरी भार्याको छोड दो, तुमने क्यों उसे हरण किया ? तुम लोकपाल हो, लोकोंके विलोपकारी नहीं हो, सोमने मुझे भार्या दी है, तुमने इस समय उसे क्यों हरण किया? उतथ्यका यह सब वचन नारदमुनिके द्वारा जलेश्वर सुनके तिरस्कृत हुए और जब नारदने कहा, तुम उतथ्यकी भार्या परित्याग करो, तुमने उसे क्यों हरण किया है ? तब वरुण उनसे बोले, यह भीरु मेरी भी अत्यन्त प्यारी है, मैं इसे परित्याग नहीं कर सकता। जब वरुण ने ऐसा वचन कहा, तब नारद रुष्ट चित्तसे उतथ्य मुनिके निकट आके

नारदस्य वचः श्रुत्वा क्रुद्धः प्राज्वलदङ्गिराः।
अपिबत्तेजसा वारि विष्टभ्य सुमहातपाः ॥ २३ ॥
पीयमाने तु सर्वस्मिंस्तोयेऽपि सलिलेश्वरः।
सुहृद्भिर्भिक्ष्यमाणोऽपि नैवामुञ्चत तां तदा ॥ २४ ॥
ततः क्रुद्धोऽब्रवीद् भूमिमुतथ्यो ब्राह्मणोत्तमः।
दर्शय स्वस्थलं भद्रे षट्सहस्रशतह्रदम् ॥ २५ ॥
ततस्तदीरिणं जातं समुद्रस्यावसर्पतः।
तस्माद्देशान्नदीं चैव प्रोवाचासौ द्विजोत्तमः ॥ २६ ॥
अदृश्या गच्छ भीरु त्वं सरस्वति मरून्प्रति।
अपुण्य एष भवतु देशस्त्यक्तस्त्वया शुभे ॥ २७ ॥
तस्मिन्संशोषिते देशे भद्रामादाय वारिपः।
अददाच्छरणं गत्वा भार्यामाङ्गिरसाय वै ॥ २८ ॥
प्रतिगृह्य तु तां भार्यामुतथ्यः सुमनाऽभवत्।
मुमोच च जगद् दुःखाद्वरुणं चैव हैहय ॥ २९ ॥
ततः स लब्ध्वा तां भार्यां वरुणं प्राह धर्मवित्।
उतथ्यः सुमहातेजा यत्तच्छृणु नराधिप ॥ ३० ॥

बोले, वरुणने मुझे गर्दनमें हाथ लगाकर विदा किया, तुम्हारी भार्या नहीं दी। अब तुम्हें जो करना हो, वह करो। (१६-२२)

महातपस्वी उतथ्य मुनि नारदका वचन सुनके क्रुद्ध और प्रज्वलित हुए और निज तेजप्रभावसे जलको विष्टम्भनपूर्वक पान किया। जब सब जल उतथ्यने पीलिया, उस समय जलेश्वरने सुहृदोंसे तिरस्कृत होकर भी उनकी भार्या न दी। अनन्तर द्विजवर उतथ्य क्रुद्ध होकर भूमिसे बोले, हे भद्रे! छः हजार एक सौ ह्रद विशिष्ट स्थल मुझे दिखाओ। अनन्तर वह स्थल मरुभूमि और समुद्र भी सूख गया। उस ब्राह्मणश्रेष्ठने सरस्वती नदीसे कहा, हे भीरु सरस्वती! तुम इस देशसे गमन करो, हे भीरु! तुमसे रहित होके यह देश पुण्यहीन होवे। (२३-२७)

अनन्तर उस देशके पूरी रीतिसे सूखनेपर वरुण भद्राको लेकर उतथ्यके शरणागत हुए और उन्हें उनकी भार्या प्रत्यर्पण की। हे हैहय! उतथ्य अपनी भार्या पाके प्रसन्न हुए और जगत् और वरुण दुःखसे मुक्त हुआ। महातेजस्वी धर्मज्ञ उतथ्यने अपनी भार्या पाके

मयैषा तपसा प्राप्ता क्रोशतस्ते जलाधिप ।
इत्युक्त्वा तामुपादाय स्वमेव भवनं ययौ ॥ ३१ ॥
एष राजन्नीदृशो वै उतथ्यो ब्राह्मणर्षभः ।
ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वमुतथ्यात्क्षत्रियं वरम् ॥ ३२ ॥ [७१७८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादो नाम चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

भीष्म उवाच— इत्युक्तः स नृपस्तूष्णीमभूद्वायुस्ततोऽब्रवीत् ।
शृणु राजन्नगस्त्यस्य माहात्म्यं ब्राह्मणस्य ह ॥ १ ॥
असुरैर्निर्जिता देवा निरुत्साहाश्च ते कृताः ।
यज्ञाश्चैषां हृताः सर्वे पितॄणां च स्वधास्तथा ॥ २ ॥
कर्मेज्या मानवानां च दानवैर्हैहयर्षभ ।
भ्रष्टैश्वर्यास्ततो देवाश्चेरुः पृथ्वीमिति श्रुतिः ॥ ३ ॥
ततः कदाचित्ते राजन्दीप्तमादित्यवर्चसम् ।
ददृशुस्तेजसा युक्तमगस्त्यं विपुलव्रतम् ॥ ४ ॥
अभिवाद्य तु तं देवाः पृष्ट्वा कुशलमेव च ।
इदमूचुर्महात्मानं वाक्यं काले जनाधिप ॥ ५ ॥

वरुणसे जो वचन कहा, वह सुनो । "हे जलाधिप ! तुम्हारे आक्रोश प्रकाश करनेपर भी मैंने इसे तपस्याके द्वारा पाया है," ऐसा वचन कहके वह अपनी भार्या लेकर निजगृहपर गये । हे राजन् ! वह उतथ्य ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मण थे । तब मैं तुमसे पूछता हूं, कि उतथ्यकी अपेक्षा कौन क्षत्रिय श्रेष्ठ है ? (२८-३२)

अनुशासनपर्वमें १५४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५५ अध्याय ।

भीष्म बोले, वह राजा इतनी कथा सुनके चुप होरहा । अनन्तर वायुने कहा, हे महाराज ! द्विजश्रेष्ठ अगस्त्यका माहात्म्य सुनो । असुरोंके द्वारा पराजित देवगण निरुत्साह हुए थे, उनका यज्ञ-भाग और पितरोंका स्वधा मन्त्रके द्वारा प्रदत्त कव्यादि भी हृत हुआ था । हे हैहयश्रेष्ठ ! ऐसी जनश्रुति है, कि मनुष्यका यज्ञकर्म नष्ट होनेसे देवगण ऐश्वर्यभ्रष्ट होकर इस पृथ्वीतलमें विचरते थे, हे महाराज ! अनन्तर किसी समय उन देवताओंने आदित्यसदृश,तपस्वी, प्रदीप्त,विपुलव्रती,तेजसे युक्त अगस्त्यको देखा । हे नरनाथ ! वे लोग उस महा-त्मा अगस्त्यको प्रणाम करके कुशल-

दानवैर्युधि भग्नाः स्म तथैश्वर्याच्च भ्रंशिताः ।
तदस्मान्नो भयात्तीव्रात्त्राहि त्वं मुनिपुङ्गव ॥ ६ ॥
इत्युक्तः स तदा देवैरगस्त्यः कुपितोऽभवत् ।
प्रजज्वाल च तेजस्वी कालाग्निरिव संक्षये ॥ ७ ॥
तेन दीप्तांशुजालेन निर्दग्धा दानवास्तदा ।
अन्तरिक्षान्महाराज निपेतुस्ते सहस्रशः ॥ ८ ॥
दह्यमानास्तु ते दैत्यास्तस्यागस्त्यस्य तेजसा ।
उभौ लोकौ परित्यज्य गताः काष्ठां तु दक्षिणाम् ॥९॥
बलिस्तु यजते यज्ञमश्वमेधं महीं गतः ।
येऽन्येऽधःस्था महीस्थाश्च ते न दग्धा महासुराः ॥ १० ॥
ततो लोकाः पुनः प्राप्ताः सुरैः शान्तभयैर्नृप ।
अथैनमब्रुवन्देवा भूमिष्ठानसुरान् जहि ॥ ११ ॥
इत्युक्तः प्राह देवान्स न शक्तोऽस्मि महीगतान् ।
दग्धुं तपो हि क्षीयेन्मे न शक्ष्यामीति पार्थिव ॥१२॥
एवं दग्धा भगवता दानवाः स्वेन तेजसा ।

प्रश्नके अनन्तर यह वचन बोले, हे मुनिपुङ्गव ! हम लोग युद्धमें दानवोंके द्वारा पराजित तथा ऐश्वर्यभ्रष्ट हुए हैं, इसलिये आप हमें तीव्रभयसे परित्राण करिये । अगस्त्य देवताओंका ऐसा वचन सुनके अत्यन्त कुपित हुए और वह तेजस्वी प्रलयकालकी कालाग्नि-सदृश प्रज्वलित होगये । (१-७)

हे महाराज ! उस समय सहस्रों दानवगण उस प्रदीप्त किरणजालसे एक बारही जलके आकाशसे निपतित हुए । दैत्यगण अगस्त्यके तेजसे दह्यमान होकर भूलोक और स्वर्गलोक परित्याग करके दक्षिण दिशामें गये । बलि उस समय पृथ्वीतलमें अश्वमेध यज्ञ करता था, इसीसे वह और उसके अतिरिक्त जो सब महासुर नीचे तथा पृथ्वीतलमें थे, वे भस्म नहीं हुए । हे नृप ! अनन्तर भय शान्त होनेपर देवताओंके द्वारा सब लोक फिर व्याप्त हुआ, तब देवताओंने फिर अगस्त्यसे कहा, आप भूमिमें रहनेवाले असुरोंका नाश करिये । (८—११)

हे राजन् ! अगस्त्य देवताओंका ऐसा वचन सुनके उनसे बोले, मैं भूमिस्थ दानवोंको जलानेमें समर्थ नहीं हूं, क्यों कि उससे मेरी तपस्या नष्ट होनेकी सम्भावना है । हे राजन् ! इस

अगस्त्येन तदा राजंस्तपसा भावितात्मना ॥ १३ ॥
ईदृशश्चाप्यगस्त्यो हि कथितस्ते मयाऽनघ ।
ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वमगस्त्यात्क्षत्रियं वरम् ॥ १४ ॥
भीष्म उवाच— इत्युक्तः स तदा तूष्णीमभूद्वायुस्ततोऽब्रवीत् ।
शृणु राजन्वसिष्ठस्य मुख्यं कर्म यशस्विनः ॥ १५ ॥
आदित्याः सत्रमासन्त सरो वै मानसं प्रति ।
वसिष्ठं मनसा गत्वा ज्ञात्वा तत्तस्य गौरवम् ॥ १६ ॥
यजमानांस्तु तान्दृष्ट्वा सर्वान्दीक्षानुकर्शितान् ।
हन्तुमैच्छन्त शैलाभाः खलिनो नाम दानवाः ॥ १७ ॥
अदूरात्तु ततस्तेषां ब्रह्मदत्तवरं सरः ।
हता हता वै तत्रैते जीवन्त्याप्लुत्य दानवाः ॥ १८ ॥
ते प्रगृह्य महाघोरान्पर्वतान्परिघान् द्रुमान् ।
विक्षोभयन्तः सलिलमुत्थितं शतयोजनम् ॥ १९ ॥
अभ्यद्रवन्त देवांस्ते सहस्राणि दशैव हि ।
ततस्तैरर्दिता देवाः शरणं वासवं ययुः ॥ २० ॥
स च तैर्व्यथितः शक्रो वसिष्ठं शरणं ययौ ।

ही प्रकार पवित्रचित्तवाले अगस्त्यने निज तेजके सहारे दानवोंको जलाया था। हे अनघ! अगस्त्य ऐसे ही थे, यह मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। अब मैं कहता हूं, अथवा तुमही कहो, क्या अगस्त्यकी अपेक्षा क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं? भीष्म बोले, राजा ऐसा प्रश्न सुनके चुप होरहा। (१२—१५)

अनन्तर वायु बोले, हे महाराज! यशस्वी वसिष्ठके मुख्य कर्म सुनो। आदित्यगण मन ही मन वसिष्ठका गौरव जानके उनके समीप वैखानस नाम सरोवरपर जाके यज्ञ करते थे। पर्वतसदृश खलि नाम दानवोंने देवताओंको यजमान और यज्ञदीक्षासे कृश देखकर वध करनेकी इच्छा की। उन लोगोंके निकटमें ही ब्रह्मदत्त नाम तडाग था, दानवगण हताहत होके उस तडागमें स्नान करते ही जीवित होते थे; वे महाघोर पर्वत, परिघ, और वृक्षोंको लेकर एकसौ योजन समुत्थित जलको आन्दोलित करते थे। (१५-१९)

अनन्तर दस हजार दानव देवताओंकी ओर दौडे, देवगण दानवोंसे पीडित होके देवराजके शरणागत हुए; देवराज देवताओंके दुःखसे पीडित

P.N.B.1819

महाभारत।

इस समय तक छपकर तैयार पर्व

पर्वका नाम	अंक	कुल अंक	पृष्ठसंख्या	मूल्य	डा. व्यय
१ आदिपर्व	[१ से ११]	११	११२५	६) छः	रु १)
२ सभापर्व	[१२ " १५]	४	३५६	२) दो	।-)
३ वनपर्व	[१६ " ३०]	१५	१५३८	८) आठ	१।)
४ विराटपर्व	[३१ " ३३]	३	३०६	१॥) डेढ	।-)
५ उद्योगपर्व	[३४ " ४२]	९	९५३	५) पांच	१)
६ भीष्मपर्व	[४३ " ५०]	८	८००	४) चार	॥)
७ द्रोणपर्व	[५१ " ६४]	१४	१३६४	७॥) साडेसात	१।=)
८ कर्णपर्व	[६५ " ७०]	६	६३७	३॥) साढेतीन	,, ॥)
९ शल्यपर्व	[७१ " ७४]	४	४३५	२॥) अढाई	" ।=)
१० सौप्तिकपर्व	[७५]	१	१०४	॥।) बारह आ.	।)
११ स्त्रीपर्व	[७६]	१	१०८	॥।) "	।)
१२ शान्तिपर्व					
१ राजधर्मपर्व	[७७—८३]	७	६९४	३॥) साढे तीन	॥)
२ आपद्धर्मप०	[८४—८५]	२	२३२	१।) सवा	।-)
३ मोक्षधर्मपर्व	[८६—९६]	११	११००	६) छः	१)
१३ अनुशासनपर्व	[९७"१०६]	१०	१०००	५॥	१)

कुल मूल्य ५७॥।) कुल डा. व्य.१०।=)

सूचना— ये पर्व छप कर तैयार हैं। अतिशीघ्र मंगवाइये। मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेज देंगे तो आधा डाकव्यय माफ करेंगे; अन्यथा प्रत्येक रु० के मूल्यके ग्रंथको तीन आने डाकव्यय मूल्यके अलावा देना होगा। मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध (जि०सातारा)

मुद्रक और प्रकाशक-श्री० दा० सातवळेकर, भारतमुद्रणालय. औंध, (जि० सातारा.)

REGISTERED NO. B. 131

अङ्क १०७ ॥ ॐ ॥ [अनुशासनपर्व ११]

महाभारत ।

भाषा--भाष्य--समेत

संपादक-श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)

महाभारत

प्रतिमास १०० पृष्ठोंका एक अंक प्रसिद्ध होता है।

१२ अंकोंका अर्थात् १२०० पृष्ठोंका मूल्य म० आ० से ६) रु० और वी. पी. से ७) रु० है।

मंत्री—स्वाध्याय-मंडल, औंध, (जि. सातारा)

१२अंकोंका मूल्य म. आ. से. ६) और वी.पी. से ७) विदेशके लिये ८)

ततोऽभयं ददौ तेभ्यो वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ २१ ॥
तदा तान्दुःखितान् ज्ञात्वा आनृशंस्यपरो मुनिः।
अयत्नेनादहत्सर्वान्खलिनः स्वेन तेजसा ॥ २२ ॥
कैलासं प्रस्थितां चैव नदीं गङ्गां महातपाः।
आनयत्तत्सरो दिव्यं तया भिन्नं च तत्सरः ॥ २३ ॥
सरो भिन्नं तया नद्या सरयूः सा ततोऽभवत्।
हताश्च खलिनो यत्र स देशः खलिनोऽभवत् ॥ २४ ॥
एवं सेन्द्रा वसिष्ठेन रक्षितास्त्रिदिवौकसः।
ब्रह्मदत्तवराश्चैव हता दैत्या महात्मना ॥ २५ ॥
एतत्कर्म वसिष्ठस्य कथितं हि मयाऽनघ।
ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वं वसिष्ठात्क्षत्रियं वरम् ॥ २६ ॥ [७२०४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

भीष्म उवाच— इत्युक्तस्त्वर्जुनस्तूष्णीमभूद्वायुस्तमब्रवीत्।
शृणु मे हैहयश्रेष्ठ कर्मात्रेः सुमहात्मनः ॥ १ ॥
घोरे तमस्ययुध्यन्त सहिता देवदानवाः।

होकर वसिष्ठके शरणमें गये। अनन्तर भगवान् वसिष्ठ ऋषिने उन लोगोंको अभय दिया, अनृशंसतापरायण मुनिने उस समय देवताओंको दुःखित जानके निज तेज प्रभावसे सहजहीमें उन खलि नामक दानवोंको जला दिया। महातपस्वी वसिष्ठ कैलासपर्वतसे चलनेवाली गङ्गा नदीको उस दिव्य सरोवरमें लिया लाये, तब वह तडाग गङ्गामें मिल गया गंगासे मिलकर उस सरोवरका सरयू नाम हुआ। (२०—२४)

जिस स्थानमें खलि दानवगण मारे गये थे, उस देशका खलिन नाम हुआ इस ही प्रकार इन्द्रके सहित सब देवताओंकी वसिष्ठ मुनिने रक्षा की थी और ब्रह्मदत्तवर दत्त दैत्योंका महात्मा वसिष्ठके द्वारा नाश हुआ। हे अनघ! यह मैंने तुमसे वसिष्ठका माहात्म्य कहा, मैं कहता हूं तथा तुम ही कहो, क्या वसिष्ठसे क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं? (२४–२६)

अनुशासनपर्वमें १५५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५६ अध्याय।

भीष्म बोले, कार्त्तवीर्य अर्जुनने इतनी कथा सुनके मौनावलम्बन किया था। अनन्तर वायु उससे कहने लगे। हे हैहयश्रेष्ठ! मेरे समीप महात्मा अ-

अविध्यत शरैस्तत्र स्वर्भानुः सोमभास्करौ ॥ २ ॥
अथ ते तमसा ग्रस्ता निहन्यन्ते स्म दानवैः ।
देवा नृपतिशार्दूल सहैव बलिभिस्तदा ॥ ३ ॥
असुरैर्वध्यमानास्ते क्षीणप्राणा दिवौकसः ।
अपश्यन्त तपस्यन्तमत्रिं विप्रं तपोधनम् ॥ ४ ॥
अथैनमब्रुवन्देवाः शान्तक्रोधं जितेन्द्रियम् ।
असुरैरिषुभिर्विद्धौ चन्द्रादित्याविमावुभौ ॥ ५ ॥
वयं वध्यामहे चापि शत्रुभिस्तमसाऽऽवृते ।
नाधिगच्छाम शान्तिं च भयात्त्रायस्व नः प्रभो ॥ ६ ॥
अत्रिरुवाच- कथं रक्षामि भवतस्तेऽब्रुवंश्चन्द्रमा भव ।
तिमिरघ्नश्च सविता दस्युहन्ता च नो भव ॥ ७ ॥
एवमुक्तस्तदात्रिर्वै तमोनुदभवच्छशी ।
अपश्यत्सौम्यभावाच्च सोमवत्प्रियदर्शनः ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा नातिप्रभं सोमं तथा सूर्यं च पार्थिव ।
प्रकाशमकरोदत्रिस्तपसा स्वेन संयुगे ॥ ९ ॥
जगद्वितिमिरं चापि प्रदीप्तमकरोत्तदा ॥ १० ॥

त्रिका कर्म सुनो। देवता और दानवगण घोर अन्धकारके बीच इकट्ठे होकर युद्ध करते थे, उस युद्धमें राहुने बाणसे सूर्य और चन्द्रमाको विद्ध किया। हे नृपश्रेष्ठ! अनन्तर अन्धकारसे ग्रस्त देवगण उस समय बलवान् दानवोंसे मारे जाने लगे। देवताओंने असुरदलसे वध्यमान तथा क्षीणबल होकर तपस्वी अत्रि नाम ब्राह्मणको तपस्या करते देखा। अनन्तर देवगण उस शान्त जितेन्द्रिय अत्रिसे बोले, हम ये सूर्य और चन्द्रमा हैं, दानवोंने बाणोंसे हमें विद्ध किया है, हम लोग अन्धकारयुक्त स्थानमें शत्रुओंके द्वारा व्यथित होते हैं, शान्ति लाभ नहीं कर सकते। हे प्रभु! इसलिये आप हम लोगोंको भयसे परित्राण करिये। ऋषिने कहा, मैं किस प्रकार आप लोगोंकी रक्षा करूंगा? (१-७)

देवगण बोले, आप चन्द्रमा और अन्धकारनाशक सूर्य होकर हमारे शत्रुओंका नाश करिये। अत्रि देवताओंका ऐसा वचन सुनके उस समय तमोनुद शशी हुए और सौम्यभावसे चन्द्रमाकी भांति प्रिय दीखने लगे। हे महाराज! उस समय अत्रिने सूर्य और चन्द्रमाको

च्यवनश्च्छत्रुसंघांश्च देवानां स्वेन तेजसा ।
अत्रिणा दह्यमानांस्तान्दृष्ट्वा देवा महासुरान् ॥ ११ ॥
पराक्रमैस्तेऽपि तदा व्यघ्नन्नत्रिसुरक्षिताः ।
उद्भासितश्च सविता देवास्त्राता हतासुराः ॥ १२ ॥
अत्रिणा त्वथ सामर्थ्यं कृतमुत्तमतेजसा ।
द्विजेनाग्निद्वितीयेन जपता चर्मवाससा ॥ १३ ॥
फलभक्षेण राजर्षे पश्य कर्मात्रिणा कृतम् ।
तस्यापि विस्तरेणोक्तं कर्मात्रेः सुमहात्मनः ।
ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वमत्रितः क्षत्रियं वरम् ॥ १४ ॥
इत्युक्तस्त्वर्जुनस्तूष्णीमभूद्वायुस्ततोऽब्रवीत् ।
शृणु राजन्महत्कर्म च्यवनस्य महात्मनः ॥ १५ ॥
अश्विनोः प्रतिसंश्रुत्य च्यवनः पाकशासनम् ।
प्रोवाच सहितो देवैः सोमपावश्विनौ कुरु ॥ १६ ॥
इन्द्र उवाच—अस्माभिर्निन्दितावेतौ भवेतां सोमपौ कथम् ।
देवैर्न संमितावेतौ तस्मान्मैवं वदस्व नः ॥ १७ ॥

प्रभायुक्त न देखकर निज तेजसे रणभूमिको प्रकाशित किया, जगत् अन्धकार-रहित और प्रकाशमान हुआ। उन्होंने निज तेजके सहारे देवताओंके शत्रुओंको जय किया, देवगण महाघोर विकराल असुरोंको अत्रिके द्वारा दह्यमान देखकर आप भी उनसे रक्षित होकर दानवोंसे युद्ध करने लगे। (७—१२)

अनन्तर सूर्य उदय होनेसे देवताओंका परित्राण हुआ और दानवगण मारे गये, अत्यन्त तेजस्वी अत्रिने दानवोंकी सामर्थ्य हरण की। हे राजर्षि! द्वितीय अग्निसदृश, मृगचर्मधारी, जपपरायण, फल खानेवाले अत्रिने जो कार्य किया था, उसे अवलोकन करो। मैंने महात्मा अत्रिके कार्यको विस्तारपूर्वक कहा, अब मैं कहता हूं, वा तुम्हीं बताओ, क्या अत्रिसे भी क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं? अर्जुन ऐसा वचन सुनके चुप होरहा। (१२—१५)

अनन्तर वायु बोले, हे राजन्! महात्मा च्यवनका महत् कर्म सुनो। च्यवन मुनि दोनों अश्विनीकुमारोंके निकट प्रतिश्रुत होकर देवताओंके सहित इन्द्रसे बोले, इन दोनों वैद्योंको सोमपान कराओ। इन्द्र बोले, हमने इन्हें परित्याग किया है, इसलिये ये लोग किस प्रकार सोमपान कर सकते हैं?

अश्विभ्यां सह नेच्छामः सोमं पातुं महाव्रत ।
यदन्यद्वक्ष्यसे विप्र तत्करिष्याम ते वचः ॥ १८ ॥
च्यवन उवाच- पिबेतामश्विनौ सोमं भवद्भिः सहिताविमौ ।
उभावेतावपि सुरौ सूर्यपुत्रौ सुरेश्वर ॥ १९ ॥
क्रियतां मद्वचो देवा यथा वै समुदाहृतम् ।
एतद्वः कुर्वतां श्रेयो भवेन्नैतदकुर्वताम् ॥ २० ॥
इन्द्र उवाच—अश्विभ्यां सह सोमं वै न पास्यामि द्विजोत्तम ।
पिबन्त्वन्ये यथाकामं नाहं पातुमिहोत्सहे ॥ २१ ॥
च्यवन उवाच-न चेत्करिष्यसि वचो मयोक्तं बलसूदन ।
मया प्रमथितः सद्यः सोमं पास्यसि वै मखे ॥ २२ ॥
वायुरुवाच- ततः कर्म समारब्धं हिताय सहसाऽश्विनोः ।
च्यवनेन ततो मन्त्रैरभिभूताः सुराऽभवन् ॥ २३ ॥
तत्तु कर्म समारब्धं दृष्ट्वेन्द्रः क्रोधमूर्च्छितः ।
उद्यम्य विपुलं शैलं च्यवनं समुपाद्रवत् ॥ २४ ॥
तथा वज्रेण भगवानमर्षाकुललोचनः ।

देववृन्द इनकी प्रशंसा नहीं करते, इसलिये आप हमसे ऐसा वचन न कहिये। हे महाव्रत विप्रवर ! हम लोग दोनों अश्विनीकुमारोंके सहित सोमपान करनेकी इच्छा नहीं करते, आप और जो कुछ कहें, उसे हम प्रतिपालन करेंगे। (१५—१८)

च्यवन मुनि बोले, दोनों अश्विनीकुमार तुम्हारे सङ्ग सोमपान करेंगे, हे सुरेश्वर ! ये दोनों अमर और सूर्यके पुत्र हैं। हे देवगण ! मैंने जैसा कहा, उसे प्रतिपालन करो, ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा, नहीं तो तुम लोगोंके विषयमें अमङ्गल होगा। १९-२०

इन्द्र बोले, हे द्विजवर ! हम अश्विनीकुमारोंके सहित सोमपान न करेंगे। जिनकी इच्छा हो, वे पीवें; किन्तु मैं इनके संग सोमपान करनेका उत्साह नहीं करता। (२१)

च्यवन बोले, हे बलसूदन ! यदि तुम मेरी बात न मानोगे, तो यज्ञमें मेरे द्वारा प्रमथित होके उस ही समय सोमपान करोगे। (२२)

वायु बोले, अनन्तर अश्विनीकुमारोंके हितके निमित्त च्यवनने सहसा यज्ञकर्म आरम्भ किया। उनके मन्त्रसे देववृन्द अभिभूत हुए, इन्द्रने उस कर्मको आरम्भ हुआ देखके वज्रके

तमापतन्तं दृष्ट्वैव च्यवनस्तपसान्वितः ॥ २५ ॥
अद्भिः सिक्त्वाऽस्तम्भयत्तं सवज्रं सहपर्वतम् ।
अथेन्द्रस्य महाघोरं सोऽसृजच्छत्रुमेव हि ॥ २६ ॥
मदं नामाहुतिमयं व्यादितास्यं महामुनिः ।
तस्य दन्तसहस्रं तु बभूव शतयोजनम् ॥ २७ ॥
द्वियोजनशतास्तस्य दंष्ट्राः परमदारुणाः ।
हनुस्तस्याभवद्भूमावास्यं चास्यास्पृशद्दिवम् ॥ २८ ॥
जिह्वामूले स्थितास्तस्य सर्वे देवाः सवासवाः ।
तिमेरास्यमनुप्राप्ता यथा मत्स्या महार्णवे ॥ २९ ॥
ते संमन्त्र्य ततो देवा मदस्यास्य समीपगाः ।
अब्रुवन्सहिताः शक्रं प्रणमास्मै द्विजातये ॥ ३० ॥
अश्विभ्यां सह सोमं च पिबाम विगतज्वराः ।
ततः स प्रणतः शक्रश्चकार च्यवनस्य तत् ॥ ३१ ॥
च्यवनः कृतवानेतावश्विनौ सोमपायिनौ ।
ततः प्रत्याहरत्कर्म मदं च व्यभजन्मुनिः ॥ ३२ ॥
अक्षेषु मृगयायां च पाने स्त्रीषु च वीर्यवान् ।

सहित विपुल पर्वत उठाके क्रोधपूर्वक च्यवनकी ओर दौडे । तपस्वी भगवान् च्यवनने इन्द्रको आते हुए देखकर क्रोधपूर्वक जल छिडकके वज्र और पर्वतके सहित उन्हें स्तम्भित कर दिया । महामुनि च्यवनने आहुतिमय एक मुख बाये हुए महाघोर मद नाम पुरुषको इन्द्रका शत्रु बनाके उत्पन्न किया । उसके सहस्र दांत एक सौ योजन लम्बे थे और उसके परम दारुण दंष्ट्रा दो सौ योजनके बीच व्याप्त थी । उसका एक ओठ भूमि और दूसरा आकाशमण्डलमें जा लगा । (२३-२८)

जैसे समुद्रमें सब मछलियें तिमिके मुखमें समा जाती हैं, वैसे ही इन्द्रके सहित सब देवता उसके जिह्वामूलमें स्थित हुए । अनन्तर देवताओंने आपसमें विचार करके मदके समीप जाकर देवराजसे कहा, इस द्विजवरको प्रणाम करो; हम लोग प्रसन्न होकर दोनों अश्विनीकुमारोंके संग सोमपान करेंगे । अनन्तर इन्द्रने प्रणत होके च्यवनका वचन प्रतिपालन किया; च्यवन मुनिने अश्विनीकुमारोंको सोमपान कराया । अनन्तर मुनिश्रेष्ठ वीर्यवान् च्यवनने वह कर्म प्रत्याहरण किया और जूआ,

एतैर्दोषैर्नरा राजन् क्षयं यान्ति न संशयः ॥ ३३ ॥
तस्मादेतान्नरो नित्यं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ३४ ॥
एतत्ते च्यवनस्यापि कर्म राजन्प्रकीर्तितम्।
ब्रवीम्यहं ब्रूहि वा त्वं क्षत्रियं ब्राह्मणाद्वरम् ॥ ३५ ॥ [७२३९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

भीष्म उवाच—तूष्णीमासीदर्जुनस्तु पवनस्त्वब्रवीत्पुनः।
शृणु मे ब्राह्मणेष्वेव मुख्यं कर्म जनाधिप ॥ १ ॥
मदस्यास्यमनुप्राप्ता यदा सेन्द्रा दिवौकसः।
तदैव च्यवनेनेह हृता तेषां वसुन्धरा ॥ २ ॥
उभौ लोकौ हृतौ मत्वा ते देवा दुःखिताऽभवन्।
शोकार्ताश्च महात्मानं ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ३ ॥
देवा ऊचुः— मदास्यव्यतिषिक्तानामस्माकं लोकपूजित।
च्यवनेन हृता भूमिः कपैश्चैव दिवं प्रभो ॥ ४ ॥
ब्रह्मोवाच- गच्छध्वं शरणं विप्रानाशु सेन्द्रा दिवौकसः।
प्रसाद्य तानुभौ लोकाववाप्स्यथ यथा पुरा ॥ ५ ॥

मृगया, मद्यपान तथा स्त्रियोंमें मदको विभाग कर दिया। हे राजन्! मनुष्यों का निःसंदेह इन्हीं दोषोंसे नाश होता है, इसलिये मनुष्य इन दोषोंको एकबारगी परित्याग करे। हे महाराज! यह च्यवनके कर्म तुम्हारे समीप वर्णित हुए। मैं कहता हूं; तथा तुम ही कहो, क्या ब्राह्मणोंसे क्षत्रिय श्रेष्ठ हैं? २९-३५

अनुशासनपर्वमें १५६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५७ अध्याय।

भीष्म बोले, अर्जुनके चुप हो रहनेपर पवनने उससे फिर कहा, हे जननाथ! ब्राह्मणोंके जो मुख्यकर्म हैं, वह सब मेरे मुखसे सुनो। जब इन्द्रादि देवता मदके मुखके भीतर चले गये तब च्यवनने उनकी भूमि हरण की। दोनों लोक हरे जानेपर महानुभाव देवगण अत्यन्त दुःखित और शोकार्त्त होकर ब्रह्माके शरणागत हुए। देवगण बोले, हे लोकपूजित! जब हम लोग मदके मुखके भीतर थे, उस समयमें च्यवन मुनिने हमारी भूमि हर ली और कप नामक दानवोंने स्वर्गलोक हर लिया। (१—४)

ब्रह्मा बोले, हे इन्द्रादि देवगण! तुम लोग शीघ्रही ब्राह्मणोंके शरणमें

ते ययुः शरणं विप्रानूचुस्ते कान् जयामहे ।
इत्युक्तास्ते द्विजान्प्राहुर्जयतेह कपानिति ॥ ६ ॥
भूगतान्हि विजेतारो वयमित्यब्रुवन् द्विजाः ।
ततः कर्म समारब्धं ब्राह्मणैः कपनाशनम् ॥ ७ ॥
तच्छ्रुत्वा प्रेषितो दूतो ब्राह्मणेभ्यो धनी कपैः ।
स च तान्ब्राह्मणानाह धनी कपवचो यथा ॥ ८ ॥
भवद्भिः सदृशाः सर्वे कपाः किमिह वर्तते ।
सर्वे वेदविदः प्राज्ञाः सर्वे च क्रतुयाजिनः ॥ ९ ॥
सर्वे सत्यव्रताश्चैव सर्वे तुल्या महर्षिभिः ।
श्रीश्चैव रमते तेषु धारयन्ति श्रियं च ते ॥ १० ॥
वृथा दारान्न गच्छन्ति वृथा मांसं न भुञ्जते ।
दीप्तमग्निं जुह्वते च गुरूणां वचने स्थिताः ॥ ११ ॥
सर्वे च नियतात्मानो बालानां संविभागिनः ।
उपेत्य शनकैर्यान्ति न सेवन्ति रजस्वलाम् ।
स्वर्गतिं चैव गच्छन्ति तथैव शुभकर्मिणः ॥ १२ ॥

जाओ, उन्हें प्रसन्न करनेसे पहलेकी भांति तुम लोग दोनों लोकोंको पाओगे। अनन्तर इन्द्रके सहित सब देवता ब्राह्मणोंके शरणागत हुए। ५-६

ब्राह्मणगण बोले, हम किसे जय करें? देववृन्द ब्राह्मणोंका ऐसा वचन सुनके बोले, इस समय आप लोग कपनाम दैत्योंको जीतिये, द्विजगण बोले, हम भूमिगत दैत्योंको जीतनेमें समर्थ हैं। अनन्तर ब्राह्मणोंने कपनाशन कर्म आरम्भ किया, कपगणने यह वृत्तान्त सुनके धनी नाम दूतको उनके समीप भेजा। धनी उस समय भूलोकविनाशी ब्राह्मणोंसे कपका कहा हुआ वचन कहने लगा। (६-८)

कपगण आप लोगोंके सदृश हैं, इसलिये इस समय यह क्या होरहा है? वे सभी वेद जाननेवाले प्राज्ञ हैं, सभी यज्ञ करनेवाले, सब कोई सत्यव्रती और सभी महर्षियोंके तुल्य हैं, उनमें सदा श्री निवास करती है, वे भी श्रीको धारण करते, वृथा स्त्रीगमन नहीं करते, वृथा मांस भक्षण नहीं करते, जलती हुई अग्निमें होम करते हैं, गुरुवचनके वशीभूत रहते हैं, सभी नियतचित्तवाले हैं, बालकोंको खानेकी वस्तु विभाग करके देते हैं। वे लोग धीरे धीरे गमन करते हैं, रजस्वलाकी सेवा नहीं करते, स्वर्गमें

अभुक्तवत्सु नाश्नन्ति गर्भिणीवृद्धकादिषु।
पूर्वाह्णेषु न दीव्यन्ति दिवा चैव न शेरते ॥ १३ ॥
एतैश्चान्यैश्च बहुभिर्गुणैर्युक्तान् कथं कृपान्।
विजेष्यथ निवर्तध्वं निवृत्तानां सुखं हि वः ॥ १४ ॥
ब्राह्मणा ऊचुः-कृपान्वयं विजेष्यामो ये देवास्ते वयं स्मृताः।
तस्माद्वध्याः कृपाऽस्माकं धनिन्याहि यथाऽऽगतम् १५ ॥
धनी गत्वा कृपानाह न वो विप्राः प्रियंकराः।
गृहीत्वाऽस्त्राण्यतो विप्रान् कृपाः सर्वे समाद्रवन् ॥१६॥
समुदग्रध्वजान्दृष्ट्वा कृपान्सर्वे द्विजातयः।
व्यसृजन् ज्वलितानग्नीन् कृपानां प्राणनाशनान्॥१७॥
ब्रह्मसृष्टा हव्यभुजः कृपान्हत्वा सनातनाः।
नभसीव यथाऽभ्राणि व्यराजन्त नराधिप ॥ १८ ॥
हत्वा वै दानवान् देवाः सर्वे संभूय संयुगे।
ते नाभ्यजानन्हि तदा ब्राह्मणैर्निहतान्कृपान् ॥ १९ ॥
अथागम्य महातेजा नारदोऽकथयद्विभो।

गति लाभ करते तथा वे लोग शुभकर्म-शाली हैं। (९—१२)

गर्भिणी तथा वृद्धोंके भूखे रहते, वे भोजन नहीं करते, पूर्वाह्णमें क्रीडा नहीं करते और दिनमें शयन नहीं करते इन सब गुणों तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुतेरे गुणोंसे युक्त कृपगणको तुम क्यों जय करोगे, इस कार्यसे निवृत्त हो जाओ, निवृत्त होनेसे तुम्हारा मङ्गल होगा। (१३—१४)

ब्राह्मणोंने कहा, हम लोग कृपगण को जीतेंगे, देवताओंके सहित हम लोग अभिन्नभावसे रहते हैं, इसलिये कृपगण हमारे वध्य हैं। हे धनी! तुम जिस स्थानसे आये हो, वहांही जाओ। धनी कृपगणके समीप जाके बोला, ब्राह्मण लोग तुम्हारे प्रियङ्कर नहीं हैं, ऐसा सुनकर कृपगण अस्त्र लेकर ब्राह्मणोंकी ओर दौडे। ब्राह्मणोंने कृपगणको ऊंची ध्वजाके सहित आते हुए देखकर उनके प्राण-नाशके निमित्त जलती हुई अग्नि चलाई। (१५—१७)

हे नरनाथ! ब्राह्मणोंकी चलाई हुई अग्नि कृपगणका नाश करके आकाश-मण्डलमें बादलोंकी भांति विराजमान हुई। देवता लोग इकट्ठे होकर युद्धमें दानवोंके दलका संहार करके ब्राह्मणोंके

यथा हता महाभागैस्तेजसा ब्राह्मणैः कपाः ॥ २० ॥
नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रीताः सर्वे दिवौकसः।
प्रशशंसुर्द्विजांश्चापि ब्राह्मणांश्च यशस्विनः ॥ २१ ॥
तेषां तेजस्तथा वीर्यं देवानां ववृधे ततः।
अवाप्नुवंश्चामरत्वं त्रिषु लोकेषु पूजितम् ॥ २२ ॥
इत्युक्तवचनं वायुमर्जुनः प्रत्युवाच ह।
प्रतिपूज्य महाबाहो यत्तच्छृणु युधिष्ठिर ॥ २३ ॥
अर्जुन उवाच- जीवाम्यहं ब्राह्मणार्थं सर्वथा सततं प्रभो।
ब्रह्मण्यो ब्राह्मणेभ्यश्च प्रणमामि च नित्यशः ॥ २४ ॥
दत्तात्रेयप्रसादाच्च मया प्राप्तमिदं बलम्।
लोके च परमा कीर्तिर्धर्मश्चाचरितो महान् ॥ २५ ॥
अहो ब्राह्मणकर्माणि मया मारुत तत्त्वतः।
त्वया प्रोक्तानि कार्त्स्न्येन श्रुतानि प्रयतेन च ॥२६ ॥
वायुरुवाच— ब्राह्मणान्क्षात्रधर्मेण पालयस्वेन्द्रियाणि च।
भृगुभ्यस्ते भयं घोरं तत्तु कालाद्भविष्यति ॥ २७ ॥ [७२६६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे पवनार्जुनसंवादे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥

द्वारा कपगणके मारे जानेका वृत्तान्त न जान सके। हे विभु! अनन्तर महातेजस्वी नारद मुनि आके बोले, महाभाग ब्राह्मणोंके तेजसे कपगण मारे गये। नारदमुनिका वचन सुनके सब देवता प्रसन्न हुए और यशस्वी ब्राह्मणों तथा द्विजगणोंकी प्रशंसा करने लगे। अनन्तर देवताओंके तेज और वीर्यकी वृद्धि हुई और उन्होंने तीनों लोकोंमें पूजित होकर अमरत्व लाभ किया। हे महाबाहो नरनाथ! जब पवनने इतनी कथा कही, तब अर्जुनने उनकी पूजा करके जो उत्तर दिया उसे सुनो। (१८—२३)

अर्जुन बोले, हे प्रभु! मैं सब प्रकारसे सदा ब्राह्मणोंके निमित्त जीवित हूं, मैं व्रतनिष्ठ होकर ब्राह्मणोंको प्रतिदिन प्रणाम किया करता हूं। दत्तात्रेयके प्रसादसे मैंने यह बल पाया है और इस लोकमें मेरी परम कीर्त्ति हुई है तथा मैंने महत् कर्म किया है। हे मारुत! तुमने जो ब्राह्मणोंके अद्भुत कर्म वर्णन किये, उसे मैंने सावधान होकर सुना है। (२४—२६)

युधिष्ठिर उवाच-ब्राह्मणानर्चसे राजन् सततं संशितव्रतान्।
कं तु कर्मोदयं दृष्ट्वा तानर्चसि जनाधिप ॥ १ ॥
कां वा ब्राह्मणपूजायां व्युष्टिं दृष्ट्वा महाव्रत।
तानर्चसि महाबाहो सर्वमेतद्वदस्व मे ॥ २ ॥
भीष्म उवाच-एष ते केशवः सर्वमाख्यास्यति महामतिः।
व्युष्टिं ब्राह्मणपूजायां दृष्टव्युष्टिर्महाव्रतः ॥ ३ ॥
बलं श्रोत्रे वाङ्मनश्चक्षुषी च ज्ञानं तथा सविशुद्धं ममाद्य।
देहन्यासो नातिचिरान्मतो मे न चातितूर्णं सविताद्य याति ॥ ४ ॥
उक्ता धर्मा ये पुराणे महान्तो राजन् विप्राणां क्षत्रियाणां विशां च।
तथा शूद्राणां धर्ममुपासते च शेषं कृष्णादुपशिक्षस्व पार्थ ॥५॥
अहं ह्येनं वेद्मि तत्त्वेन कृष्णं योऽयं हि यच्चास्य बलं पुराणम्।
अमेयात्मा केशवः कौरवेन्द्र सोऽयं धर्मं वक्ष्यति संशयेषु ॥ ६ ॥
कृष्णः पृथ्वीमसृजत् खं दिवं च कृष्णस्य देहान्मेदिनी संबभूव।

वायु बोले, तुम ब्राह्मणों और इन्द्रियोंको क्षत्रधर्मके अनुसार पालन करो, समयके अनुसार भृगुवंशसे तुम्हें घोर भय प्राप्त होगा। (२७)

अनुशासनपर्वमें १५७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १५८ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे जननाथ! आप संशितव्रती ब्राह्मणोंकी सदा अर्चना करते हैं, परन्तु कौनसा फलोदय देखके उनकी पूजा किया करते हैं? हे महाव्रत महाबाहो! ब्राह्मणपूजासे क्या फल दीखता है, जिससे आप उन लोगोंकी अर्चना करते हैं। यह सब वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करिये। (१—२)

भीष्म बोले, ब्राह्मणपूजाके फलदर्शी ये महाव्रत, महाबुद्धिमान केशव तुमसे समस्त फलका विषय कहेंगे। आज मेरा बल, दोनों कान, वचन, मन, दोनों नेत्र और ज्ञान विशुद्ध नहीं है; जान पडता है शरीरत्यागमें अब अधिक विलम्ब नहीं है; सूर्य भी शीघ्र प्रयाण नहीं करता है। हे राजन्! पुराणोंके बीच ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके जो महत् धर्म वर्णित है, और वे लोग जिस धर्मकी उपासना करते हैं, उसका शेषभाग कृष्णके निकट सीखो। मैं ही इस कृष्णको यथार्थ रीतिसे जानता हूं, इनका स्वरूप तथा इनका पुराण बल मुझे अविदित नहीं है। हे कौरवेन्द्र! केशव अमेयात्मा हैं, इसलिये येही सन्देहके स्थलमें धर्मका वर्णन करेंगे। (३—६)

वराहोऽयं भीमबलः पुराणः स पर्वतान्व्यसृजद्वै दिशश्च ॥ ७ ॥
अस्य चाधोऽथान्तरिक्षं दिवं च दिशश्चतस्रो विदिशश्चतस्रः ।
सृष्टिस्तथैवेयमनुप्रसूता स निर्ममे विश्वमिदं पुराणम् ॥ ८ ॥
अस्य नाभ्यां पुष्करं संप्रसूतं यत्रोत्पन्नः स्वयमेवामितौजाः ।
येनाच्छिन्नं तत्तमः पार्थ घोरं यत्तत्तिष्ठत्यर्णवं तर्जयानम् ॥ ९ ॥
कृते युगे धर्म आसीत्समग्रस्त्रेताकाले ज्ञानमनुप्रपन्नः ।
बलं त्वासीद् द्वापरे पार्थ कृष्णः कलौ त्वधर्मः क्षितिमेवाजगाम ॥१०॥
स एव पूर्वं निजघान दैत्यान्स पूर्वदेवश्च बभूव सम्राट् ।
स भूतानां भावनो भूतभव्यः स विश्वस्यास्य जगतश्चाभिगोप्ता ॥११॥
यदा धर्मो ग्लाति वंशेऽसुराणां तदा कृष्णो जायते मानुषेषु ।
धर्मे स्थित्वा स तु वै भावितात्मा परांश्च लोकानपरांश्च पाति ॥१२॥
त्याज्यं त्यक्त्वा चासुराणां वधाय कार्याकार्ये कारणं चैव पार्थ ।
कृतं करिष्यत् क्रियते च देवो राहुं सोमं विद्धि च शक्रमेनम् ॥ १३ ॥

कृष्णने ही पृथ्वी, आकाश और स्वर्गकी सृष्टि की है; कृष्णके देहसे ही महीमण्डलकी उत्पत्ति हुई है, येही भीम-बल पुराण वराह हैं; इन्होंने ही पर्वतों तथा सब दिशाओंको उत्पन्न किया है। येही पाताल, आकाश, सुरपुर, चारों दिशा तथा चारों विदिशामें व्याप्त हैं, यह सृष्टि इन्हींसे प्रकट हुई है, इन्होंने ही इस दृश्यमान पुरातन जगत्को उत्पन्न किया है; इन्हींकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ था, जिससे अत्यन्त तेजस्वी स्वयं हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुए। हे पार्थ! जिन्होंने घोर अन्धकारको दूर किया है, वेही अतलस्पर्शी अपार समुद्रमें निवास कर रहे हैं। (७-९)

सत्ययुगमें पूरा धर्म था, त्रेतायुगमें विवेक प्रबल हुआ था, द्वापर युगमें बलकी प्रधानता थी। हे पार्थ! कलिकालमें पृथ्वीपर अधर्म आया है। इस कृष्णने ही पहले दैत्योंको मारा, येही पहले देव और सम्राट् हुए थे, येही सब भूतोंकी उत्पत्तिके कारण हैं, यही भूत-भविष्यत् और येही समस्त जगत्के रक्षा-कर्त्ता हैं। जिस समय असुरवंशमें धर्म ग्लानियुक्त होता है, उस समय कृष्ण मनुष्यलोकमें अवतार लेते हैं। येही विशुद्धस्वभाववाले भगवान् धर्ममें स्थित रहके परापर लोकोंकी रक्षा किया करते हैं। (१०-१२)

हे पार्थ! ये असुरोंके वधके निमित्त त्याज्य पुरुषोंका परित्याग किया करते हैं। यह देव ही कार्य, अकार्य कारण,

स विश्वकर्मा स हि विश्वरूपः स विश्वभुग्विश्वसृग्विश्वजिच्च ।
स शूलभृच्छोणितभृत्करालस्तं कर्मभिर्विदितं वै स्तुवन्ति ॥ १४ ॥
तं गन्धर्वाणामप्सरसां च नित्यमुपतिष्ठन्ते विबुधानां शतानि ।
तं राक्षसाश्च परिसंवदन्ति रायस्पोषः स विजिगीषुरेकः ॥ १५ ॥
तमध्वरे शंसितारः स्तुवन्ति रथन्तरे सामगाश्च स्तुवन्ति ।
तं ब्राह्मणा ब्रह्ममन्त्रैः स्तुवन्ति तस्मै हविरध्वर्यवः कल्पयन्ति ॥ १६ ॥
स पौराणीं ब्रह्मगुहां प्रविष्टो महीसत्रं भारताग्रे ददर्श ।
स चैव गामुद्दधाराग्र्यकर्मा विक्षोभ्य दैत्यानुरगान्दानवांश्च ॥ १७ ॥
तं घोषार्थे गीर्भिरिन्द्राः स्तुवन्ति स चापीशो भारतैकः पशूनाम् ।
तस्य भक्षान्विविधान्वेदयन्ति तमेवाजौ वाहनं वेदयन्ति ॥ १८ ॥
तस्यान्तरिक्षं पृथिवी दिवं च सर्वं वशे तिष्ठति शाश्वतस्य ।
स कुम्भे रेतः ससृजे सुराणां यत्रोत्पन्नमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥ १९ ॥

कृत, भविष्यत् और क्रियमाण हैं; इसे ही राहु, चन्द्रमा तथा इन्द्र जानो, येही विश्वकर्मा, येही विश्वरूप, येही विश्वभुक्, येही विश्वस्रष्टा और येही विश्वजित् हैं; येही शूलधारी शरीरधारी कराल हैं; कर्मके द्वारा विदित होनेवाले इस देवकी सब कोई स्तुति किया करते हैं। (१३–१४)

गन्धर्व, अप्सरा और सैकडों देवता सदा इनकी उपासना करते हैं, राक्षसगण इन्हींका कीर्त्तन किया करते हैं, येही एकमात्र धनपोषक और विजिगीषु हैं। यज्ञमें उद्गातृगण इनकी स्तुति करते हैं, सामगान करनेवाले रथन्तर सामके सहारे इनकी स्तुति किया करते हैं, ब्राह्मण लोग ब्रह्ममन्त्रसे इनका स्तव करते हैं, अध्वर्युगण इन्हींके उद्देश्यसे हवि प्रदान किया करते हैं, येही पुरातनी गुहाके बीच प्रविष्ट ब्रह्म हैं। हे भरतकुलप्रदीप! इन्होंने ही पहले पृथिवीका छादन और मज्जन दर्शन किया है। येही श्रेष्ठ कर्मशील पुरुष दैत्य और असुरोंको विक्षोभित करके पृथ्वीका उद्धार करता है। गोवर्द्धन पर्वत धारण करनेके समय इन्द्रादि देवताओंने वाणीके सहारे इनकी स्तुति की थी। (१५–१८)

हे भारत! अकेले येही समस्त जीवों तथा पशुओंके नियन्ता हैं, पण्डित लोग इनका विविध भक्ष्य निर्देश करते और इन्हें युद्धमें जयप्रापक कहा करते हैं। आकाश, पृथ्वी और स्वर्गादि इनके वशमें हैं; इन्होंने ही मित्रावरुणको रेतकुम्भसे उत्पन्न किया, जिसमें उत्पन्न हुए ऋषिको लोग वसिष्ठ कहा करते

स मातरिश्वा विभुरश्ववाजी स रश्मिवान्सविता चादिदेवः ।
तेनासुरा विजिताः सर्व एव तद्विक्रान्तैर्विजितानीह त्रीणि ॥ २० ॥
स देवानां मानुषाणां पितॄणां तमेवाहुर्यज्ञविदां वितानम् ।
स एव कालं विभजन्नुदेति तस्योत्तरं दक्षिणं चायने द्वे ॥ २१ ॥
तस्यैवोर्ध्वं तिर्यगधश्चरन्ति गभस्तयो मेदिनीं भासयन्तः ।
तं ब्राह्मणा वेदविदो जुषन्ति तस्यादित्यो भामुपयुज्य भाति ॥२२॥
स मासि मास्यध्वरकृद्विधत्ते तमध्वरे वेदविदः पठन्ति ।
स एवोक्तश्चक्रमिदं त्रिनाभि सप्ताश्वयुक्तं वहते वै त्रिधाम ॥ २३ ॥
महातेजाः सर्वगः सर्वसिंहः कृष्णो लोकान्धारयते यथैकः ।
हंसं तमोघ्नं च तमेव वीर कृष्णं सदा पार्थ कर्तारमेहि ॥ २४॥
स एकदा कक्षगतो महात्मा तुष्टो विभुः खाण्डवे धूमकेतुः ।
स राक्षसानुरगांश्चावजित्य सर्वत्रगः सर्वमग्नौ जुहोति ॥ २५ ॥

हैं। येही सर्वव्यापी मातरिश्वा वेगवान् अश्व हैं, येही किरणधारी सूर्य और आदिदेव हैं; इन्हींके द्वारा सब असुर पराजित हुए हैं, इन्होंने ही त्रिपादविक्षेपसे त्रिभुवन जय किया है। येही देवताओं, मनुष्यों और पितरोंके आश्रय हैं। पण्डित लोग इन्हें ही यज्ञवित् पुरुषोंका यज्ञ कहा करते हैं। येही कालका विभाग करके उदित होते हैं, इनकी दक्षिण और उत्तर, दोनों गतिको अयन कहा जाता है। इनकी समस्त किरण मेदिनीमण्डलको प्रकाशित करती हुई, ऊपर, नीचे और तिर्यक् प्रदेशमें विचरती हैं। वेद जाननेवाले ब्राह्मण लोग इनकी ही सेवा किया करते हैं, सूर्य इनकी ही प्रभाको पाके प्रकाशित होता है। (१८-२२)

यज्ञकारी होकर प्रतिमासमें यज्ञका विधान करते हैं। वेद जाननेवाले ब्राह्मणगण यज्ञमें इन्हींकी स्तुति किया करते हैं। ये सर्दी, गर्मी, वर्षाका समय रूपी त्रिनाभियुक्त संवत्सर चक्ररूपसे वर्णित होके सप्ताश्वयुक्त वर्षा, वात, उष्म प्रकार तीनों धाम वहन करते हैं। येही महातेजस्वी सब भांतिसे सब लोकोंकी हिंसा करते हैं, पापोंको आकर्षण करनेसे इनका कृष्ण नाम हुआ है, ये अकेले ही सब लोकोंको धारण किये हुए हैं। हे वीरवर पार्थ! ये ही सूर्यरूपसे अन्धकारका नाश करते हैं, इसलिये इस कृष्णको ही तुम कर्त्ता जानके इनका आसरा करो। (२३—२४)

जिस महात्माने किसी समयमें कक्षगत सर्वशक्तिमान् नित्य सन्तुष्ट धूम-

स एव पार्थाय श्वेतमश्वं प्रायच्छत्स एवाश्वानथ सर्वांश्चकार।
स बन्धुरस्तस्य रथस्त्रिचक्रस्त्रिवृच्छिराश्चतुरश्वस्त्रिनाभिः ॥ २६ ॥
स विहायो व्यदधात्पञ्चनाभिः स निर्ममे गां दिवमन्तरिक्षम्।
सोऽरण्यानि व्यसृजत्पर्वतांश्च हृषीकेशोऽमितदीप्ताग्नितेजाः॥ २७ ॥
अलङ्घयद्वै सरितो जिघांसन् शक्रं वज्रं प्रहरन्तं निरास।
स महेन्द्रः स्तूयते वै महाध्वरे विप्रैरेको ऋक्सहस्रैः पुराणैः ॥ २८ ॥
दुर्वासा वै तेन नान्येन शक्यो गृहे राजन्वासयितुं महौजाः।
तमेवाहुर्ऋषिमेकं पुराणं स विश्वकृद्विदधात्यात्मभावान् ॥ २९ ॥
वेदांश्च यो वेदयतेऽधिदेवो विधींश्च यश्चाश्रयते पुराणान्।
कामे वेदे लौकिके यत्फलं च विष्वक्सेनः सर्वमेतत्प्रतीहि ॥ ३० ॥

केतुरूपसे खाण्डववनमें राक्षसों और उरगोंको पराजित करके सर्वत्रगामी होकर अग्निमें सब आहुति प्रदान की थी, उसीने धनञ्जयको सफेद घोडे प्रदान किये हैं, उसहीने घोडों तथा अन्य समस्त जीवोंकी सृष्टि की है। वही संसाररथकी योजना करनेवाला है। ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोकमें उसके रथकी गति हुआ करती है; इसलिये उसका रथ त्रिचक्र और त्रिवृत्‌शिरा नामसे विख्यात है। काल, अदृष्ट ईश्वरेच्छा और संकल्प ये चारों उसके रथके घोडे हैं। श्वेत, कृष्ण और शुक्ल-कृष्ण मिश्रित त्रिविधधर्मगर्भ है, इस-लिये त्रिनाभि और वही पञ्चभूतोंका अवलम्ब है, इसलिये पञ्चनाभि कहाता है। उसने ही पृथिवी, स्वर्ग और अन्त-रिक्षकी सृष्टि की है, उसीने वन पर्वतों-को उत्पन्न किया है। वह विषयेन्द्रियों-का नियन्ता है, इसलिये हृषीकेश कहाता है और वही अपरिमित प्रदीप्त अग्निसदृश तेजस्वी है। (२४–२७)

उसने ही नदियोंकी जिघांसा करते हुए उन्हें लंघन किया था, वज्र प्रहार करनेके लिये उद्यत देवराजको पराजित किया था; एकमात्र वही यज्ञमें महेन्द्र रूपसे ब्राह्मणोंके द्वारा पुरातन ऋग्वेदके सहस्र मन्त्रोंसे स्तुतियुक्त हुआ करता है। हे राजन्! महातेजस्वी दुर्वासको गृहमें निवास करानेके लिये इनके अति-रिक्त और कोई भी समर्थ न हुआ। पण्डित लोग उन्हें ही एकमात्र पुरातन ऋषि कहा करते हैं, वही विश्वकर्ता है, वही अपने सहारे सब जीवोंका विधान करता है। जो देवाधिदेव होकर वेदों-को ज्ञापन करता है, वही अग्निहोत्र प्रभृतिका आश्रय करता है। पुरातन विधि, काम, वेद और लौकिकमें जो

ज्योतींषि शुक्लानि हि सर्वलोके त्रयो लोका लोकपालास्त्रयश्च ।
त्रयोऽग्नयो व्याहृतयश्च तिस्रः सर्वे देवा देवकीपुत्र एव ॥ ३१ ॥
स वत्सरः स ऋतुः सोऽर्धमासः सोऽहोरात्रः सकला वै स काष्ठाः ।
मात्रा मुहूर्ताश्च लवाः क्षणाश्च विष्वक्सेनः सर्वमेतत्प्रतीहि ॥ ३२ ॥
चन्द्रादित्यौ ग्रहनक्षत्रताराः सर्वाणि दर्शान्यथ पौर्णमासम् ।
नक्षत्रयोगा ऋतवश्च पार्थ विष्वक्सेनात्सर्वमेतत्प्रसूतम् ॥ ३३ ॥
रुद्रादित्या वसवोऽथाश्विनौ च साध्याश्च विश्वे मरुतां गणाश्च ।
प्रजापतिर्देवमाता दितिश्च सर्वे कृष्णादृषयश्चैव सप्त ॥ ३४ ॥
वायुर्भूत्वा विक्षिपते च विश्वमग्निर्भूत्वा दहते विश्वरूपः ।
आपो भूत्वा मज्जयते च सर्वं ब्रह्मा भूत्वा सृजते विश्वसङ्घान् ॥३५॥
वेद्यं च यद्वेदयते च वेद्यं विधिश्च यश्चाश्रयते विधेयम् ।
धर्मे च वेदे च बले च सर्वं चराचरं केशवं त्वं प्रतीहि ॥ ३६ ॥
ज्योतिर्भूतः परमोऽसौ पुरस्तात्प्रकाशते यत्प्रभया विश्वरूपः ।
अपः सृष्ट्वा सर्वभूतात्मयोनिः पुराऽकरोत्सर्वमेवाथ विश्वम् ॥ ३७ ॥

कुछ फल होते हैं, विष्वक्सेन नारायणको ही फलस्वरूप जानना चाहिये। (२८—३०)

सब लोकोंमें जो सब शुक्लवर्ण ज्योतिके पदार्थ हैं,तीनों लोक,तीनों लोकपाल, तीनों अग्नि, तीनों व्याहृति और समस्त देवगण देवकीनन्दनस्वरूप हैं। वेही संवत्सर, वेही ऋतु, वेही पक्ष, वेही अहोरात्र हैं; वेही कला, काष्ठा, मात्रा, मुहूर्त्त, लव और क्षण हैं। यह सब विष्वक्सेनका ही स्वरूप जानो। हे पार्थ! चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा सब पर्व,पौर्णमास,नक्षत्रयोग और ऋतु ये सब विष्वक्सेन नारायणसे ही उत्पन्न हुए हैं। रुद्रगण, आदित्यगण, वसुगण दोनों अश्विनीकुमार, साध्यगण, विश्वगण, मरुद्गण, प्रजापति, देवमाता अदिति और सप्तर्षि कृष्णसे ही उत्पन्न हुए हैं। (३१—३४)

वही विश्वरूप वायु होकर जगत्को विक्षिप्त कर रहा है, वही अग्नि होकर जगत्को जलाता है, वही जल होके सबको डुबाता है और ब्रह्मा होके सबकी सृष्टि करता है। वही वेद-प्रतिपाद्य वेदवस्तुओंका बोध कराता है और विधि होकर वेद तथा विधेय विषयोंका आश्रय करता है। धर्म, वेद, बल तथा चराचरात्मक सब विषयोंको ही केशवस्वरूप जानो! जिसकी प्रभाके सहारे यह परम ज्योतिस्वरूप पूर्व दिशामें

ऋतूनुत्पातान्विविधान्यद्भुतानि मेघान्विद्युत्सर्वमैरावतं च ।
सर्वं कृष्णात्स्थावरं जङ्गमं च विश्वात्मानं विष्णुमेनं प्रतीहि ॥ ३८ ॥
विश्वावासं निर्गुणं वासुदेवं सङ्कर्षणं जीवभूतं वदन्ति ।
ततः प्रद्युम्नमनिरुद्धं चतुर्थमाज्ञापयत्यात्मयोनिर्महात्मा ॥ ३९ ॥
स पञ्चधा पञ्चजनोपपन्नं संचोदयन्विश्वमिदं सिसृक्षुः ।
ततश्चकारावनिमारुतौ च खं ज्योतिरम्भश्च तथैव पार्थ ॥ ४० ॥
स स्थावरं जङ्गमं चैवमेतच्चतुर्विधं लोकमिमं च कृत्वा ।
ततो भूमिं व्यदधात्पञ्चबीजां द्यौः पृथिव्यां धास्यति भूरि वारि ॥४१॥
तेन विश्वं कृतमेतद्धि राजन्स जीवयत्यात्मनैवात्मयोनिः ।
ततो देवानसुरान्मानवांश्च लोकानृषींश्चापि पितॄन्प्रजाश्च ।
समासेन विविधान्प्राणिलोकान्सर्वान्सदा भूतपतिः सिसृक्षुः ॥ ४२ ॥
शुभाशुभं स्थावरं जङ्गमं च विष्वक्सेनात्सर्वमेतत्प्रतीहि ।
यद्वर्तते यच्च भविष्यतीह सर्वं ह्येतत्केशवं त्वं प्रतीहि ॥ ४३ ॥

प्रकाशित है, उस सर्व-भूतात्मा विश्व-रूपने पहले जलकी सृष्टि करके अनन्तर सब विश्व निर्माण किया है। (३५-३७)

सब ऋतु, उत्पात, विविध अद्भुत विषय, मेघमण्डल, बिजली, ऐरावत और स्थावरजङ्गम सबकोही विश्वात्मा विष्णु जानो। पण्डित लोग उसे विश्वा-वास, निर्गुण, वासुदेव, सङ्कर्षण और जीवस्वरूप कहते हैं, उससे प्रद्युम्न और चौथा अनिरुद्ध अर्थात् अहङ्कार उत्पन्न होता है। वह आत्मयोनि महात्माही देव, असुर, मनुष्य, श्वापद और तिर्यक्, इन पांचों रूपसे पञ्चजनोत्पन्न पञ्चभूतयुक्त जगत्की सृष्टि करनेके लिये अभिलाषी होकर आज्ञा प्रचार किया करता है। हे पार्थ! अनन्तर वह पृथ्वी, वायु, आकाश, अग्नि और जलकी सृष्टि करता है, वह इस स्थावर-जङ्गमात्मक चतुर्विध लोकोंकी सृष्टि करता और अन्तरिक्ष तथा भूमितलमें भूरिवारि स्थापित करता है। (३८-४१)

हे राजन्! उसने ही इस विश्वको बनाया है, वह आत्मयोनि स्वयं ही सबको जीवित रखता है। अनन्तर वह भूपति सुरासुर, मनुष्यलोक, ऋषि-गण, पितृगण, प्रजासमूह तथा प्राणि-योंको संक्षेप रीतिसे विधिपूर्वक उत्पन्न करनेका अभिलाषी होकर शुभाशुभ स्थावर और जङ्गमोंकी सृष्टि करता है, इस लिये जानना चाहिये कि विष्वक्-सेनसे सब कोई उत्पन्न हुए हैं। जो वर्त्तमान है, जो होगा, तुम वह सब

मृत्युश्चैव प्राणिनामन्तकाले साक्षात्कृष्णः शाश्वतो धर्मवाहः ।
भूतं च यच्चेह न विद्म किंचिद्विष्वक्सेनात्सर्वमेतत्प्रतीहि ॥ ४४ ॥
यत्प्रशस्तं च लोकेषु पुण्यं यच्च शुभाशुभम् ।
तत्सर्वं केशवोऽचिन्त्यो विपरीतमतः परम् ॥ ४५ ॥
एतादृशः केशवोऽनश्च भूयो नारायणः परमश्चाव्ययश्च ।
मध्याद्यन्तस्य जगतस्तस्थुषश्च बुभूषतां प्रभवश्चाव्ययश्च ॥ ४६ ॥[७३१२]
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे महापुरुषमाहात्म्ये अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥

युधिष्ठिर उवाच– ब्रूहि ब्राह्मणपूजायां व्युष्टिं त्वं मधुसूदन ।
वेत्ता त्वमस्य चार्थस्य वेद त्वां हि पितामहः ॥ १ ॥
वासुदेव उवाच– शृणुष्वावहितो राजन्द्विजानां भरतर्षभ ।
यथातत्त्वेन वदतो गुणान्वै कुरुसत्तम ॥ २ ॥
द्वारवत्यां समासीनं पुरा मां कुरुनन्दन ।
प्रद्युम्नः परिपप्रच्छ ब्राह्मणैः परिकोपितः ॥ ३ ॥
किं फलं ब्राह्मणेष्वस्ति पूजायां मधुसूदन ।

इस केशवको ही जानो । (४२—४३)

शाश्वत धर्मवाही कृष्ण ही प्राणियोंके अन्तकालमें साक्षात् मृत्युस्वरूप हैं । इस लोकमें जो कुछ अतीत हुआ तथा जो विषय हम लोगोंको मालूम नहीं हैं, उन सबको भी विष्वक्सेन नारायण जानो । लोकमें जो कुछ प्रशस्त अथवा जो कुछ शुभ अशुभ अचिन्तनीय विषय हैं, वे सब केशवके ही रूप हैं; जो उससे भिन्न है, वही विपरीत है । केशवका ऐसा ही प्रभाव है, इसही निमित्त ये नारायण परम अव्यय हैं, येही जगत्की आदि, मध्य और अन्तमें निवास करते हैं । येही जगत्की उत्पत्तिके कारण हैं, इनका विनाश नहीं है; इन्हें जाननेकी इच्छा करो । (४४-४५)

अनुशासनपर्वमें १५८ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १५९ अध्याय ।

युधिष्ठिर बोले हे मधुसूदन ! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे क्या फल होता है, उसे तुम वर्णन करो, तुम ही इस विषयके जाननेवाले हो और पितामह तुम्हें विशेष रीतिसे जानते हैं । (१)

वासुदेव बोले, हे कुरुसत्तम भरतकुलधुरन्धर महाराज ! मैं यथार्थ रीतिसे ब्राह्मणोंके गुणोंको वर्णन करता हूं, तुम सावधान होकर सुनो । हे कुरुनन्दन ! पहले द्वारकानगरमें मेरे बैठे रहनेपर

ईश्वरत्वं कुतस्तेषामिहैव च परत्र च ॥ ४ ॥
सदा द्विजातीन्संपूज्य किं फलं तत्र मानद।
एतद् ब्रूहि स्फुटं सर्वं सुमहान्संशयोऽत्र मे ॥ ५ ॥
इत्युक्ते वचने तस्मिन्प्रद्युम्नेन तथा त्वहम्।
प्रत्यब्रुवं महाराज यत्तच्छृणु समाहितः ॥ ६ ॥
व्युष्टिं ब्राह्मणपूजायां रौक्मिणेय निबोध मे।
एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ॥ ७ ॥
अस्मिँल्लोके रौक्मिणेय तथाऽमुष्मिंश्च पुत्रक।
ब्राह्मणप्रमुखं सौम्यं न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ ८ ॥
ब्राह्मणप्रतिपूजायामायुः कीर्तिर्यशो बलम्।
लोका लोकेश्वराश्चैव सर्वे ब्राह्मणपूजकाः ॥ ९ ॥
त्रिवर्गे चापवर्गे च यशःश्रीरोगशान्तिषु।
देवतापितृपूजासु सन्तोष्याश्चैव नो द्विजाः ॥ १० ॥
तत्कथं वै नाद्रियेयमीश्वरोऽस्मीति पुत्रक।
मा ते मन्युर्महाबाहो भवत्वत्र द्विजान्प्रति ॥ ११ ॥

प्रद्युम्नने ब्राह्मणोंके द्वारा प्रकोपित होकर मुझसे पूछा, हे मधुसूदन! ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे क्या फल होता है और इस लोक तथा परलोकमें किस निमित्त उनका ईश्वरत्व हुआ है? हे मानद! सर्वदा द्विजातियोंकी पूजा करनेसे क्या फल है? आप स्पष्ट रीतिसे मेरे समीप उसका उपदेश करिये; इस विषयमें मुझे बहुत ही सन्देह हुआ है। (२—५)

हे महाराज! जब प्रद्युम्नने ऐसा कहा, तब मैंने उन्हें जो उत्तर दिया था, उसे सावधान होके सुनो। हे रुक्मिणीनन्दन! ब्राह्मणोंकी पूजाका फल मेरे समीप सुनो। हे रुक्मिणीपुत्र! ये सोमराज हैं, येही इस लोक और परलोकमें सुख दुःखके ईश्वर हैं; ब्राह्मणोंसे कल्याण होता है, इस विषयमें मुझे शंका नहीं करता। ब्राह्मणोंकी पूजा करनेसे आयु, यश और बलकी वृद्धि होती है, जो लोग ब्राह्मणोंकी पूजा करते हैं, वे लोकेश्वर होते हैं। त्रिवर्ग, अपवर्ग, यश, श्री और रोगशान्तिविषयमें देवताओं तथा पितरोंकी पूजा करनेके समयमें ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करना हम लोगोंका कर्तव्य कार्य है। हे पुत्र! मैं ईश्वर होके भी किस हेतु ब्राह्मणोंका समादर न करूंगा?

ब्राह्मणा हि महद्भूतमस्मिन्लोके परत्र च।
भस्म कुर्युर्जगदिदं क्रुद्धाः प्रत्यक्षदर्शिनः ॥ १२ ॥
अन्यानपि सृजेयुश्च लोकाँल्लोकेश्वरांस्तथा।
कथं तेषु न वर्तेरन्सम्यग्ज्ञानात्सुतेजसः ॥ १३ ॥
अवसन्मद्गृहे तात ब्राह्मणो हरिपिङ्गलः।
चीरवासा बिल्वदण्डी दीर्घश्मश्रुः कृशो महान् ॥१४॥
दीर्घेभ्यश्च मनुष्येभ्यः प्रमाणादधिको भुवि।
स स्वैरं चरते लोकान्ये दिव्या ये च मानुषाः॥ १५॥
इमां गाथां गायमानश्चत्वरेषु सभासु च।
दुर्वाससं वासयेत्को ब्राह्मणं सत्कृतं गृहे ॥ १६ ॥
रोषणः सर्वभूतानां सूक्ष्मेऽप्यपकृते कृते।
परिभाषां च मे श्रुत्वा को नु दद्यात्प्रतिश्रयम्॥ १७॥
यो मां कश्चिद्वासयति न स मां कोपयेदिति।
यस्मान्नाद्रियते कश्चित्ततोऽहं समवासयम् ॥ १८ ॥
स संभुङ्क्ते सहस्राणां बहूनामन्नमेकदा।

हे महाबाहो! द्विजोंके विषयमें तुम्हें मन्यु न होवे। (९—११)

इस लोक और परलोकमें ब्राह्मण ही महाभूत हैं, प्रत्यक्षदर्शी ब्राह्मण लोग क्रुद्ध होनेसे इस जगत्को भस्म कर सकते हैं, और दूसरे लोकों तथा लोकेश्वरोंकी सृष्टि भी कर सकते हैं। जिनमें पूर्ण ज्ञान और सुन्दर तेज है, ब्राह्मणोंके अधीनमें क्यों न वर्तमान रहेंगे। हे तात! मेरे गृहमें चीरवासा, बेलका दण्ड धारण करनेवाला, दीर्घश्मश्रु, अत्यन्त कृश, पिङ्गलवर्ण एक ब्राह्मण वास करता था। भूलोकमें जो सब बडे मनुष्य हैं, वह उन सबसे अधिक बडा था, वह मनुष्यलोक तथा समस्त दिव्य लोकोंमें विचरता था, वह चत्वर और सभाके बीच यह गाथा गाता था, कि दुर्वासा ब्राह्मणको सत्कारपूर्वक कौन गृहमें वास करा सकता है, अल्प अपराध करनेपर भी मैं सर्वभूतोंके विषयमें रोष प्रकाश किया करता हूं, मेरा वचन सुनके कौन मुझे आश्रय देगा? (१२–१७)

जो कोई मुझे गृहमें वास करावेगा, वह मुझे प्रकोपित न कर सकेगा। दुर्वासा ब्राह्मणके ऐसी कथा प्रचार करते रहनेपर जब किसीने भी उनका आदर न किया; तब मैंने उन्हें निज गृहमें

एकदा सोऽल्पकं भुङ्क्ते न चैवैति पुनर्गृहान् ॥ १९ ॥
अकस्माच्च प्रहसति तथाऽकस्मात्प्ररोदिति ।
न चास्य वयसा तुल्यः पृथिव्यामभवत्तदा ॥ २० ॥
अथ स्वावसथं गत्वा स शय्यास्तरणानि च ।
कन्याश्चालङ्कृता दग्ध्वा ततो व्यपगतः पुनः ॥२१॥
अथ मामब्रवीद्भूयः स मुनिः संशितव्रतः ।
कृष्ण पायसमिच्छामि भोक्तुमित्येव सत्वरः ॥२२ ॥
तदैव तु मया तस्य चित्तज्ञेन गृहे जनः ।
सर्वाण्यन्नानि पानानि भक्ष्याश्चोच्चावचास्तथा ॥२३ ॥
भवन्तु सत्कृतानीह पूर्वमेव प्रचोदितः ।
ततोऽहं ज्वलमानं वै पायसं प्रत्यवेदयम् ॥ २४ ॥
तं भुक्त्वैव स तु क्षिप्रं ततो वचनमब्रवीत् ।
क्षिप्रमङ्गानि लिम्पस्व पायसेनेति स स्म ह ॥ २५ ॥
अविमृश्यैव च ततः कृतवानस्मि तत्तथा ।
तेनोच्छिष्टेन गात्राणि शिरश्चैवाभ्यमृक्षयम् ॥ २६ ॥
स ददर्श तदाभ्याशे मातरं ते शुभाननाम् ।
तामपि स्मयमानां स पायसेनाभ्यलेपयत् ॥ २७ ॥

वास कराया। उन्होंने एक ही बार सहस्र लोगों तथा उससे भी अधिक लोगोंका अन्न भोजन किया, किसी बार थोडा ही भोजन किया; पुनर्वार गृहमें न आये। सहसा हंसे कभी अकस्मात् रोदन करनेमें प्रवृत्त हुए। उस समय पृथ्वीपर उनके तुल्य अवस्थावाला पुरुष न था। (१८—२०)

अनन्तर उन्होंने आश्रममें जाके बिछाई हुई शय्या और अलंकृत कन्याओंको जलाकर वहांसे प्रस्थान किया। अन्तमें वह संशितव्रती मुनि मुझसे फिर बोले, हे कृष्ण! मैं शीघ्र ही पायस भोजन करनेकी इच्छा करता हूं। मैं उनका मन जानता था, इसलिये पहलेसे ही परिजनोंको सब अन्न पान तथा अनेक प्रकारकी भक्ष्यवस्तु तय्यार रखनेको कहा था। अनन्तर मैंने उन्हें उष्ण पायस प्रदान किया, वह शीघ्र ही उसे भोजन करके बोले, मेरे सारे शरीरमें पायस लगाओ। (२१—२५)

मैंने उनके वचनमें कुछ भी विचार न करके वैसा ही किया; वह जूठा पायस मेरे शरीर और मस्तकमें लगा

मुनिः पायसदिग्धाङ्गीं रथे तूर्णमयोजयत् ।
तमारुह्य रथं चैव निर्ययौ स गृहान्मम ॥ २८ ॥
अग्निवर्णो ज्वलन्धीमान्स द्विजो रथधुर्यवत् ।
प्रतोदेनातुदद्बालां रुक्मिणीं मम पश्यतः ॥ २९ ॥
न च मे स्तोकमप्यासीद्दुःखमीर्ष्याकृतं तदा ।
तथा स राजमार्गेण महता निर्ययौ बहिः ॥ ३० ॥
तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं दाशार्हा जातमन्यवः ।
तत्राजल्पन्मिथः केचित्समाभाष्य परस्परम् ॥ ३१ ॥
ब्राह्मणा एव जायेरन्नान्यो वर्णः कथंचन ।
को ह्येनं रथमास्थाय जीवेदन्यः पुमानिह ॥ ३२ ॥
आशीविषविषं तीक्ष्णं ततस्तीक्ष्णतरो द्विजः ।
ब्रह्माशीविषदग्धस्य नास्ति कश्चिच्चिकित्सकः ॥ ३३ ॥
तस्मिन्व्रजति दुर्धर्षे प्रास्खलद्रुक्मिणी पथि ।
तन्नामर्षयत श्रीमांस्ततस्तूर्णमचोदयत् ॥ ३४ ॥
ततः परमसंक्रुद्धो रथात्प्रस्कन्द्य स द्विजः ।

दिया, उन्होंने उस समय तुम्हारी शुभानना जननीको देखा और हंसके उसके शरीरमें भी पायस लगाया, उस समय मुनिने पायसलिप्ताङ्गी तुम्हारी माताको शीघ्र ही रथमें योजना किया और उस रथपर चढके मेरे गृहसे बाहिर हुए, उस जलते हुए अग्निवर्ण रथ धुर्यवत् धीमान् ब्राह्मणने मेरे सम्मुखमें ही बालिका रुक्मिणीको कोडेसे मारा। उस समय मुझे ईर्षाजनित अल्पमात्र भी दुःख न हुआ, वह प्रशस्त राजपथके द्वारा बाहर निकले। (२९-३०)

दाशार्हगण उस महत् आश्चर्यको देखकर क्रुद्ध हुए, उनके बीच कोई कोई आपसमें वार्त्तालाप करते हुए जल्पना करने लगे, कि ब्राह्मणगण ही यथार्थमें जन्म ग्रहण करते हैं; अन्य वर्ण किसी प्रकारसे पुरुष ही नहीं हैं। दूसरा कौन पुरुष इस रथपर चढके जीवित रहनेमें समर्थ होगा? आशीविष सर्पका विष तीक्ष्ण है, ब्राह्मण उससे भी अधिक तीक्ष्ण है; जो पुरुष ब्राह्मण रूपी विषसे जलता है, उसका कोई चिकित्सक नहीं है। उस दुर्द्धर्ष दुर्वासाके गमन करते रहनेपर मार्गमें रुक्मिणी शिथिल होगई, श्रीमान् मुनिने उस विषयमें क्रुद्ध होकर वेगपूर्वक रथको चलाया। (३१-३४)

पदातिरुत्पथेनैव प्राद्रवद्दक्षिणामुखः ॥ ३५ ॥
तमुत्पथेन धावन्तमन्वधावं द्विजोत्तमम् ।
तथैव पायसादिग्धः प्रसीद भगवन्निति ॥ ३६ ॥
ततो विलोक्य तेजस्वी ब्राह्मणो मामुवाच ह ।
जितः क्रोधस्त्वया कृष्ण प्रकृत्यैव महाभुज ॥ ३७ ॥
न तेऽपराधमिह वै दृष्टवानस्मि सुव्रत ।
प्रीतोऽस्मि तव गोविन्द वृणु कामान्यथेप्सितान् ॥३८॥
प्रसन्नस्य च मे तात पश्य व्युष्टिं यथाविधि ।
यावदेव मनुष्याणामन्ने भावो भविष्यति ॥ ३९ ॥
यथैवान्ने तथा तेषां त्वयि भावो भविष्यति ।
यावच्च पुण्या लोकेषु त्वयि कीर्तिर्भविष्यति ॥ ४० ॥
त्रिषु लोकेषु तावच्च वैशिष्ट्यं प्रतिपत्स्यसे ।
सुप्रियः सर्वलोकस्य भविष्यसि जनार्दन ॥ ४१ ॥
यत्ते भिन्नं च दग्धं च यच्च किंचिद्विनाशितम् ।
सर्वं तथैव द्रष्टाऽसि विशिष्टं वा जनार्दन ॥ ४२ ॥
यावदेतत्प्रलिप्तं ते गात्रेषु मधुसूदन ।

अनन्तर वह द्विजवर अत्यन्त क्रुद्ध होकर रथसे उतरके पादचारी हुए और दक्षिणकी ओर ऊर्ध्वमार्गसे दौडे। उनके ऊर्ध्वमार्गसे दौडनेपर मैंने उस द्विजवरका अनुधावन किया और उस ही भांति पायसलिप्त रहके उनसे कहा, 'हे भगवन्! प्रसन्न होइये।' अनन्तर उस तेजस्वी ब्राह्मणने मुझे देखकर कहा, हे महाभुज कृष्ण! तुमने स्वभावसे क्रोधका जय किया है। हे सुव्रत! इस विषयमें मैंने तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं देखा। हे गोविन्द! इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम्हें जो अभिलाष हो, वह वर मांगो। हे तात! मेरे प्रसन्न होनेसे जो फल होता है, उसे विधिपूर्वक देखो। जबतक मनुष्योंकी अन्नमें अभिलाष रहेगी, तबतक तुमपर मनुष्योंकी भक्ति रहेगी और लोकके बीच तुम्हारे पुण्यका वर्णन होगा; उतने समयतक तीनों लोकोंके बीच तुम्हें विशिष्टता प्राप्त होगी। (३५—४१)

हे जनार्दन! तुम सब लोकोंमें अत्यन्त ही प्रिय होगे; तुम्हारा जो कुछ टूटा, जला वा नष्ट हुआ है, उन सब वस्तुओंको तुम वैसी ही तथा उससे भी उत्कृष्ट देखोगे। हे मधुसूदन! हे

अतो मृत्युभयं नास्ति यावदिच्छसि चाच्युत ॥ ४३ ॥
न तु पादतले लिप्ते कस्मात्ते पुत्रकाद्य वै ।
नैतन्मे प्रियमित्येवं स मां प्रीतोऽब्रवीत्तदा ॥ ४४ ॥
इत्युक्तोऽहं शरीरं स्वं ददर्श श्रीसमायुतम् ।
रुक्मिणीं चाब्रवीत्प्रीतः सर्वस्त्रीणां वरं यशः ॥ ४५ ॥
कीर्तिं चानुत्तमां लोके समवाप्स्यसि शोभने ।
न त्वां जरा वा रोगो वा वैवर्ण्यं चापि भाविनि ॥४६॥
स्प्रक्ष्यन्ति पुण्यगन्धा च कृष्णमाराधयिष्यसि ।
षोडशानां सहस्राणां वधूनां केशवस्य ह ॥ ४७ ॥
वरिष्ठा च सलोक्या च केशवस्य भविष्यसि ।
तव मातरमित्युक्त्वा ततो मां पुनरब्रवीत् ॥ ४८ ॥
प्रस्थितः सुमहातेजा दुर्वासाऽग्निरिव ज्वलन् ।
एषैव ते बुद्धिरस्तु ब्राह्मणान्प्रति केशव ॥ ४९ ॥
इत्युक्त्वा स तदा पुत्र तत्रैवान्तरधीयत ।
तस्मिन्नन्तर्हिते चाहमुपांशुव्रतमाचरम् ॥ ५० ॥

अच्युत! तुम्हारे शरीरमें जितने परिमाणसे पायस लिप्त हुआ है, तुम जबतक इच्छा करो इसके सहारे तुम्हें मृत्युका भय नहीं है। हे वत्स! तुम्हारे दोनों पादतल किस हेतुसे लिप्त नहीं हुए इस वचनका उत्तर मुझे प्रिय नहीं है। उन्होंने प्रसन्न होकर उस समय मुझसे ऐसा ही वचन कहा था। जब उन्होंने ऐसा कहा, तब मैंने अपने शरीरको श्रीसम्पन्न देखा। (४१-४५)

अनन्तर वह प्रसन्न होके रुक्मिणीसे बोले, हे सुन्दरी! लोकके बीच तुम सब स्त्रियोंसे श्रेष्ठ यश और कीर्त्ति लाभ करोगी। हे भाविनि! तुम्हें जरा, समस्त रोग अथवा वैवर्ण्य स्पर्श न कर सकेगा। तुम पवित्र और सुगन्धयुक्त होकर कृष्णकी आराधना करोगी। केशवकी सोलह हजार स्त्रियोंके बीच तुम वरिष्ठा होगी और कृष्णके तुल्य लोकोंमें निवास करोगी। (४५-४८)

हे पुत्र! प्रस्थान करनेमें उद्यत महातेजस्वी दुर्वासाने अग्निकी भांति महाप्रज्वलित होके तुम्हारी मातासे इतनी बात कहके मुझसे फिर कहा। हे केशव! ब्राह्मणोंके विषयमें तुम्हारी ऐसी ही बुद्धि रहे। वह विप्रवर उस समय इतनी कथा कहके उस ही स्थानमें अन्तर्हित हुए। उनके अन्तर्द्धान

यत्किञ्चिद्ब्राह्मणो ब्रूयात्सर्वं कुर्यामिति प्रभो।
एतद्व्रतमहं कृत्वा मात्रा ते सह पुत्रक ॥ ५१ ॥
ततः परमहृष्टात्मा प्राविशं गृहमेव च।
प्रविष्टमात्रश्च गृहे सर्वं पश्यामि तन्नवम् ॥ ५२ ॥
यद्भिन्नं यच्च वै दग्धं तेन विप्रेण पुत्रक।
ततोऽहं विस्मयं प्राप्तः सर्वं दृष्ट्वा नवं दृढम् ॥ ५३ ॥
अपूजयं च मनसा रौक्मिणेय सदा द्विजान्।
इत्यहं रौक्मिणेयस्य पृच्छतो भरतर्षभ ॥ ५४ ॥
माहात्म्यं द्विजमुख्यस्य सर्वमाख्यातवांस्तदा।
तथा त्वमपि कौन्तेय ब्राह्मणान्सततं प्रभो ॥ ५५ ॥
पूजयस्व महाभागान्वाग्भिर्दानैश्च नित्यदा।
एवं व्युष्टिमहं प्राप्तो ब्राह्मणस्य प्रसादजाम्।
यच्च मामाह भीष्मोऽयं तत्सत्यं भरतर्षभ ॥ ५६ ॥ [७३६८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे दुर्वासोभिक्षा नाम एकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५९ ॥

युधिष्ठिर उवाच- दुर्वाससः प्रसादात्ते यत्तदा मधुसूदन।
अवाप्तमिह विज्ञानं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

होनेपर मैंने उपांशु व्रताचरण किया, ब्राह्मण लोग जो कुछ कहेंगे, मैं वही करूंगा। हे पुत्र! तुम्हारी माताके सहित मैंने यही व्रत करके अन्तमें परम हृष्टचित्तसे गृहमें प्रवेश किया। ४८-५२

हे पुत्र! अनन्तर निज भवनमें प्रविष्ट होकर उस विप्रके द्वारा जो कुछ भिन्न वा भस्म हुआ था उन सबको मैंने नूतन देखा। हे रुक्मिणीनन्दन! मैं सब वस्तुओंको नवीन तथा दृढ देखके विस्मित हुआ और सदा ब्राह्मणोंकी मनहीमन पूजा करने लगा। हे भरतश्रेष्ठ! उस समय रुक्मिणीपुत्रके पूछनेपर मैंने श्रेष्ठ विप्रका यही सब माहात्म्य कहा था। हे प्रभु कुन्तीनन्दन! आप भी महाभाग ब्राह्मणोंकी सदा धन और वाणीके सहारे पूजा करिये, मैंने ब्राह्मणोंके प्रसादसे ही इस प्रकार फल पाया है। हे भरतर्षभ! भीष्मने मेरे विषयमें जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है। (५२-५६)

अनुशासनपर्वमें १५९ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १६० अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, हे मधुसूदन! दुर्वा-

महाभाग्यं च यत्तस्य नामानि च महात्मनः।
तत्त्वतो ज्ञातुमिच्छामि ऐवं मतिमतां वर ॥ २ ॥
वासुदेव उवाच– हन्त ते कीर्तयिष्यामि नमस्कृत्य कपर्दिने।
यदवाप्तं मया राजञ्छ्रेयो यच्चार्जितं यशः ॥ ३ ॥
प्रयतः प्रातरुत्थाय यदधीये विशां पते।
प्राञ्जलिः शतरुद्रीयं तन्मे निगदतः शृणु ॥ ४ ॥
प्रजापतिस्तत्ससृजे तपसोऽन्ते महातपाः।
शङ्करस्त्वसृजत्तात प्रजाः स्थावरजङ्गमाः ॥ ५ ॥
नास्ति किंचित्परं भूतं महादेवाद्विशां पते।
इह त्रिष्वपि लोकेषु भूतानां प्रभवो हि सः ॥ ६ ॥
न चैवोत्सहते स्थातुं कश्चिदग्रे महात्मनः।
न हि भूतं समं तेन त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ७ ॥
गन्धेनापि हि संग्रामे तस्य क्रुद्धस्य शत्रवः।
विसंज्ञा हतभूयिष्ठा वेपन्ते च पतन्ति च ॥ ८ ॥
घोरं च निनदं तस्य पर्जन्यनिनदोपमम्।

साके प्रसादसे उस समय तुम्हें जो विज्ञान प्राप्त हुआ था मेरे समीप तुम्हें उसकी व्याख्या करनी योग्य है। हे मतिमत्प्रवर! उस महात्माके महत् भाग्य और नामोंको जाननेकी अभिलाष करता हूं। (१—२)

वासुदेव बोले, हे महाराज! अच्छा, मैंने जो कुछ कल्याण लाभ तथा यश उपार्जन किया है, कपर्दीको नमस्कार करके वह सब विषय आपके समीप वर्णन करता हूं। हे नरनाथ! मैं प्रातःकालमें उठकर प्रयत तथा प्राञ्जलि होकर जो अध्ययन किया करता हूं, वह शतरुद्रीय आपके निकट कहता हूं, सुनिये। हे तात! महातपस्वी प्रजापतिने तपस्याकी समाप्तिमें उसे सृजा है, शङ्करने इस स्थानपर जङ्गममय समस्त प्रजाकी सृष्टि की है। (३-५)

हे नरनाथ! महादेवसे श्रेष्ठ कोई प्राणी नहीं है, इस त्रिभुवनके बीच वह सब प्राणियोंके मध्यमें श्रेष्ठ हैं; उस महात्माके आगे कोई भी निवास करनेका उत्साह नहीं कर सकता, तीनों लोकोंके बीच उनके समान कोई भी विद्यमान नहीं है, उनके क्रुद्ध होनेपर संग्राममें शत्रुगण उनकी गन्धके द्वाराही संज्ञारहित तथा बहुतेरे हत होकर कांपते वा गिरते हैं। बादल गर्जनेकी भांति उन-

श्रुत्वा विशीर्येद्धृदयं देवानामपि संयुगे ॥ ९ ॥
यांश्च घोरेण रूपेण पश्येत्क्रुद्धः पिनाकधृत्।
न सुरा नासुरा लोके न गन्धर्वा न पन्नगाः ॥ १० ॥
कुपिते सुखमेधन्ते तस्मिन्नपि गुहागताः।
प्रजापतेश्च दक्षस्य यजतो वितते क्रतौ ॥ ११ ॥
विव्याध कुपितो यज्ञं निर्भयस्तु भवस्तदा।
धनुषा बाणमुत्सृज्य स घोषं विननाद च ॥ १२ ॥
तेन शर्म कुतः शान्तिं विषादं लेभिरे सुराः।
विद्धे च सहसा यज्ञे कुपिते च महेश्वरे ॥ १३ ॥
तेन ज्यातलघोषेण सर्वे लोकाः समाकुलाः।
बभूवुरवशाः पार्थ विषेदुश्च सुरासुराः ॥ १४ ॥
आपश्चुक्षुभिरे चैव चकम्पे च वसुन्धरा।
व्यद्रवन् गिरयश्चापि द्यौः पफाल च सर्वशः ॥ १५ ॥
अन्धेन तमसा लोकाः प्रावृता न चकाशिरे।
प्रणष्टा ज्योतिषां भाश्च सह सूर्येण भारत ॥ १६ ॥
भृशं भीतास्ततः शान्तिं चक्रुः स्वस्त्ययनानि च।
ऋषयः सर्वभूतानामात्मनश्च हितैषिणः ॥ १७ ॥

का घोर शब्द सुनके देवताओंका भी हृदय विदीर्ण होता है, पिनाकधारी क्रुद्ध होके जिन्हें घोर रूपसे देखते हैं, उनका भी हृदय विदीर्ण होजाता है। लोकोंके बीच उनके कुपित होनेपर देवता, असुर, गन्धर्व और पन्नगगण, गुफामें प्रविष्ट होके भी सुख लाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। (९-११)

यजमान प्रजापति दक्षके विस्तृत यज्ञको महादेवने निर्भय और कुपित होकर विद्ध किया था। उन्होंने शरासनसे बाण छोडकर घोर निनाद किया, उस शब्दको सुनके सुख और शान्ति कहां? देववृन्द भयभीत हुए, सहसा यज्ञ विद्ध हुआ और महेश्वरके क्रुद्ध होनेपर उस ज्यातलशब्दसे सब लोक समाकुल तथा अवश हुए। हे पार्थ! देव, असुर सब कोई विषण्ण हुए, जल उथलने लगा और पृथ्वी कांपने लगी। सब पर्वत विद्रुत हुए और आकाशमण्डल विशीर्ण होगया, सब लोक अन्धतमसाच्छन्न होके प्रकाशरहित हुए। हे भारत! सूर्यके सहित ज्योतिवाले पदार्थोंकी प्रभा नष्ट हुई। अनन्तर सर्व-

ततः सोऽभ्यद्रवद्देवान्रुद्रो रौद्रपराक्रमः ।
भगस्य नयने क्रुद्धः प्रहारेण व्यशातयत् ॥ १८ ॥
पूषणं चाभिदुद्राव पादेन च रुषान्वितः ।
पुरोडाशं भक्षयतो दशनान्वै व्यशातयत ॥ १९ ॥
ततः प्रणेमुर्देवास्ते वेपमानाः स्म शङ्करम् ।
पुनश्च सन्दधे रुद्रो दीप्तं सुनिशितं शरम् ॥ २० ॥
रुद्रस्य विक्रमं दृष्ट्वा भीता देवाः सहर्षिभिः ।
ततः प्रसादयामासुः शर्वं ते विबुधोत्तमाः ॥ २१ ॥
जेपुश्च शतरुद्रीयं देवाः कृत्वाऽञ्जलिं तदा ।
संस्तूयमानस्त्रिदशैः प्रससाद महेश्वरः ॥ २२ ॥
रुद्रस्य भागं यज्ञे च विशिष्टं ते त्वकल्पयन् ।
भयेन त्रिदशा राजञ्छरणं च प्रपेदिरे ॥ २३ ॥
तेन चैव हि तुष्टेन स यज्ञः सन्धितोऽभवत् ।
यद्यच्चापहृतं तत्र तत्तथैवान्वजीवयत् ॥ २४ ॥
असुराणां पुराण्यासंस्त्रीणि वीर्यवतां दिवि ।

भूत तथा आत्महितैषी ऋषिगण अत्यन्त भयभीत होकर शान्ति और स्वस्त्ययन करने लगे । (११-१७)

अनन्तर रौद्रपराक्रमी रुद्रदेव क्रुद्ध होकर देवताओंकी ओर दौडे, उन्होंने क्रुद्ध होकर प्रहारके द्वारा भगका दोनों नेत्र विनष्ट किया और रोषित तथा पादचारी होकर पूषाकी ओर दौडे । पूषाके उस समय पुरोडाश भक्षण करते रहनेपर रुद्रदेवने क्रुद्ध होकर उसके सब दातोंको उखाड दिया । अनन्तर उन देवताओंने कम्पित होकर शङ्करको प्रणाम किया; रुद्रदेवने फिर प्रदीप्त शाणित बाण सन्धान किया, ऋषियोंके सहित सब देवता महादेवका पराक्रम देखके भयभीत हुए । (१८—२१)

अनन्तर उन श्रेष्ठ देवताओंने शङ्करको प्रसन्न किया, देवगण उस समय हाथ जोडके शतरुद्री जप करने लगे, महेश्वर देवताओंके द्वारा सब प्रकारसे स्तुतियुक्त होकर प्रसन्न हुए, देवताओंने रुद्रदेवके यज्ञभागकी विशिष्टरूपसे कल्पना की । (२१—२३)

हे महाराज ! देववृन्द डरकर महादेवके शरणमें गये, तब महादेवने प्रसन्न होकर उस यज्ञको सन्धित किया, उस यज्ञमें जो जो वस्तु अपहृत हुई थी, उन्हें वह सब उसही भांति फिर सजीव

आयसं राजतं चैव सौवर्णमपि चापरम् ॥ २५ ॥
नाशकत्तानि मघवा जेतुं सर्वायुधैरपि।
अथ सर्वेऽमरा रुद्रं जग्मुः शरणमर्दिताः ॥ २६ ॥
तत ऊचुर्महात्मानो देवाः सर्वे समागताः।
रुद्र रौद्रा भविष्यन्ति पशवः सर्वकर्मसु ॥ २७ ॥
जहि दैत्यान्सह पुरैर्लोकांस्त्रायस्व मानद।
स तथोक्तस्तथेत्युक्त्वा कृत्वा विष्णुं शरोत्तमम् ॥ २८ ॥
शल्यमग्निं तथा कृत्वा पुङ्खं वैवस्वतं यमम्।
वेदान्कृत्वा धनुः सर्वान् ज्यां च सावित्रिमुत्तमाम् ॥२९॥
ब्रह्माणं सारथिं कृत्वा विनियुज्य च सर्वशः।
त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तेन तानि बिभेद सः ॥ ३० ॥
शरेणादित्यवर्णेन कालाग्निसमतेजसा।
ते सुराः सपुरास्तत्र दग्धा रुद्रेण भारत ॥ ३१ ॥
तं चैवाङ्कगतं दृष्ट्वा बालं पञ्चशिखं पुनः।
उमा जिज्ञासमाना वै कोऽयमित्यब्रवीत्तदा ॥ ३२ ॥
असूयतश्च शक्रस्य वज्रेण प्रहरिष्यतः।

कर दी। (२३—२४)

सुरलोकमें वीर्यवान् असुरोंके लोह-मय, रजतमय और तीसरा स्वर्णमय ये तीन पुर थे, इन्द्र समस्त अस्त्रोंसे उसे भेद करनेमें समर्थ नहीं हुए। अनन्तर देववृन्द पीडित होकर महारुद्रके शरणागत हुए, समागत महानुभाव देवगण बोले, हे रुद्रदेव! पशुगण सब कर्मोंमेंही अत्यन्त भयङ्कर होते हैं। हे मानद! इसलिये त्रिपुरके सहित दैत्योंका संहार करके सब लोगोंका परित्राण करिये। उन्होंनें देवताओंका वचन सुनके कहा, "ऐसा ही होगा" इतनी बात कहके विष्णुको श्रेष्ठ बाण, अग्निको शल्य, वैवस्वत यमको पुङ्ख, वेदोंको धनुष, सावित्रीको रोदा और ब्रह्माको सारथी करके सबके संयोग तथा काल-क्रमसे त्रिपर्वयुक्त तीन शल्यके सहारे उन तीनों पुरोंको भेद किया।(२५-३०)

हे भारत! रुद्रदेवने प्रलयकालकी अग्निसदृश तेजसम्पन्न आदित्यवर्ण शरके सहारे तीनों पुरोंके सहित असुरोंको जलाया था। वेही पञ्चशिख बालक-रूपसे अङ्कगत हुए तब उमाने पूछा, "ये कौन हैं?" उस समय देवराज असूया करते हुए वज्रसे प्रहार करनेके

सवज्रं स्तम्भयामास तं बाहुं परिघोपमम् ॥ ३३ ॥
न संबुबुधिरे चैव देवास्तं भुवनेश्वरम्।
सप्रजापतयः सर्वे तस्मिन्मुमुहुरीश्वरे ॥ ३४ ॥
ततो ध्यात्वा च भगवान्ब्रह्मा तममितौजसम्।
अयं श्रेष्ठ इति ज्ञात्वा ववन्दे तमुमापतिम् ॥ ३५ ॥
ततः प्रसादयामासुरुमां रुद्रं च ते सुराः।
बभूव स तदा बाहुर्बलहन्तुर्यथा पुरा ॥ ३६ ॥
स चापि ब्राह्मणो भूत्वा दुर्वासा नाम वीर्यवान्।
द्वारवत्यां मम गृहे चिरं कालमुपावसत् ॥ ३७ ॥
विप्रकारान्प्रयुङ्क्ते स्म सुबहून्मम वेश्मनि।
तानुदारतया चाहं चक्षमे चातिदुःसहान् ॥ ३८ ॥
स वै रुद्रः स च शिवः सोऽग्निः सर्वः स सर्वजित्।
स चैवेन्द्रश्च वायुश्च सोऽश्विनौ स च विद्युतः ॥ ३९ ॥
स चन्द्रमाः स चेशानः स सूर्यो वरुणश्च सः।
स कालः सोऽन्तको मृत्युः स यमो रात्र्यहानि च ॥ ४० ॥
मासार्धमासा ऋतवः संध्ये संवत्सरश्च सः।

लिये उद्यत हुए, तब उन्होंने इन्द्रकी परिघसदृश भुजाको वज्रके सहित स्तम्भित किया था; देवगण उस भुवनेश्वरको नहीं जान सके, प्रजापतिके सहित सब कोई ईश्वरविषयमें मोहित हुए थे। (३१–३४)

अनन्तर भगवान् ब्रह्माने उस अत्यन्त तेजस्वी रुद्रदेवको ध्यानके सहारे जाना, कि "येही श्रेष्ठ हैं," ऐसा जानके उन्होंने उमापतिकी वन्दना की थी। अनन्तर देवताओंने उमादेवी और रुद्रदेवको प्रसन्न किया, तब बल–निषूदन देवराजकी भुजा पहलेकी भांति होगई। उस रुद्रदेवने दुर्वासा नामक वीर्यवान् ब्राह्मण होकर द्वारकापुरीमें मेरे गृहके बीच बहुत समयतक वास किया था; उन्होंने मेरे गृहमें अनेक प्रकारके दुःसह व्यवहार किये, तौभी मैंने उदारताके सहित उन दुःसह व्यवहारोंको सहा था। (३५–३८)

वेही रुद्र, वेही शिव, वेही अग्नि, सर्व और सर्वजित् हैं, वेही इन्द्र और वायु हैं, वह अश्विनीकुमार और विद्युत् हैं; वेही चन्द्रमा, वेही ईशान, वेही सूर्य और वेही वरुण हैं। वेही काल, वेही अन्तक तथा मृत्यु हैं; वेही यम,

स धाता स विधाता च विश्वकर्मा स सर्ववित् ॥४१॥
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव दिशोऽथ प्रदिशस्तथा।
विश्वमूर्तिरमेयात्मा भगवान्परमद्युतिः ॥ ४२ ॥
एकधा च द्विधा चैव बहुधा च स एव हि।
शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा ॥ ४३ ॥
ईदृशः स महादेवो भूयश्च भगवानतः।
न हि शक्या गुणा वक्तुमपि वर्षशतैरपि ॥ ४४ ॥ [७४१२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे ईश्वरप्रशंसा नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

वासुदेव उवाच-युधिष्ठिर महाबाहो महाभाग्यं महात्मनः।
रुद्राय बहुरूपाय बहुनाम्ने निबोध मे ॥ १ ॥
वदन्त्यग्निं महादेवं तथा स्थाणुं महेश्वरम्।
एकाक्षं त्र्यम्बकं चैव विश्वरूपं शिवं तथा ॥ २ ॥
द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः।
घोरामन्यां शिवामन्यां ते तनू बहुधा पुनः ॥ ३ ॥
उग्रा घोरा तनुर्याऽस्य सोऽग्निर्विद्युत्स भास्करः।

वेही रात्रि और दिवस हैं। वेही पक्ष, महीना, ऋतु, दोनों सन्ध्या और संवत्सर हैं; वेही धाता, वेही विधाता, वेही विश्वकर्मा और वेही सर्ववित् हैं; वेही सब नक्षत्र, ग्रह, चारों दिशा और विदिशा हैं। वह अमरद्युति भगवान् विश्वमूर्ति तथा अमेयात्मा हैं; वेही ब्रह्मरूपसे एक प्रकार और जीव ब्रह्म भेदसे दो प्रकार हैं, प्रपञ्चरूपसे अनेक प्रकार, सहस्र प्रकार तथा सैकडों हजारों प्रकारके हैं। वह भूयान् भगवान् जन्मरहित महादेव ऐसे ही हैं; सौ वर्षमें भी उनके गुणोंका वर्णन नहीं किया जा सकता। (३९—४४)

अनुशासनपर्वमें १६० अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १६१ अध्याय।

वासुदेव बोले, हे महाबाहु युधिष्ठिर! अनेक रूप और अनेक नामयुक्त महानुभाव रुद्रदेवका जो महत् ऐश्वर्य है, वह मेरे समीप सुनो। महेश्वर महादेवको अग्नि, स्थाणु, एकाक्ष, त्र्यम्बक, विश्वरूप और शिव कहते हैं। वेदज्ञ ब्राह्मण लोग उस देवकी द्विविध देह कहा करते हैं; उनमेंसे एक मूर्त्ति घोरा और दूसरी शिवा है; येही दोनों मूर्त्तियें अनेक प्रकारकी हुआ करती हैं। जो

शिवा सौम्या च या त्वस्य धर्मस्त्वापोऽथ चन्द्रमाः ॥४॥
आत्मनोऽर्धं तु तस्याग्निः सोमोऽर्धं पुनरुच्यते ।
ब्रह्मचर्यं चरत्येका शिवा चास्य तनुस्तथा ॥ ५ ॥
याऽस्य घोरतमा मूर्तिर्जगत्संहरते तथा ।
ईश्वरत्वान्महत्त्वाच्च महेश्वर इति स्मृतः ॥ ६ ॥
यन्निर्दहति यत्तीक्ष्णो यदुग्रो यत्प्रतापवान् ।
मांसशोणितमज्जादो यत्ततो रुद्र उच्यते ॥ ७ ॥
देवानां सुमहान्यच्च यच्चास्य विषयो महान् ।
यच्च विश्वं महत्पाति महादेवस्ततः स्मृतः ॥ ८ ॥
धूम्ररूपं च यत्तस्य धूर्जटीत्यत उच्यते ।
स मेधयति यन्नित्यं सर्वान्वै सर्वकर्मभिः ॥ ९ ॥
मनुष्यान् शिवमन्विच्छंस्तस्मादेष शिवः स्मृतः ।
दहत्यूर्ध्वं स्थितो यच्च प्राणान्नॄणां स्थिरश्च यत् ॥ १० ॥
स्थिरलिङ्गश्च यन्नित्यं तस्मात्स्थाणुरिति स्मृतः ।
यदस्य बहुधा रूपं भूतं भव्यं भवत्तथा ॥ ११ ॥
स्थावरं जङ्गमं चैव बहुरूपस्ततः स्मृतः ।

उग्र तथा घोरमूर्त्ति है, वही अग्नि, बिजली और सूर्य है, उसकी शिव तथा सौम्यमूर्त्ति धर्म, जल और चन्द्रमा है। (१—४)

उनके शरीरका अर्द्धभाग अग्नि और अर्द्धभाग सोम कहा गया है; उनकी शिवामूर्त्ति ब्रह्मचर्य अवलम्बन करती है और घोरा मूर्त्ति प्रलयकालमें जगत्का संहार किया करती है। ईश्वरत्व और महत्त्वयुक्त होनेसे उनका महेश्वर नाम हुआ है। जो जलाके निःशेष करता तथा जो तीक्ष्ण, प्रतापवान् है और मांसशोणित-मज्जा भक्षण करता है, उसे रुद्र कहा जाता है। जो देवताओंमें उत्तम महान् है, महत्त्व जिसका विषय है, जो महत् विश्वको पालन करता है, वही महादेव नामसे स्मृत होता है। (५—८)

धूम्ररूप निबन्धनसे उसे धूर्जटी कहा जाता है। वह सदा कल्याणकी कामना करते हुए सब मनुष्योंको कर्मोंके सहारे पवित्र करता है, इस ही निमित्त उसका नाम शिव है। वह ऊर्ध्वमें स्थित रहके मनुष्योंके प्राणोंको दहन करता है और सदा स्थिरलिङ्ग है, इस ही निमित्त स्थाणु नामसे स्मृत हुआ करता है।

विश्वेदेवाश्च यत्तस्मिन् विश्वरूपस्ततः स्मृतः ॥ १२ ॥
सहस्राक्षोऽयुताक्षो वा सर्वतोऽक्षिमयोऽपि वा ।
चक्षुषः प्रभवेत्तेजो नास्त्यन्तोऽथास्य चक्षुषाम् ॥१३॥
सर्वथा यत्पशून्पाति तैश्च यद्रमते सह ।
तेषामधिपतिर्यच्च तस्मात्पशुपतिः स्मृतः ॥ १४ ॥
नित्येन ब्रह्मचर्येण लिङ्गमस्य यदास्थितम् ।
महयत्यस्य लोकश्च प्रियं ह्येतन्महात्मनः ॥ १५ ॥
विग्रहं पूजयेद्यो वै लिङ्गं वाऽपि महात्मनः ।
लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते ॥ १६ ॥
ऋषयश्चापि देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तथा ।
लिङ्गमेवार्चयन्ति स्म यत्तदूर्ध्वं समास्थितम् ॥ १७ ॥
पूज्यमाने ततस्तस्मिन्मोदते स महेश्वरः ।
सुखं ददाति प्रीतात्मा भक्तानां भक्तवत्सलः ॥१८॥
एष एव श्मशानेषु देवो वसति निर्दहन् ।
यजन्ते ये जनास्तत्र वीरस्थाननिषेविणः ॥ १९ ॥

स्थावर, जङ्गम, भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान भेदसे उसके अनेक प्रकारके रूप हैं, इसी लिये वह बहुरूप नामसे प्रसिद्ध है। विश्वदेवगण उसका आश्रय कर रहे हैं, इसलिये उसका विश्वरूप नाम है। (९—१२)

सब स्थानोंमें उसके नेत्र हैं, इस ही निमित्त उसे सहस्राक्ष और अयुताक्ष कहा जाता है। उसके नेत्रोंसे प्रकट हुए तेजका अन्त नहीं है, वह सब प्रकारसे पशुओंको पालन करता, उनके सङ्ग क्रीडा करता और उनका अधिपति होनेसे पशुपति नामसे प्रसिद्ध है। उसकी मूर्त्ति सदा ब्रह्मचर्यव्रतमें रत रहती है, इसही निमित्त लोग उस महात्माकी प्रियमूर्त्तिकी पूजा किया करते हैं। जो लोग उस महानुभावके विग्रह अथवा लिङ्गकी पूजा करते हैं, वे लिङ्गपूजक सदा महती समृद्धि सम्भोग किया करते करते हैं। ऋषिवृन्द, देवगण, अप्सरा और गन्धर्वगण उस ऊर्ध्वस्थित लिंगकी ही अर्चना करते हैं। (१३-१७)

लिङ्गके सदा पूजित होनेसे महेश्वर प्रमुदित होते हैं और भक्तवत्सल भगवान् प्रसन्नचित्त होकर भक्तोंको सुख प्रदान करते हैं। वह देव श्मशानके बीच निःशेष करके जलते हुए निवास किया करता है। श्मशानके बीच जो

विषयस्थः शरीरेषु स मृत्युः प्राणिनामिह।
स च वायुः शरीरेषु प्राणापानशरीरिणाम् ॥ २० ॥
तस्य घोराणि रूपाणि दीप्तानि च बहूनि च।
लोके यान्यस्य पूज्यन्ते विप्रास्तानि विदुर्बुधाः ॥२१॥
नामधेयानि देवेषु बहून्यस्य यथार्थवत्।
निरुच्यन्ते महत्त्वाच्च विभुत्वात्कर्मभिस्तथा ॥ २२ ॥
वेदे चास्य विदुर्विप्राः शतरुद्रीयमुत्तमम्।
व्यासेनोक्तं च यच्चापि उपस्थानं महात्मनः ॥ २३ ॥
प्रदाता सर्वलोकानां विश्वं चाप्युच्यते महत्।
ज्येष्ठभूतं वदन्त्येनं ब्राह्मणा ऋषयोऽपरे ॥ २४ ॥
प्रथमो ह्येष देवानां मुखादग्निमजीजनत्।
ग्रहैर्बहुविधैः प्राणान्संरुद्धानुत्सृजत्यपि ॥ २५ ॥
विमुञ्चति न पुण्यात्मा शरण्यः शरणागतान्।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वित्तं कामांश्च पुष्कलान् ॥ २६ ॥
स ददाति मनुष्येभ्यः स एवाक्षिपते पुनः।
शक्रादिषु च देवेषु तस्यैश्वर्यमिहोच्यते ॥ २७ ॥

पुरुष उसकी पूजा करते हैं, वे वीरस्थानमें निवास करनेके योग्य होते हैं। वही प्राणियोंके शरीरमें मृत्यु स्वरूप है और वही शरीरधारियोंके शरीरमें प्राण तथा अपान वायुस्वरूप है; उसके रूप घोर, प्रकाशमान तथा अनेक प्रकारके हैं। लोकमें उसके जो सब रूप पूजित होते हैं, उसे विद्वान् ब्राह्मण लोग जानते हैं। उसके कर्म तथा चरितके सहारे देवताओंके बीच बहुत्वयुक्त होनेसे यथार्थ नामधेय हुआ करते हैं। (१८-२२)

ब्राह्मण लोग वेदके बीच उनकी शतरुद्रीय पाठ करते हैं और वेदव्यासने उस महात्माके जो सब नाम वर्णन किये हैं उसे भी जानते हैं। वह सब लोगोंके सुखप्रदाता विश्व और महत् रूपसे वर्णित होते हैं, ब्राह्मण लोग तथा दूसरे ऋषिवृन्द इन्हें सबसे श्रेष्ठ कहते हैं; वेही देवताओंके बीच आदिपुरुष हैं; उन्होंने ही मुखसे अग्नि उत्पन्न की थी। अनेक प्रकारके ग्रहोंसे संरुद्ध प्राण परित्याग करनेसे वह शरण्य पुण्यात्मा शरणागत पुरुषोंको कदापि परित्याग नहीं करता; वही मनुष्योंको आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और पुष्कल काम प्रदान करता है; फिर वही आक्षेपपूर्वक

स एव व्यापृतो नित्यं त्रैलोक्यस्य शुभाशुभे।
ऐश्वर्याच्चैव कामानामीश्वरः पुनरुच्यते ॥ २८ ॥
महेश्वरश्च लोकानां महतामीश्वरश्च सः।
बहुभिर्विविधै रूपैर्विश्वं व्याप्तमिदं जगत्।
तस्य देवस्य यद्वक्त्रं समुद्रे वडवामुखम् ॥ २९ ॥ [७४४१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे महेश्वरमाहात्म्यं नाम एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥

वैशम्पायन उवाच-इत्युक्तवति वाक्ये तु कृष्णे देवकिनन्दने।
भीष्मं शान्तनवं भूयः पर्यपृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १ ॥
निर्णये वा महाबुद्धे सर्वधर्मविदां वर।
प्रत्यक्षमागमो वेति किं तयोः करणं भवेत् ॥ २ ॥
भीष्म उवाच-नास्त्यत्र संशयः कश्चिदिति मे वर्तते मतिः।
शृणु वक्ष्यामि ते प्राज्ञ सम्यक्त्वं मेऽनुपृच्छसि॥ ३ ॥
संशयः सुगमस्तत्र दुर्गमस्तस्य निर्णयः।
दृष्टं श्रुतमनन्तं हि यत्र संशयदर्शनम् ॥ ४ ॥
प्रत्यक्षं कारणं दृष्ट्वा हैतुकाः प्राज्ञमानिनः।

ग्रहण किया करता है। (२३—२७)

इन्द्रादि देवताओंमें उसका ही ऐश्वर्य वर्णित होता है, वह तीनों लोकोंके बीच शुभाशुभ विषयोंमें सदा व्यापृत होरहा है। वह ऐश्वर्यके हेतु सब कार्यों-का ईश्वर कहा जाता है; वह सब लोकोंका महेश्वर है और महद्भूतोंका भी ईश्वर है। उसके अनेक भांतिके रूपसे यह विश्व जगत् व्याप्त होरहा है; उस देवका मुख ही समुद्रमें बडवामुख है। (२७-२९)

अनुशासनपर्वमें १६१ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १६२ अध्याय।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, देवकीनन्दन कृष्ण जब इतनी कथा कह चुके तब युधिष्ठिरने शन्तनुनन्दन भीष्मसे फिर प्रश्न किया। हे सर्वधर्मज्ञश्रेष्ठ महाप्राज्ञ! निर्णय अथवा प्रत्यक्ष आगम इन दोनोंके बीच कारण क्या है? (१—२)

भीष्म बोले, हे प्राज्ञ! इस विषयमें कुछ सन्देह नहीं है, मेरे मनमें ऐसी धारणा है, कि तुमने सम्यक् प्रश्न किया है; मैं यह विषय कहता हूं, सुनो। इसमें संशय सुगम परन्तु निर्णय अत्यन्त दुर्गम है, जिसमें संशय दीखता है

नास्तीत्येवं व्यवस्यन्ति सत्यं संशयमेव च ॥ ५ ॥
तदयुक्तं व्यवस्यन्ति बालाः पण्डितमानिनः ।
अथ चेन्मन्यसे चैकं कारणं किं भवेदिति ॥ ६ ॥
शक्यं दीर्घेण कालेन युक्तेनातन्द्रितेन च ।
प्राणयात्रामनेकां च कल्पमानेन भारत ॥ ७ ॥
तत्परेणैव नान्येन शक्यं ह्येतस्य दर्शनम् ।
हेतूनामन्तमासाद्य विपुलं ज्ञानमुत्तमम् ॥ ८ ॥
ज्योतिः सर्वस्य लोकस्य विपुलं प्रतिपद्यते ।
न त्वेव गमनं राजन्हेतुतो गमनं तथा ।
अग्राह्यमनिबद्धं च वाचा संपरिवर्जयेत् ॥ ९ ॥
युधिष्ठिर उवाच—प्रत्यक्षं लोकतः सिद्धिर्लोकश्चागमपूर्वकः ।
शिष्टाचारो बहुविधस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १० ॥
भीष्म उवाच—धर्मस्य ह्रियमाणस्य बलवद्भिर्दुरात्मभिः ।
संस्था यत्नैरपि कृता कालेन प्रतिभिद्यते ॥ ११ ॥
अधर्मो धर्मरूपेण तृणैः कूप इवावृतः ।

वह दृष्टश्रुत अथवा अचिन्त्य है । हेतुवादी लोग प्रत्यक्ष कारणको देखकर अपनेको प्राज्ञ समझके अभिमान करते हैं; संशयको सत्य जानके 'नास्ति' ऐसा वचन कहा करते हैं; जो पण्डिताभिमानी बालकवृन्द ऐसा कहते हैं, वह युक्तिसिद्ध नहीं है । यदि ऐसा समझो, कि पक्षान्तरमें एक मात्र कारण होता है, तो बहुत समयतक निरालस तथा तन्मनस्क होनेसे उसे जान सकोगे । हे भारत ! अनेक प्रकारकी प्राणयात्रा है, इसकी जो लोग जल्पना करते हैं, वे तत्पर पुरुषही इसे देख सकते हैं, दूसरे नहीं जान सकते । कारणोंका अन्त जाननेसे विपुल उत्तम ज्ञानज्योति लोगोंके अन्तःकरणमें प्राप्त होती है । हे महाराज ! कारणोंका ज्ञान कदाचित् ज्ञान नहीं है, अग्राह्य और अनिबद्ध विषयोंको परित्याग करना चाहिये । ३-९

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! लोकमें सिद्धि प्रत्यक्ष होती है; लौकिक और आगमपूर्वक शिष्टाचार अनेक प्रकारका है, इसलिये आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये । (१०)

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! बलवान् दुरात्माओंके द्वारा ह्रियमाण धर्मकी संस्थिति उन्होंने ही की है, कालक्रमसे वह विभिन्न हुआ है । तृणसे ढके हुए

ततस्तैर्भिद्यते वृत्तं शृणु चैव युधिष्ठिर ॥ १२ ॥
अवृत्ता ये तु भिन्दन्ति श्रुतित्यागपरायणाः।
धर्मविद्वेषिणो मन्दा इत्युक्तस्तेषु संशयः ॥ १३ ॥
अतृप्यतस्तु साधूनां य एवागमबुद्धयः।
परमित्येव सन्तुष्टास्तानुपास्व च पृच्छ च ॥ १४ ॥
कामार्थौ पृष्ठतः कृत्वा लोभमोहानुसारिणौ।
धर्म इत्येव संबुद्धस्तानुपास्व च पृच्छ च ॥ १५ ॥
न तेषां भिद्यते वृत्तं यज्ञाः स्वाध्यायकर्म च।
आचारः कारणं चैव धर्मश्चैकस्त्रयं पुन ॥ १६ ॥

युधिष्ठिर उवाच-पुनरेव हि मे बुद्धिः संशये परिमुह्यति।
अपारे मार्गमाणस्य परं तीरमपश्यतः ॥ १७ ॥
वेदः प्रत्यक्षमाचारः प्रमाणं तत्त्रयं यदि।
पृथक्त्वं लभ्यते चैषां धर्मश्चैकस्त्रयं कथम् ॥ १८ ॥

भीष्म उवाच-धर्मस्य ह्रियमाणस्य बलवद्भिर्दुरात्मभिः।

कुएं की भांति अधर्म धर्मरूपसे प्रकाशित होरहा है, उस ही निमित्त चरित्र विभिन्न होता है। जो लोग शिष्टाचारविहीन, श्रुतित्यागपरायण, धर्मविद्वेषी तथा नीच कहके वर्णित हुए हैं और शिष्टाचार खण्डन करते हैं, वैसे प्रत्यक्षानुमानचारी पुरुषोंमें सन्देह होता है। जिन्होंने साधुओंके निकट तृप्ति लाभ की है, शास्त्रकी आलोचनासे जिनकी बुद्धि शुद्ध हुई है, तथा जो लोग सन्तुष्ट हैं, वेही श्रेष्ठ प्रमाण हैं; उन्हींकी उपासना करो और उन्हींसे पूछो। लोभमोहके अनुगत काम और अर्थको पीछे करके धर्मबोध करते हुए उनकी उपासना करो, पूंछो; उनके चरित्र, यज्ञ और स्वाध्यायकर्म भिन्न नहीं होते। प्रत्यक्ष दृष्ट चरित्र, शौच आदि आचार तथा वेद, इन तीनोंके मिलनेसे एकमात्र धर्म होता है, वह धर्म ही साधनीय है। (११—१६)

युधिष्ठिर बोले, अपार पथकी खोज करनेवाले पार न पाके जिस प्रकार दीखते हैं, वैसेही फिर मेरी बुद्धि सन्देहसे मुग्ध होती है। वेद, प्रत्यक्ष-दृष्ट चरित्र और आचार, ये तीनों ही यदि धर्मविषयमें प्रमाण हुए, तौभी इनमें पृथकत्व मालूम होता है, तीनों प्रमाणोंके द्वारा प्रतिपाद्य प्रमेयधर्म किस प्रकार एक होगा? (१७—१८)

भीष्म बोले, हे राजन्! बलवान्

यद्येवं मन्यसे राजंस्त्रिधा धर्मविचारणा ॥ १९ ॥
एक एवेति जानीहि त्रिधा धर्मस्य दर्शनम् ।
पृथक्त्वे च न मे बुद्धिस्त्रयाणामपि वै तथा ॥ २० ॥
उक्तो मार्गस्त्रयाणां च तत्तथैव समाचर ।
जिज्ञासा न तु कर्तव्या धर्मस्य परितर्कणात् ॥ २१ ॥
सदैव भरतश्रेष्ठ मा ते भूदत्र संशयः ।
अन्धो जड इवाशङ्की यद्ब्रवीमि तदाचर ॥ २२ ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधो दानमेतच्चतुष्टयम् ।
अजातशत्रो सेवस्व धर्म एष सनातनः ॥ २३ ॥
ब्राह्मणेषु च वृत्तिर्या पितृपैतामहोचिता ।
तामन्वेहि महाबाहो धर्मस्यैते हि देशिकाः ॥ २४ ॥
प्रमाणमप्रमाणं वै यः कुर्यादबुधो जनः ।
न स प्रमाणतामर्हो विवादजननो हि सः ॥ २५ ॥
ब्राह्मणानेव सेवस्व सत्कृत्य बहु मन्य च ।
एतेष्वेव त्विमे लोकाः कृत्स्ना इति निबोध तान् ॥२६॥

दुष्टात्माओंके द्वारा ह्रियमाण धर्मके सम्बन्धमें यदि तुम ऐसी शङ्का करते हो, तौभी धर्मकी विवेचना तीन प्रकारसे होती है; तीनों प्रमाणोंके संवादसे एकमात्र धर्म परीक्षणीय है । धर्मदर्शन त्रिविध होनेपर भी धर्म एक ही है; तीनों प्रमाणोंके पृथक् होनेपर भी प्रमेय धर्म पृथक् नहीं है; तीनों प्रमाण पृथक् पृथक् रीतिसे धर्मके प्रतिपादक नहीं होते, तीनोंके मिलनेसे एकमात्र धर्म हुआ करता है । तीनों प्रमाणोंका जो पथ वर्णित हुआ है, उसका उस ही प्रकार आचरण करो, धर्मविषयमें तर्क करके प्रश्न करना योग्य नहीं है । (१९—२१)

हे भरतश्रेष्ठ ! इस विषयमें तुम्हें सदा संशय न होवे; अन्धे और जडकी भांति शंकारहित होके जैसा कहता हूं, वैसाही आचरण करो । हे अजातशत्रु ! अहिंसा, सत्य, क्रोधहीनता और दान, ये चारों ही सनातन धर्म हैं, इसलिये तुम इन चारोंकी सेवा करो । ब्राह्मणोंके विषयमें पितृपितामहोचित जो वृत्ति है, उसहीका अनुसरण करो; क्यों कि येही धर्मके उपदेशक हैं । जो अज्ञानी मनुष्य अप्रमाणको प्रमाण करते हैं, वह कदाचित् प्रमाण नहीं होता, केवल विषादजनक हुआ करता है, ब्राह्मणोंका स-

युधिष्ठिर उवाच-ये च धर्ममसूयन्ते ये चैनं पर्युपासते।
ब्रवीतु मे भवानेतत् क्व ते गच्छन्ति तादृशाः ॥२७॥
भीष्म उवाच—रजसा तमसा चैव समवस्तीर्णचेतसः।
नरकं प्रतिपद्यन्ते धर्मविद्वेषिणो जनाः ॥ २८ ॥
ये तु धर्मं महाराज सततं पर्युपासते।
सत्यार्जवपराः सन्तस्ते वै स्वर्गभुजो नराः ॥ २९ ॥
धर्म एव गतिस्तेषामाचार्योपासनाद्भवेत्।
देवलोकं प्रपद्यन्ते ये धर्मं पर्युपासते ॥ ३० ॥
मनुष्या यदि वा देवाः शरीरमुपताप्य वै ॥
धर्मिणः सुखमेधन्ते लोभद्वेषविवर्जिताः ॥ ३१ ॥
प्रथमं ब्रह्मणः पुत्रं धर्ममाहुर्मनीषिणः।
धर्मिणः पर्युपासन्ते फलं पक्वमिवाशयः ॥ ३२ ॥
युधिष्ठिर उवाच-असतां कीदृशं रूपं साधवः किं च कुर्वते।
ब्रवीतु मे भवानेतत्सन्तोऽसन्तश्च कीदृशाः ॥ ३३ ॥
भीष्म उवाच-दुराचाराश्च दुर्धर्षा दुर्मुखाश्चाप्यसाधवः।

ध्यान करते हुए अधिक आदरके सहित सेवा करो, यह जान रखो, कि ब्राह्मणों से ही ये सब लोग प्रतिष्ठित होरहे हैं। (२२—२६)

युधिष्ठिर बोले, जो लोग धर्मकी असूया करते और जो मनुष्य धर्मकी सेवा किया करते हैं, वे लोग किन स्थानोंमें जाते हैं? आप मेरे निकट इस विषयको वर्णन करिये। (२७)

भीष्म बोले, जिनका चित्त रजोगुण और तमोगुणसे ढंका है, वे धर्मविद्वेषी मनुष्य नरकमें गमन किया करते हैं। हे महाराज! जो लोग सब प्रकारसे धर्म की उपासना करते हैं, वे सत्य और सरल चित्तवाले पुरुष स्वर्गभोग किया करते हैं; आचार्यकी उपासनाके हेतु धर्मही उनकी गति है, जो लोग धर्मकी उपासना करते हैं, उन्हें देवलोक प्राप्त होता है। मनुष्य अथवा देवगण लोभ-द्वेषसे रहित होके शरीरको उपताप देकर धर्मसे सुख लाभ करते हैं। मनीषिगण ब्रह्माके पुत्रको प्रथम धर्म कहते हैं; जैसे भोक्ताका मन पके फलको भोग करता है, वैसेही धार्मिक लोग फलकी उपासना किया करते हैं। (२८-३२)

युधिष्ठिर बोले, दुष्टोंका क्या लक्षण है? साधु लोग क्या किया करते हैं? साधु और दुष्टजन कैसे हैं? यह सब

साधवः शीलसंपन्नाः शिष्टाचारस्य लक्षणम् ॥ ३४ ॥
राजमार्गे गवां मध्ये धान्यमध्ये च धर्मिणः ।
नोपसेवन्ति राजेन्द्र सर्गं मूत्रपुरीषयोः ॥ ३५ ॥
पञ्चानामशनं दत्त्वा शेषमश्नन्ति साधवः ।
न जल्पन्ति च भुञ्जाना न निद्रान्त्यार्द्रपाणयः ॥३६॥
चित्रभानुमनड्वाहं देवं गोष्ठं चतुष्पथम् ।
ब्राह्मणं धार्मिकं वृद्धं ये कुर्वन्ति प्रदक्षिणम् ॥ ३७ ॥
वृद्धानां भारतप्तानां स्त्रीणां चक्रधरस्य च ।
ब्राह्मणानां गवां राज्ञां पन्थानं ददते च ये ॥ ३८ ॥
अतिथीनां च सर्वेषां प्रेष्याणां स्वजनस्य च ।
तथा शरणकामानां गोप्ता स्यात्स्वागतप्रदः ॥ ३९ ॥
सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं देवनिर्मितम् ।
नान्तरा भोजनं दृष्टमुपवासविधिर्हि सः ॥ ४० ॥
होमकाले यथा वह्निः कालमेव प्रतीक्षते ।
ऋतुकाले तथा नारी ऋतुमेव प्रतीक्षते ॥ ४१ ॥
नान्यदा गच्छते यस्तु ब्रह्मचर्यं च तत्स्मृतम् ।

आप मेरे निकट वर्णन करिये। (३३)

भीष्म बोले, दुष्ट लोग दुराचारी दुर्द्धर्ष और दुर्मुख हैं और साधुजन शील-सम्पन्न तथा महाशिष्टाचार लक्षणस्व-रूप हैं। हे राजेन्द्र! धार्मिक मनुष्य राजमार्ग, गोसमूह और धान्यके बीच मल मूत्र परित्याग नहीं करते। साधु लोग देव, पितर, भूत, अतिथि और कुटुम्ब इन पांचोंको अन्नदान करके शेषमें स्वयं भोजन करते हैं, वे लोग भोजन करते करते जल्पना नहीं करते, आर्द्रपाणि होकर सोते नहीं। जो लोग चित्रभानु, वृषभ, देवता, गऊ, चतु-ष्पथ, ब्राह्मण, धार्मिक और वृद्ध पुरुषोंकी प्रदक्षिणा करते हैं, जो लोग बूढे, भारसे थके हुए पुरुषों, स्त्रियों, अनेक ग्रामोंके स्वामी, ब्राह्मणों, गौवों और राजाओंको पथ प्रदान करते हैं, वेही साधु हैं। (३४—३८)

अतिथि, प्रेष्य स्वजनों और शरणा-गत पुरुषोंको प्रतिपालन तथा स्वागत प्रश्न करना चाहिये। सन्ध्या और सबेरे मनुष्योंका भोजन देवनिर्मित है, जो लोग उसके अनन्तर भोजन नहीं करते उसेही उपवासविधि कहते हैं। जैसे होमकालमें अग्नि समयकी प्रतीक्षा

अमृतं ब्राह्मणा गाव इत्येतत्त्रयमेकतः ॥ ४२ ॥
तस्माद्गोब्राह्मणं नित्यमर्चयेत यथाविधि ।
यजुषा संस्कृतं मांसमुपभुञ्जन्न दुष्यति ।
पृष्ठमांसं वृथामांसं पुत्रमांसं च तत्समम् ॥ ४३ ॥
स्वदेशे परदेशे वाप्यतिथिं नोपवासयेत् ।
कर्म वै सफलं कृत्वा गुरूणां प्रतिपादयेत ॥ ४४ ॥
गुरुभ्यस्त्वासनं देयमभिवाद्याभिपूज्य च ।
गुरुमभ्यर्च्य वर्धन्ते आयुषा यशसा श्रिया ॥ ४५ ॥
वृद्धान्नाभिभवेज्जातु न चैतान्प्रेषयेदिति ।
नासीनः स्यात्स्थितेष्वेवमायुरस्य न रिष्यते ॥ ४६ ॥
न नग्नामीक्षते नारीं न नग्नान्पुरुषानपि ।
मैथुनं सततं गुप्तमाहारं च समाचरेत् ॥ ४७ ॥
तीर्थानां गुरवस्तीर्थं चोक्षाणां हृदयं शुचि ।
दर्शनानां परं ज्ञानं संतोषः परमं सुखम् ॥ ४८ ॥
सायं प्रातश्च वृद्धानां शृणुयात्पुष्कला गिरः ।

करती है, वैसेही ऋतुकालमें स्त्रियें ऋतु की प्रतीक्षा किया करती हैं; ऋतुकालके अनन्तर अन्य समयमें जो लोग स्त्री-संग नहीं करते वही उनका ब्रह्मचर्य कहाता है। अमृत, ब्राह्मण और गौवें, ये तीनोंही समान हैं; इसलिये ब्राह्मणों और गौवों की विधिपूर्वक पूजा करे। (३९—४३)

वेदमंत्रोंसे संस्कारयुक्त मांस भक्षण करनेमें दोष नहीं होता, पृष्ठमांस और पुत्रमांस, ये तीनोंही समान हैं। निज देश तथा परदेशमें अतिथिको उपवासी न रखे; अध्ययन कार्य समाप्त करके गुरुजनोंको दक्षिणा दान करे, बडे लोगोंको प्रणाम करे और पूजा करके आसन देना योग्य है। गुरुजनोंकी पूजा करनेसे परमायु, यश और श्रीके सहित वृद्धि होती है, वृद्धोंकी कदापि निन्दा न करे और उन्हें किसी कार्यके निमित्त प्रेरण करना योग्य नहीं है। बडे लोगोंके खडे रहनेपर बैठा न रहे, इस प्रकार आचरण करनेसे आयु नहीं घटती। वस्त्ररहित स्त्री-पुरुषोंकी ओर न देखे,सदा गुप्तभावसे मैथुन और आहार करे। गुरुजन सब तीर्थोंके भी तीर्थ-स्वरूप हैं, सब पवित्र पदार्थोंके बीच हृदय ही अत्यन्त पवित्र है; इन्द्रियोंके बीच ज्ञानही परम श्रेष्ठ और सन्तोष

श्रुतमाप्नोति हि नरः सततं वृद्धसेवया ॥ ४९ ॥
स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं पाणिमुद्धरेत्।
यच्छेद्वाङ्मनसी नित्यमिन्द्रियाणि तथैव च ॥ ५० ॥
संस्कृतं पायसं नित्यं यवागूं कृसरं हविः।
अष्टकाः पितृदैवत्या ग्रहाणामभिपूजनम् ॥ ५१ ॥
श्मश्रुकर्मणि मङ्गल्यं क्षुतानामभिनन्दनम्।
व्याधितानां च सर्वेषामायुषामभिनन्दनम् ॥ ५२ ॥
न जातु त्वमिति ब्रूयादापन्नोऽपि महत्तरम्।
त्वङ्कारो वा वधो वेति विद्वत्सु न विशिष्यते ॥ ५३ ॥
अवराणां समानानां शिष्याणां च समाचरेत्।
पापमाचक्षते नित्यं हृदयं पापकर्मिणः ॥ ५४ ॥
ज्ञानपूर्वकृतं कर्म च्छादयन्ते ह्यसाधवः।
ज्ञानपूर्वं विनश्यन्ति गूहमाना महाजने ॥ ५५ ॥
न मां मनुष्याः पश्यन्ति न मां पश्यन्ति देवताः।
पापेनाभिहितः पापः पापमेवाभिजायते ॥ ५६ ॥

ही परमसुख है। (४३—४८)

सन्ध्या और सवेरेके समय वृद्ध लोगोंका पुष्कल वचन सुने, सदा वृद्धों की सेवा करनेसे मनुष्य ज्ञानवान् होता है, वेदपाठ और भोजनके समय दहिना हाथ उठावे अर्थात् यज्ञोपवीती होवे, वचन, मन और इन्द्रियोंको सदा संयत करे। संस्कार किया हुआ पायस, यवागू, कृसर और हविके सहारे ग्रहों की पूजा और पितृदैवत्य अष्टका श्राद्ध करे श्मश्रुकर्ममें मङ्गलवचन कहे, क्षुत होनेपर शतञ्जीव इत्यादि वचनसे अभिनन्दन करे, पीडित पुरुषोंकी परमायुके निमित्त प्रार्थना करे। आपद्ग्रस्त होके कदापि महत् पुरुषोंको "तुम" न कहे विद्वानोंको तुम कहने और वध करनेमें विशेष अन्तर नहीं है; कनिष्ठ लोगों, बराबर वालों और शिष्योंको तुम कहना योग्य है। (४९—५४)

पापकर्म करनेवाले मनुष्योंका हृदय ही सदा उन्हें पापी कहा करता है, अर्थात् कर्मके सहारे उनका हृदय जाना जाता है। महाजनोंके निकट जानके कृतकर्मोंको गोपन करनेसे वह कर्म विनष्ट होता है; दुष्ट लोग ही जानके कृतकर्मोंको गोपन किया करते हैं। मुझे मनुष्य लोग नहीं देख सकते और देवता लोग भी नहीं देखते हैं; ऐसा ही

यथा वार्धुषिको वृद्धिं दिनभेदे प्रतीक्षते।
धर्मेण पिहितं पापं धर्ममेवाभिवर्धयेत् ॥ ५७ ॥
यथा लवणमम्भोभिराप्लुतं प्रविलीयते।
प्रायश्चित्तहतं पापं तथा सद्यः प्रणश्यति ॥ ५८ ॥
तस्मात्पापं न गूहेत गूहमानं विवर्धयेत्।
कृत्वा तत्साधुष्वाख्येयं ते तत्प्रशमयन्त्युत ॥ ५९ ॥
आशया संचितं द्रव्यं कालेनैवोपभुज्यते।
अन्ये चैतत्प्रपद्यन्ते वियोगे तस्य देहिनः ॥ ६० ॥
मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणः।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि धर्ममेव समासते ॥ ६१ ॥
एक एव चरेद्धर्मं न धर्मध्वजिको भवेत्।
धर्मवाणिजका ह्येते ये धर्ममुपभुञ्जते ॥ ६२ ॥
अर्चेद्देवानदम्भेन सेवेतामायया गुरून्।
निधिं निदध्यात्पारत्र्यं यात्रार्थं दानशब्दितम् ॥ ६३ ॥[७५०४]

इति श्रीमहा०अनु०आनु०पर्वणि दानधर्मे धर्मप्रमाणकथने द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६२॥

समझके पापसे परिपूरित पापाचारी मनुष्य पापमें ही निमग्न हुआ करता है। जैसे वृद्धिजीवी लोग देहभेदसे वृद्धिकी प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही धर्मसे ढका हुआ पाप धर्मकी वृद्धि किया करता है। जैसे नमक जलमें पडनेसे गल जाता है, वैसे ही प्रायश्चित्तके द्वारा पापकर्म उस ही समय विनष्ट हो जाते हैं; इसलिये पापकर्मोंको न छिपावे, छिपानेसे ही वह बढता है; पाप करनेपर साधुओंके निकट कहनेसे वे लोग उस पापको नष्ट किया करते हैं। (५४-५९)

आशाके सहारे संचित किया हुआ द्रव्य कालक्रमसे उपयुक्त होता है, जो पुरुष सञ्चय करता है, उसके वियोगमें दूसरा उसे भोग किया करता है। मनीषिवृन्द सब जीवोंके मानसको ही धर्म कहते हैं, इसलिये सब जीव धर्मकाही आसरा कर रहे हैं। एक मात्र धर्मका ही आचरण करे, धर्मध्वजी न होवे; जो लोग धर्मको उपभोग करते हैं, वे धर्मवणिक् हैं। दम्भरहित होकर देवताओंकी पूजा करे, निष्कपट होके गुरुकी सेवा करे; परलोकके लिये निधि स्थापन करे और सत्पात्रको दान करे। (६०—६३)

अनुशासनपर्वमें १६२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर उवाच-नाभागधेयः प्राप्नोति धनं सुबलवानपि।
भागधेयान्वितस्त्वर्थान्कृशो बालश्च विन्दति ॥ १ ॥
नालाभकाले लभते प्रयत्नेऽपि कृते सति।
लाभकालेऽप्रयत्नेन लभते विपुलं धनम् ॥ २ ॥
कृतयत्नाफलाश्चैव दृश्यन्ते शतशो नराः।
अयत्नेनैधमानाश्च दृश्यन्ते बहवो जनाः ॥ ३ ॥
यदि यत्नो भवेन्मर्त्यः स सर्वं फलमाप्नुयात्।
नालभ्यं चोपलभ्येत नृणां भरतसत्तम ॥ ४ ॥
प्रयत्नं कृतवन्तोऽपि दृश्यन्ते ह्यफला नराः।
मार्गत्यायशतैरर्थानमार्गश्चापरः सुखी ॥ ५ ॥
अकार्यमसकृत्कृत्वा दृश्यन्ते ह्यधना नराः।
धनयुक्ताः स्वकर्मस्था दृश्यन्ते चापरेऽधनाः ॥ ६ ॥
अधीत्य नीतिशास्त्राणि नीतियुक्तो न दृश्यते।
अनभिज्ञश्च साचिव्यं गमितः केन हेतुना ॥ ७ ॥
विद्यायुक्तो ह्यविद्यश्च धनवान्दुर्मतिस्तथा।

अनुशासनपर्वमें १६३ अध्याय।

युधिष्ठिर बोले, भाग्यहीन मनुष्य अत्यन्त बलवान् होनेपर भी धनवान् नहीं होता और भाग्यवान् मनुष्य कृशित तथा बालक होनेपरभी अर्थ लाभ करता है। जब मिलनेका समय नहीं रहता, तब प्रयत्न करनेपर भी नहीं प्राप्त होता और मिलनेके समयमें विना यत्नके ही बहुतसा धन मिलता है। ऐसे सैकडों लोग दीखते हैं, जो कि यत्न करके निष्फल हुए हैं और बहुतेरे पुरुष विना यत्नके ही वर्द्धित होते दीख पडते हैं। यत्न करनेसे मनुष्यों-को उस ही समय फल प्राप्त होता। हे भरतसत्तम! मनुष्योंको न मिलनेवाली वस्तु प्राप्त नहीं होती, देखा जाता है, कि प्रयत्न करनेपर भी बहुतेरे निष्फल होते हैं। कोई सैकडों नीतिवचनके सहारे धन चाहते हैं। कोई विना प्रार्थना किये ही सुखी होते हैं। (१-५)

देखनेमें आता है, कितने लोग बार बार दुष्कर्म करके निर्द्धन हो जाते हैं और दूसरे लोग निर्द्धन होनेपर भी निज कर्ममें रत होके धनवान् होते हैं। कोई पुरुष नीतिशास्त्रोंको पढके भी मन्त्रित्वपदमें नियुक्त नहीं होते और क्या कारण है, कि कितने ही मूर्ख पुरुष मन्त्रित्व पदपर नियुक्त होते हैं? क्या

यदि विद्यामुपाश्रित्य नरः सुखमवाप्नुयात् ॥ ८ ॥
न विद्वान्विद्यया हीनं वृत्त्यर्थमुपसंश्रयेत्।
यथा पिपासां जयति पुरुषः प्राप्य वै जलम् ॥ ९ ॥
दृष्टार्थो विद्यया ह्येव न विद्यां प्रजहेन्नरः।
नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि।
तृणाग्रेणापि संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ॥ १० ॥
भीष्म उवाच- ईहमानः समारम्भान् यदि नासादयेद्धनम्।
उग्रं तपः समारोहेन्न ह्यनुप्तं प्ररोहति ॥ ११ ॥
दानेन भोगी भवति मेधावी वृद्धसेवया।
अहिंसया च दीर्घायुरिति प्राहुर्मनीषिणः ॥ १२ ॥
तस्माद्दद्यान्न याचेत पूजयेद्धार्मिकानपि।
सुभाषी प्रियकृच्छान्तः सर्वसत्त्वाविहिंसकः ॥ १३ ॥
यदा प्रमाणं प्रसवः स्वभावश्च सुखासुखे।
दंशकीटपिपीलानां स्थिरो भव युधिष्ठिर ॥ १४ ॥[७५१८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे धर्मप्रशंसायां त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६३॥

विद्वान् विद्याहीन है तथा क्या धनवान् दुर्बुद्धि है? यदि विद्याके अवलम्बसे मनुष्य सुखी होता, तो विद्वान् मनुष्य वृत्तिके निमित्त मूर्खोंका आसरा न करते। जैसे पुरुष जल पाके प्यास बुझाता है, वैसेही इष्टार्थी पुरुष विद्याके सहारे अर्थरूपी प्यासकी शान्ति किया करता है; तथापि विद्या परित्याग नहीं करता। जिसका समय नहीं पहुंचा है, वह सैकडों वाणोंसे विद्ध होनेपर भी नहीं मरता और जिसका काल पहुंच गया है, वह तृणकी नोकसे छुए जानेपर भी जीवित नहीं रहता। (९-१०)

भीष्म बोले, कार्योंकी चेष्टा करते हुए यदि अर्थ लाभ न होवे, तो उग्र तपस्यामें प्रवृत्त होना चाहिये; क्यों कि विना बीजके कदापि अङ्कुर उत्पन्न नहीं होता। मनीषिवृन्द कहा करते हैं, कि दान करनेसे मनुष्य भोगवान् होता है, वृद्धोंकी सेवा करनेसे मेधावी हुआ करता है और अहिंसासे महादीर्घायु होता है। इसलिये दान करे, याचना करना योग्य नहीं है। धार्मिक लोगोंकी पूजा करे, उत्तम वचन कहे; प्रियकारी, शुद्ध और सब प्राणियोंके विषयमें अहिंसक होवे। हे युधिष्ठिर! जब कर्म और

भीष्म उवाच- कार्यते यच्च क्रियते सच्चासच्च कृताकृतम् ।
तत्राश्वसीत सत्कृत्वा असत्कृत्वा न विश्वसेत् ॥ १ ॥
काल एव सर्वकाले निग्रहानुग्रहौ ददत् ।
बुद्धिमाविश्य भूतानां धर्माधर्मौ प्रवर्तते ॥ २ ॥
यदा त्वस्य भवेद् बुद्धिर्धर्मार्थस्य प्रदर्शनात् ।
तदाश्वसीत धर्मात्मा दृढबुद्धिर्न विश्वसेत् ॥ ३ ॥
एतावन्मात्रमेतद्धि भूतानां प्राज्ञलक्षणम् ।
कालयुक्तोऽप्युभयविच्छेषं युक्तं समाचरेत् ॥ ४ ॥
यथा ह्युपस्थितैश्वर्याः प्रजायन्ते न राजसाः ।
एवमेवात्मनात्मानं पूजयन्तीह धार्मिकाः ॥ ५ ॥
न ह्यधर्मतया धर्मं दद्यात्कालः कथंचन ।
तस्माद्विशुद्धमात्मानं जानीयाद्धर्मचारिणम् ॥ ६ ॥
स्प्रष्टुमप्यसमर्थो हि ज्वलन्तमिव पावकम् ।

स्वभाव दंश, कीट तथा चींटी प्रभृतिके सुख दुःख प्राप्तिविषयमें प्रमाण हैं, तब अपने विषयमें भी वैसा ही जानके तुम्हें स्थिर होना चाहिये । (११-१४)

अनुशासनपर्वमें १६३ अध्याय समाप्त ।

अनुशासनपर्वमें १६४ अध्याय ।

भीष्म बोले, जो सत् वा असत् कर्म किया जाता तथा कराया जाता है; किंवा कृत वा अकृत हो; उसके बीच सत्कर्म करके उसपर विश्वास करे और असत् कार्योंमें विश्वास न करना चाहिये। कालही सब विषयमें निग्रह अनुग्रह प्रदान करता हुआ प्राणियोंकी बुद्धिमें आविष्ट होकर धर्म और अधर्मका प्रवर्त्तक होता है । जिस समय धर्मार्थ प्रदर्शन हेतु पुरुषकी बुद्धिमें धर्म कल्याणकारी बोध होता है, उस समय धर्मात्मा मनुष्य आश्वस्त होवे; अदृढबुद्धि पुरुष धर्मफलमें विश्वास नहीं करते । प्राणियोंकी इतनी ही धर्ममें विश्वासवत्ता प्राज्ञ लक्षण है । जो लोग कर्त्तव्य अकर्त्तव्य दोनोंको जानते हैं, वे समयके अनुसार जैसा उचित होता है, वैसा ही आचरण किया करते हैं । जैसे ऐश्वर्यशाली मनुष्य रजोगुणसे युक्त सन्तान उत्पन्न नहीं करता, इस लोकमें धार्मिक पुरुष उस ही प्रकार आप ही अपना सम्मान किया करते हैं । (१—५)

काल कदापि दुःखके हेतु स्वरूपसे धर्म दान नहीं करता; इसलिये धर्मचारी मनुष्य अपनेको पवित्र जाने । सन्तत

अधर्मः सन्ततो धर्मं कालेन परिरक्षितम् ॥ ७ ॥
कार्यावेतौ हि धर्मेण धर्मो हि विजयावहः।
त्रयाणामपि लोकानामालोकः कारणं भवेत् ॥ ८ ॥
न तु कश्चिन्नयेत्प्राज्ञो गृहीत्वैव करे नरम्।
उच्यमानस्तु धर्मेण धर्मलोकभयच्छले ॥ ९ ॥
शूद्रोऽहं नाधिकारो मे चातुराश्रम्यसेवने।
इति विज्ञानमपरे नात्मन्युपदधत्युत ॥ १० ॥
विशेषेण च वक्ष्यामि चातुर्वर्ण्यस्य लिङ्गतः।
पञ्चभूतशरीराणां सर्वेषां सदृशात्मनाम् ॥ ११ ॥
लोकधर्मे च धर्मे च विशेषकरणं कृतम्।
यथैकत्वं पुनर्यान्ति प्राणिनस्तत्र विस्तरः ॥ १२ ॥
अध्रुवो हि कथं लोकः स्मृतो धर्मः कथं ध्रुवः।
यत्र कालो ध्रुवस्तात तत्र धर्मः सनातनः ॥ १३ ॥

अधर्म कालके द्वारा परिरक्षित जलती हुई अग्निसदृश धर्मको स्पर्श करनेमें भी समर्थ नहीं है। विशुद्धता और अधर्मका अस्पर्श धर्मके द्वारा ही करना चाहिये; क्यों कि धर्म ही विजयावह है; धर्म ही तीनों लोकोंको प्रकाशित करता है। कोई बुद्धिमान् पुरुष मनुष्य को हाथसे पकडके धर्ममें प्रवृत्त नहीं कर सकता; परन्तु वह धर्मभय तथा लोकभयके छलसे उसे धर्मानुष्ठानके निमित्त प्रेरण करता है, अर्थात् प्राज्ञ पुरुषोंके द्वारा लोकभय प्रभृति छलसे प्रेरित होकर मनुष्य धर्मानुष्ठानमें प्रवृत्त होता है। (६–९)

मैं शूद्र हूं मुझे चारों आश्रमोंके धर्मसेवनमें अधिकार नहीं है" ऐसा वचन कहके दूसरे लोग अधिकारके अनुसार धर्मानुष्ठान किया करते हैं, वह छल नहीं है, इसलिये समस्त प्रवर्त्तना व्यर्थ है। सदृशचित्तवाले प्राणियोंका पाञ्चभौतिक शरीर प्रत्यक्ष होनेपर भी 'यह पवित्र है, यह अपवित्र है', इस ही प्रकार विशेष व्यवस्थापन लोकधर्म और शास्त्रीय धर्म निमित्त-कृत हुए हैं; पशु, पामर, पण्डित प्रभृति प्राणीवृन्द जिस प्रकार पुनर्निर्दिष्ट एकत्व लाभ करते हैं, शास्त्रमें विस्तारपूर्वक वही धर्मनियम वर्णित है, इसलिये चारों वर्णोंका विषय यथार्थ रीतिसे वर्णन करता हूं। लोक अनित्य है और धर्म नित्य है, यह किस प्रकार स्मृत हुआ? लोक और धर्मके कार्यकारण-

सर्वेषां तुल्यदेहानां सर्वेषां सदृशात्मनाम् ।
काले धर्मेण संयुक्तः शेष एव स्वयंगुरुः ॥ १४ ॥
एवं सति न दोषोऽस्ति भूतानां धर्मसेवने ।
तिर्यग्योनावपि सतां लोक एव मतो गुरुः ॥ १५ ॥ [७८१३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे धर्मप्रशंसायां चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

वैशम्पायन उवाच– शरतल्पगतं भीष्मं पाण्डवोऽथ कुरूद्वहः ।
युधिष्ठिरो हि तं प्रेप्सुरपृच्छत्कल्मषापहम् ॥ १ ॥
युधिष्ठिर उवाच– किं श्रेयः पुरुषस्येह किं कुर्वन्सुखमेधते ।
विपाप्मा स भवेत्केन किं वा कल्मषनाशनम् ॥ २ ॥
वैशम्पायन उवाच– तस्मै शुश्रूषमाणाय भूयः शान्तनवस्तदा ।
दैवं वंशं यथान्यायमाचष्ट पुरुषर्षभ ॥ ३ ॥

भाव हेतुसे कार्यकी अनित्यता युक्तियुक्त नहीं होती। हे तात! इसलिये सङ्कल्परूप काल अर्थात् निष्काम धर्म ही नित्य है, उसका फल कभी सकाम नहीं हो सकता; इसलिये धर्मही सनातन है। (१०—१३)

तुल्य देहविशिष्ट तथा सदृशचित्त वाले प्राणियोंके सम्बन्धमें धर्मयुक्त सङ्कल्प ही विशेष रूपसे स्वयं उपदेशक होता है, जब जीवोंका पूर्वकृत कर्म उनके जन्मनेपर सुख दुःख साधनका प्रवर्त्तक हुआ; तब जीवोंको धर्मसेवन अर्थात् कर्मफल भोगनेमें दोष नहीं है, क्यों कि तिर्यग्योनिमें वर्त्तमान जीवोंकी सदसत् प्रवृत्तिविषय पूर्वकर्मके अनुसार लोकमें गुरुतर दीखता है; विधिनियन्त्रित होकर लोक दृष्टान्तके अनुसार लोकसमाज ही उपदेष्टा हुआ करता है। (१४—१५)

अनुशासनपर्वमें १६४ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १६५ अध्याय।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कुरुकुलधुरन्धर पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरने हिताकांक्षी होकर शरशय्याशायी भीष्मदेवसे पापापह हितविषय पूछा। (१)

युधिष्ठिर बोले, इस लोकमें पुरुषके लिये कल्याण क्या है? क्या करनेसे मनुष्यको सुख मिलता है? किन कर्मोंके सहारे पुरुष निष्पाप होता है और किन प्रकार कर्म पापोंको नाश करता है? (२)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ! उस समय शान्तनुनन्दन भीष्मदेव सेवा करनेवाले युधिष्ठिरके निकट

भीष्म उवाच- अयं दैवतवंशो वै ऋषिवंशसमन्वितः।
त्रिसन्ध्यं पठितः पुत्र कल्मषापहरः परः ॥ ४ ॥
यदह्ना कुरुते पापमिन्द्रियैः पुरुषश्चरन्।
बुद्धिपूर्वमबुद्धिर्वा रात्रौ यच्चापि सन्ध्ययोः ॥ ५ ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यः कीर्तयन्वै शुचिः सदा।
नान्धो न बधिरः काले कुरुते स्वस्तिमान्सदा ॥ ६ ॥
तिर्यग्योनिं न गच्छेच्च नरकं सङ्कराणि च।
न च दुःखभयं तस्य मरणे स न मुह्यति ॥ ७ ॥
देवासुरगुरुर्देवः सर्वभूतनमस्कृतः।
अचिन्त्योऽथाप्यनिर्देश्यः सर्वप्राणो ह्ययोनिजः॥ ८ ॥
पितामहो जगन्नाथः सावित्री ब्रह्मणः सती।
वेदभूरथ कर्ता च विष्णुर्नारायणः प्रभुः ॥ ९ ॥
उमापतिर्विरूपाक्षः स्कन्दः सेनापतिस्तथा।
विशाखो हुतभुग्वायुश्चन्द्रसूर्यौ प्रभाकरौ ॥ १० ॥
शक्रः शचीपतिर्देवो यमो धूमोर्णया सह।
वरुणः सह गौर्या च सह ऋद्ध्या धनेश्वरः ॥ ११ ॥
सौम्या गौः सुरभिर्देवी विश्रवाश्च महानृषिः।
सङ्कल्पः सागरो गङ्गा स्रवन्त्योऽथ मरुद्गणः ॥ १२ ॥

देववंश वर्णन करने लगे। भीष्म बोले, हे तात! ऋषिवंशयुक्त इस देववंशका त्रिसन्ध्या पाठ करनेसे सब पाप नष्ट होते हैं। पुरुष दिनमें इन्द्रियोंके सहारे जो पापाचरण करता है अथवा जानके वा विना जाने रात्रि तथा दोनों सन्ध्यामें जो पाप करता है, सदा पवित्र होके इस देववंशका पाठ करनेसे उन पापोंसे छूट जाता है। इसे पाठ करनेसे पुरुष कालक्रमसे अन्धा वा बहिरा नहीं होता, सदा स्तुतिमान् होता है, तिर्यक् योनि, नरक और संकरजातिमें गमन नहीं करता, उसे मरनेसे भय, दुःख और मोह नहीं होता। (३—७)

देवासुरगुरु सर्वभूतनमस्कृत अचिन्त्य अनिर्देश्य सर्वप्राण अयोनिज देव पितामह ब्रह्माकी सती सावित्री, वेदभू वेदकर्त्ता विष्णु नारायण, प्रभु उमापति विरूपाक्ष, सेनापति स्कन्द, विशाख, हुतभुक्, वायु, चन्द्रमा, प्रभाकर सूर्य, शचीपति शक्रदेव, धूमोर्णाके सहित यम, गौरीके सहित वरुण और

वालखिल्यास्तपःसिद्धाः कृष्णद्वैपायनस्तथा ।
नारदः पर्वतश्चैव विश्वावसुर्हहाहुहूः ॥ १३ ॥
तुम्बुरुश्चित्रसेनश्च देवदूतश्च विश्रुतः ।
देवकन्या महाभागा दिव्याश्चाप्सरसां गणाः ॥ १४ ॥
उर्वशी मेनका रम्भा मिश्रकेशी ह्यलम्बुषा ।
विश्वाची च घृताची च पञ्चचूडा तिलोत्तमा ॥ १५ ॥
आदित्या वसवो रुद्राः साश्विनः पितरोऽपि च ।
धर्मः श्रुतं तपो दीक्षा व्यवसायः पितामहः ॥ १६ ॥
शर्वर्यो दिवसाश्चैव मारीचः कश्यपस्तथा ।
शुक्रो बृहस्पतिर्भौमो बुधो राहुः शनैश्चरः ॥ १७ ॥
नक्षत्राण्यृतवश्चैव मासाः पक्षाः संवत्सराः ।
वैनतेयाः समुद्राश्च कद्रुजाः पन्नगास्तथा ॥ १८ ॥
शतद्रुश्च विपाशा च चन्द्रभागा सरस्वती ।
सिन्धुश्च देविका चैव प्रभासं पुष्कराणि च ॥ १९ ॥
गङ्गा महानदी वेणा कावेरी नर्मदा तथा ।
कुलंपुना विशल्या च करतोयाम्बुवाहिनी ॥ २० ॥
सरयूर्गण्डकी चैव लोहितश्च महानदः ।
ताम्रारुणा वेत्रवती पर्णाशा गौतमी तथा ॥ २१ ॥

ऋद्धिके सहित कुबेर, साम्यिगऊ सुरभी-देवी, महर्षि विश्रवा, सङ्कल्प, सागर, गङ्गा प्रभृति नदीगण, मरुद्गण, तपसे सिद्ध वालखिल्यगण, कृष्णद्वैपायन, नारद, पर्वत, विश्वावसु, हाहा, हूहू, तुम्बुरु, चित्रसेन, देवदूत विश्रुत, महाभागा देवकन्यागण, अप्सरावृन्द, उर्वशी मेनका, रम्भा, मिश्रकेशी, अलम्बुषा, विश्वाची, घृताची, पञ्चचूडा, तिलोत्तमा, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, दोनों अश्विनीकुमार, पितृगण, धर्म, श्रुत, तप, दीक्षा, व्यवसाय, पितामह, शर्वरी, दिवस, मारीच, कश्यप, शुक्र, बृहस्पति, मङ्गल, बुध, राहु, शनैश्चर, सब नक्षत्र, सब ऋतु, मास, पक्ष, संवत्सर, वैनतेय, समुद्र, कद्रुज, पन्नगगण, शतद्रु, विपाशा, चन्द्रभागा, सरस्वती, सिन्धु, देविका, प्रभास, पुष्कर, गङ्गा महानदी, वेणा, कावेरी, नर्मदा, कुलंपुना, विशल्या, करतोया, अम्बुवाहिनी, सरयू, गण्डकी, महानद लोहित, ताम्रारुणा, वेत्रवती पर्णाशा,

गोदावरी च वेण्या च कृष्णवेणा तथाऽद्रिजा ।
दृषद्वती च कावेरी चक्षुर्मन्दाकिनी तथा ॥ २२ ॥
प्रयागं च प्रभासं च पुण्यं नैमिषमेव च ।
तच्च विश्वेश्वरस्थानं यत्र तद्विमलं सरः ॥ २३ ॥
पुण्यतीर्थं सुसलिलं कुरुक्षेत्रं प्रकीर्तितम् ।
सिन्धूत्तमं तपो दानं जम्बूमार्गमथापि च ॥ २४ ॥
हिरण्वती वितस्ता च तथा प्लक्षवती नदी ।
वेदस्मृतिर्वेदवती मालवाथाश्ववत्यपि ॥ २५ ॥
भूमिभागास्तथा पुण्या गङ्गाद्वारमथापि च ।
ऋषिकुल्यास्तथा मेध्या नद्यः सिन्धुवहास्तथा ॥२६॥
चर्मण्वती नदी पुण्या कौशिकी यमुना तथा ।
नदी भीमरथी चैव बाहुदा च महानदी ॥ २७ ॥
माहेन्द्रवाणी त्रिदिवा नीलिका च सरस्वती ।
नन्दा चापरनन्दा च तथा तीर्थमहाह्रदः ॥ २८ ॥
गयाऽथ फल्गुतीर्थं च धर्मारण्यं सुरैर्वृतम् ।
तथा देवनदी पुण्या सरश्च ब्रह्मनिर्मितम् ॥ २९ ॥
पुण्यं त्रिलोकविख्यातं सर्वपापहरं शिवम् ।
हिमवान्पर्वतश्चैव दिव्यौषधिसमन्वितः ॥ ३० ॥
विन्ध्यो धातुविचित्राङ्गस्तीर्थवानौषधान्वितः ।

गौतमी, गोदावरी, वेण्या, कृष्णवेणा, अद्रिजा, दृषद्वती, कावेरी, चक्षु, मन्दाकिनी, प्रभास, प्रयाग, पवित्र नैमिषक्षेत्र, विमल सरोवर जहांपर विश्वेश्वरका स्थान है, पुण्यतीर्थोंके बीच उत्तम कुरुक्षेत्र, सिन्धूत्तम, तप, दान, जम्बूमार्ग, हिरण्वती, वितस्ता, प्लक्षवती, नदी, वेद, स्मृति, वेदवती, मालवा, अश्ववती, भूमिके समस्त पवित्र स्थान गङ्गाद्वार, पवित्र ऋषिकुल्या, चित्रवहा नदी, पवित्र नदी चर्मण्वती, कौशिकी, यमुना, भीमरथी नदी, बाहुदा, महानदी, माहेन्द्रवाणी, त्रिदिवा, नीलिका, सरस्वती, नन्दा, अपरनन्दा, तीर्थ महाह्रद, गया, फल्गुतीर्थ, देवताओंसे परिपूरित धर्मारण्य, पुण्या देवनदी ब्रह्मनिर्मित तीनों लोकोंमें विख्यात सब पापोंको हरनेवाला कल्याणकारी पुण्य-सरोवर, दिव्य ओषधियोंसे युक्त हिमालय पर्वत, धातुओंसे चित्रित विन्ध्य,

मेरुर्महेन्द्रो मलयः श्वेतश्च रजताचलः ॥ ३१ ॥
शृङ्गवान्मन्दरो नीलो निषधो दर्दुरस्तथा ।
चित्रकूटोऽञ्जनाभश्च पर्वतो गन्धमादनः ॥ ३२ ॥
पुण्यः सोमगिरिश्चैव तथैवान्ये महीधराः ।
दिशश्च विदिशश्चैव क्षितिः सर्वे महीरुहाः ॥ ३३ ॥
विश्वे देवा नभश्चैव नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।
पान्तु नः सततं देवाः कीर्तिताऽकीर्तिता मया ॥३४॥
कीर्तयानो नरो ह्येतान्मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।
स्तुवंश्च प्रतिनन्दंश्च मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ३५ ॥
सर्वसङ्करपापेभ्यो देवतास्तवनन्दकः ।
देवतानन्तरं विप्रांस्तपःसिद्धांस्तपोऽधिकान् ॥ ३६ ॥
कीर्तितान्कीर्तयिष्यामि सर्वपापप्रमोचनान् ।
यवक्रीतोऽथ रैभ्यश्च कक्षीवानौशिजस्तथा ॥ ३७ ॥
भृग्वङ्गिरास्तथा कण्वो मेधातिथिरथ प्रभुः ।
बर्ही च गुणसंपन्नः प्राचीं दिशमुपाश्रिताः ॥ ३८ ॥
भद्रां दिशं महाभागा उल्मुचुः प्रमुचुस्तथा ।
मुमुचुश्च महाभागः स्वस्त्यात्रेयश्च वीर्यवान् ॥ ३९ ॥

औषधीयुक्त तीर्थवान् मेरु, महेन्द्र, मलय, रौप्ययुक्त श्वेत पर्वत, शृङ्गवान्, मन्दर, नील, निषध, दर्दुर, चित्रकूट, अजनाभ, गन्धमादन पर्वत, पवित्र सोमगिरि इनके अतिरिक्त अन्य समस्त पर्वत, दिशा, विदिशा, सारी पृथ्वी, समस्त वृक्ष, विश्वदेवगण, आकाश, नक्षत्रगण, ग्रहगण और ये समस्त देवगण जो मेरे द्वारा कीर्तित अथवा अकीर्तित हुए हैं, वे सब कोई सदा हमारी रक्षा करें। (८—३४)

मनुष्य इन्हीं नामोंके पाठ करनेसे सब पापोंसे छूटता है, इन सबकी स्तुति तथा अभिनन्दन करनेसे पुरुष समस्त भयसे मुक्त हुआ करता है। जो लोग देवतास्तवकी प्रशंसा करते हैं, वे सब पापोंसे रहित हुआ करते हैं। देवताओंके अनन्तर तपसे सिद्ध, अधिक तपस्यायुक्त सब पापोंके नाशक, विख्यात ब्राह्मणोंका नाम वर्णन करता हूं। (३५—३७)

यवक्रीत, रैभ्य, कक्षीवान्, औशिज भृगु, अङ्गिरा, कण्व, शक्तिमान् मेधातिथि और गुणसम्पन्न बर्ही, ये पूर्वदिशाको अवलम्बन किये हैं। दक्षिण

मित्रावरुणयोः पुत्रस्तथाऽगस्त्यः प्रतापवान् ।
दृढायुश्चोर्ध्वबाहुश्च विश्रुतावृषिसत्तमौ ॥ ४० ॥
पश्चिमां दिशमाश्रित्य य एधन्ते निबोध तान् ।
उषङ्गुः सह सोदर्यैः परिव्याधश्च वीर्यवान् ॥ ४१ ॥
ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव गौतमः काश्यपस्तथा ।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महानृषिः ॥ ४२ ॥
अत्रेः पुत्रश्च धर्मात्मा तथा सारस्वतः प्रभुः ।
उत्तरां दिशमाश्रित्य य एधन्ते निबोध तान् ॥ ४३ ॥
अत्रिर्वसिष्ठः शक्तिश्च पाराशर्यश्च वीर्यवान् ।
विश्वामित्रो भरद्वाजो जमदग्निस्तथैव च ॥ ४४ ॥
ऋचीकपुत्रो रामश्च ऋषिरौद्दालकिस्तथा ।
श्वेतकेतुः कोहलश्च विपुलो देवलस्तथा ॥ ४५ ॥
देवशर्मा च धौम्यश्च हस्तिकाश्यप एव च ।
लोमशो नाचिकेतश्च लोमहर्षण एव च ॥ ४६ ॥
ऋषिरुग्रश्रवाश्चैव भार्गवश्च्यवनस्तथा ।
एष वै समवायश्च ऋषिदेवसमन्वितः ॥ ४७ ॥
आद्यः प्रकीर्तितो राजन्सर्वपापप्रमोचनः ।
नृगो ययातिर्नहुषो यदुः पूरुश्च वीर्यवान् ॥ ४८ ॥

दिशाको अवलम्बन करनेवाले महाभाग उल्मुचु, प्रमुचु, मुमुचु वीर्यवान् स्वस्त्यात्रेय, मित्रावरुणके पुत्र प्रतापवान् अगस्त्य, दृढायु और ऊर्ध्वबाहु नामसे विख्यात दोनों ऋषिसत्तम हैं। ३७-४०

जो पश्चिम दिशाको अवलम्बन करके निवास करते हैं, उनके नाम सुनो। सहोदरगणोंके सहित उषंगु, वीर्यवान् परिव्याध, दीर्घतमा ऋषि, गौतम, काश्यप, महर्षि एकत, द्वित और त्रित, तथा अत्रिके पुत्र धर्मात्मा शक्तिमान् सारस्वत। जो लोग उत्तरदिशाको अवलम्बन करके वास करते हैं, उनके नाम सुनो। अत्रि, वसिष्ठ, शक्ति, पाराशर्य, विश्वामित्र, भरद्वाज, जमदग्नि, ऋचीकपुत्र राम, उद्दालकि ऋषि, श्वेतकेतु, कोहल, विपुल, देवल, देवशर्मा, धौम्य, हस्तिकाश्यप, लोमश, नाचिकेत, लोमहर्षण, उग्रश्रवा ऋषि, भार्गव और च्यवन। हे महाराज! सर्वपापोंका नाशक ऋषिदेवसमन्वित यह आद्य समवाय संक्षेपसे प्रकीर्तित

धुन्धुमारो दिलीपश्च सगरश्च प्रतापवान् ।
कृशाश्वो यौवनाश्वश्च चित्राश्वः सत्यवांस्तथा ॥ ४९ ॥
दुष्यन्तो भरतश्चैव चक्रवर्ती महायशाः ।
पवनो जनकश्चैव तथा दृष्टरथो नृपः ॥ ५० ॥
रघुर्नरवरश्चैव तथा दशरथो नृपः ।
रामो राक्षसहा वीरः शशबिन्दुर्भगीरथः ॥ ५१ ॥
हरिश्चन्द्रो मरुत्तश्च तथा दृढरथो नृपः ।
महोदर्यो ह्यलर्कश्च ऐलश्चैव नराधिपः ॥ ५२ ॥
करन्धमो नरश्रेष्ठः कध्मोरश्च नराधिपः ।
दक्षोऽम्बरीषः कुकुरो रैवतश्च महायशाः ॥ ५३ ॥
कुरुः संवरणश्चैव मान्धाता सत्यविक्रमः ।
मुचुकुन्दश्च राजर्षिर्जह्नुर्जाह्नविसेवितः ॥ ५४ ॥
आदिराजः पृथुर्वैन्यो मित्रभानुः प्रियंकरः ।
त्रसद्दस्युस्तथा राजा श्वेतो राजर्षिसत्तमः ॥ ५५ ॥
महाभिषश्च विख्यातो निमी राजा तथाऽष्टकः ।
आयुः क्षुपश्च राजर्षिः कक्षेयुश्च नराधिपः ॥ ५६ ॥
प्रतर्दनो दिवोदासः सुदासः कोसलेश्वरः ।
ऐलो नलश्च राजर्षिर्मनुश्चैव प्रजापतिः ॥ ५७ ॥
हविध्रश्च पृषध्रश्च प्रतीपः शान्तनुस्तथा ।

हुआ है । (४१—४८)

नृग, ययाति, नहुष, यदु, वीर्यवान् पूरु, सगर, धुन्धुमार, प्रतापवान् दिलीप, कृशाश्व, यौवनाश्व, चित्राश्व, सत्यवान्, दुष्यन्त, महामना चक्रवर्ती भरत, पवन, जनक, राजा दृष्टरथ, महाराज रघु, राजा दशरथ, राक्षसोंके नाशक वीरश्रेष्ठ रामचन्द्र, शशबिन्दु, भगीरथ, हरिश्चन्द्र, मरुत्त, राजा दृढरथ, महोदर्य अलर्क, नरनाथ ऐल, नरश्रेष्ठ करन्धम, नराधिप कध्मोर, दक्ष, अम्बरीष, कुकुर, महायशस्वी रैवत, कुरु, संवरण, सत्यविक्रम मान्धाता, राजर्षि, मुचुकुन्द, जान्हवीसेवित, जन्हु, आदि राजा वेनके पुत्र पृथु, मित्रभानु, प्रियंकर, राजा, त्रसद्दस्यू, राजर्षिसत्तम श्वेत, विख्यात महाभिष, राजा निमि, अष्टक, आयु, राजर्षि क्षुप, नरनाथ कक्षेयु, प्रतर्दन, दिवोदास, कोसलराज सुदास, ऐल, राजर्षि नल, प्रजापति, मनु,

अजः प्राचीनबर्हिश्च तथेक्ष्वाकुर्महायशाः ॥ ५८ ॥
अनरण्यो नरपतिर्जानुजङ्घस्तथैव च ।
कक्षसेनश्च राजर्षिर्ये चान्ये चानुकीर्तिताः ॥ ५९ ॥
कल्यमुत्थाय यो नित्यं सन्ध्ये द्वेऽस्तमयोदये ।
पठेच्छुचिरनावृत्तः स धर्मफलभाग्भवेत् ॥ ६० ॥
देवा देवर्षयश्चैव स्तुता राजर्षयस्तथा ।
पुष्टिमायुर्यशः स्वर्गं विधास्यन्ति ममेश्वराः ॥ ६१ ॥
मा विघ्नं मा च मे पापं मा च मे परिपन्थिनः ।
ध्रुवो जयो मे नित्यः स्यात्परत्र च शुभा गतिः ॥६२॥ [७५९५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे वंशानुकीर्तनं नाम पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥

जनमेजय उवाच- शरतल्पगते भीष्मे कौरवाणां धुरन्धरे ।
शयाने वीरशयने पाण्डवैः समुपस्थिते ॥ १ ॥
युधिष्ठिरो महाप्राज्ञो मम पूर्वपितामहः ।
धर्माणामागमं श्रुत्वा विदित्वा सर्वसंशयान् ॥ २ ॥
दानानां च विधिं श्रुत्वा छिन्नधर्मार्थसंशयः ।
यदन्यदकरोद्विप्र तन्मे शंसितुमर्हसि ॥ ३ ॥

इविप्र पृषध्र, प्रतीप, शान्तनु, अज, प्राचीनबर्हि महायशस्वी इक्ष्वाकु, राजा अनरण्य, जानुजङ्घ और राजर्षि कक्षसेन, इनका तथा इनके अतिरिक्त जो वर्णित हुए, उनके नामोंका भी प्रातःकालमें उठके सूर्योदय और सूर्यास्तके समय दोनों सन्ध्यामें पवित्र और अनावृत्त होकर जो लोग पाठ करते हैं, वे धर्मफलभागी होते हैं। (४८-६०)

देवताओं, देवर्षियों और राजर्षियोंकी स्तुति करनेसे ईश्वर हमारे लिये पुष्टि, आयु, यश और स्वर्ग विधान करेगा, मुझे विघ्न प्राप्त न हो, पाप न हो और मेरे शत्रु न होवें, मेरी सदा निश्चय जय होवे और परलोकमें गति प्राप्त होवे। (६१—६२)

अनुशासनपर्वमें १६५ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १६६ अध्याय।

जनमेजय बोले, हे विप्रवर! कुरुकुलधुरन्धर भीष्मदेवके शरशय्या तथा पाण्डवगण प्रणीत वीरशय्यापर शयन करते रहनेपर मेरे पूर्वपितामह महाप्राज्ञ युधिष्ठिरने सब धर्मशास्त्र और दानकी विधि सुनके संशयके विषयों तथा धर्मार्थ

वैशम्पायन उवाच- अभून्मुहूर्तं स्तिमितं सर्वं तद्राजमण्डलम्।
तूष्णींभूते ततस्तस्मिन्पटे चित्रमिवार्पितम् ॥ ४ ॥
मुहूर्तमिव च ध्यात्वा व्यासः सत्यवतीसुतः।
नृपं शयानं गाङ्गेयमिदमाह वचस्तदा ॥ ५ ॥
राजन्प्रकृतिमापन्नः कुरुराजो युधिष्ठिरः।
सहितो भ्रातृभिः सर्वैः पार्थिवैश्चानुयायिभिः ॥ ६ ॥
उपास्ते त्वां नरव्याघ्र सह कृष्णेन धीमता।
तमिमं पुरयानाय समनुज्ञातुमर्हसि ॥ ७ ॥
एवमुक्तो भगवता व्यासेन पृथिवीपतिः।
युधिष्ठिरं सहामात्यमनुजज्ञे नदीसुतः ॥ ८ ॥
उवाच चैनं मधुरं नृपं शान्तनवो नृपः।
प्रविशस्व पुरीं राजन्व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ९ ॥
यजस्व विविधैर्यज्ञैर्बह्वन्नैः स्वाप्तदक्षिणैः।
ययातिरिव राजेन्द्र श्रद्धादमपुरःसरः ॥ १० ॥
क्षत्रधर्मरतः पार्थ पितॄन्देवांश्च तर्पय।

विषयमें सन्देहरहित होकर और जो कुछ कार्य किया था, उसे आप मेरे समीप वर्णन करिये। (१-३)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, वह समस्त राजमण्डली पटलिखित चित्रकी भांति मुहूर्तभर निश्चल हुई। अनन्तर राजाओंके चुप होनेपर सत्यवतीपुत्र व्यासदेव मुहूर्तभर सोचके उस समय सोये हुए नरनाथ गङ्गानन्दनसे बोले। (४—५)

हे राजन्! कुरुराज युधिष्ठिर भाइयों और सब अनुयाई राजाओंके सहित प्रकृतिको प्राप्त हुए हैं। हे नरनाथ! युधिष्ठिर कृष्णके सहित आपकी उपासना कर रहे हैं; अब आप इन्हें नगरमें जानेके लिये अनुमति दे सकते हैं, पृथ्वीपति गङ्गानन्दन भीष्मदेवने वेद-व्यासका ऐसा वचन सुनके मन्त्रियोंके सहित युधिष्ठिरको अनुमति दी। हे महाराज! शन्तनुनन्दन भीष्मने राजा युधिष्ठिरसे यह मधुर वचन कहा, हे राजन्! अब तुम नगरमें जाओ; तुम्हारा मानसिक शोक विनष्ट होवे, हे राजेन्द्र! तुम श्रद्धायुक्त और दान्त होकर ययातिकी भांति सम्पन्न, आप्त-दक्षिण विविध यज्ञके द्वारा यजन करो। (६—१०)

हे पार्थ! तुम क्षत्रधर्ममें रत रहके

श्रेयसा योक्ष्यसे चैव व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ ११ ॥
रञ्जयस्व प्रजाः सर्वाः प्रकृतीः परिसान्त्वय ।
सुहृदः फलसत्कारैरर्चयस्व यथार्हतः ॥ १२ ॥
अनु त्वां तात जीवन्तु मित्राणि सुहृदस्तथा ।
चैत्यस्थाने स्थितं वृक्षं फलवन्तमिव द्विजाः ॥ १३ ॥
आगन्तव्यं च भवता समये मम पार्थिव ।
विनिवृत्ते दिनकरे प्रवृत्ते चोत्तरायणे ॥ १४ ॥
तथेत्युक्त्वा च कौन्तेयः सोऽभिवाद्य पितामहम् ।
प्रययौ सपरीवारो नगरं नागसाह्वयम् ॥ १५ ॥
धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गान्धारीं च पतिव्रताम् ।
सह तैर्ऋषिभिः सर्वैर्भ्रातृभिः केशवेन च ॥ १६ ॥
पौरजानपदैश्चैव मन्त्रिवृद्धैश्च पार्थिव ।
प्रविवेश कुरुश्रेष्ठः पुरं वारणसाह्वयम् ॥ १७ ॥ [७६१२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि आनुशासनिके पर्वणि दानधर्मे भीष्मानुज्ञायां षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

समाप्तमानुशासनिकं पर्व ॥

पितरों और देवताओंकी तृप्ति विधान करो; ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारा मानसिक दुःख नष्ट होवे, तुम प्रजारञ्जन करो। प्रकृतिगण को सब प्रकारसे धीरज दो और फल सत्कारके सहारे यथायोग्य सुहृदोंकी संमानना करो। हे तात! चैत्यस्थान-स्थित फलयुक्त वृक्षका जैसे पक्षीवृन्द आसरा किया करते हैं, वैसे ही मित्र और सुहृदजन तुम्हें अवलम्बन करके जीवन करें। हे महाराज! सूर्य दक्षिणा-यनसे विनिवृत्त तथा उत्तरायणमें प्रवृत्त होनेपर मेरा समय उपस्थित होगा, उस समय तुम मेरे समीप आना, कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर 'ऐसा ही करूंगा' इतना वचन कहके परिवारके सहित हस्तिनापुरकी ओर चले। हे कुरुश्रेष्ठ महाराज! उन्होंने धृतराष्ट्र और गान्धारीको आगे करके ऋषियों, भाइयों, श्रीकृष्ण, पुरवासी और जनपदवासी लोगों तथा मन्त्रियोंके सहित हस्तिना-पुरमें प्रवेश किया। (११—१७)

अनुशासनपर्वमें १६६ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें आनुशासनिकपर्व समाप्त।

अथ भीष्मस्वर्गारोहणपर्व ।

वैशम्पायन उवाच- ततः कुन्तीसुतो राजा पौरजानपदं जनम् ।
पूजयित्वा यथान्यायमनुजज्ञे गृहान्प्रति ॥ १ ॥
सान्त्वयामास नारीश्च हतवीरा हतेश्वराः ।
विपुलैरर्थदानैः स तदा पाण्डुसुतो नृपः ॥ २ ॥
सोऽभिषिक्तो महाप्राज्ञः प्राप्य राज्यं युधिष्ठिरः ।
अवस्थाप्य नरश्रेष्ठः सर्वाः स्वप्रकृतीस्तथा ॥ ३ ॥
द्विजेभ्यो गुणमुख्येभ्यो नैगमेभ्यश्च सर्वशः ।
प्रतिगृह्याशिषो मुख्यास्तथा धर्मभृतां वरः ॥ ४ ॥
उषित्वा शर्वरीः श्रीमान्पञ्चाशन्नगरोत्तमे ।
समयं कौरवाग्र्यस्य सस्मार पुरुषर्षभः ॥ ५ ॥
स निर्ययौ गजपुराद्याजकैः परिवारितः ।
दृष्ट्वा निवृत्तमादित्यं प्रवृत्तं चोत्तरायणम् ॥ ६ ॥
घृतं माल्यं च गन्धांश्च क्षौमाणि च युधिष्ठिरः ।
चन्दनागुरुमुख्यानि तथा कालीयकान्यपि ॥ ७ ॥
प्रस्थाप्य पूर्वं कौन्तेयो भीष्मसंस्करणाय वै ।
माल्यानि च वरार्हाणि रत्नानि विविधानि च ॥ ८ ॥

भीष्मस्वर्गारोहणपर्व ।

अनुशासनपर्वमें १६७ अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने पुरवासी और जनपदवासियोंका यथारीतिसे सम्मान करके गृहमें जानेके निमित्त अनुमति दी । उस समय पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर मरे हुए वीरोंकी स्त्रियों वा पतिहीन नारियोंको बहुतसा धन दान करके धीरज देनेमें प्रवृत्त हुए । वह पुरुषश्रेष्ठ महाप्राज्ञ युधिष्ठिरने राज्य पाके समस्त प्रजासमूहको बुलाकर अभिषिक्त हुए । धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर श्रीमान् धीमान् पुरुषश्रेष्ठ ब्राह्मणों, सेनापतियों और वेदशास्त्र जाननेवाले पुरुषोंसे उत्तम आशीर्वाद पाके नगरके बीच पचास रात्रि वास करके कौरवोंमें अग्रगण्य भीष्मदेवका समय स्मरण किया । १-५

वह याजकोंके बीच घिरकर हस्तिपुरसे बाहिर हुए । आदित्यको निवृत्त और उत्तरायणमें प्रवृत्त देखकर भीष्मदेवके संस्कारके निमित्त पहले घृत, माला, पटवस्त्र, सुगन्ध, अगुरु प्रभृति चन्दन, कालीयक द्रव्य, महामूल्यवान्

धृतराष्ट्रं पुरस्कृत्य गान्धारीं च यशस्विनीम् ।
मातरं च पृथां धीमान्भ्रातृंश्च पुरुषर्षभान् ॥ ९ ॥
जनार्दनेनानुगतो विदुरेण च धीमता ।
युयुत्सुना च कौरव्यो युयुधानेन वा विभो ॥ १० ॥
महता राजभोगेन पारिबर्हेण संवृतः ।
स्तूयमानो महातेजा भीष्मस्याग्नीननुव्रजन् ॥ ११ ॥
निश्चक्राम पुरात्तस्माद्यथा देवपतिस्तथा ।
आससाद कुरुक्षेत्रे ततः शान्तनवं नृपः ॥ १२ ॥
उपास्यमानं व्यासेन पाराशर्येण धीमता ।
नारदेन च राजर्षे देवलेनासितेन च ॥ १३ ॥
हतशिष्टैर्नृपैश्चान्यैर्नानादेशसमागतैः ।
रक्षिभिश्च महात्मानं रक्ष्यमाणं समन्ततः ॥ १४ ॥
शयानं वीरशयने ददर्श नृपतिस्ततः ।
ततो रथादवातीर्य भ्रातृभिः सह धर्मराट् ॥ १५ ॥
अभिवाद्याथ कौन्तेयः पितामहमरिन्दमम् ।
द्वैपायनादीन्विप्रांश्च तैश्च प्रत्यभिनन्दितः ॥ १६ ॥
ऋत्विग्भिर्ब्रह्मकल्पैश्च भ्रातृभिः सह धर्मजः ।

माला और विविध रत्न भेजके राजा धृतराष्ट्र, यशस्विनी गान्धारी, माता पृथादेवी और भाइयोंको अगाडी करके जनार्दन, धीमान् विदुर, युयुत्सु, और सात्यकीके सहित राजाओंके योग्य उत्तम महत् परिवारके द्वारा घिरकर तथा स्तूयमान होकर भीष्मके संस्कारक अग्निका अनुगमन करते हुए देवराजकी भांति उस नगरसे बाहिर हुए। अनन्तर वह महातेजस्वी राजा कुरुक्षेत्रमें शान्तनुपुत्रके समीप उपस्थित हुए। (९—१२)

हे राजर्षि! राजा युधिष्ठिरने उस समय पराशरनन्दन बुद्धिमान् व्यासदेव, नारद, देवल, असित और मरनेसे बचे हुए अनेक देशोंके समागत राजाओंके द्वारा उपासित और रक्षकोंसे रक्षित, वीरशय्यापर सोये हुए भीष्मदेवका दर्शन किया। अनन्तर धर्मराजने भाइयोंके सहित रथसे उतरकर अरिदमन कुरुश्रेष्ठ पितामहको अभिवादन तथा द्वैपायन प्रभृति ब्राह्मणोंको प्रणाम किया; उन सब लोगोंने उन्हें अभिनन्दित किया। धर्मराज युधिष्ठिर ऋत्विग्गण

आसाद्य शरतल्पस्थमृषिभिः परिवारितम् ॥ १७ ॥
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
भ्रातृभिः सह कौरव्यः शयानं निम्नगासुतम् ॥ १८ ॥
युधिष्ठिरोऽहं नृपते नमस्ते जान्हवीसुत ।
शृणोषि चेन्महाबाहो ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ १९ ॥
प्राप्तोऽस्मि समये राजन्नग्नीनादाय ते विभो ।
आचार्यान्ब्राह्मणांश्चैव ऋत्विजो भ्रातरश्च मे ॥ २० ॥
पुत्रश्च ते महातेजा धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
उपस्थितः सहामात्यो वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ २१ ॥
हतशिष्टाश्च राजानः सर्वे च कुरुजाङ्गलाः ।
तान्पश्य नरशार्दूल समुन्मीलय लोचने ॥ २२ ॥
यच्चेह किंचित्कर्तव्यं तत्सर्वं प्रापितं मया ।
यथोक्तं भवता काले सर्वमेव च तत्कृतम् ॥ २३ ॥
वैशम्पायन उवाच- एवमुक्तस्तु गाङ्गेयः कुन्तीपुत्रेण धीमता ।
ददर्श भारतान्सर्वान्स्थितान्संपरिवार्य ह ॥ २४ ॥
ततश्च तं बली भीष्मः प्रगृह्य विपुलं भुजम् ।
उद्यन्मेघस्वरो वाग्मी काले वचनमब्रवीत् ॥ २५ ॥

और भाइयोंके सहित ऋषियोंसे घिरकर शरशय्यापर सोये हुए गङ्गानन्दन भीष्मदेवसे बोले। (१३—१८)

हे नरनाथ जाह्नवीनन्दन ! मैं युधिष्ठिर आपको प्रणाम करता हूं। हे महाबाहो ! यदि आप सुनते हो, तो कहिये मैं आपका कौनसा कार्य करूं ? हे विभु ! मैं अग्नि लेकर आपके समयपर उपस्थित हुआ हूं। आचार्य, ऋत्विग्गण, ब्राह्मणगण आपके पुत्र महातेजस्वी प्रजानाथ धृतराष्ट्र और मन्त्रियोंके सहित वीर्यवान् वासुदेव उपस्थित हुए हैं। मरनेसे बचे हुए सब राजा और कुरुजाङ्गलके सब लोग आये हैं। हे कुरुश्रेष्ठ ! इस लिये आप दोनों नेत्र उघारके सबको देखिये। इस समय जो कुछ कर्तव्य है, वह सब मैंने संग्रह किया है; समयपर आपने जो कुछ कहा था, वह सब कर्म मैंने सिद्ध किया है। (१९-२३)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, बुद्धिमान् कुन्तीपुत्रका ऐसा वचन सुनके भीष्मदेवने नेत्र उघारके देखा, कि सब भारतगण उन्हें घेरकर खडे हैं। अनन्तर बलवान् वाग्मी भीष्मदेव विपुल भुजा

दिष्ट्या प्राप्तोऽसि कौन्तेय सहामात्यो युधिष्ठिर।
परिवृत्तो हि भगवान्सहस्रांशुर्दिवाकरः ॥ २६ ॥
अष्टपञ्चाशतं रात्र्यः शयानस्याद्य मे गताः।
शरेषु निशिताग्रेषु यथा वर्षशतं तथा ॥ २७ ॥
माघोऽयं समनुप्राप्तो मासः सौम्यो युधिष्ठिर।
त्रिभागशेषः पक्षोऽयं शुक्लो भवितुमर्हति ॥ २८ ॥
एवमुक्त्वा तु गाङ्गेयो धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम्।
धृतराष्ट्रमथामन्त्र्य काले वचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥
भीष्म उवाच– राजन्विदितधर्मोऽसि सुनिर्णीतार्थसंशयः।
बहुश्रुता हि ते विप्रा बहवः पर्युपासिताः ॥ ३० ॥
वेदशास्त्राणि सर्वाणि धर्मांश्च मनुजेश्वर।
वेदांश्च चतुरः सर्वान्निखिलेनानुबुध्यसे ॥ ३१ ॥
न शोचितव्यं कौरव्य भवितव्यं हि तत्तथा।
श्रुतं देवरहस्यं ते कृष्णद्वैपायनादपि ॥ ३२ ॥
यथा पाण्डोः सुता राजंस्तथैव तव धर्मतः।
तान्पालय स्थितो धर्मे गुरुशुश्रूषणे रतान् ॥ ३३ ॥

ग्रहण करके उद्यत मेघसदृश गम्भीर स्वरसे बोले। हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! प्रारब्धसे ही तुम मन्त्रियोंके सहित उपस्थित हुए हो; भगवान् सहस्र-किरणधारी दिवाकर परिवृत्त हुए हैं। चोखे बाणोंके अग्रभागपर आज अट्ठावन रात्रिपर्यन्त मैं सोया हूं; परन्तु बोध होता है, मानो एक सौ वर्ष व्यतीत हुआ है। हे युधिष्ठिर! यह चान्द्र माघ मास उपस्थित है, यह शुक्लपक्ष है इस महीनेका तीन भाग इस समय भी शेष रह सकता है। भीष्मदेव युधिष्ठिरसे इतना वचन कहके धृतराष्ट्रको आमन्त्रण करके उस समयके अनुसार वचन कहने लगे। (२४—२९)

भीष्म बोले, हे राजन्! तुम धर्मज्ञ हो, तुमने विषय संशयका उत्तम रीतिसे निर्णय किया है; शास्त्रोंके जाननेवाले बहुतेरे ब्राह्मणोंकी तुमने उपासना की है। हे मनुजेश्वर! तुम्हें सूक्ष्म वेदशास्त्र, सब धर्मों और चारों वेद मालूम हैं। हे कौरव! इसलिये तुम्हें शोक करना उचित नहीं है; जो होनहार था, वह हुआ है। तुमने कृष्णद्वैपायनसे वेदरहस्य सुना है। हे महाराज! पाण्डुके पुत्रगण धर्मपूर्वक तुम्हारे पुत्र ही हैं;

धर्मराजो हि शुद्धात्मा निदेशे स्थास्यते तव ।
आनृशंस्यपरं चैनं जानामि गुरुवत्सलम् ॥ ३४ ॥
तव पुत्रा दुरात्मानः क्रोधलोभपरायणाः ।
ईर्ष्याभिभूता दुर्वृत्तास्तान्न शोचितुमर्हसि ॥ ३५ ॥
वैशम्पायन उवाच– एतावदुक्त्वा वचनं धृतराष्ट्रं मनीषिणम् ।
वासुदेवं महाबाहुमभ्यभाषत कौरवः ॥ ३६ ॥
भीष्म उवाच– भगवन्देवदेवेश सुरासुरनमस्कृत ।
त्रिविक्रम नमस्तुभ्यं शङ्खचक्रगदाधर ॥ ३७ ॥
वासुदेवो हिरण्यात्मा पुरुषः सविता विराट् ।
जीवभूतोऽनुरूपस्त्वं परमात्मा सनातनः ॥ ३८ ॥
त्रायस्व पुण्डरीकाक्ष पुरुषोत्तम नित्यशः ।
अनुजानीहि मां कृष्ण वैकुण्ठ पुरुषोत्तम ॥ ३९ ॥
रक्ष्याश्च ते पाण्डवेया भवान्येषां परायणम् ।
उक्तवानस्मि दुर्बुद्धिं मन्दं दुर्योधनं तदा ॥ ४० ॥
यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ।

इसलिये तुम धर्ममें तत्पर रहके उन सेवा करनेवाले पाण्डुपुत्रोंका पालन करो । शुद्धचित्त धर्मराज तुम्हारे आज्ञावर्ती रहेंगे, अनृशंसतापरायण तथा गुरुवत्सल जानो । तुम्हारे पुत्रगण दुरात्मा क्रोधमोहपरायण, ईर्षायुक्त और दुर्वृत्त थे; इसलिये उन लोगोंके निमित्त तुम्हें शोक करना उचित नहीं है । श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, कौरवश्रेष्ठ भीष्मदेव, महाराज धृतराष्ट्रसे इतनी कथा कहके फिर महाबाहु वासुदेवसे कहने लगे । (३०–३६)

भीष्म बोले, हे देवदेवेश्वर सुरासुरनमस्कृत शङ्खचक्रगदाधारी त्रिविक्रम भगवन् ! तुम्हें नमस्कार है । तुम वासुदेव, हिरण्यात्मा, सविता विराट् पुरुष हो; तुम ही जीवस्वरूप अनुरूप सनातन परमात्मा हो । हे पुण्डरीकाक्ष पुरुषोत्तम ! तुम सदा मेरा परित्राण करो । हे वैकुण्ठ पुरुषोत्तम कृष्ण ! मुझे अनुमति दो, आप जिनके अवलम्ब हैं, उन पाण्डवोंकी रक्षा करिये । (३७—४०)

पहले मैंने दुर्बुद्धि मूर्ख दुर्योधनसे कहा था, कि जिस पक्षमें कृष्ण हैं, वहां ही धर्म है, जहां धर्म है, उस ही

वासुदेवेन तीर्थेन पुत्र संशाम्य पाण्डवैः ॥ ४१ ॥
संधानस्य परः कालस्तवेति च पुनः पुनः।
न च मे तद्वचो मूढः कृतवान्स सुमन्दधीः।
घातयित्वेह पृथिवीं ततः स निधनं गतः ॥ ४२ ॥
त्वां तु जानाम्यहं देवं पुराणमृषिसत्तमम्।
नरेण सहितं देव बदर्यां सुचिरोषितम् ॥ ४३ ॥
तथा मे नारदः प्राह व्यासश्च सुमहातपाः।
नरनारायणावेतौ संभूतौ मनुजेष्विति ॥ ४४ ॥
स मां त्वमनुजानीहि कृष्ण मोक्ष्ये कलेवरम्।
त्वयाहं समनुज्ञातो गच्छेयं परमां गतिम् ॥ ४५ ॥
वासुदेव उवाच- अनुजानामि भीष्म त्वां वसून्प्राप्नुहि पार्थिव।
न तेऽस्ति वृजिनं किंचिदिह लोके महाद्युते ॥ ४६ ॥
पितृभक्तोऽसि राजर्षे मार्कण्डेय इवापरः।
तेन मृत्युस्तव वशे स्थितो भृत्य इवानतः ॥ ४७ ॥
वैशम्पायन उवाच- एवमुक्तस्तु गाङ्गेयः पाण्डवानिदमब्रवीत्।
धृतराष्ट्रमुखांश्चापि सर्वांश्च सुहृदस्तथा ॥ ४८ ॥

पक्षमें जय है। हे तात! वासुदेवको उपाय अवलम्बन करके पाण्डवोंके संग सन्धि स्थापित करो; सन्धि करनेसे तुम्हारा समय उत्तम होगा। मेरे बार बार ऐसा कहनेपर भी मन्दबुद्धि मूढ दुर्योधनने मेरा वचन न माना। इस समय पृथ्वीके सब राजाओंको मरवाकर स्वयं मृत्युको प्राप्त हुआ है। हे देव! मैं तुम्हें बदरिकाश्रममें नरके सहित बहुकालवासी पुराण ऋषिसत्तम देव कहके जानता हूं; नारद मुनि और महातपस्वी व्यासदेवने मुझसे कहा है, कि ये नर नारायण मनुष्य लोकमें अवतार लिये हैं। हे कृष्ण! अब मैं शरीर परित्याग करता हूं, तुम मुझे अनुमति दो, तुम्हारी आज्ञा होनेसे मुझे परम गति प्राप्त होगी। (४०-४५)

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे पार्थिव भीष्म! मैं तुम्हें अनुमति देता हूं, तुम्हें समस्त वसुलोक प्राप्त हों, हे महातेजस्वी! इस लोकमें तुम्हारा तनिक भी पाप नहीं है; तुम पितृभक्त तथा द्वितीय मार्कण्डेय सदृश हो; क्यों कि मृत्यु दासीकी भांति सिर झुकाके तुम्हारे वशमें हो रही है। (४६—४७)

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भीष्म-

प्राणानुत्स्रष्टुमिच्छामि तत्रानुज्ञातुमर्हथ ।
सत्येषु यतितव्यं वः सत्यं हि परमं बलम् ॥ ४९ ॥
आनृशंस्यपरैर्भाव्यं सदैव नियतात्मभिः ।
ब्रह्मण्यैर्धर्मशीलैश्च तपोनित्यैश्च भारताः ॥ ५० ॥
इत्युक्त्वा सुहृदः सर्वान्संपरिष्वज्य चैव ह ।
पुनरेवाब्रवीद्धीमान्युधिष्ठिरमिदं वचः ॥ ५१ ॥
ब्राह्मणाश्चैव ते नित्यं प्राज्ञाश्चैव विशेषतः ।
आचार्या ऋत्विजश्चैव पूजनीया जनाधिप ॥ ५२ ॥ [७६५४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि भीष्मस्वर्गारोहणपर्वणि दानधर्मे सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥

वैशम्पायन उवाच-एवमुक्त्वा कुरून्सर्वान् भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
तूष्णीं बभूव कौरव्यः स मुहूर्तमरिन्दम ॥ १ ॥
धारयामास चात्मानं धारणासु यथाक्रमम् ।
तस्योर्ध्वमगमन्प्राणाः संनिरुद्धा महात्मनः ॥ २ ॥
इदमाश्चर्यमासीच्च मध्ये तेषां महात्मनाम् ।
सहितैर्ऋषिभिः सर्वैस्तदा व्यासादिभिः प्रभो ॥ ३ ॥

देव कृष्णका ऐसा वचन सुनके पाण्डवगण तथा धृतराष्ट्र प्रभृति समस्त सुहृदोंसे कहने लगे । " मैं प्राण परित्याग करनेके लिये अभिलाषी हुआ हूं, उस विषयमें तुम लोग अनुमति करो। तुम लोग सत्यमें यत्नवान् रहना, सत्य ही परम बल है । हे भारत ! तुम लोग सदा अनृशंसतापरायण नियत-चित्त ब्रह्मनिष्ठ धर्मशील और तपमें रत होना ।" बुद्धिमान् भीष्मदेव सब सुहृदोंसे इतनी कथा कहके सबको आलिङ्गन करके फिर युधिष्ठिरसे यह वचन बोले। हे प्रजानाथ ! ब्राह्मणगण, विशेष प्राज्ञजन, आचार्य और ऋत्विग्गण सदा सर्वदा तुम्हारे पूजनीय हैं। (४८—५२)

अनुशासनपर्वमें १६७ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्वमें १६८ अध्याय ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे अरिदमन कुरुनन्दन ! वह शान्तनव भीष्मने उस समय सब कौरवोंसे इसी प्रकार कहके मुहूर्तभर मौनावलम्बन किया। अनन्तर यथाक्रमसे मूल धारादि अधिष्ठानमें मनके सहित प्राणादि वायुको धारण करनेसे उस महात्माका प्राणादिवायु सम्यक् निरुद्ध होकर ऊर्ध्वगामी

यद्यन्मुञ्चति गात्रं हि स शान्तनुसुतस्तदा।
तत्तद्विशल्यं भवति योगयुक्तस्य तस्य वै ॥ ४ ॥
क्षणेन प्रेक्षतां तेषां विशल्यः सोऽभवत्तदा।
तद् दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे वासुदेवपुरोगमाः ॥ ५ ॥
सह तैर्मुनिभिः सर्वैस्तदा व्यासादिभिर्नृप।
सन्निरुद्धस्तु तेनात्मा सर्वेष्वायतनेषु च ॥ ६ ॥
जगाम भित्त्वा मूर्धानं दिवमभ्युत्पपात ह।
देवदुन्दुभिनादश्च पुष्पवर्षैः सहाभवत् ॥ ७ ॥
सिद्धा ब्रह्मर्षयश्चैव साधु साध्विति हर्षिताः।
महोल्केव च भीष्मस्य मूर्धदेशाज्जनाधिप ॥ ८ ॥
निःसृत्याकाशमाविश्य क्षणेनान्तरधीयत।
एवं स राजशार्दूल नृप! शान्तनवस्तदा ॥ ९ ॥
समयुज्यत कालेन भरतानां कुलोद्वहः।
ततस्त्वादाय दारूणि गन्धांश्च विविधान्बहून् ॥ १० ॥
चितां चक्रुर्महात्मानः पाण्डवा विदुरस्तथा।
युयुत्सुश्चापि कौरव्यं प्रेक्षकास्त्वितरेऽभवन् ॥ ११ ॥

हुए। व्यासादि सब महात्मा ऋषि लोग देखते रहनेपर यह आश्चर्य हुआ। शान्तनुनन्दन भीष्म उस समय जिस जिस अवयवके जिस अंशको परित्याग करने लगे, उस योगयुक्त महानुभावका वह अङ्ग विशल्य हुआ। (१—४)

क्षणभरमें सबके सम्मुखमें ही वह विशल्य हुए। वासुदेव प्रभृति व्यासादि मुनियोंके सहित सब कोई उसे देखकर विस्मित होरहे, उन्होंने सब अवयवोंमें प्राणसंयुक्त मनको निरोध करके मस्तक भेदकर स्वर्गमें गमन किया। आकाशमें पुष्पवृष्टिके सहित देवता लोग दुन्दुभी बजाने लगे। सिद्ध और ब्रह्मर्षिगण साधु साधु कहके हर्ष प्रकाश करने लगे। हे प्रजानाथ! भीष्मदेवके मस्तकसे महोल्काकी भांति कोई पदार्थ निकलकर आकाशमें प्रवेश करते हुए क्षणभरके बीच अन्तर्हित हुआ। हे नृपश्रेष्ठ! इस ही प्रकार वह भरतकुल-धुरन्धर नरनाथ शान्तनुनन्दन उस समय कालके सहित संयुक्त हुए। अनन्तर महानुभाव पाण्डवगण विदुर और युयुत्सुने बहुतसा काष्ठ और विविध सुगन्धि लाकर चिता बनाई, और सब लोग देखने लगे। (५—११)

युधिष्ठिरश्च गाङ्गेयं विदुरश्च महामतिः ।
छादयामासतुरुभौ क्षौमैर्माल्यैश्च कौरवम् ॥ १२ ॥
धारयामास तस्याथ युयुत्सुश्छत्रमुत्तमम् ।
चामरव्यजने शुभ्रे भीमसेनार्जुनावुभौ ॥ १३ ॥
उष्णीषे परिगृह्णीतां माद्रीपुत्रावुभौ तथा ।
स्त्रियः कौरवनाथस्य भीष्मं कुरुकुलोद्वहम् ॥ १४ ॥
तालवृन्तान्युपादाय पर्यवीजन्त सर्वशः ।
ततोऽस्य विधिवच्चक्रुः पितृमेधं महात्मनः ॥ १५ ॥
यजनं बहुशश्चाग्नौ जगुः सामानि सामगाः ।
ततश्चन्दनकाष्ठैश्च तथा कालीयकैरपि ॥ १६ ॥
कालागुरुप्रभृतिभिर्गन्धैश्चोच्चावचैस्तथा ।
समवच्छाद्य गाङ्गेयं संप्रज्वाल्य हुताशनम् ॥ १७ ॥
अपसव्यमकुर्वन्त धृतराष्ट्रमुखाश्चिताम् ।
संस्कृत्य च कुरुश्रेष्ठं गाङ्गेयं कुरुसत्तमाः ॥ १८ ॥
जग्मुर्भागीरथीं पुण्यामृषिजुष्टां कुरूद्वहाः ।
अनुगम्यमाना व्यासेन नारदेनासितेन च ॥ १९ ॥

युधिष्ठिर और अत्यन्त श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् विदुर दोनोंनेही कुरुश्रेष्ठ भीष्मको वसन और मालासे परिपूरित किया, युयुत्सुने उनके ऊपर उत्तम छत्र धारण किया। भीमसेन और अर्जुन, दोनों सफेद चवंर लेकर डुलाने लगे। नकुल और सहदेवने उष्णीष धारण किया। स्त्रियां कुरुकुलधुरन्धर भीष्मदेवके पांवके तलेसे सब शरीरपर तालका बेना सञ्चालन करने लगे। अनन्तर सबने उस महात्माका विधिपूर्वक पितृयज्ञ निर्वाह किया; अग्निमें बार बार यजन किया; सामग ब्राह्मणगण सामगान करने लगे। अनन्तर धृतराष्ट्र प्रभृति प्रचन्दनकाष्ठ और कालीयक, कालागुरु, प्रभृति अनेक प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओंसे गङ्गानन्दनको आच्छादित करके अग्नि जलाकर प्रदक्षिणा की। कुरुकुलधुरन्धर कुरुसत्तमगण कुरुश्रेष्ठ भीष्मका संस्कार करके ऋषियोंसे सेवित पवित्र भागीरथीके तटपर गये। व्यासदेव, असित, नारद, कृष्ण, भरतकुलकी स्त्रियें और जो सब पुरवासी वहांपर इकट्ठे हुए थे, वे सब कोई उनका अनुगमन करने लगे। (१२—१९)

कृष्णेन भरतस्त्रीभिर्ये च पौराः समागताः ।
उदकं चक्रिरे चैव गाङ्गेयस्य महात्मनः ॥ २० ॥
विधिवत्क्षत्रियश्रेष्ठाः स च सर्वो जनस्तदा ।
ततो भागीरथी देवी तनयस्योदके कृते ॥ २१ ॥
उत्थाय सलिलात्तस्माद्रुदती शोकविह्वला ।
परिदेवयती तत्र कौरवानभ्यभाषत ॥ २२ ॥
निबोधत यथावृत्तमुच्यमानं मयाऽनघाः ।
राजवृत्तेन संपन्नः प्रज्ञयाभिजनेन च ॥ २३ ॥
सत्कर्ता कुरुवृद्धानां पितृभक्तो महाव्रतः ।
जामदग्न्येन रामेण यः पुरा न पराजितः ॥ २४ ॥
दिव्यैरस्त्रैर्महावीर्यः स हतोऽद्य शिखण्डिना ।
अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम पार्थिवाः ॥ २५ ॥
अपश्यन्त्याः प्रियं पुत्रं यन्न दीर्यति मेऽद्य वै ।
समेतं पार्थिवं क्षत्रं काशिपुर्यां स्वयंवरे ॥ २६ ॥
विजित्यैकरथेनैव कन्याश्चायं जहार ह ।
यस्य नास्ति बले तुल्यः पृथिव्यामपि कश्चन ॥२७ ॥
हतं शिखण्डिना श्रुत्वा न विदीर्येत यन्मनः ।

हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर उन लोगोंने विधिपूर्वक महात्मा भीष्मदेवका तर्पण किया। अनन्तर गङ्गादेवी पुत्रका तर्पण होनेपर उस जलसे उठके रोदन करती हुई शोकसे विह्वल होकर विलाप करते करते कौरवोंसे बोलीं, हे निष्पापगण! जो घटना हुई है उसे मैं कहती हूं, सब कोई सुनो। जो मेरा पुत्र राज-चरित्र, प्रज्ञा और नियमसम्पन्न था, जो कुरुवृद्धगणका सत्कार करनेवाला, पितृभक्त और महाव्रत था, पहले जो परशुरामके निकट पराजित नहीं हुआ; आज वही महावीर शिखण्डीके द्वारा दिव्य अस्त्रोंसे मारा गया। (२०-२५)

हे नृपगण! मेरा हृदय निश्चयही पाषाणमय है, क्यों कि उस प्रिय पुत्रको न देखकर अबतक भी विदीर्ण नहीं हुआ। काशीपुरीके बीच स्वयंवर-समाजमें इकट्ठे हुए समस्त क्षत्रिय राजाओंको एक रथसेही जीतकर जिसने तीनों कन्याओंको हरण किया था, पृथ्वीपर जिसके समान बलशाली और कोई भी न था, वह पुत्र शिखण्डीके हाथसे मारा गया है, इस बातको

जामदग्न्यः कुरुक्षेत्रे युधि येन महात्मना ॥ २८ ॥
पीडितो नातियत्नेन स हतोऽद्य शिखण्डिना ।
एवंविधं बहु तदा विलपन्तीं महानदीम् ॥ २९ ॥
अश्वासयामास तदा गङ्गां दामोदरो विभुः ।
समाश्वसिहि भद्रे त्वं मा शुचः शुभदर्शने ॥ ३० ॥
गतः स परमं लोकं तव पुत्रो न संशयः ।
वसुरेष महातेजा शापदोषेण शोभने ॥ ३१ ॥
मानुषत्वमनुप्राप्तो नैनं शोचितुमर्हसि ।
स एष क्षत्रधर्मेण अयुध्यत रणाजिरे ॥ ३२ ॥
धनञ्जयेन निहतो नैष देवि शिखण्डिना ।
भीष्मं हि कुरुशार्दूलमुद्यतेषुं महारणे ॥ ३३ ॥
न शक्तः संयुगे हन्तुं साक्षादपि शतक्रतुः ।
स्वच्छन्दतस्तव सुतो गतः स्वर्गं शुभानने ॥ ३४ ॥
न शक्ता विनिहन्तुं हि रणे तं सर्वदेवताः ।
तस्मान्मा त्वं सरिच्छ्रेष्ठे शोचस्व कुरुनन्दनम् ।

सुनके मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हुआ !! कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें जामदग्न्य राम जिस महात्माके द्वारा सहजमें ही पीडित हुए थे, आज वह शिखण्डीके द्वारा मारा गया !!! महानदी गङ्गाके उस समय इसही प्रकार बहुत विलाप करते रहनेपर विभु दामोदरने उसे सान्त्वना वाक्यसे धीरज दिया । (२५—३०)

हे प्रियदर्शने भद्रे ! तुम धीरज धरो, शोक मत करो; तुम्हारा वह पुत्र परम लोकमें गया है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । हे शोभने ! यह भीष्म महातेजस्वी वसु थे, शापदोषसे इन्हें मनुष्यत्व प्राप्त हुआ था; इसलिये इनके निमित्त शोक करना तुम्हें उचित नहीं है । वह क्षत्रियधर्मके अनुसार रणभूमिमें संग्राम करते हुए अर्जुनके द्वारा मारे गये हैं । हे देवि ! शिखण्डीने उनका वध नहीं किया । कुरुश्रेष्ठ भीष्मदेवके महायुद्धमें बाण उद्यत करके स्थित होनेपर साक्षात् शतक्रतु इन्द्र भी उनका वध करनेमें समर्थ नहीं थे । (३०—३४)

हे शुभानने ! तुम्हारा पुत्र स्वच्छन्दताके सहित स्वर्गमें गया है, युद्धमें समस्त देवता भी उसका वध करनेमें समर्थ नहीं हैं । हे गंगादेवि ! इसलिये तुम कुरुनन्दनके निमित्त शोक

वसूनेष गतो देवि पुत्रस्ते विज्वरा भव ॥ ३५ ॥

वैशम्पायन उवाच- इत्युक्ता सा तु कृष्णेन व्यासेन तु सरिद्वरा।

त्यक्त्वा शोकं महाराज स्वं वार्यवततार ह ॥ ३६ ॥

सत्कृत्य ते तां सरितं ततः कृष्णमुखा नृप।

अनुज्ञातास्तया सर्वे न्यवर्तन्त जनाधिपाः ॥ ३७ ॥ [७७०१]

इति श्रीमहाभा० शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां अनुशासनपर्वणि भीष्मस्वर्गारोहणपर्वणि दानधर्मे भीष्मयुधिष्ठिरसंवादे भीष्ममुक्तिर्नाम अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥

॥ इति अनुशासनपर्व समाप्तम् ॥

॥ अतः परमाश्वमेधिकं पर्व भविष्यति ॥

॥ तस्यायमाद्यः श्लोकः ॥

वैशम्पायन उवाच- कृतोदकं तु राजानं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरः।

पुरस्कृत्य महाबाहुरुत्तताराकुलेन्द्रियः ॥ १ ॥

मत करो। यह तुम्हारा पुत्र वसुलोकमें गया है। हे देवि! तुम शोकरहित हो। श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! नदियोंमें श्रेष्ठ जान्हवी, कृष्ण और व्यासदेवका ऐसा वचन सुनके शोकरहित होके प्रकृतिको प्राप्त हुई। हे प्रजानाथ! कृष्णप्रभृति सब कोई उस समय उनका सत्कार करके तथा उनकी अनुमति लेकर निवृत्त हुए। (३४-३७)

अनुशासनपर्वमें १६८ अध्याय समाप्त।

अनुशासनपर्व सम्पूर्ण।

श्लोकसंख्या।

१—१२ शान्तिपर्वके अन्ततक ७१८७४

१३ अनुशासनपर्व ७७०१

सर्वयोग ७९५७५

अनुशासनपर्वकी विषय-सूची।

अनुशासनपर्वकी विषयसूची

समाप्त।

महाभारत।

इस समय तक छपकर तैयार पर्व

पर्वका नाम	अंक	कुल अंक	पृष्ठसंख्या	मूल्य	डा. व्यय
१ आदिपर्व	[१ से ११]	११	११२५	६) छः	रु १)
२ सभापर्व	[१२ " १५]	४	३५६	२) दो	।-)
३ वनपर्व	[१६ " ३०]	१५	१५३८	८) आठ	१।)
४ विराटपर्व	[३१ " ३३]	३	३०६	१॥) डेढ	।-)
५ उद्योगपर्व	[३४ " ४२]	९	९५३	५) पांच	१)
६ भीष्मपर्व	[४३ " ५०]	८	८००	४) चार	॥)
७ द्रोणपर्व	[५१ " ६४]	१४	१३६४	७॥) साडेसात	१।≈)
८ कर्णपर्व	[६५ " ७०]	६	६३७	३॥) साडेतीन	,, ॥)
९ शल्यपर्व	[७१ " ७४]	४	४३५	२॥) अढाइ	" ।≈)
१० सौप्तिकपर्व	[७५]	१	१०४	।॥) बारह आ.	।-)
११ स्त्रीपर्व	[७६]	१	१०८	।॥) "	।)
१२ शान्तिपर्व					
१ राजधर्मपर्व	[७६—८३]	७	६९४	३॥) साढे तीन	॥)
२ आपद्धर्मपर्व	[८४—८५]	२	२३२	१।) सव	।-)
३ मोक्षधर्मपर्व	[८६—९६]	११	११००.	६) छः	१)
१३ अनुशासनपर्व	[९७" १०७]	११	१०७६	६	१)

कुल मूल्य ५८।) कुल डा. व्य. १०।≡)

सूचना— ये पर्व छप कर तैयार हैं। अतिशीघ्र मंगवाइये। मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेज देंगे तो आधा डाकव्यय माफ करेंगे; अन्यथा प्रत्येक रु० के मूल्यके ग्रंथको तीन आने डाकव्यय मूल्यके अलावा देना होगा। मंत्री— स्वाध्याय मंडल, औंध (जि० सातारा)

मुद्रक और प्रकाशक श्री० दा० सातवळेकर, भारतमुद्रणालय, औंध, (जि० सातारा.)